घनआनंद और आनंदघन

(ग्रंथावली)

संपादक

विश्वनाथप्रसाद मिश्र,

प्राध्यापक, हिंदी-विभाग,

काशी हिंदू-विश्वविद्यालय।

प्रकाशक



पुस्तक-विक्रेता
सरस्वती-मंदिर,
जतनबर, काशी।

प्रबोधनी

सं० २००२ वि०
प्रथमावृत्ति

मुद्रक
महताबराय,
ज्ञानमंडल यंत्रालय, काशी

वाङ्मुख

आनंद, आनंदघन और घनआनंद ये तीन नाम बहुत दिनौं तक एक ही कवि के समझे जाते थे। हिंदी मैं संगीत के सबसे बड़े संग्रह-ग्रंथ 'राग-कल्पद्रुम' मैं 'आनंद' और 'आनंदघन' का अभेद स्वीकृत है। डाक्टर ग्रियर्सन ने 'दि माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर आव् हिंदुस्तान' (पृष्ठ ६२, संख्या ३४७) मैं अनुमान लगाया है कि आनंद और आनंदघन संभवतः एक ही हैं। पर नागरीप्रचारिणी सभा, काशी की खोज के वार्षिक विवरणौं मैं आनंद और आनंदघन का पार्थक्य माना गया है। बहुत दिनौं तक तो इसका पता ही न था कि 'आनंद' कौन हैं, कहाँ के रहनेवाले हैं और इनका समय क्या है। इन्होंने कामविज्ञान पर 'कोकमंजरी' लिखी है, जो इतनी फैली कि उसके अनेक रूप हो गए। इधर की 'खोज' में उसकी ऐसी प्रतिलिपियाँ मिली हैं जिनमैं इनके वंश, स्थान और समय का भी स्पष्ट उल्लेख है—

कायथ-कुल आनंद कबि बासी कोट हिसार।
कोककला इहि रुचि करन जिन यह कियौ बिचार॥
रितु बसंत संबत सरस सोरह सै अरु साठ।
कोकमंजरी यह करी धर्म कर्म करि पाठ॥
—(खोज, १९२६–१० एफ्)।

अथवा

रितु बसंत संबत्त सत सोरह आगत साठ।
कोकमंजरी यह करी करम धरम कै पाठ॥
—(खोज, १९२३–१० बी)।

इस प्रकार 'आनंद' विक्रम की सत्रहवीं शती के तृतीय चरण मैं वर्तमान थे। इधर 'साहित्य-भूषण' के निर्माता श्रीमहादेवप्रसाद ने, जिनके आधार पर डाक्टर ग्रियर्सन ने आनंदघन का जीवनवृत्त दिया है, आनंदघन (या घन-

आनंद) को कायस्थ-कुल का तो अवश्य बतलाया है पर वे इन्हें दिल्ली के मुगल बादशाह मुहम्मदशाह रँगीले का मुंशी भी कहते हैं। साथ ही यह भी सूचित करते हैं कि अंत में ये वृंदावन चले गए थे और नादिरशाह ने जब मथुरा पर अधिकार किया तो मारे गए (दि माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर आव् हिंदुस्तान, पृष्ठ ६२, संख्या ३४७)। मुहम्मदशाह का राज्यकाल सं० १७७६ से १८०५ तक था और भारत पर नादिरशाह का आक्रमण सं० १७९६ में हुआ। इस प्रकार इनका काव्य-काल विक्रम की अट्ठारहवीं शती का चतुर्थ चरण ठहरता है। इससे दोनो के समयों में सौ-सवा सौ वर्षों का अंतर है। शिवसिंह सेंगर ने अपने 'सरोज' में 'आनंदघन कवि दिल्लीवाले' का समय सं० १७१५ दिया है (सप्तम संस्करण, पृष्ठ ३८०)। 'सरोज' का यह समय कवि का काव्य-काल ही है, जन्मकाल नहीं. जैसा हम सिद्ध कर चुके हैं (देखिए 'हिंदुस्तानी', भाग १२, अंक २; अप्रैल, १९४२ में मेरा 'शिवसिंह सरोज के सन्-संवत्' शीर्षक लेख)। इस प्रकार भी दोनो के समय में ४० वर्षों का अंतर पड़ता है। दोनो की रचनाओं में तो जमीन-आसमान का नहीं, आकाश-पाताल का अंतर है। इसलिए 'आनंद' और 'आनंदघन' पृथक् पृथक् कवि हैं"।

'आनंदघन' भी क्या एक ही थे? 'मिश्रबंधु-विनोद' में उक्त 'दिल्लीवाले आनंदघन' के अतिरिक्त १४४।१ संख्या पर एक दूसरे 'आनंदघन' का विवरण भी इस प्रकार दिया है—"आनंदघन, ग्रंथ—आनंदघन-बहत्तरी-स्तवावली, रचना-काल—१७०५, विवरण—यशोविजय के समसामयिक थे।" किंतु श्रीक्षितीशः मोहनजी सेन ने 'वीणा' (नवंबर, १९३८) में 'जैनमर्मी आनंदघन' शीर्षक विस्तृत लेख लिखकर वृंदावन के 'आनंदघन' और 'जैनमर्मी आनंदघन' के एक होने की संभावना प्रकट की है। 'सरोज' में भी एक कवि 'घनआनंद' नाम के और उल्लिखित हैं, जिनका समय सं० १६१७ दिया गया है (पृष्ठ ४११)। इन 'घनआनंद' और 'जैनमर्मी आनंदघन' के अभेद की भी संभावना श्रीज्ञानवती त्रिवेदी लिखित 'घनआनंद' नामक समीक्षा-पुस्तक में की गई है (पृष्ठ ११)। इसलिए विस्तार से विचार करने की अपेक्षा जान पड़ती है। 'सरोज' में 'दिल्लीवाले आनंदघन' के दो सवैये उदाहरण-स्वरूप दिए गए

हैं (पृष्ठ ११-१२); एक है 'आपु ही तें' प्रतीकवाला सवैया (देखिए प्रस्तुत ग्रंथ का प्रकीर्णक, छंद ६७, पृष्ठ १६८) और दूसरा यह है—

जैहै सबै सुधि भूलि तुम्हैं फिरि भूलि न मो तन भूलि चितैहैं।
एक को आँक बनावत मेटत पोथिय काँख लिये दिन जैहैं।
साँची हौं भाखति मोहिं कका की सौं प्रीतम की गति तेरिहू ह्वैहैं।
मो सों कहा अठिलाति अजासुत कैहौं ककाजी सों तोहूँ सिखैहैं॥

यह सवैया न तो 'आनंदघन' या 'घनआनंद' के नाम से अब तक और कहीं मिला है और न इसमें कवि के नाम की छाप ही है। हाँ, गुरुजनों से 'केशव पुत्रवधू' के संबंध में जो कथा सुनी थी वही इस सवैये में वर्णित है। कहते हैं कि जब प्रसिद्ध कवि केशवदासजी ने 'रसिकप्रिया' की रचना की तब उसे पढ़कर उनके आत्मज विषय-वासना में ऐसे लगे कि केशव को 'विज्ञान-गीता' की रचना ('प्रबोधचंद्रोदय' नाटक का भावानुवाद) करनी पड़ी। इसे पढ़कर उन्हें प्रबोधोदय हो गया। वे दर्शन के ग्रंथ काँख में दबाए घूमा करते थे और 'एकमेवाद्वितीयम्' की ही चर्चा में लीन रहते थे। शाक्त होने के कारण घर में बकरा भी पाला गया था। केशव की पुत्रवधू थी कवयित्री। अजासुत ने प्रकृत्या उसे आते जाते देख जब अपनी 'बोली-बानी' में कंठ खोला तो उसने ककाजी (केशवदासजी) को सुनाते हुए ऐसी रचना पढ़ी जिसमें कहा गया था कि ऐ बकरे मैं काकाजी से कहकर तुझे भी अध्यात्म-विद्या की शिक्षा दिलाऊँगी, जिससे तुझे भी वैराग्य हो जाय, तेरी भी वही गति हो जो मेरे पतिदेव की हुई। इसे केशवदासजी ने सुन लिया और अपने पुत्र को पुनः गार्हस्थ्य-धर्म में संलग्न कराया।

'मिश्रबंधु-विनोद' में ३२५ संख्या पर 'केशव-पुत्रवधू' का उल्लेख है—"रचना-काल १६६० के पूर्व, विवरण—इनकी कविता 'सारसंग्रह' में है।" 'सार-संग्रह' का विवरण भूमिका में यों दिया है—"संवत् १८०० का प्रवीण कवि द्वारा संगृहीत सारसंग्रह, पंडित युगलकिशोर मिश्र के पुस्तकालय में है। इसमें प्रायः १५० कवियों की रचनाएँ पाई जाती हैं।" 'विनोद' में 'केशव-पुत्रवधू' की रचना का कोई उदाहरण नहीं है। अतः यह नहीं कहा जा सकता

कि 'सरोज' की उक्त रचना इन्हीं 'केशव-पुत्रवधू' की है। पर यह 'आनंदघन' या 'घनआनंद' की तो नहीं है। भूल से उनके नाम चढ़ गई है। इसमें कवि की छाप भी तो नहीं है।

अब 'सरोज' (पृष्ठ ८२) में 'घनआनंद' के नाम पर उदाहृत रचना देखिए—

गाइहौं देवी गनेस महेस दिनेसहि पूजत ही फल पाइहौं।
पाइहौं पावन तीरथ-नीर सु नेकु जहीं हरि को चित लाइहौं।
लाइहौं आछे द्विजातिन को अरु गोधन-दान करौं चरचाइहौं।
चाइ अनेकन सों सजनी घनआनँद मीतहि कंठ लगाइहौं॥

यह सवैया भी अन्यत्र 'आनंदघन' या 'घनआनंद' के नाम से नहीं मिलता। इसमें 'घनआनंद' नाम है अवश्य, पर 'आनंदघन' और 'घनआनंद' शब्द देखकर ही किसी छंद को 'आनंदघन' या 'घनआनंद' की रचना मान लेने से बहुत धोखा खाना पड़ता है, यह भी समझ रखिए। व्रज के भक्त कवियों ने इन नामों का व्यवहार श्रीकृष्ण के लिए बराबर किया है। पर इस सवैये में 'घनआनंद' का अर्थ 'श्रीकृष्ण' है, ऐसा भी नहीं जान पड़ता। यह तो किसी विरहिणी की उक्ति जान पड़ती है। विरहिणी पंचदेवोपासना करने का फल प्रिय का संयोग-सुख-लाभ मानकर उन देवों की वंदनादि करने का अभिलाष व्यक्त कर रही है। 'हरि' (विष्णु = श्रीकृष्ण) को चित्त में लाने से तीर्थ का पवित्र जल प्राप्त हो जाने की बात आई है। कहा गया है कि दान करने पर 'मीत' कंठ लगाने को मिलेगा। इससे यह 'मीत' 'हरि' या श्रीकृष्ण नहीं है। यह तो रीतिबद्ध रचना करनेवाले किसी कविंद की कृति जान पड़ती है, सिंहावलोकन या मुक्तपदग्राह्य का चमत्कार ही इसमें मुख्य है, सो भी चौथे चरण तक पहुँचते पहुँचते बेढंगा हो गया है। 'चाइ' के बदले 'चाइहौं' होना चाहिए था। इसलिए यह रीतिमुक्त प्रसिद्ध कवि 'घनआनंद' की कृति नहीं ठहरती। कहीं 'घनआनंद' विशेषण न हो, कवि की छाप हो ही न। जो कुछ भी हो इस संबंध में सवैया है संदिग्ध ही।

अब जैन 'आनंदघन' और वृंदावनवासी 'आनंदघन' की अभिन्नता का विचार कीजिए। जैन 'आनंदघन' (महात्मा लाभानंदजी) का समय भी सत्रहवीं शती विक्रमी का उत्तरार्ध है। उनकी 'चौबीसी' की कई पंक्तियाँ सर्वश्री समयसुंदर (सं० १६७२), जिनराज सूरि (सं० १६७८), सकलचंद्र (सं० १६४०) और प्रीतिविमल (सं० १६७१) के जिन स्तवनादि ग्रंथों में आए चरणों से मिलती हैं (देखिए श्रीमहावीर जैन विद्यालय के 'रजत-महोत्सव-संग्रह' में प्रकाशित 'अध्यात्मी आनंदघन अने श्रीयशोविजय' शीर्षक लेख) इससे 'चौबीसी' का समय सं० १६७८ के अनंतर ही ठहरता है। इनकी प्रशस्ति लिखनेवाले श्रीयशोविजय ने सं० १६८८ में दीक्षा ली तथा सं० १७४३ में स्वर्गवासी हुए। इससे १७०० के आसपास ये अवश्य थे। इधर वृंदावनवासी आनंदघनजी को 'छप्पनभोगचंद्रिका' में कृष्णगढ़ के राजकवि जयलाल ने नागरीदासजी का समसामयिक समझा है और उनके सत्संग की चर्चा की है—

१—आनँदघन हरिदास आदि संतन बच सुनि सुनि।
२—आनँदघन हरिदास आदि सों संत सभा मधि।
३—आनँदघन को संग करत तन मन कों वार्यो।

—देखिए 'नागरसमुच्चय'।

श्रीनागरीदासजी के जीवनचरित्र में बाबू राधाकृष्णदासजी ने लिखा है कि "हमारे यहाँ एक अत्यंत प्राचीन चित्र है जिसमें नागरीदासजी और घनआनंदजी एक साथ विराजते हैं।"—(राधाकृष्णदास-ग्रंथावली, पृष्ठ १७२)। इससे भी पता चलता है कि आनंदघनजी और नागरीदासजी समसामयिक थे। कदाचित् इसीसे उतारे प्रतिचित्र का उल्लेख भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र के 'सुजानशतक' के आरंभ में है। चित्र चिपकाने के लिए चौकोर खाना बनाकर उसके ऊपर नीचे छापा गया है—"यह चित्र श्री आनंदघनजी का है, जिसे श्रीमहाराजकुमार श्रीकृष्णदेवशरण सिंह ने अपने हस्तकमल से उनके लिखे हुए चित्र से छाया का चित्र बनाया है।"

'नागरीदास' नाम के चार महात्मा हुए हैं। राधाकृष्णदासजी ने चौथे नागरीदासजी के साथ, जो सावंतसिंह के नाम से प्रसिद्ध थे, आनंदघनजी के

सत्संग की चर्चा की है। इन नागरीदासजी का कविता-काल सं० १७८० से १८१९ तक माना जाता है (देखिए शुक्लजी का 'हिंदी साहित्य का इतिहास', संशोधित और परिवर्धित संस्करण, सं० १९९९, पृष्ठ ३८०)। इससे वृंदावन-वासी आनंदघनजी का समय अट्ठारहवीं शती का उत्तरार्ध ठहरता है। इसलिए 'जैन आनंदघन' और वृंदावनवासी 'आनंदघन' के समय में भी सौ वर्षों का अंतर है। अतः इनके एक ही होने की संभावना नहीं है।

अब प्रश्न यह है कि क्या 'आनंदघन' और 'घनआनंद' भी एक ही कवि हैं। अब तक दोनो एक ही माने जाते रहे हैं। पर दोनो के पृथक् होने की बहुत संभावना है। इसका मुख्य कारण यह है कि कवित्त-सवैया लिखने वाले 'घनआनंद' और पद लिखनेवाले 'आनंदघन' की काव्यशैली में घोर पार्थक्य है। 'घनआनंद' के कवित्त-सवैयों में विरोध की प्रवृत्ति, भाषा की प्रांजलता और लाक्षणिक वक्रता का जैसा विधान पाया जाता है वैसा 'पदावली' में नहीं। कवित्त-सवैयों में 'घनआनंद' के साथ साथ 'आनंदघन' छाप का भी प्रयोग है अवश्य, पर गिनती के विचार से ९० प्रतिशत छंदों में 'घनआनंद' शब्द ही प्रयुक्त हुआ है।

यहाँ देखना यह चाहिए कि पक्ष-विपक्ष में कैसे कैसे तर्क दिए जा सकते हैं और उनके आधार पर क्या मानना समीचीन या संभाव्य होगा। इस प्रसंग में तीन प्रकार के साक्ष्यों से काम लिया जा सकता है—ऐतिहासिक, सांप्रदायिक और साहित्यिक। सबसे पहले दोनो के एकत्व को लेकर ही इन तीनो प्रकार के साक्ष्यों का विचार कीजिए। ऐतिहासिक साक्ष्य के लिए हिंदी में 'घनआनंद' के संबंध में प्रचलित किंवदंती ही आधार है। उसके अनुसार ये मुगल सम्राट् मुहम्मदशाह रँगीले के मुंशी थे। इस पर विचार करना अभी छोड़ देते हैं कि ये उनके 'खास कलम' (प्राइवेट सेक्रेटरी) थे (देखिए स्वर्गीय लाला भगवानदीनजी का निबंध, 'रसखान और घनानंद' में उद्धृत) या दरबार के 'मीर मुंशी' (त्रिवेदी लिखित 'घनआनंद', पृष्ठ १७)। कहा जाता है कि सदारँगीले के दरबार की 'सुजान' नामक वेश्या पर ये आसक्त हो गए थे। अन्य दरबारी लोग इस बात के आधार पर षड्यंत्र करके इन्हें दिल्ली से निष्कासित कराने के हेतु बने। दरबारियों ने बादशाह से एक दिन कह दिया कि

मुंशीजी गाते बहुत अच्छा हैं। फिर क्या था, बादशाह ने इनका गाना सुनने के लिए हठ पकड़ ली। पर ये नम्रतावश गाना सुनाने मैं अपनी अशक्ति का ही निवेदन करते रहे। अंत मैं उन षड्यंत्रकारियौं ने बादशाह से चुपके चुपके यह कहा कि ये यौं न गाएँगे, यदि 'सुजान' बुलाई जाय, जिस पर ये आसक्त हैं, तभी गाना सुनाएँगे। 'सुजान' बुलाई गई और इन्हौंने उसकी ओर उन्मुख होकर सचमुच गाया और ऐसा गाया कि सारा दरबार मंत्रमुग्ध हो गया। बादशाह ने गान का रस लूटने के अनंतर जो होश सँभाला तो इनकी इस गुस्ताखी पर बहुत अप्रसन्न हुआ कि इन्हौंने वेश्या का मान बादशाह से अधिक किया। फलस्वरूप उसने इन्हें देशनिकाले का दंड दिया। कहा जाता है कि ये 'सुजान' के निकट गए और उससे भी साथ देने को कहा, पर उसने साथ चलना अस्वीकार कर दिया। अंत मैं ये वृंदावन चले गए और वहाँ वैष्णव संप्रदाय मैं दीक्षित हो गए। पर 'सुजान' नाम इन्हौंने कभी नहीं त्यागा। भगवद्भक्ति मैं इस शब्द का व्यवहार श्रीकृष्ण और श्रीराधिका के लिए अपनी रचना मैं बराबर करते रहे। अंत मैं मथुरा पर होनेवाले नादिरशाह के हमले मैं ये मारे गए।

इतिहासमैं मथुरा पर नादिरशाह के हमले की चर्चा नहीं है। अहमदशाह अब्दाली या दुर्रानी के हमले की ही बात आई है। सबसे पहले नागरीदासजी के जीवनचरित्र मैं बाबू राधाकृष्णदासजी ने यह संकेत किया कि हमला दुर्रानी का था। इधर त्रिवेदीकृत 'घनआनंद' नामक पुस्तक मैं यह भली भाँति सिद्ध कर दिया गया है कि यह हमला अब्दाली का ही हो सकता है सं० १८४९ के लिखे कृष्णभक्ति-विषयक एक पदसंग्रह मैं इस हमले का उल्लेख इस प्रकार है—'श्रीकामबन के मंदिर मलेछनि करि जो उतपात भयौ ताकौ हेत जो रसिकनि के विचार मैं आयौ सो लिख्यौ है।' उत्पात का कारण पूजा मैं त्रुटि बतलाया गया है। रघुराजसिंहजू देव की 'रामरसिकावली' मैं दी हुई घनआनंद की कथा से यह 'वार्ता' कुछ मिलती है।* यह घटना 'घन-

---

* श्रीवृंदावनदासजी ने इसका संकेत अपनी 'श्रीकृष्ण-विवाह-उत्कंठा-बेली' में इस प्रकार किया है—"जमन कछू संका दई व्रजजन भए उदास। ता समये चलि तहाँ ते कियौ कृस्नगढ़ बास।"—(खोज १९१७-३४ एफ्)।

आनंद' या आनंदघन' दोनो के लिए हो सकती है, यदि वे पृथक् हों तो भी, क्योंकि इनके समय के पार्थक्य का कोई सूत्र नहीं प्राप्त हुआ है।

अब 'मुहम्मदशाह' और 'सुजान' का भी कुछ विचार कीजिए। प्रस्तुत ग्रंथावली में 'आनंदघन' के नाम पर जो रचना दी गई है उसमें 'व्रजभाषा' के अतिरिक्त पूरबी, बंगाली, पंजाबी, राजस्थानी (कहीं कहीं गुजराती-मिश्रित) कई भाषाओं का प्रयोग है, पर प्राधान्य पंजाबी का ही है। 'आनंदघन' की 'इश्कलता' पंजाबी में है, बीच बीच में दोहे व्रजभाषा में भी रखे हैं। मुहम्मदशाह के भी, जो सदारँगीले के नाम से रचना करता था, बहुत से पद पंजाबी में हैं और राग-कल्पद्रुम में संगृहीत हैं। प्रश्न होता है कि क्या 'सुजान' भी कुछ गाने या तुक जोड़ती थी। 'सुधासर' नाम के संग्रह में 'घनआनंद' का एक सवैया (प्रकीर्णक, छंद ६७) किसी 'सुजान' के नाम पर चढ़ा हुआ है। उसकी अन्य दो रचनाएँ वहाँ से नीचे उद्धृत की जाती हैं--

कबित्त

पहिलें तौ नैनन सों नैनन मिलाय, फिरि
सैनन चलाय हरि लीनौ चित चाय चाय।
अब क्यों कहत गुर लोगन की संक मोहिं,
मारत निसंक काम कासों कहौं जाय जाय।
ए रे निरदई कान्ह 'कहत सुजान' तो सों,
तेरे बिन देखें आँखैं रहैं झर लाय लाय।
दूर जौ बसाय तौ परेखो हू न आय,
अरे निकट बसाय मीत मिलत न हाय हाय ॥

सवैया

बेद हू चारि की बात कों बाँचि पुरान अठारह अंग मैं धारै।
चित्र हू आप लिखै समझै कबितान की रीति मैं बार ते पारै।
राग कों आदि जिती चतुराई 'सुजान कहै' सब याही के लारै।
हीनता होय जौ हिम्मत की तौ प्रबीनता लै कहा कूप मैं डारै ॥

—सुधासर, पन्ना २३४ (खोज-विभाग, 'सभा')।

क्या 'सुजान' ने यह हिम्मत उस समय बँधाई थी जब 'घनआनंद' शाही दरबार में गाना गाते सकुच रहे थे ? सुजान ही जानें। 'राग-कल्पद्रुम' में 'सुजान' के चार पद हैं (प्रथम भाग, पृष्ठ १०७, २५०, २६४; द्वितीय, २२४) जिनमें से दो में तो 'प्रभु सुजान' छाप है, एक में 'महाराज बहादुर' से मुश्किल आसान करने की आरजू है और एक यह है—

सिपतमणि अल्ला नबीयमणि महम्मद, दोउ जगमणि,
चत्र दिश मासूम पीरनमणि मुरतजा अली कीन।
वासरमणि दिनकर, रजनीमणि चंद्र, तारनमणि ध्रुव,
मलकनमणि जबरइल, यह सब जगत मे लीनो बीन।
पातालमणि शेष, शेषमणि अवनी, अवनिमणि नाभ,
नाभमणि अरस, अरसमणि कुरस, लोहमणि कलमा,
तुरंगनमणि बुराक, गजनमणि एरावत, राजनमणि
इंद्र, गिरनमणि सुमेर, चंचलमणि मीन।
किताबमणि कुरान, दीनमणि कलमा, अवदनमणि
आदम कामनमणि हवा रागनमणि भैरो भाषामणि
ब्रज की, जोतिमणि दीपक, दीपकमणि नार दोजक
शीतल भलो भिहिस्त एती भात 'सुजान' अस्तुति कीनी।

—राग-कल्पद्रुम प्रथम भाग, पृष्ठ २६४।

जान तो यही पड़ता है कि मुहम्मदशाह के दरबार में कोई 'सुजान' (वेश्या) इसे पढ़ या गा रही है। तो क्या 'सुजान' 'यवनी नवनीतकोमलांगी' थी ? होली में 'कन्हैया' बनने का हौसला पूरा करनेवाले सदारँगीले ने 'यवनी वेश्याओं' के नाम देशी रखे थे।

'सुजान' कोई 'तिया' थी इसका पता 'सुजानहित' का छंद २०२ देगा। उसके रूप के दर्शन चाहते हों तो उसी पुस्तक की छंदसंख्या ११४, १३३ देखिए। उसका नाच देखना हो, अभिनय (नाट्य) के दर्शक बनना हो तो उसी का छंद १२०, १३२, १२६ अवलोकन कीजिए। उसकी 'वीणा' सुननी हो तो छंद १३४ पढ़ सुन जाइए। 'साँवली साड़ी' में उसकी छटा देखनी हो तो छंद २३७ का पाठ कीजिए। उसने 'घनआनंद' को एक 'छल्ला' भी दे

रखा था, जिसे देख देख वे वियोग मैं मरकर भी जी रहे थे (देखिए, छंद ३४०)। वह मिँहदी लगाती थी, उसके कटाक्षपात विलक्षण थे, एक ही वास मैं विदेश की स्थिति थी उसने उन्हैं त्याग दिया आदि के संकेत छंद २१२, २६६, २२८, २३१ मैं मिलैंगे। 'सुजान' के संबंध मैं विस्तार से पृथक् ही लिखने की आवश्यकता है। इससे इसे भविष्य के लिए छोड़े देते हैं। अब देखिए मुहम्मदशाह के साथ भी 'सुजान' कहीं है—

किरपा करो रे मो मन सइयाँ तन मन धन
नोछावर करहूँ परहूँ पइयाँ।
मुहम्मद सा 'सुजान' अब कहि भाग हमारे जागे
लेहु बलैया सुरजन सइयाँ ॥

—राग-कल्पद्रुम, प्रथम भाग, पृष्ठ १७६।

'राग-कल्पद्रुम' मैं यह रचना मुहम्मदशाह की ही बताई गई है, पर पद कह रहा है कि रचना उसके किसी दरबारी की है। अब 'सुजान' शब्द 'मुहम्मद सा' का विशेषण है या पृथक् इसे कौन बताए। हाँ 'कहि' कुछ कह दे तो कह दे, अन्यथा अनुमान का भरोसा ही कितना!

अब सांप्रदायिक साक्ष्य का विचार कीजिए। परंपरा से यह प्रसिद्ध है कि 'घनआनंद' निंबार्क-संप्रदाय मैं दीक्षित थे। पर यह बात उनकी रचना देखने से स्पष्ट सिद्ध नहीं होती। त्रिवेदीकृत 'घनआनंद' मैं उन्हैं वल्लभ-संप्रदाय मैं दीक्षित कहा गया है। उनकी रचनाओं मैं 'हितहरिवंश' की ओर संकेत की बात भी लिखी गई है। वल्लभ-संप्रदाय मैं उनके दीक्षित होने का जो प्रमाण उपस्थित किया गया है वह 'राग-कल्पद्रुम', द्वितीय भाग के पृष्ठ १५० से उद्धृत पद है। पर उस पद मैं 'आनंदघन' शब्द कवि की छाप नहीं है। वह पद तो 'गिरिधर कवि' का है। "ऐसी दसा जग छायौ अँधेर, बिना हितमूरति कौन सँभारै" मैं 'हितमूर्ति' प्रेममूर्ति श्रीकृष्ण के लिए आया है। अतः हितहरिवंशजी के संप्रदाय मैं दीक्षित होने की बात अनुमिति मात्र है। सांप्रदायिक दृष्टि सैं कुछ विस्तृत विचार करने पर यह विषय और स्पष्ट हो जायगा। इसके लिए तीन तत्वौं का विचार अपेक्षित होता है—आचार, सिद्धांत और उपासना। आचार का भेद तिलक-मुद्रादि के रूप, धारण आदि मैं और

पूजाविधि मैं होता है, जिसके लिए संप्रति कोई आधार इनकी रचना मैं नहीं मिला। पूर्वोक्त 'चित्र' भी अप्राप्य है, इससे इसका विचार भविष्य के लिए छोड़ते हैं।

अब सिद्धांत पर आइए। आचार्यों के चार प्रमुख सिद्धांतों के अनुसार चार वैष्णव संप्रदाय हैं—श्रीरामानुजाचार्य का विशिष्टाद्वैतवादी श्री-संप्रदाय, श्री निंबार्काचार्य का द्वैताद्वैतवादी सनकादि संप्रदाय, श्रीमध्वाचार्य का द्वैतवादी ब्रह्म-संप्रदाय और श्रीवल्लभाचार्य का शुद्धाद्वैतवादी रुद्र-संप्रदाय या पुष्टिमार्ग। इन सभी संप्रदायों का उदय श्रीशंकराचार्य के मायावाद के निरसन के लिए हुआ है। भक्ति इनका प्रधान लक्ष्य है। 'शांडिल्यसूत्र' के अनुसार 'सा (भक्तिः) परानुरक्तिरीश्वरे' को सभी मानते हैं। पर उपासना मे किसी विशेष भाव या रस की प्रधानता मानकर चलते हैं। श्रीसंप्रदाय मे 'दास्य' स्वीकृत है, माध्व-संप्रदाय मे 'माधुर्य', निंबार्क-संप्रदाय मे 'सख्य' और पुष्टिमार्ग मे 'वात्सल्य'। तारतम्य के विचार से 'गोविंदभाष्य' मे पाँच प्रकार की उपासनाएँ कही गई हैं—शांत, दास्य, वात्सल्य, सख्य और माधुर्य। 'माधुर्य' या मधुर रस मे पूर्वोक्त चारो निहित हैं, 'सख्य' मैं पूर्वोल्लिखित तीन और वात्सल्य मे दो। अधिक विस्तार न करके यही कहना प्रसंगप्राप्त है कि श्री-संप्रदाय और पुष्टिमार्ग से इनका संबंध नहीं जान पड़ता। 'गोपाल' या 'बालमुकुंद' की उपासना का आभास इनकी कृति मे कहीं नहीं मिलता। श्रीकृष्ण के जन्मोत्सव का जो वर्णन है वह सभी संप्रदायों के अनुकूल है। प्रत्युत यह कहा जा सकता है कि श्रीराधिकाजी के जन्मोत्सव का वर्णन वल्लभ-कुल से इनका संबंध स्वीकृत करने के पक्ष मे नहीं है। वल्लभ-कुल के कवि श्रीकृष्ण के संपर्क मे राधा का वर्णन तब करते हैं जब वे गोचारण के लिए बाहर निकलते हैं। सूरदासजी ने भी ऐसा ही किया है। इसलिए देखना चाहिए कि ये निंबार्क-संप्रदाय मे दीक्षित थे या माध्व-संप्रदाय मे। उपासना की दृष्टि से इन दोनों संप्रदायों मे प्रमुख भेद यह है कि निंबार्क-संप्रदाय मैं (हितहरिवंशजी के राधावल्लभी या अनन्य संप्रदाय और श्रीहरिदासजी के टट्टी संप्रदाय मे भी) राधाजी की 'स्वकीया-भाव' की उपासना चलती है और माध्व-चैतन्य-संप्रदाय मे 'परकीया-भाव'

की। 'स्वकीया-भाव' के अंतर्गत राधा का प्राधान्य है, वहाँ सखी-भाव से ही भक्तों की उपासना चलती है। गोपिकाएँ श्रीराधिकाजी की सखी ही रहेंगी। 'स्वामिनी' जी का स्थान वे न ले सकेंगी। पर माध्व-चैतन्य-संप्रदाय में गोपियों और राधिका में यह विभेद नहीं है।

'घनआनंद' की रचना में 'पूर्वानुराग' का वर्णन तथा 'कृपाकंद-निबंध' में 'गोपी-प्रेम' की चर्चा माध्व संप्रदाय के ही अनुकूल पड़ती है। (देखिए छंद-संख्या ६७ से ७०)। छंदसंख्या ६८ में 'आरज-पथ भूली' स्पष्ट है। 'सुजान' से इनका प्रेम भी तो परकीयत्व की ही ओर जाने का आग्रह करता है। 'राधिका-चरन नख-चंद ज्यौं चकोर' (कृपाकंद-निबंध, २४) से भी 'परकीयत्व' झलक रहा है। इससे माध्व-चैतन्य-संप्रदाय में 'घनआनंद' के दीक्षित होने की बहुत संभावना है।

'आनंदघन' की ओर आइए। इनके संबंध में अधिक कहने की आवश्यकता ही नहीं है। 'पदावली' के पद १७० में इन्होंने श्रीचैतन्यदेव की प्रशस्ति ही पढ़ी है। ऐसी स्थिति में 'घनआनंद' और 'आनंदघन' के एक होने की संभावना अधिक है।

अब साहित्यिक जाँच-पड़ताल कीजिए। 'छाप' की बात पहले कही जा चुकी है। 'पदावली' में एक ही स्थल पर 'घनआनंद' (पद २३४) आया है, अन्यत्र 'आनंदघन' छाप का ही व्यवहार है या उसके पर्यायवाची 'आनंदमुदीर, आनंदमेघ, आनंदअंबुद, मोदघन, आनंदकंद' का। एक स्थल पर 'घन प्यारिया' में 'घन' कदाचित् कवि के नाम का संकेत हो, जैसे कभी कभी केवल 'आनंद' शब्द से ही काम लिया गया है। अनुमान है कि 'पदावली' में जहाँ 'आनंद' पद है वहाँ पाठ गड़बड़ हो जाने से 'घन' किसी प्रकार निकल गया है। कहीं कहीं छाप नहीं भी है और कुछ पद भी अधूरे हैं। 'घनआनंद' की रचना में जहाँ छाप नहीं भी आई है। वहाँ अधिकतर 'सुजान' का व्यवहार है, पर 'आनंदघन' के नाम पर संगृहीत रचनाओं में 'इश्कलता' को छोड़कर 'सुजान' पद 'पदावली' में ही तीन-चार बार आया है।

'पदावली' के रचयिता की ही रचनाएँ 'इश्कलता', 'यमुनायश' और 'प्रीतिपावस' भी हैं। इसका पता तो 'धीरसमीर' की कुंज लीला के वर्णन

और 'पदावली' के पद ३१८ में 'प्रीतिपावस' के उल्लेख से चलता है। 'इश्क लता' का छंद ४० और 'सुजानहित' की पदसंख्या ४ के भाव की एकता दोनो के एकत्व के प्रमाण में प्रस्तुत की जा सकती है। 'पदावली' के पद ३८,४०, ४४, ८२, ८७, ९६, २०६,२३७,३१९, ३७८,४१६, ४२९, ४५८, ४६२ में प्रयुक्त कुछ 'पद-समूह' घनआनंद' के 'पद समूह' से मिलते हैं। 'विरोध' की प्रवृत्ति 'इश्कलता' में नहीं है, पर 'यमुनायश' के छंद ४०, 'प्रीतिपावस' के छंद २३,२९ और 'पदावली' के पद ५९,६५,१३८,१५३,१६८,१७३,२८३, ३६४ में वह यत्किंचित् मिलती है। एक बात और। 'सुजानहित' के छंद ५०३ में 'विदिशा' नदी की स्तुति है, त्रिविक्रम का वर्णन है। 'पदावली' के पद २९९ में 'बावन' के वर्णन में 'त्रिविक्रम-पद-नख-जल' का उल्लेख मिलता-जुलता माना जा सकता है।

इसके अतिरिक्त छतरपुर के राजपुस्तकालय में जो हस्तलेख था उसमें 'पदावली' का संग्रह भी एक ही जिल्द में किया गया है। छतरपुर के वे महाराज श्री माध्वसंप्रदाय में ही दीक्षित थे, जिन्होंने उक्त हस्तलेख का संग्रह कराया था। उस पुस्तकालय में अन्य महात्माओं के भी पद-संग्रह बहुत हैं। हरिदासजी के टट्टी-संप्रदाय के, हितहरिवंश के राधावल्लभी अनन्य संप्रदाय के, माध्व-चैतन्य-संप्रदाय के महात्माओं की बहुत अधिक सामग्री महाराज के पुस्तकालय में है। उसका अध्ययन करने से कृष्णभक्ति शाखा के सख्य और माधुर्य भाव की उपासना की खोज का काम बहुत अधिक हो सकता है। अस्तु, 'घनआनंद' के 'सुजानहित' के साथ हस्तलेखों की एक ही जिल्द में 'वियोगबेलि' तो मिलती ही है, 'यमुनायश' और 'प्रीतिपावस' भी मिलते हैं। अतः परंपरा में भी इनका पार्थक्य नहीं रहा। इस प्रकार जितनी संभावना इनके एक होने की है उसका आधार पुष्ट है। छतरपुर की पोथी का जो विवरण 'मिश्रबंधु-विनोद' में दिया गया है उसमें 'परमहंस-वंशावली' का भी उल्लेख है। ये परमहंस कौन हैं? इसका पता लगना कठिन है। महाप्रभु गौरांगदेव, हरिदासजी, हितहरिवंश जी में से किसी एक के लिए यह प्रयुक्त हो सकता है। किसके लिए प्रयुक्त है इसका निर्णय कुछ अधिक खोज चाहता है, इससे इसे भी अभी छोड़ते हैं।

भाषागत प्रवृत्ति पर आइए। 'घनआनंद' या व्रजनाथ के 'घनजू' 'व्रजभाषा-प्रवीन' और 'भाषा प्रबीन' दोनो थे। 'सुंदरता के भेद', 'भाविना के भेद का स्वरूप'-चित्रण करने मे दक्ष थे। 'सुछंद' भी थे। जग की 'कबिताई के धोखे' मे रहने से इनकी रचना हृदयंगम नहीं हो सकती। उसके लिए मानस-नेत्र अपेक्षित हैं। 'घनआनंद' के नाम पर संकलित रचना मे तो ये सब वैशिष्ट्य अवश्य मिलते हैं पर 'आनंदघन' के नाम पर विभक्त कृति मे नहीं। 'भाषा की प्रवीणता' तो उन्होंने नागरीदास आदि की भाँति अनेक प्रकार की भाषाओं मे रचना करके प्रदर्शित की है।

अब विचार कीजिए कि क्या 'घनआनंद' जिनके कवित्त-सवैयों की जबाँदानी को हिंदी का कोई कवि नहीं पाता वे ही 'पदावली' आदि के भी रचयिता हैं। यदि 'पदावली' उन्हीं की हो तो इसे उन्होंने 'भक्त' होने पर वृद्धावस्था मे ही लिखा होगा, पर 'पदावली' का बंधान चुस्त नहीं है। कुछ ही रचनाएँ बढ़िया हैं। सिद्धांत और अनुभूत स्थिति यह है कि ज्यों ज्यों समय बीतता जाता है कवि की वृत्ति मे प्रौढ़ता, प्रांचलता आदि का समावेश अधिकाधिक होता जाता है यहाँ बात उलट गई है। यदि पदावली आदि रचनाएँ आरंभिक होतीं तो संगति अवश्य बैठ जाती। क्या भक्त हो जाने पर काव्यत्व का ह्रास हो जाता है, क्या पद मे हुई रचना साधारण ही रहती है क्या लीला के पद गाने के होते हैं इससे उनमे भाषा की प्रवीणता नहीं आ पाती। पर 'घनआनंद' की कवित्त-सवैयावाली भक्तिपूर्ण रचनाएँ ऐसी नहीं है। कृपाकंद-निबंध का पद भी ऐसा नहीं है, उसमे विरोध-विशिष्ट प्रवृत्ति पूर्ण रूप मे मिलती है। यदि घनआनंद ही पदों मे आनंदघन हो गए तो उस 'सुजान' शब्द के प्रयोग की न्यूनता क्यों है जिसे भक्ति-पक्ष मे 'श्याम' या 'श्यामा' के लिए वे कवित्त-सवैयों मे बराबर रखते आए।

रहा संप्रदाय। सो कृष्णगढ़ के महाराज सावंतसिंहजी हुए 'नागरीदास', उन्होंने दीक्षा ली वल्लभ-कुल मे पर उनकी कृतियाँ सखी-संप्रदाय के भक्तों के मेल मेँ पूरी पूरी हैँ। यदि पता न हो कि वे वल्लभ-कुल के हैं तो कोई उन्हें उस संप्रदाय का कदापि नहीं मान सकता। 'मिश्रबंधु-विनोद' मेँ वे 'वल्लभीय संप्रदाय' के कहे ही गए हैं, वल्लभ-कुल के नहीं (द्वितीय संस्करण, द्वितीय

भाग, पृष्ठ ५८६)। पर 'नागरसमुच्चय' और उसमें जुड़ी राजकवि जयलाल की 'छप्पनभोगचंद्रिका' उन्हें वल्लभ-कुल का ही कहती है। इससे जब तक पक्का प्रमाण न मिल जाय तब तक 'घनआनंद' और 'आनंदघन' को भी एक मानने को जी नहीं चाहता। व्रजवासियों का कहना तो यहाँ तक है कि भक्तवर 'आनंदघन' ब्राह्मण थे और उनके वंशज अब तक नंदगावँ में रहते हैं। इसलिए प्रस्तुत संग्रह में 'घनआनंद' और 'आनंदघन' को पृथक् पृथक् ही रखा गया है। इस संबंध की और 'खोज' फिर कभी सामने रखी जायगी, अभी तो इतने ही से संतोष करना पड़ेगा।

अब संकलित सामग्री की छानबीन पर आइए। 'घनआनंद-आनंदघन' की कृतियों के हस्तलेख नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा की गई 'खोज' में संवत् २००० तक इस प्रकार विवृत किए गए हैं—

१ घनआनद-कबित्त—(००–७६)।

२ आनंदघन के कबित्त—(६–१२५, २६–१२ ए)

३ कबित्त—(२६–११६ डी)

४ स्फुट कबित्त—(३२–७ सी)

५ आनंदघनजू के कबित्त (४१–१० ख)

६ सुजानहित—(१२–४ बी)

७ सुजानहित-प्रबंध—(२६–११६ बी)

८ कृपाकंद-निबंध—(२–६६)

९ वियोग-बेलि—(१७–८ बी, २६–११६ बी)

१० इश्कलता—(१२–४६, २२–७ ए)

११ जमुनाजस—(४१–१० क)

१२ आनंदघनजू की पदावली—(२६–१२ बी, दि० ३१–६)

१३ प्रीतिपावस—(१७–८ ए ; २६–११६ ए)

१४ सुजानविनोद—(२३–१४)

१५ कबित्त-संग्रह—(३२–७ बी)

१६ रसकेलिबल्ली—(००–७६)

१७ वृंदावन-सत—(३२–७ डी)।

इनमेँ से 'बृंदाबन-सत' तो श्रीहरिदासजी की शिष्य-परपरा मेँ माधव-मुदित के पुत्र भगवतमुदित की रचना है। उन्होँने स्पष्ट लिखा है—

श्रीमाधोमुदित प्रसंस हंस जिन रति-रस गायौ।
तिनको हौँ निज अंस रहसि रस तिनतेँ पायौ॥

इनकी छाप थी 'भगवंत', पर 'आनंदघन' पद ने जैसे औराँ को धोखा दिया वैसे ही 'खोज' के साहित्यान्वेषक को भी। निम्नलिखित दोहे मेँ उसने 'आनंदघन' को पकड़ा, 'भगवंत' को भूल ही गया, उनकी बिनती पर भी ध्यान न दिया—

यह बिनती 'भगवंत' की सुनहु रसिक है चित्त।
अपनो मोको जानि कै दया करहुगे नित्त॥
बृंदाबन आनंदघन, अति रस सो रसवंत।
...जिय डरत हौँ, यह बिनती 'भगवंत'॥

रचना संवत् १७०७ की है और 'आनंदघन' के काव्यकाल से लगभग सौ वर्ष पहले की है—

'संबत दस सै सात अरु सात बरष है जानि।'

'रसकेलिबल्ली' का नाम तो सुना सुनाया ही है, वैसे ही जैसे 'सुजानसागर' नाम चल पड़ा है और जिसे 'सुजानशतक' मेँ सबसे पहले भारतेंदु बाबू ने तरंगित किया है। अब तो 'घनानंद-कबित्त' को लोग 'सुजानसागर' नाम से ही जानते हैँ। 'कबित्त-संग्रह' और 'सुजानविनोद' भी परकालीन नूतन संग्रह हैँ। इनमेँ कुछ छंद नए भी मिलते हैँ, जो 'घनानंद-कबित्त' मेँ नहीँ हैँ। संख्या १ से ४ तक के सभी हस्तलेख 'घनानंद-कबित्त' ही हैँ, जिनका संग्रह 'ब्रजनाथ' नाम के सज्जन ने किया था। इन्होँने संग्रह के आदि और अंत मेँ 'घनआनंद' और उनकी रचना की प्रशस्ति भी लिखी है। ये कदाचित् 'घनआनंद' के शिष्य या उन्हीँ के संप्रदाय के कोई भक्त जान पड़ते हैँ। 'शिवसिंहसरोज' मेँ 'रागमाला' के कर्ता ब्रजनाथ का उल्लेख है, जिन्होँने राग-रागिनियोँ के स्वरूप का बोध दोहोँ मेँ कराया है। रचना देखने से कोई भक्त ही जान पड़ते हैँ, इनका

कविताकाल सं० १७८० (जन्मकाल नहीं, जैसा 'मिश्रबंधु-विनोद' में माना गया है) है। यदि ये वे ही व्रजनाथ हों तो 'घनआनंद' के समसामयिक ठहरते हैं। इसलिए 'घनआनंद-कबित्त', जो कवि के ५०० छंदों का संकलन है, सबसे प्राचीन संग्रह ठहरता है।

संख्या ५ का ग्रंथ 'सुजानहित' ही है, जो म्यूनिसिपल म्यूजियम, इलाहाबाद में सुरक्षित है। 'सुजानहित' या 'सुजानहित-प्रबंध' भी कोई स्वतंत्र ग्रंथ नहीं है, कवि के ५०० छंदों का नूतन संग्रह ही है। इसके हस्तलेख दो प्रकार के मिलते हैं। एक प्रकार के हस्तलेखों में ४४८ छंद हैं, दोहों-सोरठों की गणना नहीं की गई है। उन्हें भी गिन लेने से ४५४ छंद होते हैं। दूसरे प्रकार के हस्तलेखों में लगभग ५०० छंदसंख्या मिलती है और दोहों की गिनती कर लेने से ५०५ छंद होते हैं। ऐसा जान पड़ता है कि पहले प्रकार के हस्तलेखों की परंपरा किसी अधूरी प्रति के आधार पर चल पड़ी है। 'घनआनंद-कबित्त' और 'सुजानहित' में बहुत थोड़े छंदों का अंतर है। एक तो 'घनआनंद-कबित्त' में 'कृपाकंद-निबंध' के बहुत से छंद हैं, दूसरे दानलीला का बड़ा प्रसंग भी उसमें जुड़ा हुआ है। दोनो का मिलान करने से पता चलता है कि 'घनआनंद-कबित्त' की कोई अस्त-व्यस्त प्रति ही सामने रखकर 'सुजानहित' संकलित हुआ है। इसलिए यह बाद का किया हुआ संग्रह जान पड़ता है। इसके संग्रहकर्ता कौन थे? पता नहीं। पर पुस्तक के नाम से संकेत मिलता है कि वे श्रीहितहरिवंश के संप्रदाय के हो सकते हैं। राधावल्लभी या हितहरिवंश के संप्रदाय के भक्तों और उनकी रचनाओं के नामों के आदि-अंत में 'हित' शब्द जोड़ने का चलन है—हितगुलाब, हितध्रुवदास, हितशृंगारलीला, सेवकहित, परमानंदहित, चंद्रहित आदि। तो क्या 'घनआनंद' का संबंध राधावल्लभी संप्रदाय से था? स्वयं 'घनआनंद' ने तो यह संग्रह किया नहीं, अन्यथा इस संप्रदाय से इनका संबंध जुड़ने की संभावना अवश्य होती। प्रस्तुत ग्रंथावली में 'घनआनंद-कबित्त' एक तो इसीलिए नहीं रखा गया कि उसके ग्रहण करने से एक प्रकार की पुनरुक्ति हो जाती, दूसरे वह पहले ही पृथक् रूप में प्रकाशित भी कर दिया गया है।

'कृपाकंद-निबंध' की केवल एक ही प्रति मिलती है। छतरपुरवाले बृहत्

ग्रंथ मेँ भी इसका उल्लेख है। 'व्रजमाधुरीसार' का 'कृपाकांड' यही है। रोमी अक्षरोँ की कृपा से 'कृपाकंद' से 'कृपाकांड' हो जाने का कांड उपस्थित हुआ है। यह व्यवस्थित ग्रंथ है और 'कृपा के कंद' (बादल—कहूँ ऐसे मन-चातक भए जे कृपाकंद के', छंद ५२) श्रीकृष्ण की कृपा के माहात्म्य पर लिखा गया है। 'वियोगबेलि' की कई हस्तलिखित प्रतियाँ मिलती हैँ। इसी का प्रकाशन श्रीकाशीप्रसादजी जायसवाल ने 'विरहलीला' के नाम से काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा कराया था। इसका नाम भी छतरपुरवाले ग्रंथ मेँ है। पर कुछ लोगोँ का यह समझना भ्रम है कि रचना खड़ी बोली की है। भाषा इसकी व्रज की ही है, पर छंद है फारसी का।

'आनंदघनजू की पदावली' के दो हस्तलेख मिलते हैँ। दोनो एक ही हैँ। यह भी संकलन ही है। किसी निश्चित क्रम से 'आरंभिक पद' नहीँ रखे गए हैँ, अंत मेँ कुछ शीर्षक बाँधकर एक प्रकार के पदोँ को एक स्थल पर अवश्य एकत्र कर दिया गया है। गान के पद कहीँ छोटे कहीँ बड़े हैँ। कहीँ कहीँ पद अधूरे ही हैँ। यहाँ 'पदावली' ज्योँ की त्योँ प्रकाशित की जा रही है। 'व्रजमाधुरीसार' मेँ जिस 'बानी' की चर्चा हुई है वह यही पदावली है। छतरपुर के बृहत् ग्रंथ मेँ कुल १०४४ पद बताए गए हैँ। प्रस्तुत 'पदावली' में ४८० पद हैँ, एक पद पुनरुक्त था अतः संख्या ४७९ रह गई। 'स्फुट' के पदोँ को भी जोड़ लेने से अब लगभग आधे पद उपलब्ध हो गए, यदि ये पद उसमेँ भी होँ तो। 'इश्कलता' की दो प्रतियाँ हैँ और 'खोज' के विवरण-पत्रोँ का मिलान करने से एक संख्या का अंतर पड़ता है। दूसरी प्रति नहीँ मिली, अतः उसका पता नहीँ चला। 'यमुना-यश' की एक ही प्रति मिलती है। 'प्रीति-पावस' की एक प्रति श्रीदेवकीनंदनाचार्य पुस्तकालय, कामवन मेँ भी पहले थी, पर संप्रति उसका पता नहीँ चला। दोनो प्रतियोँ मेँ कोई अंतर नहीँ है।

इनके अतिरिक्त अनेक कवित्त-संग्रहोँ और पद-संग्रहोँ मेँ से भी 'घनआनंद' के छंद और 'आनंदघन' के पद संगृहीत किए गए हैँ। श्रीशंभुप्रसादजी बहुगुना की पुस्तक 'घन-आनंद' से और स्वयं उनके पास बचे बचाए ३०-३२ छंद और मिल गए हैँ। श्रीमयाशंकरजी याज्ञिक के पास 'घनआनंद' की रचनाओँ का अच्छा संग्रह सुनने मेँ आया है, बहुगुनाजी ने उसी मेँ से अधिक-

तर सामग्री संगृहीत की है। यद्यपि 'याज्ञिक-संग्रह' नागरीप्रचारिणी सभा, काशी को समर्पित कर दिया गया है तथापि 'घनआनंद'-संबंधी 'वेष्टन' अभी तक श्रीभवानीशंकरजी याज्ञिक के ही पास है, वे 'घनआनंद' की रचनाओं का स्वतः संपादन कर रहे हैं। इसलिए हमें उसके अवलोकन का सौभाग्य प्राप्त न हो सका।

इस विवरण से स्पष्ट हो गया होगा कि 'घनआनंद-आनंदघन' के नाम पर 'सभा' की 'खोज' के विवरणों में जितनी कृतियों का उल्लेख है उन सबका संकलन प्रस्तुत ग्रंथावली में हो गया है।

जैन आनंदघन की रचनाएँ इसमें इसलिए जोड़ दी गई हैं कि उनमें व्रजभाषा के पुराने और प्रांत-भेद से चलनेवाले रूपों का पता मिलता है। व्रजभाषा से परिचित न होने के कारण उनकी रचनाओं के जो संस्करण प्रकाशित हुए हैं उनमें बहुत अधिक भ्रांतियाँ हो गई हैं। यद्यपि प्रस्तुत ग्रंथ में संनिविष्ट और संपादित अंश में परिशोधन का पूर्ण उद्योग किया गया है तथापि हस्तलिखित ग्रंथों का आधार प्राप्त न होने से बहुत से स्थान संतोषप्रद संपादित नहीं हो पाए। हाँ 'दई की सँवारी' अब 'दैव की सवारी' (वाहन) नहीं रह गई है।

जैन आनंदघन की दो पुस्तकें मिलती हैं। 'चौबीसी' में चौबीसो तीर्थंकरों की प्रशस्ति है। इनमें से २२ स्तवनों की रचना तो 'आनंदघन' ने स्वयं की है और अंतिम दो उनके टीकाकार ज्ञानविमल और ज्ञानसार की कृति हैं। इसका उल्लेख स्वयं श्रीज्ञानविमल सूरि ने अपनी टीका में किया है। इनकी दूसरी पुस्तक 'बहोत्तरी' है। इसमें 'बहत्तर' के स्थान पर 'एक सौ सात' क्या 'एक सौ ग्यारह' तक पद मिलते हैं। कई पद तो बनारसीदास, द्यानत आदि जैन कवियों के इसमें मिल गए हैं और कुछ कबीर, सूर और आनंदघन (भक्त कवि) के। इनमें से जैन आनंदघन की वास्तविक रचना कौन कौन से पद हैं इसका निर्णय करना कुछ कठिन है। इसके लिए विभिन्न हस्तलेखों के आलोडन की भी आवश्यकता है, जिनका उपलब्ध होना समय-सापेक्ष है। किंतु यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि 'संमेलनपत्रिका', 'वीणा', 'विश्वभारती', 'प्रवासी', 'सुशील' आदि पत्र-पत्रिकाओं में श्रीक्षितीशमोहनजी सेन के जो निबंध जैन आनंदघन को मर्मी (रहस्यवादी, मिस्टिक) सिद्ध करने के लिए लिखे गए हैं इनकी प्रवृत्ति से वैसा नहीं जान पड़ता। 'आनंदघन' में अध्यात्म

जैन धर्म का ही अध्यात्म है, निर्गुनिया संतों में जो सूफियों का रहस्यवाद घुस गया है उसका प्रभाव अन्य जैन साधुओं की रचना में चाहे हो भी पर इन जैन आनंदघन में इसका प्रभाव 'बहत्तर' के स्थान पर शताधिक पदों ने एकत्र होकर ही डाला है। इसपर भी पृथक् से विचार करने की आवश्यकता है, प्रस्तुत पुस्तक में उसकी विशेष चर्चा अनावश्यक भी है।

संपादन के संबंध में इतना ही निवेदन है कि वर्ण-विन्यास वही रखा गया है जो अनेक प्रतियों के आलोड़न के अनंतर स्थिर हुआ है और जिसका अनुगमन पहले 'घनानंद-कबित्त' में बहुत कुछ किया भी गया है। सबसे अधिक ध्यान 'घनआनंद' की रचना के संपादन में दिया गया है। कुछ प्रतियाँ के बहुत बाद में उपलब्ध होने से उनका उपयोग पूरा पूरा न हो सका। यह कार्य अगले संस्करण की प्रतीक्षा करता रहेगा। 'पदावली' में पद के विषय का निर्देश बाईं ओर छोटे अक्षरों में संपादक की ओर से किया गया है। दाहिनी ओर 'राग, ताल' का उल्लेख हस्तलेख के अनुसार है। जहाँ किसी विषय या राग आदि का उल्लेख न मिले, वहाँ उसे पूर्वोक्त पद के अनुसार समझना चाहिए। 'अंतःशीर्षक' मूल के ही हैं। इसी पद्धति का अनुगमन आगे अन्यत्र भी किया गया है। 'आनंदघन' की रचना अधिकतर ज्यों की त्यों रखी गई है, पर परेशानी का अंदाज इतने से ही कर लीजिए कि 'रति दी हाडे' को 'रात-दिहाडे' (इश्कलता, १९) समझने के लिए कई 'रात-दिहाडे' लग गए। यही नहीं 'राधा की जनम-बधाई झुलसि झुलसि हौसनि गाऊँ' (पदावली, ३६१) से बहुत देर तक 'झुलसना' पड़ा, तब कहीं 'हुलसि हुलसि' हुलसते हुए प्राप्त हुआ। पुराने ग्रंथों के लेखक का किन अक्षरों को कौन सा अक्षर पढ़ लेने की संभावना है इसकी एक सूची ही बनानी पड़ी तब पुस्तक बहुत कुछ परिष्कृत हो सकी। यदि ऐसा न किया गया होता तो 'मैन से बभूतट' के सामने बौरी बुद्धि किनारे ही बैठी रह जाती, 'बहु नट' (पदावली, ३३४) का नाच न देख पाती, न दिखा सकती। अति विस्तार व्यर्थ है, इतना ही कहना अलं है कि इसमें गाढ़ी कमाई करनी भी पड़ी है और लगानी भी। रक्त को इतना गाढ़ा कर देना पड़ा है कि तालू चटक गया, आँखों को इतना गड़ाना पड़ा कि उन्होंने दुराग्रह या 'सत्याग्रह' आरंभ किया। इसलिए

'आँखैं जौन देखैं तौ कहाँ हैं कछू देखति ये ऐसी दुखदाइनि की दसा आय देखियै ।'

प्राचीन काव्यों का जो अनुराग स्वर्गीय 'दीन' जी और आचार्य शुक्लजी जगा गए हैं शरीर शिथिल होकर उसे त्यागने की विधि सोचता, पर मन न मानता। तन और मन के विग्रह की प्रतिकूल परिस्थिति में यथेप्सित कार्य कर सकना दुरूह हो जाता था। पर मेरा रोम रोम असीसता है काशी नागरीप्रचारिणी सभा के 'अनुशीलन-विभाग' में 'हिंदी में भारतीय प्रेम-प्रबंधों की परंपरा' विषय पर संप्रति अनुसंधायक का कार्य करनेवाले अपने प्रिय शिष्य श्रीबटेकृष्ण बी० ए० (आनर्स), एम ए० को जिन्होंने इस महत्कार्य के संपादन में छाया की भाँति मेरा साथ कभी नहीं छोड़ा और जो प्रकृति के उपप्लव में—झंझा और करका में—भी पुस्तकों की प्रतिलिपियाँ करने से पराङ्मुख नहीं हुए। यदि तरह तरह की सूचियाँ उन्होंने न बना दी होतीं और हस्तलेखों से मिलान करने में रात को रात और दिन को दिन समझा होता तो ग्रंथ इस रूप में कदापि प्रस्तुत न हो सकता।

भक्तभूषण अलंकारानुरागी श्रीशिवकुमारजी केडिया तो 'बेसुध' होने पर भी 'सुध' में चढ़े रहेंगे। यदि छतरपुर की यात्रा में उनका साथ न मिला होता तो विफलता को भी सफलता मानने का साहस कैसे बटोर पाता और क्या पूरी टिप्पणियाँ लगाई जा सकतीं। राजस्थानी, पंजाबी और गुजराती के पदों में तो कई प्रश्नचिह्न लगाकर ही काम चलाना पड़ता। कलामर्मज्ञ-राय कृष्णदासजी, कविवर श्रीमैथिलीशरणजी गुप्त और पुरातत्त्वप्रेमी श्रीव्रजमोहनजी व्यास के पत्रों का बहुत बड़ा सहारा रहा। सर्वाधिक अनुग्रह प्राप्त हुआ माध्वसंप्रदायाचार्य सर्वतंत्रस्वतंत्र दर्शनाद्याचार्य श्रद्धेय गोस्वामी दामोदरलालजी शास्त्री का। जिस अनुग्रह के बल पर छतरपुर तक जाने और राजपुस्तकालय के अवलोकन की अनुमति ही नहीं विचार-विमर्श में सहमति भी मिली। काशी हिंदू विश्वविद्यालय में जैन धर्म के शिक्षक श्रीदलसुख भाईजी और रामघाट, काशी के जैनसाधु श्रीहीराचंद्र सूरि जी महाराज का भी कृतज्ञ हूँ जिनसे जैनधर्म और जैन आनंदघन संबंधी यथासाध्य सामग्री प्राप्त हुई।

प्रसाद-परिषद् के उत्साही कार्यकर्ता श्रीभगवतीशरण सिंह की दौड़-धूप सदा स्मृति-पथ पर रहेगी, पर उन्हें धन्यवाद! इसे तो वे अतिचार समझे

हैं। जिन महानुभावों के पुस्तकालय के हस्तलेखों की प्रतिलिपियाँ या मूल प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं और जिनके ग्रंथों से किसी प्रकार की सहायता मिली है उन सबके प्रति मैं कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ।

अंत में यह कह देना आवश्यक है कि छतरपुर राजपुस्तकालय के ग्रंथ का जो विवरण या सामग्री इस प्रकार है—"इनका ५४२ बड़े पृष्ठों का एक भारी ग्रंथ संवत् १८८२ का लिखा हुआ दरबार छतरपुर के पुस्तकालय में देखने को मिला, जिसमें १८११ विविध छंदों तथा १०४४ पदों द्वारा निम्नलिखित विषय वर्णित हैं—प्रियाप्रसाद, ब्रजव्योहार, वियोगबेली, कृपाकंदनिबंध, गिरिगाथा, भावनाप्रकाश, गोकुलविनोद, ब्रजप्रसाद, धामचमत्कार, कृष्ण-कौमुदी, नाममाधुरी, वृंदावनमुद्रा, प्रेमपत्रिका, ब्रजवर्णन, रसवसंत अनुभव-चंद्रिका, रंगबधाई, परमहंसवंशावली और पद।"—मिश्रबंधुविनोद, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ ५७४)—उसमें से रेखांकित पुस्तकें तो पूरी मिल गई हैं और शेष का भी लगभग आधा अंश आपके सामने है। यदि उक्त ग्रंथ नष्ट न हो गया होगा तो अभी मुझे उसके मिलने की पूरी आशा और विश्वास है।

समीक्षा-संबंधी बात मैंने जानबूझकर नहीं छेड़ी है। विस्तृत आलोचना अलग से प्रकाशित करने का विचार है और शीघ्र ही। यदि इस ग्रंथावली के पढ़ने से हिंदी के प्राचीन काव्य के अनुरागियों के चित्त का किंचिन्मात्र भी प्रसादन हुआ तो मेरा श्रम सार्थक सिद्ध होगा। यद्यपि संपादन में अक्षर-अक्षर का ध्यान रखा गया है तथापि 'अच्छर मन को छुरै बहुरि अच्छर ही भावै' के अनुसार 'स्खलन' की आशंका से मैं अपने को मुक्त नहीं समझता। 'सरस' हृदय साहित्यिकों से तो कुछ कहने की आवश्यकता नहीं, वे 'समाधान' कर लेते ह। उनमें 'समाधान' कर लेने की सज्जनता है ही क्योंकि उनके 'सरसत्व' में 'वैपरीत्य' का दोष नहीं है। हाँ, काव्यानुशीलन के लिए आगे आनेवालों से यह अवश्य कहना है—

'एजू सुनौ मित्त चित्त-गुन मैं पिरोय इन्हैं,
राखौ कंठ मुकता-कवित्त करि हार हैं'।

प्रबोधनी, २००२
ब्रह्मनाल, काशी

विश्वनाथप्रसाद मिश्र

'मूल' के आधार-ग्रंथ

हस्तलिखित

सुजानहित-प्रबंध— (१) राजपुस्तकालय, बनारस राज्य।
(२) म्युनिसिपल म्यूजियम, इलाहाबाद।
(३) भदावर राज्य, नवगावँ, आगरा।
(४) विद्या-विभाग, काँकरौली।

कृपाकंद-निबंध—सरस्वती-भंडार, बनारस राज्य।

वियोग-बेलि—(१) श्रीराधाचंद्र वैद्य, भरतपुर।
(२) भदावर राज्य, नवगावँ, आगरा।

इश्कलता—श्रीरामचंद्र सेनी, बेलनगंज, आगरा।

यमुना-यश—म्युनिसिपल म्यूजियम, इलाहाबाद।

प्रीति-पावस—भदावर राज्य, नवगावँ, आगरा।

पदावली—मानस-संघ, रामबन, सतना।

प्रकीर्णक—(१) आनंदघन-कबित्त, रत्नाकर-संग्रह, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी।
(२) घनानंद-कबित्त, वही।
(३) सुधासर, खोज-विभाग, नागरीप्रचारिणी-सभा, काशी।

मुद्रित

हिंदी

घनानंद-कबित्त—विश्वनाथप्रसाद मिश्र।

शृंगार-संग्रह—सरदार कवि।

सुजान-शतक—भारतेंदु हरिश्चंद्र।

मिश्रबंधु-विनोद—मिश्रबंधु महोदय।

'खोज' के विवरण--(मुद्रित तथा अप्रकाशित)

सुजानसागर—श्रीजगन्नाथदास 'रत्नाकर'।

विरहलीला—श्रीकाशीप्रसाद जायसवाल।

रसखान और घनानंद—श्रीअमीरसिंह ('सभा' द्वारा प्रकाशित)।

राग-कल्पद्रुम (तीनो भाग)—श्रीकृष्णानंद व्यास।

राग-रत्नाकर—श्रीभक्तराम।

व्रजनिधि-ग्रंथावली—'सभा' द्वारा प्रकाशित।

घन-आनंद—श्रीशंभुप्रसाद बहुगुना।

व्रज-भारती (पत्रिका)—श्रीजवाहरलाल चतुर्वेदी।

गुजराती

आनंदघनअष्टपदी—गुर्जर-साहित्य-संग्रह।

आनंदघन-चौबीसी (सटीक)—(१) जैनधर्म प्रचारक-सभा, भावनगर।
(२) किसी प्राचीन प्रेस की छपी।
(मूल)—(३) श्रावक भीमसिंह माणेक।
(सटीक)—(४) ,, ,, ,,

आनंदघन-बहोत्तरी (सटीक)—(१) आनंदघन-पद्य-रत्नावली, प्रथम विभाग, सं० मोतीचंद गिरधरलाल कायडिआ।
(२) आनंदघन-पद-संग्रह, श्रीअध्यात्म-ज्ञान-प्रसारक-मंडल, बंबई।
(मूल)—(३) श्रावक भीमसिंह माणेक।

—

सूची

संपादक की कुछ प्रमुख कृतियाँ

वाङ्मय-विमर्श
बिहारी की वाग्विभूति
हिंदी में नाट्यसाहित्य का विकास
काव्यांग-कौमुदी
भूषण-ग्रंथावली
पद्माकर-पंचामृत
घनानंद-कबित्त
कबितावली
केशव-ग्रंथावली (अप्रकाशित)
दास-ग्रंथावली
ग्वाल-ग्रंथावली

हिंदी की वर्तमान स्वच्छंद काव्यधारा के

'घनआनंद' 'सुजान'-प्रेमी

स्वर्गीय श्रीजयशंकर 'प्रसाद'

को

श्रद्धापूर्वक समर्पित

प्रशस्ति

सवैया

नेही महा व्रजभाषा-प्रबीन औ सुंदरतानि के भेद कों जानै।
जोग-बियोग की रीति मैं कोविद, भावना-भेद-स्वरूप कों ठानै।
चाह के रंग मैं भीज्यौ हियो, बिछुरैं मिलैं प्रीतम सांति न मानै।
भाषा-प्रबीन, सुछंद सदा रहै सो घन जी के कवित्त बखानै ॥ १ ॥
प्रेम सदा अति ऊँचो लहै सु कहै इहि भाँति की बात छकी।
सुनि कै सब के मन लालच दौरै, पै बौरै लखैं सब बुद्धि-चकी।
जग की कविताई के धोखैं रहै, ह्याँ प्रबीनन की मति जाति जकी।
समझै कबिता घनआनँद की हिय-आँखिन नेह की पीर तकी ॥ २ ॥

कबित्त

नेह-मकरंद-भरे कैधौं अरबिंद-बृंद,
निरखत नसत सकल ताप ही के हैं।
कैधौं सुबरन के कलस ये सुधा सौं भरे,
स्वाद पाएँ लगत सवाद सब फीके हैं।
कैधौं अदभुत जलधर 'व्रजनाथ' कहै,
नव-रस-रंग बरसत अति नीके हैं।
चोर चित्त-बित्त के कि पैठि बरजोर हियैं,
कैधौं बिलसत ये कबित्त घन जी के हैं ॥ ३ ॥
प्रगटे सुघन सुबरन स्वाति-जल जेते,
बसे छंद-बंद-रीति सुकति-अधार हैं।
सुंदर बिमल बहु अरथ-निधान देखौ,
अचिरज-नेह-भरे झलकै अपार हैं।
कहै 'व्रजनाथ' बहु जतननि आए हाथ,
बरनौं कहा लौं ये तौ परम सुढार हैं।

ए जू सुनौ मित्त चित्त-गुन मैं पिरोय इन्हैं,
राखौ कंठ मुकता-कबित्त करि हार हैं ॥ ४ ॥

सवैया

स्वाद महा खर दाखनि चाखत ज्यौं जन-नैननि रोष बढ़ावै।
ज्यौं तरुनी-तन-रूप निहारत षंड बढ़ै, हिय सोच उपावै।
चित्र-बिचित्र के भेद सराहत ज्यौं दृगमंद न काहू सुहावै।
त्यौं घनआनँद-बानि बखानत मूढ़ सुजाननि आनि सतावै ॥ ५ ॥
कोटि बिषै करि ओट महा नहिं नेह की चोटहि जो पहचानै।
बात के गूढ़ न भेदन जानत मूढ़ तऊ हठि बादन ठानै।
चाह-प्रबाह अथाह परे नहिं आप ही आप बिचच्छन मानै।
पूँछ-बिषान बिना पसु जो सु कहा घनआनँद-बानी बखानै ॥ ६ ॥
बिनती कर जोरि कै बात कहौं जौ सुनौ मन-कान दै हेत सौं जू।
कबिता घनआनँद की न सुनौ पहचान नहीं उहि खेत सौं जू।
जु पढ़े बिन क्यौं हूँ रह्यौ न परै तौ पढ़ौ चित मैं करि चेत सौं जू।
[रस-स्वादहि पाय बिषाद बहाय रहौ रमि कै इहि नेत सौं जू] ॥ ७ ॥
गोपिन के रस को चसको जब लौं न लग्यौ तब लौं मन गुंज न।
नीरस की रसिकाई कहा सब ही बिधि है सठ रे भठ-भुंजन।
प्रेम-पिकीन की प्यास भख्यौ घनआनँद छायौ जहाँ हित-पुंजन।
सीरी सुदेस सदा सुखमैन बसै जमुना-तट की उन कुंजन ॥ ८ ॥
हरि-राधा जहीं जहीं राजत हे वह ठौर जथारुचि रंजन है।
सु सँजोग बियोग महा रस-रूप तिही तित ही मन मंजन दै।
न मिलै बिछुरै कतहूँ न कहूँ घनआनँद यौं भ्रम-भंजन जै।
लखि लै सुख-संपति दंपति मैं ब्रज की रज आँखिन अंजन कै ॥ ९ ॥
गोकुल की बर बानिक नैन सदा लखिबोई करै अनिमेखनि।
मंडित मोद अखंडित रूप भरौ मन रोमहि रोम सुदेखनि।
मोहन ही सब के धन जीवन प्रीति रची रस-रीति बिसेखनि।
पान करौ चित चातिक ह्वै घनआनँद चाह उमाह बिसेखनि ॥ १० ॥

—['घनानंद-कबित्त' से उद्धृत]।

सुजानहित-प्रबंध

सवैया

रूपनिधान सुजान सखी जब तैं इन नैननि नेकु* निहारे।
दीठि थकी अनुराग-छकी मति लाज के साज-समाज बिसारे।
एक अचंभो भयौ घनआनँद हैं नित ही पल-पाट उघारे।
टारैं टरैं नहीं तारे कहूँ सु लगे मनमोहन-मोह के तारे॥ १॥
आँखि ही मेरी पै चेरी भई लखि फेरी फिरै न सुजान की घेरी।
रूप-छकी, तित ही बिथकी, अब ऐसी अनेरी पत्याति न नेरी।
प्रान लै साथ परी पर-हाथ बिकानि की बानि पै कानि बखेरी।
पायनि पारि लई घनआनँद चायनि बावरी प्रीति की बेरी॥ २॥
रूपनिधान सुजान लखैं बिन आँखिन दीठि की पीठि दई है।
ऊखिल ज्यौं खरकै पुतरीन मैं, सूल की मूल सलाक भई है।
ठौर कहूँ न लहै ठहरानि को मूँदैं महा अकुलानिमई है।
बूड़त ज्यौ घनआनँद सोचि, दई बिधि ब्याधि असाधि नई है॥ ३॥
हीन भएँ जल मीन अधीन कहा कछु मो अकुलानि समानै।
नीर सनेही कौं लाय कलंक निरास ह्वै कायर त्यागत प्रानै।
प्रीति की रीति सु क्यौं समझै जड़, मीत के पानि† परे कौं प्रमानै।
या मन की जु दसा घनआनँद जीव की जीवनि जान ही जानै॥ ४॥
मेरोई जीव जौ मारत मोहिं तौ प्यारे कहा तुम सौं कहनो है।
आँखिन हूँ पहचानि तजी कछु ऐसोई भागनि को लहनो है।

[१] तारे = पुतलियाँ। तारे = ताले। [२] अनेरी = विलक्षण। नेरी = थोड़ा भी। [३] ऊखिल = पराया, अपरिचित। सलाक = शलाका, सलाई (अंजन लगानेवाली)। ज्यौ = जी। [४] समानै = सम, तुल्य। पानि =

पाठांतर—* नीके। † पानैं।

आस तिहारियै हौं घनआनँद कैसैं उदास भए रहनो है।
जान ह्वै होत इते पै अजान जौ तौ बिन पावक ही दहनो है ॥ ५ ॥

आस लगाय उदास भए सु करी जग मैं उपहास-कहानी।
एक बिसास की टेक गहाय कहा बस जौ उर और ही ठानी।
एहो सुजान सनेही कहाय दई कित बोरत हौ बिन पानी।
यौं उघरे घनआनँद छाय कै हाय परी पहचानि पुरानी ॥ ६ ॥

मीत सुजान अनीति करौ जिन हाहा न हूजियै मोहि अमोही।
दीठि कौं और कहूँ नहिं ठौर फिरी दृग रावरे रूप की दोही।
एक बिसास की टेक गहें लगि आस रहे बसि प्रान-बटोही।
हौ घनआनँद जीवनमूल दई कित प्यासनि मारत मोही ॥ ७ ॥

पहिलैं घनआनँद सींचि सुजान कहीं बतियाँ अति प्यार-पगी।
अब लाय बियोग की लाय बलाय बढ़ाय बिसास-दगानि दगी।
अँखियाँ दुखियानि कुबानि परी न कहूँ लगैं कौन घरी सु लगी।
मति दौरि थकी न लहै ठिक ठौर अमोही के मोह-मिठास ठगी ॥ ८ ॥

हित भूले न आवति है सुधि क्यौं हूँ सु यौं हूँ हमैं सुधि कीजत है।
चित भूल तौ भूलत नाहिं सुजान जु चंचल ज्यौ कछु धीजत है।
दृढ़ आस की पासनि कंठ तें फेरि कै घेरि उसासनि लीजत है।
अब देखियै कौ लौं घिरै घनआनँद आव को दाव सो दीजत है ॥ ९ ॥

रसमूरति स्याम सुजान लखें जिय जो गति होति सु कासों कहौं।
चित चुंबुक-लोह लौं चायनि च्वै चुहटै उहटै नहिं जेतो गहौं।
बिन काज या लाज-समाज के साजनि क्यौं घनआनँद देह दहौं।
उर आवत यौं छबि-छाँह ज्यौं हौं ब्रजछैल की गैल सदाई रहौं ॥ १० ॥

हाथ। प्रमानै = प्रमाणित करता है। जान = सुजान। [५] जान = सुजान; चतुर। [६] उघरे = हट गए। [७] दोही = दुहाई। [८] बियोग की लाय = वियोगाग्नि। बिसास = विश्वासघात। घरी लगी = घड़ी लग गई, कैसा समय आया। [९] ज्यौ = जी। धीजत है = स्थिर होता है। पास = पाश, फंदा। आव = जीवन। [१०] चुहटै = चिपटता है। उहटै नहिं = हटता नहीं।

मन-पारद कूप लौं रूप चहैं उमहै सु रहै नहिं जेतो गहौं।
गुन-गाड़नि जाय परै अकुलाय मनोज के ओजनि सूल सहौं।
घनआनँद चेटक-धूम मैं प्रान घुटैं न छुटैं गति कासों कहौं।
उर आवत यौं छबि-छाँह ज्यौं हौं ब्रजछैल की गैल सदाई रहौं॥११॥
मुख हेरि न हेरति रंक मयंक सु पंकज छीवति हाथ न हौं।
जिहिं बानक आयौ अचानक ही घनआनँद बात सु कासों कहौं।
अब तौ सपने-निधि लौं न लहौं अपने चित चेटक-आँच दहौं।
उर आवत यौं छबि-छाँह ज्यौं हौं ब्रजछैल की गैल सदाई रहौं॥१२॥
रससागर नागर स्याम लखैं अभिलाषनि-धार-मँझार बहौं।
सु न सूझत धीर को तीर कहूँ पचि हारि कै लाज-सिवार गहौं।
घनआनँद एक अचंभो बड़ो गुन हाथ हूँ बूड़ति कासों कहौं।
उर आवत यौं छबि-छाँह ज्यौं हौं ब्रजछैल की गैल सदाई रहौं॥१३॥
सजनी रजनी-दिन देखैं बिना दुख पागि उदेग की आगि दहौं।
अँसुवा हिय पै घिय-धार परै उठि स्वास झरै सुठि आस गहौं।
घनआनँद नीर* समीर बिना बुझिबे को न और उपाय लहौं।
उर आवत यौं छबि-छाँह ज्यौं हौं ब्रजछैल की गैल सदाई रहौं॥१४॥
दुख-धूम की धूँधरि मैं घनआनँद जौ यह जीव घिर्यौ घुटिहै।
मनभावन मीत सुजान सों नातो लग्यौ तनकौ न तऊ टुटिहै।
धन जीवति, प्रान को ध्यान रहौ, इक सोच बच्यौऽब सोऊ लुटिहै।
घुरि आस की पास उसास-गरैं जु परी सु मरैं हू कहा छुटिहै॥१५॥
अँगुरीन लौं जाय भुलाय तहीं फिरि आय लुभाय रहै तरवा।
चपि चायनि चूर ह्वै एड़िनि ह्वै धपि धाय छकै छबि छाय छवा।

[११] पारद = पारा। कूप = कुप्पी। गाड़ = गड्ढा। चेटक = जादू। [१२] छीवति न = छूती नहीं। [१३] गुन = गुण; डोर, रस्सी। [१४] सुठि = सुंदर। [१५] तनकौ = थोड़ा भी। धन = धन्या, प्रेमिका। घुरि = कसकर। पास = फंदा। [१६] धपि = शीघ्रता से। छवा = पैरों का टखना। पायनि-पानि =

* तीर।

घनआनँद यौं रस-रीझनि भीजि कहूँ बिसराम बिलोक्यौ न वा।
अलबेली सुजान के पायनि-पानि पर्यौ न टर्यौ मन मेरो झवा॥१६॥

रस-आरस भोय उठी कछु सोय लगी लसैं पीक-पगी पलकैं।
घनआनँद ओप बढ़ी मुख औरै सु फैलि भवीं सुथरी अलकैं।
अँगराति जम्हाति लसैं सब अंग अनंगहि अंग दिपैं झलकैं।※
अधरानि मैं आधिय बात धरैं लड़कानि कहै आनि परैं छलकैं॥१७॥

बंक बिसाल रँगीले रसाल छबीले कटाछ-कलानि मैं पंडित।
साँवल सेत निकाई-निकेत हियैं हरि लेत है आरस-मंडित।
बेधि कै प्रान करैं फिरि दान सुजान खरे भरे नेह अखंडित।
आनँद-आसव-घूमरे नैन मनोज के चोजनि ओज प्रचंडित॥१८॥

देखि धौं आरसी लै बलि नेकु लसी है गुराई मैं कैसी ललाई।
मानौ उदोत दिवाकर की दुति पूरन चंदहि भैंटन† आई।
फूलत कंज कुमोद लखैं घनआनँद रूप अनूप निकाई।
तो मुख लाल गुलालहि लाय कै सौतिन के हिय होरी लगाई॥१९॥

रूप धरे धुनि लौं घनआनँद सूझति बूझ की दीठि सु तानौ।
लोचन लेत लगाय कै संग अनंग अचंभे की मूरति मानौ।
है किधौं नाहिं लगी अलगी सी लखी न परै कबि क्यौं हूँ प्रमानौ।
तो कटि-भेदहि किंकिनि जानति तेरी सौं एरी सुजान हौं जानौ॥२०॥

पैरौं के हाथ मैं पड़ा हुआ (वश मैं होकर)। झवा = पैर की मैल रगड़कर निकालनेवाला ईंट का टुकड़ा, झाँवा। [१७] रस-आरस = आनंद मैं लीन होने से उत्पन्न आलस्य। सुथरी = सुंदर, मनोहर। लड़कानि = मस्ती। [१८]. आनँद० = आनंद की मदिरा पीकर मत्त। चोज = मस्ती। [१९] लाल = प्रिय। [२०] रूप० = ध्वनि के रूप की भाँति सूक्ष्म या अलक्ष्यरूप धारण किए हुए है। बूझ० = बुद्धि की दृष्टि से, मानस नेत्रौं से। तानौ = उसकी तान; फैलाओ। भेद = रहस्य। हौं जानौ = मेरी समझ मैं ऐसा ही आता

※ लजाति लखै अँग अंग अनंग दिपै झलकै। † भेषन।

क्यौं हँसि हेरि हर्यौ हियरा अरु क्यौं हित कै चित चाह बढ़ाई।
काहेकौं बोलि सुधासने बैननि चैननि मैन-निसैन चढ़ाई।
सो सुधि मो हिय मैं घनआनँद सालति क्यौं हूँ कढ़ै न कढ़ाई।
मीत सुजान अनीत की पाटी इतै पै न जानियै कौने पढ़ाई ॥२१॥
गुन बाँधि लियौ हिय हेरत ही फिरि खेल कियौ अति ही उरझै।
गसिगौ कसि प्रीति के फंदनि मैं घनआनँद छंदनि क्यौं सुरझै।
सुधि लेत न भूलि हू ताकी सुजान सु जानि सकौं न दुरी गुरझै।
अब याही परेखैं उदेग-भर्यौ दुख-ज्वाल-पर्यौ जुरझै मुरझै ॥२२॥
रूप के भारन होति है सौंहीं लजौंहियै दीठि सुजान यौं झूली।
लागियै जाति, न लागी कहूँ निसि, पागी तहीं पलकौ गति भूली।
बैठियै जू हिय पैठत आजु कहा उपमा कहियै *समतूली।
आए हौ भोर भएँ घनआनँद आँखिन माँझ तौ साँझ सी फूली ॥२३॥

कवित्त

प्रीतम सुजान मेरे हित के निधान कहौ,
कैसैं रहैं प्रान जौ अनखि अरसायहौ।
तुम तौ उदार दीन हीन आनि पर्यौ द्वार,
सुनियै पुकार याहि कौ लौं तरसायहौ।
चातिक है रावरो अनोखे-मोह-आवरो,
सुजान-रूप-बावरो बदन दरसायहौ।
बिरह नसाय दया हिये मैं बसाय आय,
हाय कब आनँद को घन बरसायहौ ॥ २४ ॥
निरखि सुजान प्यारे रावरो रुचिर रूप,
बावरो भयौ है मन मेरो न सिखैं सुनै।

है। [२१] मैन-निसैन = कामना की सीढ़ियाँ पर। [२२] छंदनि = छल-कपट से। दुरी० = छिपी गाँठ को। परेखैं = पछतावे मैं। जुरझै = जलता है। [२३] झूली = झुकी हुई है। समतूली = योग्य, तुल्य। साँझ० = अर्थात् आँखैं लाल हैं। [२४] अनोखे० = आप के विलक्षण प्रेम के कारण व्याकुल। [२५] सिखैं = सीखैं। उझलि = उड़ेलना, वर्षा। उनै = छाया हुआ।

मति अति छाकी गति थाकी रतिरस भीजि,
　　रीझ की उझलि घनआनँद रह्यौ उनै।
नैन बैन चित-चैन है न मेरे बस, मेरी
　　दसा अचिरज देखौ बूड़ति गहैं गुनै।
नेह लाय कैसैं अब रूखे ह्वजियत हाय,
　　चंद ही के चाय च्वै चकोर चिनगी चुनै॥ २५॥
तरसि तरसि प्रान जानमनि-दरस कौं,
　　उमहि उमहि आनि आँखिनि बसत है।
बिषम बिरह के बिसिष हियैं घायल ह्वै,
　　गहवर घूमि घूमि सोचनि ससत है।
निसिदिन लालसा लपेटे ही रहत लोभी,
　　मुरझि अनोखी उरझनि मैं गसत है।
सुमिरि सुमिरि घनआनँद मिलन-सुख,
　　कटनि सौं आसा-पट कटि लै कसत है॥२६॥
काहू कंजमुखी के मधुप ह्वै लुभाने जानैं,
　　फूले रस-भूले घनआनँद अनत ही।
कैसैं सुधि आवै बिसरें हू हो हमारी उन्हें,
　　नए नेह पाग्यौ अनुराग्यौ है मन तहीं।
कहा करैं जी तें निकसति न निगोड़ी आस,
　　कौने समझी ही ऐसी बनिहै बनत ही।
सुंदर सुजान बिन दिन इन तम सम,
　　बीतै तमी तारनि कौं तारनि गनत ही॥ २७॥
एड़ी तें सिखा लौं है अनूठियै अँगेट आछी,
　　रोम रोम नेह की निकाई मैं रही है सनि।
सहज सुछबि देखें दबि जाहिं सबै बाम,
　　बिन ही सिँगार औरै बानिक बिराजै बनि।

गुनै = गुण ; रस्सी। [२६] ससत है = दम घुट रहा है। गसत है = ग्रस्त होता है। कटनि = ढब से। [२७] तमी = (तमिस्रा) रात। तारनि० =

गति लै चलत लखैं मतिगति पंगु होति,
दरसति अंगरंग-माधुरी बसन छनि।
हँसनि-लसनि घनआनँद जुन्हाई छाई,
लागै चौंध चेटक अमेट-ओपी मैंहैं तनि ॥२८॥

रतिरंग-रागे प्रीति-पागे रैन-जागे नैन,
अवत लगेई घूमि झूमि छवि सों छके।
सहज बिलोल परे केलि की कलोलन मैं,
कबहूँ उमगि रहे कबहूँ जके थके।
नीकी पलकनि पीक-लीक-झलकनि सोहैं,
रस-बलकनि उनमदि न कहूँ सके।
सुखद सुजान घनआनँद पोखत प्रान,
अचिरजखानि उघरे हू लाज सों ढके ॥ २९ ॥

अनखि चढ़े अनोखी चित्त चढ़ै उतरै न,
मन-मग मूँदै जाको बेह सब ओर तैं।
कूबरो सुकौ, न ठौन रंग-भीनी हौन जानै,
लाड़नि सु लसि हुलसति मति चोरतैं।
बड़े मैन-मतवारे नैननि के बीच परी,
खरियै निडर ऊँची रहै रूप-डोर तैं।
सहज बनी है घनआनँद नवेली नाक,
अनबन नथ सौं सुहाग की मरोर तैं ॥ ३० ॥

केलि की कलानिधान सुंदरि सुजान महा,
आन न समान छबि-छाँह पै छिपैयै सौनि।
माधुरी-मुदित मुख उदित सुसील भाल
चंचल बिसाल नैन लाज-भीजियै चितौनि।

आँखों से तारों को गिनते हुए। [२८] अँगेट = अंगदीप्ति। चेटक = जादू। अमेट० = घुमाव से चमकती। [२९] बलकनि = उफान, प्रवाह। [३०] बेह = छिद्र। सुकौ = शुक भी। ठौन = ठवनि, मुद्रा। मति० = बुद्धि को चुराती हुई। रूप० = सौंदर्य की डोर। अनबन = बेढंगी। [३१] सौनि =

पिय - अंग - संग घनआनँद उमंग हिय,
सुरति - तरंग रस - बिबस उर - मिलौनि
झूलनि अलक, आधी खुलनि पलक, स्रम-
स्वेदहि झलक भरि ललक सिथिल हौनि ॥ ३१ ॥

अंग अंग स्याम-रंग-रस की तरंग उठै,
अति घहराय हिय प्रेम-उफनानि की।
उमगनि भरी पूर-पानिप-सुढार ढरी,
मीठी धुनि करै ताप हरै आँखियानि की।
महाछबि-भीर तीर गए तैं न टर्यौ जाय,
मोहनता-निधि बिधि पुहमी पै आनि की।
भान की दुलारी घनआनँद जीवन-ज्यारी,
बृंदाबन-सोभा सींवँ सुख-सरसानि की ॥ ३२ ॥

सवैया

जा मुख हाँसी लसी घनआनँद कैसैं सुहाति बसी तहाँ नाँसी।
जा हिय तैं हतियै नहिं तू हँसि बोलन कीकत कीजत हाँसी।
पोखि रसै जिय सोखत क्यौं गुन बाँधि हू डारत दोष की फाँसी।
हाहा सुजान अचंभो अजान ज्यौं भेदि कै गाँसहि बेधत गाँसी ॥ ३३॥

रीझि बिकाई निकाई पै रीझि थकी गति हेरत हेरन की गति।
जोबन-घूमरे नैन लखैं मतवारी भई मति वारि कै मोमति।
बानी बिलानी सुबोलनि मैं अनचाहनि-चाह जिवावति है हति।
जान के जी की न जानि परै घनआनँद या हू तैं होति कहा अति ॥ ३४॥

सोने (कुंदन) का लाल वर्ण। लाज० = लज्जा से युक्त। [३२] पूर = प्रवाह। पानिप = जल; शोभा। आनि = लाकर। भान = वृषभानु (राधा के पिता)। ज्यारी = जिलानेवाली। [३३] नाँसी = मारने की बान। भेद० = हृदय से पीड़ा की गाँठ काटकर अब भाले की नोक चुभो रहे हैं। [३४] रीझि० = स्वयं रीझ ही उस सौंदर्य पर रीझकर बिक गई। थकी० = उसके देखने की गति (ढंग) देखकर मेरी गति रुक गई। घूमरे = मतवाले। मोमति = अपनत्व को निछावर करके। अन० = न चाहनेवाली की

आड़ न मानति चाड़-भरी उघरी ही रहै अति लाग-लपेटी।
ढीठि भई मिलि ईठि सुजान न देहि क्यौं पीठि जु दीठि सहेटी।
मेरी ह्वै मोहिँ कुचैन करै घनआनँद रोगिनि लौं रहै लेटी।
ओछी बड़ी इतराति लगी मुँह नेकौ अघाति न आँखि निपेटी॥ ३५॥
तब तौ छबि पीवत जीवत हे अब सोचन लोचन जात जरे।
हित-पोष के तोष सु प्रान पले बिललात महादुख-दोष-भरे।
घनआनँद मीत सुजान बिना सब ही सुख-साज-समाज टरे।
तब हार पहार से लागत हे अब आनि कै बीच पहार परे॥ ३६॥
चाह-बढ़्यौ चित चाक-चढ़्यौ सो फिरै तित ही इत नेकु न धीजै।
नैन थकै छबि-पान छकै घनआनँद लाज त्यौं रीझनि भीजै।
मोह मैं आवरी ह्वै बुधि बावरी सीख सुनै न दसा-दुख छीजै।
देह दहै न रहै सुधि गेह की भूलि हू नेह को नावँ न लीजै॥ ३७॥
पहिलैं अपनाय सुजान सनेह सौं क्यौं फिरि तेह कै तोरियै जू।
निरधार अधार दै धार-मँझार दई! गहि बाँह न बोरियै जू।
घनआनँद आपने चातिक कौं गुन-बाँधिलैं मोह न छोरियै जू।
रस प्याय कै ज्याय बढ़ाय कै आस बिसास मैं यौं बिष घोरियै जू॥ ३८॥
रति-साँचैं ढरी अछवाई भरी पिँडुरीन गुराइयै पेखि पगै।
छबि घूमि घुरै न मुरै मुरवान सौं लोभी खरो रस भूमि खगै।
घनआनँद ऐँड़िनि आनि मिड़ै तरवानि तरे तैं भरै न डगै।
मन मेरो महाउर चायनि च्वै तुव पायनि लागि न हाथ लगै॥ ३९॥

चाह मारकर भी जिला रही है। जान० = जान (सुजान; जी) के जी की बात नहीँ समझ पड़ती। [३५] आड़ = परदा। चाड़ = उत्कट इच्छा। लाग = लगन। सहेटी = घुमक्कड़। निपेटी = भुक्खड़। [३६] हित० = प्रेम का पोषण। [३७] न धीजै = ठहरता ही नहीँ। आवरी = व्याकुल। दसा० = मेरी दशा दिनदिन दुःख से क्षीण ही होती जाती है। [३८] तेह = रोष। गुन = गुण; डोर। बाँधिलैं = बँधे हुए को या बाँध लेकर। बिसास = विश्वास। [३९] अछवाई = अच्छाई, सुंदरता। मुरवा = एड़ी के ऊपर चारो ओर का घेरा। खगै = लीन हो जाता है। मिड़ै = चिपक जाता है। भरै = समय काटता

कबित्त

तोरै लाज-दामै सु छुड़ावै धाम-कामै,
बिसरावै बिसरामै सुधि सीखति सयान की।
चेटक लगावै मैन-आगिहि जगावै, प्रान
पैठि उमगावै ऐंठि मेटति गुमान की।
धुनि मैं बतावै मौन, थकनि जतावै गौन,
हौं न जानौं कौन बिधि सीखी तीखी तान की।
मुँह लागी गाजै घनआनँद बिराजै आज,
बाजै बन बंसी स्यामसुंदर सुजान की ॥ ४० ॥

सवैया

रावरे रूप की रीति अनूप नयो नयो लागत ज्यौं ज्यौं निहारियै।
त्यौं इन आँखिन बानि अनोखी अघानि कहूँ नहिं आन तिहारियै।
एक ही जीव हुतौ सु तौ वार्यौ सुजान! सकोच औ सोच सहारियै।
रोकी रहै न, दहै घनआनँद बावरी रीझ के हाथनि हारियै ॥४१॥

रूप लुभाय लगी तब तौ अब लागति नाहिँ सुभाय निमेखौ।
जो रस-रंग अभंग लह्यौ सु रह्यौ नहिँ पेखियै लाखनि लेखौ।
हौ घनआनँद एहो सुजान तऊ ये दहै दुखदाई परेखौ।
आखिन आपनी आँखिन देख्यौ कियौ अपनो सपनेऊ न देखौ ॥४२॥

पीर की भीर अधीर भईं अँखियाँ दुखिया उमगीं झरना लौं।
रोकि रही उर-मेंड़ बही इन टेक यही जु गही सु दही हौं।

है। [४०] दाम = रस्सी। चेटक = जादू। मैन = काम। धुनि० = ध्वनि मैं मौन हो जाने का संकेत करती है, उसे सुननेवाला मौन साधने को विवश होता है। थकनि० = उसकी गति (गौन) रुकने का इंगित करती है। [४१] आन = शपथ। सहारियै = सहारा दीजिए। [४२] आँखिन० = अपनी आँखों से तो अपनी आँखें देख लीं (अपने ज्ञान की पहुँच से असंभव कार्य भी संभव कर लिया) पर अपना किया स्वप्न मैं भी (भूलकर भी) नहीं देखते। [४३] उर० = उस प्रवाह को रोकने के लिए छाती की जो मेंड़ थी वह भी बह गई,

भीज़ि बरैं छिय-धार परैं हिय आँसुनि यौं पजरै बिरहा दौं।
आनँद के घन मीत सुजान ह्वै प्रीति मैं कीनी अनीति कहा गौं ॥४३॥
फैलि रही धर अंबर पूरि मरीचिनि-बीचिनि-संग हिलोरति।
भौंर-भरी उफनाति खरी सु उपाव की नाव तरेरनि तोरति।
क्यौं बचियै भजि हू घनआनँद बैठि रहैं घर पैठि ढँढोरति।
जोन्ह प्रलै के पयोनिधि लौं बढ़ि बैरिनि आज बियोगिनि बोरति ॥४४॥

कबित्त

आई है दिवारी चीते काजनि जिवारी प्यारी,
खेलैं मिलि जूवा पैज पूरैं दाव पावहीं।
हारहि उतारि जीतैं मीत-धन लच्छिन सो,
चोप-चढ़े बैन चैन-चहल मचावहीं।
रंग सरसावै बरसावै घनआनँद,
उमंग-ओपे अंगनि अनंग दरसावहीं।
दियरा जगाय जागैं पिय पाय तिय रागैं,
हियरा जगाय हम जोगहि जगावहीं ॥ ४५ ॥

सवैया

प्रान-पखेरू परे तरफैं लखि रूप-चुगो जु फँदे गुन-गाथन।
क्यौं हतियै हित पालि सुजान दया बिन व्याध-बियोग के हाथन।
सालत बान समान हियैं सु लहे घनआनँद जे सुख साथन।
देहु दिखाय दई मुखचंद लग्यौ अब औधि-दिवाकर आथन ॥४६॥
रंग लियौ अबलानि के अंग तैं च्वाय कियौ चित चैन को चोवा।
और सबै सुख सौंधे सकेलि मचाय दियौ घनआनँद ढोवा।

छाती फट गई। दौं = अग्नि। गौं = घात। [४४] धर० = पृथ्वी से आकाश तक। मरीचि० = किरणों की लहरें। तरेर = थपेड़ा। ढँढोरति = ध्यान देकर ढूँढ़ती है। [४५] चीते = मनचाहे। जिवारी = जिलानेवाली। पैज = प्रतिज्ञा। हार = माला ; पराजय। दियरा० = और तो दीपक जगाकर जागते हैं, पर हम हृदय को (प्रेमसाधना में) जगाकर योग (संयोग) जगाते हैं। उसे सिद्ध कर रहे हैं। [४६] चुगो = चारा। आथन लग्यौ = अस्त होने लगा।

प्रान-अबीरहि फेंट भरे अति छाक्यौ फिरै मति की गति खोवा।
स्याम सुजान बिना सजनी ब्रज यौं बिरहा भयौ फाग बिगोवा ॥४७॥
रूप-चमूप सज्यौ दल देखि भज्यौ तजि देसहि धीर-मवासी।
नैन मिलें उर के पुर पैठतै लाज लुटी न छुटी तिनका सी।
प्रेम-दुहाई फिरी घनआनँद बाँधि लिये कुल-नेम गुढ़ासी।
रीझ सुजान सची पटरानी बची बुधि बापुरी ह्वै करि दासी ॥४८॥

कबित्त

आस ही अकास-मधि अवधि-गुनै बढ़ाय,
चोपनि चढ़ाय दीनौ कीनौ खेल सो यहै।
निपट कठोर एहो ऐंचत न आप-ओर,
लाड़िले सुजान सौं दुहेली दसा को कहै।
अचिरजमई मोहिं भई घनआनँद यौं,
हाथ साथ लाग्यौ पै समीप न कहूँ लहै।
बिरह-समीर की झकोरनि अधीर, नेह-
नीर भीज्यौ जीव तऊ गुड़ी लौं उड़्यौ रहै ॥४९॥

बिरह-दवागिनि उठी है तन-बन-बीच,
जतन सलिल के सु कैसें नीचियै परै।
अंतर-पुढ़ाई फटै चटकत साँस-बाँस,
आस-लाँबी-लता हू उदेग-झर सौं जरै।
दुख-धूम-धूँधरि मैं घिरे घुटैं प्रान-खग,
अब लौं बचे हैं जौ सुजान तनकौ ढरै।
बरसि दरस घनआनँद अरस छाँड़ि,
सरस परस दै दहनि सब ही दरै ॥५०॥

जल-बूड़ी जरैं दीठि पाई हू न सूझि परैं,
अमी पियें मरैं मोहिं अचिरज अति है।

---

[४७] ढोवा = ढुलाई। बिगोवा = विनष्ट। [४८] मवासी = गढ़पति। गुढ़ासी = (गूढ़ाशय) विप्लव करनेवाले। सची = बनाई। [४९] गुनै = डोर को। दुहेली = दुःखमयी। [५०] पुढ़ाई = दृढ़ता; पुष्टता। झर = ज्वाला।

चीर सौं न ढकैं, बानी बिन बिथा बकैं,
दौरि परैं न निगोड़ी थकैं बड़ी भूतागति है।
लगैं तारे खुलैं आँखैं तारी त्यौं न पगैं पिय,
नींद-भरी जगैं इन्हैं अनोखियै रति है।
गुन बँधैं कुल छूटैं आपौ दै उदेग लूटैं,
उत जुरैं इत टूटैं आनँद बिपति है॥ ५१॥

रूप-गुन-मद-उनमद नेह-तेह-भरे,
छल-बल-आतुरी चटक-चातुरी पढ़े।
घूमत घुरत अरबीले न मुरत क्यौं हूँ,
प्रानन सौं खेलैं अलबेले लाड़ के बढ़े।
मीन-कंज-खंजन-कुरंग-मान-भंग करैं,
सीँचे घनआनंद खुले सकोच सौं मढ़े।
पैने नैन तेरे से न हेरे मैं अनेरे कहूँ,
घाती बड़े काती लियैं छाती पै रहैं चढ़े॥ ५२॥

अंजन गंजत दीठि, मंजन मलीन करै,
रंजन-समाज-साज सजै उर-पीर को।
भूषन दगत, गुन दूषन लगत गात,
पूषन मुकुर, अंग सोखै संग चीर को।
जीबो बिष-ज्वाल जीतै, बीतै घनआनँद यौं,
बन भौन कौन है धरैया अब धीर को।
रंग-रस-बरस सुजान के दरस बिन,
तीर तैं सरस बहै परस समीर को॥ ५३॥

सवैया

जोरि कै कोरिक प्राननि भावते संग लियैं अँखियानि मैं आवत।
भीजे कटाछन सौं घनआनँद छाय महारस कौं बरसावत।

अरस = आलस्य ; नीरसता। [५१] भूतागति = भूत का सा व्यापार, विलक्षण बात। गुन = गुण ; डोर। [५२] तेह = रोष। अरबीले = अड़नेवाले। अनेरे = आततायी, दुष्ट [५३] मंजन = मार्जन, स्नान। रंजन = प्रसन्न करनेवाले व्यापार।

ओट भएँ फिरि या जिय की गति जानत जीवनि ह्वै जु जनावत ।
मीत सुजान अनूठियै रीति जिवाय कै मारत मारि जिवावत ॥५४॥
लाखनि भाँति भरे अभिलाषनि कै पल पाँवड़े पंथ निहारैं ।
लाड़िली आवनि लालसा लागि न लागत हैं मन मैं पन धारैं ।
यौं रस भीजे रहैं घनआनँद रीझै सुजान सरूप तिहारैं ।
चायनि बावरे नैन कबै अँसुआन सौं रावरे पाय पखारैं ॥५५॥
सोवत भाग जगे सजनी दिन कोटिक या रजनी पर वारे ।
नेहनिधान सुजान सजीवन औचक ही उर-बीच पधारे ।
सौतिन तें पिय पाय इकौसैं भरे भुज सोच-सकोच निवारे ।
बैरिनि दीठि जरौ घनआनँद यौं जिय ले पल-पाट उघारे ॥५६॥

कबित्त

दरसन-लालसा-ललक-छलकनि पूरि,
पलकनि लागै लगि आवनि अरबरी ।
सुंदर सुजान मुखचंद को उदै बिलोकैं,
लोचन-चकोर सेवैं आरति-परब री ।
अंग-अंग-अंतर-उमंग-रंग भरि भारी,
बाढ़ी चोप चुहल की हिय मैं हरबरी ।
बूड़ि बूड़ि तरैं औधि-थाह घनआनँद यौं,
जीव सूक्यौ जाय ज्यौं ज्यौं भीजत सरबरी ॥ ५७ ॥
बैस की निकाई सोई रितु सुखदाई, तामैं
तरुनाई उलहत मदन मैमंत है ।
अंग अंग रंग-भरे दल फल फूल राजैं,
सौरभ सरस मधुराई को न अंत है ।
मोहन-मधुप क्यौं न लटू ह्वै लुभाय भटू,
प्रीति को तिलक भाल धरे भागवंत है ।

---

[५४] भीजे = सरस । [५५] पन = प्रतिज्ञा । [५६] इकौसैं = अकेले, एकांत मैं ।
[५७] अरबरी = व्याकुलता । आरति = दुःख । परब = पुण्यकाल ; पूर्णिमा ।
हरबरी = हड़बड़ी, उतावली । भीजत = बढ़ती है । सरबरी = शर्बरी, रात ।

सोभित सुजान घनआनँद सुहाग-सींच्यौ,
तेरे तन-बन सदा बसत बसंत है ॥ ५८ ॥
ललित तमालनि सों बलित नवेली बेलि,
केलि-रस झेलि हँसि लह्यौ सुखसार है।
मधुर बिनोद स्वेद-जलकन मकरंद,
मलय समीर सोई मोद-उदगार है।
वन को बनक देखि कठिन बनी है आनि,
वनमाली दूर आली सुनै को पुकार है।
बिन घनआनँद सुजान अंग पीरे परि,
फूलत बसंत हमैं होत पतझार है ॥ ५९ ॥
देखैं अनदेखनि-प्रतीति पेखियति प्यारे,
नीठ न परत जानि दीठ किधौं छल है।
दीपति-समीप की बिछोह माहिँ पोहियत,
आरसी-दरस लौं परस ध्यान जल है।
पटी अटपटी दसा सोच-चटपटी-बीच,
बूड़त बिचारो जीव थाह क्यौं हूँ न लहै।
कहा कहौं आनँद के घन जानराय हौ जू,
मिले हूँ तिहारे अनमिले की कुसल है ॥ ६० ॥
तू ही गति मेरे मति नौछावरि करी, तेरे
रूप हेरें चोप-कूप गिरी लेजु लाज की।
सुनियै सुजान आन तेरीयै पखेरू-प्रान,
परे प्रीति-सिंधु आस तो हित जहाज की।
कीजै मनभाई इती कहि मैं जताई, तेरे
हाथ ही बड़ाई घनआनँद सु काज की।
हाहा दीन जानि याकी बीनतीयै लीजै मानि,
दीजै आनि औषद वियोग-रोगराज की ॥ ६१ ॥

---

[५८] बैस = (वयस्) उम्र। [५९] झेलि = प्राप्त करके, भोग करके। पतझार = पतझड़ ; प्रतिष्ठा की हानि। [६०] नीठ = कठिनाई से। दीठ =

सवैया

ह्वै निसवादिल जात रसौ मन तेरे सुभाव मिठासहि पागैं।
आनँद जान कहौं तुव आनन लागि न आन सौं लोयन लागैं।
चैन मैं सैन करैं सब ओर तें भावते भाग जौ तो मिलि जागैं।
रंग रचैं सुठि संग सचैं घनआनँद अंगन क्यौं सुख त्यागैं ॥६२॥

कबित्त

सब सौं चिन्हारिहि बिसारि पल टारैं नाहिं,
इक टक जोहिबे की जक जागियै रहै।
देखि देखि सुख भोय हँसि परैं रोय रोय,
चौंकि चकि चाहनि मैं चिंता पागिय रहै।
तोरि लाज-साकरैं घिरै हैं सोभा-साकरैं,
सु क्यौं हूँ न निकास आस-पास खागियै रहै।
ऐसी कछु बानि चाह-बावरे दृगनि आली,
दरस-मुकुंद-लालसाई लागियै रहै ॥ ६३ ॥

पल-दल-संपुट मैं मुँदै मन मोद मानै,
आरस-बिभावरी ह्वै होत भौंरहाई है।
द्वै सरोज बीच एक बसत रसत कैसैं,
लसत सु ऐसैं अचिरज अधिकाई है।
बाहिर तें रूप-मकरंद-पान करै पुन्य,
बड़ी भूतागति हेरैं मो मति हिराई है।
नयोई रसिक घनआनँद सुजान यह,
किधौं प्यारी तेरे नैन-सैन की निकाई है ॥ ६४ ॥

(दृष्ट) प्रत्यक्ष, सत्य। छल = भ्रांति। अनमिले० = न मिलने का ही पोषण होता है, मिलने में भी पृथक् रहते हैं। [६१] लेजु = रस्सी। [६२] निसबादिल = स्वादहीन। सुठि = सुंदर। [६३] साँकरैं = शृंखलाएँ। साँकरैं = संकट में। आस० = आशा का फंदा पड़ा रहता है। [६४] भौंरहाई = भौंरों

सवैया

रस-रूसनैं रूखियै ऊठ अनूठियै लागति जागति जोति महा।
अनबोलनि पै बलि कीजियै बानी सु बोलनि की कहियै धौं कहा।
ननिहारनि हेरि न हारति दीठि औ पीठि दियें समुहात लहा।
घनआनँद प्यारी सुजान दै कान अहा सुनियै हित-बात हहा ॥ ६५ ॥

कवित्त

उर-गति ब्यौरिबे कौं सुंदर सुजान जू को,
लाख लाख बिधि सौं मिलन अभिलाखियै।
बातैं रिस-रस-भीनी कसि, गसि गाँस झीनी,
बीनि बीनि आछी भाँति पाँति रचि राखियै।
भाग जागै जौ कहूँ बिलोकैं घनआनँद तौ,
ता छिन की छाकनि के लोचन ही साखियै।
भूलै सुधि सातौ दसा-बिबस गिरत गातौ,
रीझि बावरे ह्वै तब औरै कछू भाखियै ॥ ६६ ॥

सपने की संपति लौं भई है मलोलेमई,
मीत को मिलन-मोद जानौं न कहाँ गयौ।
जकी ह्वै थकी है जड़ताई जागि पागि पीर,
धीर कैसें धरौं मन सो धन झराँ गयौ।
हाय हाय अंगन की हीनता कहाँ लौं कहौं,
गए न लगेई संग रंग हू जहाँ गयौ।
राखे आप ऊपर सुजान घनआनँद पै,
पह के फटत क्यौं रे हिये फटि नाँ गयौ ॥ ६७ ॥

रावरे गुननि बाँधि लियौ हियो जान प्यारे,
इते पै अचंभो छोरि दीनी जु सुरति है।

का मँडराना। भूतागति = भूत की सी दशा, विलक्षण बातें। [६५] ऊठ = उमंग। ननिहारनि = (आप का मुझे) न देखना। [६६] गाँस० = छोटी फाँस। सुधि० = पाँचो ज्ञानेंद्रियाँ, मन और बुद्धि। [६७] झराँ = खो गया,

उघरि नचाय आपु चाय मैं रचाय हाय,
क्यौं करि बचाय दीठि यौं करि दुरति है।
तुम हूँ तें न्यारी है तिहारी प्रीति-रीति जानी,
ढीले ह्वै परे तें गरें* गाँठि सी घुरति है।
कैसें घनआनँद अदोषनि लगैयै खोरि,
लेखनि लिखार की परेखनि मुरति है॥ ६८॥

पौढ़े घनआनँद सुजान प्यारी परजंक,
धरे धन अंक तऊ मन रंक-गति है।
भूषन उतारि अंग अंगहि सम्हारि, नाना
रुचि के बिचार सौं समोय सीझी मति है।
ठौर ठौर लै लै राखैं औरै और अभिलाखैं,
बनत न भाखैं तेई जानैं दसा अति है।
मोद-मद-छाके घूमैं रीझि भीजि रस झूमैं,
गहैं चाहि रहैं चूमैं अहा कहा रति है॥ ६९॥

हित कै हँकारौ तौ हुलासनि सहित धावै,
अनखि बिडारौ तौ बिचारो न कछू कहै।
पाल्यौ प्यार को तिहारौ नीकें तुम ही निहारौ,
हाहा जनि टारौ याहि द्वारौ दूसरौ न है।
आनँद के घन हौ सुजान आन दियैं कहौं,
मान दै न कीजै मान, दान दीजियै यहै।
देखें रूप रावरो भयौ है जीव बावरो,
उमंगनि उतावरो ह्वै अंगनि पर्यौ दहै॥ ७०॥

चोरी चला गया। पह = पौ। [६८] जानी = समझी। [६९] धन = धन्या, प्रिया। सीझी = भिनी हुई। [७०] आन = शपथ। मान० = प्रेमी का आदर करके उससे रूठिए मत। [७१] झरै = झड़ी ही। भीज = आर्द्रता।

* पै हियें।

सवैया

मुख-चाहनि-चाह-उमाहन को घनआनँद लाग्यौ रहैई भरै।
मनभावन मीत सुजान-सँजोग बने बिन कैसैं बियोग टरै।
कबहूँ जौ दई-गति सौं सपनो सो लखौं तौ मनोरथ-भीज भरै।
मिलि हू न मिलाप मिलै तनकौ उर की गति क्यौं करि ब्यौरि परै ॥७१॥
ए मन मेरे कहा करी तैं तजि दीन चल्यौ जु प्रवीन ह्वै तो सौ।
ल्यायौ न काहुवै आँखि तरे हौं कहूँ कबहूँ करि तेरो भरोसौ।
मीत सुजान मिल्यौ सु भली करी बावरे मोसौं भर्यौ कित रोसौ।
सोचत हौं अपने जिय मैं सपने न लहौं घनआँनद दोसौ ॥७२॥
आपु न अंगन संग को रंग भर्यौ रिस आनि कै अंग पजारत।
रावरे चैन को ऐन हियो है सु रैनदिना यह मैन उजारत।
और अनीति कहाँ लौं कहौं घनआँनद जो कछू आपदा पारत।
कैसैं सुहाति सुजान तुम्हैं हितू मानि दई कोऊ ऐसैं बिसारत ॥७३॥
रीझ तिहारी न बूझि परै अहो बूझति हैं कहौ रीझत काहैं।
बूझि कै रीझत हौ जु सुजान किधौं बिन बूझ की रीझ सराहैं।
रीझ न बूझौ तऊ मन रीझत बूझि न रीझे हू ओर निबाहैं।
सोचनि जूझत मूझत ज्यौ घनआँनद रीझ और बूझहि चाहैं ॥७४॥

कबित्त

लहकि लहकि आवै ज्यौं ज्यौं पुरवाई पौन,
दहकि दहकि त्यौं त्यौं तन ताँवरे तचै।
बहकि बहकि जात बदरा बिलोकैं हिय,
गहकि गहकि गहबरनि हियैं मचै।
चहकि चहकि डारै चपला चखनि चाहैं,
कैसैं घनआँनद सुजान बिन ज्यौ बचै।
महकि महकि मारै पावस-प्रसून-बास,
त्रासनि उसास दैया कौ लौं रहियै अचै ॥ ७५ ॥

[७३] आपु० = अंगों की सी बनावट काम में नहीं, वह अनंग है। ऐन = घर। [७४] बूझ = बुद्धि। मूझत = बेसुध होता है। [७५] ताँवरे =

ललित उमंग-बेली आलबाल-अंतर तैं,
आनँद के घन सींची रोम रोम ह्वै चढ़ी।
आगम-उमाह-चाह छायौ सु उछाह-रंग,
अंग अंग फूलनि दुकूलनि परै कढ़ी।
बोलत बधाई दौरि दौरि कै छबीले दृग,
दसा सुभ सगुनौती नीकैं इन पै पढ़ी।
कंचुकी तरकि मिले सरकि उरज, भुज
फरकि सुजान चोप-चुहल महा बढ़ी ॥ ७६ ॥

सवैया

घनआनँद जीवनमूल सुजान की कौंधन हूँ न कहूँ दरसैं।
सु न जानियै धौं कित छाय रहे दृग-चातिग-प्रान तपे तरसैं।
बिन पावस तौ इन ध्यावस हो न सु क्यौं करि ये अब सो परसैं।
बदरा बरसै रितु मैं घिरि कै नित ही अँखियाँ उघरी बरसैं ॥ ७७ ॥
लहौं जान पिया लखि लाखन प्रान पै वारिबे की अभिलाष मरौं।
सु कहौं किहि भाँति अनोखियै पीर अधीर ह्वै नैननि नीर भरौं।
घनआनँद कीजै बिचार कहा महा रंक लौं सोच-सकोच ररौं।
चित-चोपन चाह के चौचँद मैं हहराय हिराय कै हारि परौं ॥ ७८ ॥

कबित्त

कोऊ मुँह मोरौ जोरौ कोरिक चवाई क्यौं न,
तोरौ सब कोऊ करि सोरौ मेरैं को सुनै।
नेह-रस-हीन दीन अंतर मलीन-लीन,
दोष ही मैं रहै गहै कौन भाँति वे गुनै।
रूप-उजियारे जान प्यारे पर प्रान वारे,
आँखिन के तारे न्यारे कैसैं धौं करौं उनै।

ताप से। गहबरनि = व्याकुलता। चहकि० = जला देती है। अचै = पीकर। [७६] सगुनौती = अर्थात् मंगलपाठ। [७७] कौंधा = चमक, झलक। ध्यावस = स्थिरता, धैर्य। [७८] चौचँद = शोर। [७९] चवाई = बदनामी

टरै नहीँ टेक एक यहै घनआनँद जौ,
निंदक अनेक सीस खीसनि परे धुनै ॥ ७९ ॥
नीके नैन ऐन पाय चैन पाय लाज हू को,
सोभा के समाज हेरैं हिय सियरात है।
एरी मेरी सहज लड़ीली अरबीली सुनि,
तेरो अंग-संग लहैं लाड़ौ लड़कात है।
रूप-मद-छाके तैं गँवेली गरबीली ग्वारि,
तोहि ताकैं रूपौ उमगनि उमदात है।
आनँद के घन सौं न कीजै मान जान प्यारी,
दान दीजै पिय सौं न मानै यौंही जात है ॥ ८० ॥
सोभा को निकेत नेति भाखत निगम जाहि,
ताके सुख हेत मीनकेत रसखेत है।
सकल बननि सिरमौर ठौर ठौर जाकी,
राखैं चख-ढौर और थाकै चित-चेत है।
राधा-पद-अंकित बिराजि रही मही महा,
श्रीपति-निवास हू तें दीपति उपेत है।
मधुर बिनोद जहाँ आनँद-पयोद-झर,
रसिक पपीहा प्रान प्यासनि समेत है ॥ ८१ ॥

सवैया

तेरी निकाई निहारि छकैं छवि हू को अनूपम रूप कढ़्यौ है।
ईठि ह्वै दीठि पै नीठि कटाछनि आय मनोज को चोज पढ़्यौ है।
आनँद के घन राग सौं पागि सुजान सुहागहि भाग बढ़्यौ है।
लाड़ तैं लाड़िली होति है और पै तो तन लाड़हि लाड़ चढ़्यौ है ॥८२॥
घूँटै घटा चहुँधा घिरि कै गहि काढ़ैं करेजो कलापिन कूकैं।
सीरी समीर सरीर दहै, चहकै चपला चख लै करि ऊकैं।

करनेवाले। खीस = लज्जा। [८०] अरबीली = हठी। लाड़ौ = प्यार भी बहल जाता है। गँवेली = गाँव की रहनेवाली। [८१] ताके० = रसमय कामदेव उसी के सुख के लिए है। राखैं० = नेत्र उसे ही देखते हैं। उपेत = युक्त।

एहो सुजान तुम्हैं लगे प्रान सु पावस यौं तजि ध्यावस सूकैं।
ह्वै घनआनँद जीवनमूल धरौ चित मैं कित चातिक-चूकैं ॥८३॥

अंजन त्यौर ही ताक्यौ करै नित पान लखै मुख-त्यौं रँग-चायनि।
औरौ सिँगार सदा घनआनँद चाँहै उमाह सौं आपने दायनि।
तू अलबेली सरूप की रासि सुजान विराजति सारे सुभायनि।
ऐ परि नाच कै साँच छक्यौ जु लट्टू भयौ लग्यौ फिरै तुव पायनि ॥८४॥

मो दृग-तारनि जौ पै तिहारो निहारिबोई है महासुख-लाहौ।
तौ पै कहा हो हठीले सुजान ये चाँहैं परे तुम नेकौ न चाहौ।
रावरी बानि अनोखियै जानि कै प्रान रचे तिहि रंग सराहौ।
कै बिपरीति मिलौ घनआनँद या विधि आपनी रीति निबाहौ ॥८५॥

कबित्त

ऊतर सँदेसो मिलैं मेल मानि लीजत हो,
ताहू को अँदेसो अब रह्यौ उर पूरि कै।
उठी है उद्वेग-आगि जीजै कौन आस लागि,
रोम रोम पीर पागि डारी चिंता चूरि कै।
निपट कठोर कियौ हियो मोह मेटि दियौ,
जान प्यारे नेरे जाय मारौ कित दूरि कै।
तरफौं बिसूरि कै बिथा न टरै मूरि कै,
उड़ायहौं सरीरै घनआनँद यौं धूरि कै ॥ ८६ ॥

सवैया

मिहँदी रँग पायनि रंग लहै सुठि सौंधो सु अंगनि संग बसै।
तरुनाई पै कोक पढ़ै, सुघराई सिखावति है रसिकाई रसै।
घनआनँद रूप-अनूप-भरी हित-फंदनि मैं गुन-ग्राम बसै।
सब भाँति सुजान न आन समान कहा कहौं आप तें आप लसै ॥ ८७ ॥

---

[८२] चोज = उमंग। [८३] कलापी = मयूर। चहकै = जलाती है। ऊकैं = उल्का, लुक। ध्यावस = धैर्य। [८४] त्यौर = चितवन। ऐ परि = फिर भी। [८५] चाँहैं = चाह मैं पड़े हैं। [८६] नेरे० = निकट (अनुकूल) होकर और फिर दूर (प्रतिकूल) होकर। [८७] सुठि = सुंदर, उत्कृष्ट।

कवित्त

कौन की सुजस-जोन्ह अमल अपूरब को,
जग मैं उदोत देखियत दिनरैन है।
जाकी जोति जागै रस पागै हो चकोर-नैन,
बुध कवि मित्रन को पोखै मन चैन है।
नेह-निधि बाढ्यौ घनआनँद गुननि सुनि,
अचिरज-ऐन सो निहारौं कहूँ मैं न है।
बिरह बिडारि औ बिदारि दुख-तम कब,
सींचौगे स्रवन कहि सुधासने बैन है॥ ८८॥

मोहिं दीठि-कारन हौ दुख-तम-टारन' हौ,
प्रीति-पन-पारन हौ कहाँ लौं कहौं असै।
लोचननि तारे अचिरज-भारे जान प्यारे,
तुम ही तैं पियत तिहारे रूप के रसै।
बात अटपटी बढ़ी चाह-चटपटी रहै,
भटभटी लगै जौ पै वीच बरुनी बसै।
लै लै प्रान वारौं इक टक धारौं यौं विचारौं,
हाहा घनआनँद निहारौ दीन की दसै॥ ८९॥

जेतो घट सोधौं पै न पाऊँ कहाँ आहि सो धौं,
को धौं जीव जार अटपटी गति दाह की।
धूम कौं न धरै, गात सीरो परै ज्यौं ज्यौं जरै,
ढरै नैन नीर बीर! हरै मति आह की।
जतन बुझै हैं सब जाकी झर आगैं, अब
कबहूँ न दबै भरी भभक उमाह की।

सौंधो = सुगंध,इत्र आदि। कोक = कोकशास्त्र के निर्माता। सुरघाई = चतुरता। [८८] अपूरब = पूर्वेतर दिशा ; अद्वितीय। बुध = ग्रह ; पंडित। कबि = शुक्र ; काव्यकर्ता। मित्र = सूर्य ; सखा। निधि = समुद्र। [८९] भटभटी = देखते हुए भी न दिखाई पड़ना। [९०] घट = शरीर। बीर = हे सखी। मति० = 'आह' करने की चेतना। झर = ज्वाला। उमाह = उमंग।

जब तेँ निहारे घनआनँद सुजान प्यारे,
तब तेँ अनोखी आगि लागि रही चाह की ॥ ९० ॥
अवधि सिराएँ ताप-ताते ह्वै कलमलाय,
आपु चाय-बावरे उमहि उफनात हैँ ।
दरस-दुखारे चैन-बंचित बिचारे हारे,
आँखिन के मारे आय तहीँ मड़रात हैँ ।
इते पै अमोही घनआनँद रुखाई, उर
सोचनि समाय कै थहरि ठहरात हैँ ।
जानि अनखौँहीँ बानि लाड़िले सुजान की सु,
करि हूँ पयान प्रान फेरि फिरि जात हैँ ॥ ९१ ॥
साहस सयान ज्ञान ताकत तुम्हैं सुजान,
तब ही सबनि तजी अब हौँ कहा तजौँ ।
रावरेई राखे प्रान रहे, पै दहे निदान,
यौँ ही इन काज लाज बिन हौँ खरी लजौँ ।
ऐसी कै बिसारी गौँ तिहारी न बिचारी परै,
आनँद के घन हौ अमोही जौ ढरौ अजौँ ।
कौन बिधि कीजै कैसैँ जीजै सो बताय दीजै,
हाहा हो बिसासी दूरि भाजत तऊ भजौँ ॥ ९२ ॥
घेर्‍यौ घट आय अंतराय-पटनि-पट पै,
ता मधि उजारे प्यारे पानस के दीप हौ ।
लोचन-पतंग संग तजै न तऊ सुजान,
प्रान-हंस राखिबे कौँ धरे ध्यान-सीप हौ ।
ऐसैं कहौ कैसैं घनआनँद बताऊँ दूरि,
मन-सिंघासन बैठे सुरत-महीप हौ ।

---

[९१] सिराएँ = बीत जाने पर; ठंढी पड़ने पर। अनखौँहीँ = रूठनेवाली। [९२] सयान = चतुरता। निदान = अंत मैं। गौँ = घात। बिसासी = विश्वासघाती। भाजत = भागते हो। भजौँ = भजती हूँ। [९३] घट = शरीर ; फानूस की हाँडी। अंतराय = विघ्न। पटनि० = परत पर परत करके लपेटे वस्त्र। पानस =

दीठि-आगै डोलौ जौ न बोलौ कहा बस लागै,
मोहिं तौ बियोग हू मैं दीसत समीप हौ ॥ ९३ ॥

सवैया

मीठे महा गरुवे गुनरासि ह्वै हूजत क्यौं करुवे गहि दोसनि।
आपुन त्यौं तकियै सकियै कहि हाहा हठीले न रूसियै रोसनि।
तासौं इती अनखानि कहा घनआनँद जो भिजई है भरोसनि।
वारियै कोरिक प्रान सुजान हौ ऐ परि यौं मरियैगो मसोसनि ॥९४॥
हित-भूलनि पै कित भूलि रहे अहो भूलि हू नीके न जानत हौ।
उहि भूलनि संग लगी सुधि है जु सुजान सदा उर आनत हौ।
घनआनँद सोऊ न भूलत क्यौं जु पै भूलि ही कौं ठिक ठानत हौ।
तब भूलि कै लैहौ कछू सुधि तौ चित दै इतनी किन मानत हौ ॥९५॥

कबित्त

रूप की उझलि आछे आनन पै नई नई,
तैसी तरुनई तेह - ओपी अरुनई है।
उलटि अनंग-रंग की तरंग अंग अंग,
भूषन-बसन भरि आभा फैलि गई है।
महारस-भीर परैं लोचन अधीर तरैं,
आछी ओक धरैं प्यास-पीर-सरसई है।
कैसैं घनआनँद सुजान प्यारी छबि कहौं,
दीठि तौ चकित औ थकित मति भई है ॥९६॥

फानूस। पतंग = फतींगा। सुरत० = स्मृति के शासक। [९४] मीठे = मधुर ; प्रिय। करुवे = कड़वे ; विमुख। त्यौं = ओर। भिजई = सरस की। ऐ परि = फिर भी। [९५] भूलि रहे = मगन हो रहे हैं। सुधि = आप मेरे भूलने में अपनी चेतना लगाए हुए हैं, अतः मेरी सुध इसी बहाने आप के मन पर चढ़ती रहती है। सोऊ० = यदि भूलने का ही निश्चय कर लिया है तो मेरे भूलने को ही क्यौं नहीं भूल जाते। भूलि कै = भूले भटके। [९६] उझलि = उमड़ाव। तेह = तीखापन। उलटि = एक पर एक चढ़कर। ओक = अंजली।

नीकी नासापुट ही की उचनि अचंभे-भरी
मुरि कै इचनि सौं न क्यौं हूँ मन तें मुरै।
रूप-लाड़ जीवन-गरूर चोप-चटक सौं,
अनखि अनोखी तान गावै लै मिहीं सुरै।
सहज हँसौंहीं छबि फबति रँगीले मुख,
दसननि जोतिजाल मोतीमाल सी रुरै।
सरस सुजान घनआनँद भिजावै प्रान,
गरबीली ग्रीवा जब आनि मान पै ढुरै॥ ९७॥

अलग भयौ है लगि तुम्हें और ठौरन तें,
सुलग्यौ करत ऐसी गति लागी मो हियै।
क्यौं हूँ न परत गह्यौ रह्यौ गहि एक टेक,
आनँद के घन आप अधिक अमोहियै।
खरक दुहेली हो असूझ रूप रावरे की,
दीठि पाय काँटौ कहौ कौन बिधि टोहियै।
जब तें सुजान प्रानप्यारे पुतरीनि-तारे,
आँखिन बसे हौ सब सूनो जग जोहियै॥ ९८॥

सवैया

दृग छाकत हैं छबि ताकत ही मृगनैनी जबै मधुपान छकै।
घनआनँद भीजि हँसै सु लसै झुकि झूमति घूमति चौंकि चकै।
पल खोलि ढकै लगि जात जकै न सम्हारि सकै बलकैऽरु बकै।
अलबेली सुजान के कौतुक पै अति रीझि इकौसी ह्वै लाज थकै॥ ९९॥

---

[९७] न मुरै = हटती नहीं। मिहीं० = मंद मधुर स्वर से। रुरै = छा जाती है। ढुरै = मुद्रा के साथ मुड़ती है। [९८] सुलग्यौ० = सुलगता (जलता) रहता है; भली भाँति लगता है। खरक = खटक। दुहेली = दुखद। दीठि० = दृष्टि रहते भी काँटा कैसे टटोल सकूँ, क्योंकि आप के रूप की खटक असूझ जो है। [९९] मधु = शराब। भीजि = शरूर चढ़ने पर। बलकै = नशे में उमंगित होती है। इकौसी = अकेली। [१००] आन = अन्य। आन = शपथ। ज्यारी =

कबित्त

अब तैं निहारे इन आँखिन सुजान प्यारे,
तब तैं गही है उर आन देखिबे की आन।
रस-भीजे बैननि लुभाय कै रचे हैं तहीं,
मधु-मकरंद-सुधा नावौं न सुनत कान।
प्रानप्यारी ज्यारी घनआनँद गुननि कथा,
रसनौ रसीली निसिबासर करत गान।
अंग अंग मेरे उन ही के संग रंग रँगे,
मन-सिंघासन पै बिराजै तिन ही को ध्यान ॥१००॥

सवैया

पानिप-मोती मिलाय गुही गुन-पाट पुही सु जु ही अभिलाखी।
नीके सुभाय के रंग भरी हित-जोति खरी न परै कछु भाखी।
चाह लै बाँधी दै प्रीति की गाँठि सु है घनआनँद जोबन* साखी।
नैननि पानि बिराजति जान जू रावरे रूप अनूप की राखी ॥१०१॥
सोभा-सुमेरु की संधितटी† किधौं सोभित मान-मवास की घाटी।
कै रसराज-प्रबाह को मारग बेनी बिहार सौं यौं दग दाटी।
काम-कलाधर ओप दई मनौ प्रीतम-प्यार-पढ़ावन-पाटी।
जान की पीठि लखैं घनआनँद आनन आन तें होत उचाटी ॥१०२
ढिग बैठे हू पैठि रहै उर मैं घर कै दुख को सुख दोहत है।
दग-आगे तें बैरी टरै न कहूँ जगि जोहन-अंतर जोहत है।

जिलानेवाली। [१०१] पानिप = शोभा। गुन = गुण ; डोर। पाट = रेशम। ही = हृदय। चाह = इच्छा। नैननि० = नेत्रों के हाथ में। राखी = रक्षा का डोरा। [१०२] सुमेरु = पहाड़ ; मेरुदंड। संधितटी = संधिस्थल। मवास = पहाड़ी किला। रसराज = शृंगार ; जलराशि। बिहार० = हिलने से। दाटी = प्रतीत होती है। ओप० = घोटकर चमकाई। पाटी = पट्टी, पटिया। आन = अन्य। उचाटी = उच्चाटित। [१०३] ढिग = पास। जोहन० = देखने के समय

* जीवन। † सिंधुतटी।

घनआनँद मीत सुजान मिलैं बसि बीच तऊ मन मोहत है।
यह कैसो सँजोग न बूझि परै जु बियोग न क्यौं हूँ बिछोहत है ॥१०३॥

कबित्त

गहें एक टेक टारि दीने हैं बिवेक सब,
कौन प्यास-पीर-पूरे नीरहि रितौत हैं।
कैसैं कही जाय हेली इनकी दुहेली दसा,
जैसैं ये बियोगी निसिबासर बितौत हैं।
कहिबे कौं मेरे पै अनेरे ये रे जाहिं नाहिं,
अति ही अमोही मोहिं नेकौ न हितौत हैं।
जब तें निहारे घनआनँद सुजान प्यारे,
तब तें अनोखे दृग काहिं न चितौत हैं ॥ १०४ ॥

तैं मुँह लगाई तातें मोहिं मौन ही की कथा,
रसना के उर एकरस रही बसि है।
तेरी सोई जान सोई जानै जिन जोही छबि,
क्यौं धौं इन नैनन तें नींद गई नसि है।
छोरि छोरि डारे जे जे भूषन बिदूषन से,
तहीं तहीं लगि लोभी मन गयौ गसि है।
आरस-रसीली घनआनँद सुजान प्यारी,
ढीली दसा ही सौं मेरी मति लीनी कसि है ॥ १०५ ॥

चलदल-पात की प्रभा को है निपात जातें,
यातें बाय बावरो डराय काँपिबो करै।
थोरे थिर गुन मैं बिराजै चिर आभा ऐन,
नैन हेरैं हेरनि हिये मैं भूख लै भरै।

बीच मैं से झाँकता रहता है। [१०४] रितौत = खाली करते हैं, (आँसू) टपकाते हैं। हेली = हे अली। दुहेली = दुखद। अनेरे = विलक्षण, अपरिचित। न हितौत = हित नहीं करते, अनुकूल नहीं रहते। काहिं = किसी को भी। [१०५] सोई = सोई हुई। सोई = वही। गसि गयौ = चिपट गया।

नेकौ सनमुख भएँ दीजै सब तन पीठि,
नीठि हाथ लागै मन पायन कहूँ परै।
ताकैं तो उदर घनआनँद सुजान प्यारी,
ओछी उपमानि कोगरूर ओरे लौं गरै ॥ १०६॥

बेध्यौ ल बिसासी मोहिं गाँसी नेकु हाँसी ही मैं,
घूमि घूमि मेरो घनो मरम महा पिराय।
होत न लखाय क्यौं हूँ घाय हाय कहा करौं,
जरौं बिषज्वाल पै न काल कैसैं हूँ निराय।
जीवन की मूरि जाहि मान्यौ तिन चूरि करी,
खरी बिपरीति दई हेरि हौं गई हिराय।
है री घनआनँद सुजान बैरी पैंड़े पर्यौ,
दै री अब ऊतर यौं धीर ह्वै चल्यौ धिराय ॥ १०७ ॥

सवैया

जिन ही बरुनीन सौं बेध्यौ हियौ तिन ही दृग-हाथ सिवावत हौ।
बिष-भोए कटाछिन ही हँसि दै जु सुजान सुधाहि पिवावत हौ।
अनबोले रहौ जु अनोखे अजौं रस मैं अब रोष दिवावत हौ।
घनआनँद चूकौ न दाव कहूँ फिरि मारन चाव जिवावत हौ ॥१०८॥

उर आवति है अपने कर द्वै बर बेनी बिसाल* सौं नीकैं कसौं†।
अति दीन ह्वै नीचियै दीठि कियैं अनखैंहिं सुभाव के त्रास त्रसौं।

[१०६] चलदल० = पीपल का पत्ता, जिसकी उपमा पेट से दी जाती है। निपात = पतन। बाय = वायु। ऐन = भरपूर। पीठि देना = विमुख होना। नीठि = कठिनाई से। तो = तेरा। [१०७] मरम = मर्मस्थल। घाय = घाव। न निराय = निकट नहीं आता। पैंड़े० = पीछे पड़ा। धिराय = धीरे धीरे, धैर्य-पूर्वक। [१०८] तिन० = उन्हीं नेत्रों के हाथ से मेरा कटा हृदय सिलाते हैं, उन्हीं नेत्रों को देखकर चित्त प्रसन्न होता है। बिष० = विषयुक्त। अजौं =

* बिलास। † गसौं।

घनआनँद यौं बहु भाँतिनि हौं सुखदान सुजान-समीप बसौं।
हित-चायनि च्वै चित चाहत नै नित पायनि ऊपर सीस घसौं ॥१०९॥
साँच के सान-धरे सुर-बान पै छूटैं बिना ही कमान सौं जोटैं।
दीसैं जहाँ के तहाँ सु चलैं अति घूमति है मति या चख-चोटैं।
ग्राव को चाव बढ़ै घनआनँद चाड़नि लै उर आड़नि ओटैं।
प्रान सुजान के गान-बिंधे घट लोटैं परे लगि तान कचोटैं ॥११०॥
रावरे रूप की रीति नई यह जोहन राखत लै गहि गोहन।
ज्ञान न देत कहूँ कबहूँ तिन लेत है हो करि दीठि को दोहन।
सूझ सबै जु टरै घनआनँद बूझि परै न महा मति-मोहन।
देखै कहा जो न दीसौ इते पर हाहा सुजान तिहारियै सौंहन ॥१११॥

कबित्त

मोहिं दुख-दोष सोखै पोखै सुख तोहि, मोहिं
चिंता-चिता चूरि तोहि राखै निधरक है।
ख्वाय कै जगावै मोहिं बिहँसावै ख्वावै तोहि,
तेरैं भूल भरै मोहिं सालै ज्यौं करक है।
तोहि चैत-चाँदनी मैं सरसै हरख-सुधा,
मोहिं जारै मारै ह्वै बिषाद को अरक है।
कहूँ घनआनँद घमड़ उघरत कहूँ,
नेह की बिषमता सुजान अतरक है ॥११२॥
जोबन-रूप-अनूप-मरोर सौं अंगहि अंग लसै गुन-ऐंठी।
चातुरी-चोख मनोज के चोजनि घूघरिवारियै ऊठ अमैंठी।

अब भी। [१०९] नै = झुककर। [११०] सुर० = स्वररूपी बाण। जोटैं = प्रतिपक्षी पर। चाड़ = उत्कंठा। कचोटैं = व्यग्र होते हैं। [१११] गोहन = साथ। दीठि० = दृष्टि को दुह लेता है। सौंहन = शपथें। [११२] ख्वाय = रुलाकर। करक = कड़क, टीस। अरक = अर्क, सूर्य। अतरक = अतर्क्य। [११३] गुन = गुण; डोर। चोख = फुरती। ऊठ = उठान।

सूधें न चाहै कहूँ घनआनँद सोहै सुजान गुमान-गरैंठी।
पैठत प्रान खरी अनखीला सु नाक चढ़ाएई डोलत टैंठी ॥११३॥
गोरे डडा पहुँचानि बिलोकत रीझि रँग्यौ लपटाय गयौ है।
पन्ननि की पहुँचीन लखैं इन आभा-तरंगनि संग रयौ है।
नीलमनीनि हियैलैं वनी रुचि-रूप-सनी सु घनीन छयौ है।
चारु चुरीनि चितै घनआनँद चित्त सुजान के पानि भयौ है ॥११४॥

कवित्त

प्रेम को महोदधि अपार हेरि कै बिचार,
बापुरो हहरि वार ही तें फिरि आयौ है।
ताही एकरस ह्वै बिवस अवगाहैं दोऊ,
नेही हरि-राधा जिन्हैं देखैं सरसायौ है।
ताकी कोऊ तरल तरंग-संग छूट्यौ कन,
पूरि लोकलोकनि उमगि उफनायौ है।
सोई घनआनँद सुजान लागि हेत होत,
ऐसें मथि मन पै सरूप ठहरायौ है ॥ ११५ ॥

लालसा ललित मुख-सुषमा निहारिबे की,
बरनी परै न ज्यौं भरी है नैन छाय कै।
ठौर के सँकोच दीठि हू कौं अति सोच बाढ़्यौ,
बिना तुम्हैं कहौ और कहाँ रहै जाय कै।
बानिक-निकाई नीकें हेरियै सुजान हौ जू,
कीजियै कहा धौं सोऽब दीजियै बताय कै।
एक ठावँ दुहुनि बसैयै सुख-दुख कैसें,
हाहा घनआनँद सुरस बरसाय कै ॥ ११६ ॥

अमैंठी = उमेठी हुई। गरैंठी = टेढ़ी। टैंठी = (प्राकृत टेंटा) चंचल। [११४] गोरे = अर्थात् सोने के। डडा = कँगना। पहुँचा = कलाई। पहुँची = एक गहना। रयौ = लीन हो गया। हियैलैं = कदाचित् पछेली। [११५] वार = इस ओर का तट, किनारा। सरूप = प्रेम का रूप। [११६] सुरस = जल; आनंद,

सोभा-लोभ लागि अंग-रंग-संग प्रीति पागि,
जागि जागि नेकौ न निमेष टेक तेँ टरी।
बोलनि चितौनि चारु डोलनि कलोलनि सौँ,
चाहि चाहि रंक लौँ सु संपति हियैँ धरी।
ऐसैँ ही मैँ असह विरह कित ह्वै तेँ आय,
बावरे-सुभाय-बस कुटिलाई है करी।
अब घनआनँद सुजान प्रानदान भेटौँ,
विधि बुधिआगर पै जाचत वहै घरी ॥११७॥

प्रानन के प्रान एहो सुंदर सुजान सुनौ,
कान धरि बात, नेकु मेरी ओर चाहियै।
रूप दरसाय चोप चाय सरसाय हाय,
ल्याए करि हाँसी मैँ बिसास हरि ता हियै।
भीजे घनआनँद बिराजौ निधरक तुम,
ताहि चिंता-चिता-बीच ऐसैँ अब दाहियै।
सब विधि लायक नवल नेही नायक हौ,
कहाँ लौँ रसीले गुनगनानि सराहियै ॥११८॥

सवैया

देखि सुजान छए घनआनँद ढीठ भए सु न नीठ सकोचत।
चाह के दाह भरे कित तेँ नित पीर अधीर ह्वै नीरद मोचत।
लोभी तऊ अकुलाय कै प्यासनि रूप के पानिप-लेस कौँ लोचत।
नैन असोचिन की गति हेरि कै बीतत री निसिबासर सोचत ॥११९॥

तेरी बिना ही बनाय की बानिक जीतै सची-रति-रूप-भलापन।
को कबि सो छबि कौँ बरनै रचि राखनि अंग सिँगार-कलापन।
कान ह्वै तान को रूप दिखावति जान जबैँ कछु लागै अलापन।
नाचहि भाव को भेद बतावत, है घनआनँद भौँह-चलापन ॥१२०॥

प्रेम। [११७] प्रानदान = जीवनदायिनी। [११८] भीजे = सरस, सुखी। [११९] नीठ = कठिनाई से भी। नीरद = बादलोँ सी अश्रुवृष्टि। पानिप = पानी; शोभा। [१२०] बनाव = सजावट। सची = इंद्राणी। भलापन =

कवित्त

मोहिँ मेरे जिय की जनायबो अजानता है,
जानराय जानत हौ सकल-कला-प्रवीन।
औगुन बिचारौ जौ पै तौ गुन कहा तिहारौ,
आप त्यौं निहारौ पन पारौ जू सँभारौ दीन।
जतन कहा बताऊँ तुम ही तैं तुम्हैं पाऊँ,
रावरोई जस गाऊँ बावरे लौं हितलीन।
रहौं लगि आस घनआनँद मिलन-प्यास
एहो रसरासि ज्याय लीजै ढरि निज मीन ॥ १२१ ॥

सब बिधि लायक असेष सुखदायक हौ,
तुम ही पै बनै बेसम्हारनि सम्हारिबो।
निघटत नाहिँ मो घटाई, उघटत क्यौं हूँ.
रावरी बड़ाई आहि प्रीतिपन पारिबो।
एहो घनआनँद सुजान एक टेक ही सौं,
चातिक बिचारे को है जीवनि बिचारिबो।
यातें निसदिन सब रस दरसाएँ, और
टक जक लाएँ लाभी करत निहारिबो ॥ १२२ ॥

नेही-सिरमौर एक तुम ही लौं मेरी दौर,
नाहिँ और ठौर, काहि साँकरै सम्हारियै।
दरसन-दान दीजै भावते सुजान, रहे,
आसा लागि प्रान आन बोलत तिहारियै।
गुनमाला फेरौं, निगुनी ह्वै नित हित हेरौं,
बिरह-अधीर टेरौं पीरहि निवारियै।

उत्तमता। कलापन = समूह। चलापन = चंचलता। [१२१] अजानता = अज्ञान। जानराय = ज्ञानियों में श्रेष्ठ। रसरासि = आनंद की राशि; समुद्र। [१२२] निघटत० = घटती नहीं। उघटत = कहने से। जीवनि = जीना। [१२३] साँकरै = संकट में। आन = दुहाई। माला = समूह; जपमाला

पन तन ताकौ जो ह्वौ काचो सो तौ आहि पाकौ,
आनँद के घन प्रीति-साकौ न बिगारियै ॥ १२३ ॥
मेरी मति बावरी ह्वै जाय जानराय प्यारे,
रावरे सुभाय के रसीले गुन गाय गाय ।
देखन के चाय प्रान आँखिन मैं झाँकैं आय,
राखौं परचाय पै निगोड़े घ्रैलैं धाय धाय ।
बिरह-बिषाद छाय आँसुन को झर लाय,
मारै मुरझाय मैन-तावरेन ताय ताय ।
ऐसें घनआनँद बिहाय न बसाय दाय,
धीरज बिलाय बिललाय कहौं हाय हाय ॥ १२४ ॥
बैनन मैं बोलै, नैन-ऐन चैन सौं कलोलै,
गैन-संग डोलै पै न परस-परोस है ।
हेरति हिरावँ, एक ठौर हू न लहौं ठावँ,
झुरि मुरि झावदार ऐसी पीर को सहै ।
पाय न परति बात प्रान पौढ़ि करै घात,
जानराय प्यारे को नवेलो रस-रोस है ।
आपने किये की छाँह बैठियै बखानै जग,
वे तो घनआनँद मो देखन को दोस है ॥ १२५ ॥
रूप-मतवारी घनआनँद सुजान प्यारी,
घूमरे कटाछि धूम करैं कौन पै घिरैं ।
नाच की चटक लसै अंगनि मटक-रंग,
लाड़िली लटक-संग लोयन लगे फिरैं ।
अभिनै-निकाई निरखत ही बिकाई मति,
गति भूली डोलै-सुधि सोधौ न लहौं हिरैं ।

तन = ओर । साकौ = ख्याति । [१२४] निगोड़े = बुरे (गाली) ; पैर से हीन । तावरेन = ताप, ज्वर । न बसाय = बस नहीं चलता । [१२५] ऐन = घर । गैन = गमन । परस० = स्पर्श की निकटता । झावदार = परिपूर्ण । पाय० = समझ में नहीं आती । प्रान० = प्राणों में लेटकर, बसकर । [१२६] घूमरे =

राते तरवानि तरें चूरे चोप-चाड़-पूरे,
पाँवड़े लौं प्रान रीझि ह्वै कनावड़े गिरैं ॥ १२६ ॥

अंग अंग छाई है उदेग-उरझानि महा,
साँस लैवो आली गिरि हू तें गरुवौ लगै।
जोबन-सरूप-गुन सूल से सलत गात,
तूल तिनका लौं ह्वै गुमान हरुवौ लगै।
सुंदर सुजान प्रान प्यारे के निहारे बिन,
दीठि तौ अदीठि सी उजार घरुवौ लगै।
और जे सवाद घनआनँद बिचारै कौन,
बिरह-बिषाद-जुर जीवो करुवौ लगै ॥ १२७ ॥

जे दृग सिराए घनआनँद दरस-रस,
ते अब अमोही दुख-ज्वाल जारियत है।
तोखे हित-पोखे नित जेई प्रान राखि साथ,
तेई कै अनाथ यौं अकेले मारियत है।
कौन कौन बात को परेखो उर आनियै हो,
जान प्यारे कैसें बिधि-अंक टारियत है।
थाती लौं तिहारी प्रीति छाती पै बिराजि रही,
हेरि हेरि आँसुन-समूह ढारियत है ॥ १२८ ॥

गोकुल-नरेस नंद-बंस को प्रसंस बंदि,
सोभा-सुखकंद प्रेम - अमिय - निवास है।
जो नित चकोर-चोप तो हित भर्यौ ही रहै,
सुनियै सुजान कौन माधुरी - बिलास है।
उदित जुन्हाई ऐसें मेरे मन आई,
जैसें बाढ़्यौ घनआनँद सुदृष्टि-झर आस है।

मत्त। अभिनै = अभिनय, नाट्य। सोधौ = खोज भी। कनावड़े = दुर्बल। [१२७] सलत = घुसते हैं। तूल = रुई। हरुवौ = हल्का। [१२८] सिराए = शीतल हुए। परेखो = पछतावा। बिधि० = भाल में ब्रह्मा के लिखे अक्षर। [१२९] बंदि = तू वंदना कर। झर = झड़ी। कीरति के० = कीर्ति (राधिका की

जगत मैं जोति एक कीरति की होति है पै,
राधिका तौ कीरति के कुल को प्रकास है ॥ १२९ ॥

सवैया

फल होत दियैं सम कै अधिकै वरनैं कवि-कोविद यौं सब ही ।
बिपरीत लखी यह रीति अहो, परतीति-गही मति मोह बही ।
उत कौं घनआनँद गौं है यही, इत की जु सुजान बनी सु सही ।
दुख दै सुख पावत हौ तुम तौ चित के अरपे हम चिंत लही ॥१३०॥
नैन कहैं सुनि रे मन ! कान दै क्यौं इतनो गुन मेटि दयौ है ।
सुंदर प्यारे सुजान को मंदिर बावरे तू हम ही तैं भयौ है ।
लाभी तिन्हैं तनकौ न दिखावत ऐसो महामद छाकि गयौ है ।
कीजियै जू घनआनँद आय कै पाय परौं यह न्याय नयौ है ॥१३१॥
नाच लटू ह्वै लग्यौ फिरै पायनि चायनि चाहि लड़ीलियै डोलनि ।
त्यौं सुर-साँच-सवाद सनैं मन भूठियै लागति बीन की बोलनि ।
नेकु हँसैं सु करोरिक चंदनि चेरो करै दुति-दंत-अमोलनि ।
ऐसी सुजान लखैं घनआनँद नैन परैं रस-मैन-कलोलनि ॥१३२॥
मादिक रूप रसीले सुजान को पान कियैं छिनकौ न छकै को ।
भूल कौं सौंपि तबै जु सबै सुधि काहू की कानि कनौड़त कै को ।
प्राननि वारि निवारि कै लाजहि ऐसा बनै बिन काज, सकै को ।
बावरे लोगन सौं घनआनँद रीझनि भीजि कै खीजि वकै को ॥१३३॥
जान प्रबीन के हाथ को बीन है मो चित-राग-भर्यौ नित राजै ।
सो सुर साँच कहूँ नहिं छाड़त ज्यौं ही बजावै लियैं मन बाजै ।
भावती मीड़ मरोर दियैं घनआनँद सौगुने रंग सौं गाजै ।
प्यार सौं तार सु ऐंचि कै तोरत क्यौं, सुघराइयै लाजत लाजै ॥१३४॥

माता का नाम) के वंश को प्रकाशित करनेवाली । [१३०] सम० = बराबर या अधिक । [१३१] तनकौ० = उन्हें मन में ही छिपा रखा है । [१३२] लड़ीलियै = सुहानेवाली । [१३३] मादिक = मदिरा । न छकै० = कौन मत्त नहीं हो जाता । कानि कै को कनौड़त = मर्यादा का विचार करके कौन दबता है । सकै० = कौन सँभाल सकता है । [१३४] राग = प्रेम ; गान ।

कबित्त

पीरी परी देह छीनी राजत सनेह-भीनी,
कीनी है अनंग अंग अंग रंग-बोरी सी।
नैन पिचकारी ज्यौं चल्यौई करैं दिनरैन,
बगराए बारनि फिरति झकझोरी सी।
कहाँ लौं बखानौं घनआनँद दुहेली दसा,
फागमई भई जान प्यारे वह भोरी सी।
तिहारे निहारे बिन प्राननि करत होरा,
बिरह-अँगार निमगारि हिय होरी सी॥ १३५॥

ओप-चाह चाँचरि, चुहल चोख चंटकीली,
अटक निवारैं टारैं कुलकानि-कीचि कै।
घात लै अनूठी भैरैं चेतक* चितौन-मूठी,
धूँधरि चिलक-चौंध बीच† कौंध सौं टिकै।
भीजे घनआनँद सुजान के खिलार दृग,
नैंसिक निहारैं जिनकी निकाई पै बिकै।
रूप-अलबेली सु नवेली एरी तेरी आँखैं,
ताकि छाकि मारैं हुरिहाइँ न कहूँ छिकै॥ १३६॥

सुंदर सुजान प्रानप्यारे महा कोमल ह्वै,
दीन के हदै कौं दैया दुखान कहा दरौ।
सुजस-मयंक हौ पै लागत कलंक बड़ो,
बापुरे चकोर कौं जौ त्यागिबोई आदरौ।

सुघराइयै = चतुरता को। [१३५] दुहेली = कष्टमयी। होला = होरा, लपट में भुना अनाज का हरा पौदा। निमगारि = उत्पन्न करके। [१३६] चाँचरि = चर्चरी राग, होली का गान। चेतक = जादू भरी। धूँधरि = धुंध। चिलक = चमक दमक। हुरिहाइँ = होली खेलनेवाली। न छिकै = छिंकती नहीं। [१३७] ढोलै = निमित्त। निधि = समुद्र। गादरौ = शिथिल। मूँदि० = बादलों के हट

* वेतक। † बीज।

मेरे दोष देखौं तौ परेखो है अलेखो ए जू,
मीन ढोलै निधि कैसैं बूझियत गादरौ।
चातिक विचारो घनआनँद पुकार जानै,
मूँदि क्यौं सकत है बिदरि गएँ बादरौ ॥ १३७ ॥

सवैया

सोए हूँ अंगनि अंग समोए सु भोए अनंग कै रंग निस्यौं करि।
केलि-कला-रस-आरस-आसव-पान-छके घनआनँद यौं करि।
प्रेमनिसा मधि रागत पागत लागत अंगनि जागत ज्यौं करि।
ऐसे सुजान बिलास-निधान हौ सोएँ जगे कहि ब्योरियै क्यौं करि॥१३८॥
कहियै किहि भाँति दसा सजनी अति तानी कथा रसनाहि दहै।
अरु जौ हिय ही मधि घूँटि रहौं तौ दुखी जिय क्यौं करि ताहि सहै।
घनआनँद जान न कान करैं इत के हित की कित कोऊ कहै।
उत ऊतर-पायँ लगी मिहँदी सु कहा लगि धीरज हाथ रहै ॥१३९॥
कोऊ न देखै न काहू दिखावत आपनो आनन जान अमैंड़े।
बैठि सभा मधि न्यारे रहैं, पुनि रोकत चेटक लौं दृग-पैंड़े।
कौन पत्याय कहै घनआनँद हैं सब सूधे सयान सौं ऐंड़े।
रूप अनूपम को पुर दूरि, सु बावरे नैनन के मग बैंड़े ॥१४०॥
नैन किये अति आरति-ऐन सु रैनिदिना चित-चोप बिसेखै।
नीके सुधानिधि-रूप छक्यौ रचि आगि चुगै सब त्यागि परेखै।
जैसें सुजान लखें घनआनँद नेही न आन हियें अवरेखै।
ऐसें उजागर हैं जग मैं परि चंदहि एक चकोरहि देखै ॥१४१॥

जाने पर भी वह अपने नेत्र बंद न करेगा, उनके दर्शन के लोभ में खोले रहेगा या हट जानेवाले बादलों को नेत्रों में कब तक बंद किए रह सकता है। [१३८] निस्यौं करि = निश्चिंत होकर या स्यौं करि = काम के रंग से भींगे। सोएँ० = सोने में भी जगे रहते हैं। [१३९] ऊतर० = उत्तर के पैर में मेहँदी लगी है, उत्तर नहीं देते। [१४०] अमैंड़े = मर्यादा न माननेवाले। चेटक = जादू। बैंड़े = टेढ़े। [१४१] न अवरेखै = नहीं ले आता। उजागर = प्रकाशपिंड। [१४२]

कवित्त

नेही की बिलोकनि बिलोय सार साधि लेइ,
रूपौ रिझवार जानि काढ़ै गुन दब के।
चाड़ सिर चढ़त बढ़त अति लाड़िलो ह्वै,
कैसैं गनै बनै जेऽब ओटपाय तब के।
खेल अलबेले हिय्यो खूँदैं घनआनँद यौं,
जान प्यारे मतवारे भारे सुगरब के।
कहिबे कौं कोऊ किन देखौ न परेखौ, वे तौ
चाँदनी के चोर मोरपच्छ-अच्छ सब के ॥१४२॥

सवैया

साँवरे छैल की आछी अँगेट पै काम करोरिक वारियै जोहि कै।
नैननि बेधि रँगीले गुनै गसि माल रचै मन-मानिक पोहि कै।
दाय के चाय चुए भरि भाय सौं छाय रह्यौ घनआनँद सोहि कै।
नैसिक हेरियै मेरियै सौंह ढरारे सुजान यौं चेरियै मोहि कै ॥१४३॥
बिन बूझ असूझ बिरंचि रचे सपने हूँ न लागनि गैल गईं।
जिन बावरी रोग-बियोग-भरी रचि ये हम कौं तम-जोग दईं।
घनआनँद मीत सुजान लखैं अभिलाषनि लाखनि भाँति रईं।
मुख माधुरी-पान कौं आतुर पै अँखियाँ दुखियाँ कित भोरी भईं ॥१४४॥
चातुर ह्वै रस-आतुर होहु न बात सयान की जात क्यौं चूके।
ऐसी अठाननि ठानत हौ कित, धीर धरौ न, परौ जिन ढूके।

बिलोय = मथकर । चाड़ = उत्कंठा । ओटपाय = उपद्रव । परेखौ = फल । चाँदनी० = उजाले मैं चोरी कर लेनेवाले । मोरपच्छ० = सब के नेत्र मोरपंखों की सी आँखैं हो जाते हैं, बेकाम । [१४३] अँगेट = अंगदीप्ति । गुनै० = गुण-रूपी डोर से युक्त करके । दाय = दाँव । नैसिक = थोड़ा । सौंह = सामने । ढरारे = ढलनेवाले । [१४४] तम० = अंधकारमय । रईं = युक्त हुईं । [१४५] अठान = अकरणीय । परौ० = घात मत लगाओ। न छियौ = छूओ मत । उतू = एक औजार जिससे बेलबूटे बनाते हैं या चुनावट डालते हैं । उसके कोमल शरीर

देखि जियौं, न छियौं घनआनँद, कौंवरे अंग सुजान-बधू के।
चोली-चुनावट-चीन्हँ चुभैं चपि होत उजागर दाग* उतू के॥१४५॥

कवित्त

गाँसनि गसीले गरुवाई औ गरूर भरे,
जकरि पकरि और ओरनि तैं छोरी हौं।
मोहन महा ढरारे, सोहन मिठास भारे,
जोहन उररि पैठि बैठि उर भोरी हौं।
नेहनिधि लाड़िले नवेली रीति रावरी है,
तीर आएँ विरह-गहर लै झकोरी हौं।
नरिबो सुन्यौ हो गुन गहँ घनआनँद पै,
जान प्यारे गुननि तिहारे गहि बोरी हौं॥१४६॥

सवैया

चाह† अनोखी कहा कहियै सजि‡ बैठे सरै न करै कछु कीबो।
देखत देखत सूझि परै नहिँ बूझत बूझत बौरई लीबो।
एहो सुजान दुहेली दसा दुख हाथ लगे हू न छीजत छीबो+।
है घनआनँद साच महा मरिबो अनमीच बिना जिय जीबौ॥१४७॥

कवित्त

तेरी अनमाननि ही मेरे मन मानि रही,
लोचन निहारैं हेरि सौंहैं न निहारिबो।
कोरि कोरि आदर को करत निरादर है,
सुधा तें मधुर महा झुकि झिझकारिबो।
जीवन की ज्यारी घनआनँद सुजान प्यारी,
जीव जीति-लाहौ लहै तेरे हठि हारिबो।

पर चोली में बने उतू के दाग भी उभड़ आते हैं। [१४६] उररि = बरबस हृदय में धँसकर। गहर = गहराई। [१४७] बौरई = पागलपन। दुख० = छूने में दुःख मिलता है पर छूना कम नहीं होता, कष्ट पाकर भी मन उधर से नहीं मुड़ता। अनमीच = बिना मृत्यु के। [१४८] अन० = न मानना।

* होत। † बात। ‡ सुनि। + दीबो।

रूखी रूखी बातनि हूँ सरसै सनेह सुठि,
हिये तें टरै न ये अनखि कर टारिबो ॥१४८॥

सवैया

रूप छक्यौ तुम्हैं देखि सुजान थक्यौ तजि लाज-समाजन की दब।
मोहि लियौ हँसि हेरि छबीले कहीं अति प्यार-पगी बतियाँ जब।
सोच-बिचार के साज टरे घनआनँद रीझनि भीजि रच्यौ तब।
आस-भख्यौ गहि द्वार पर्‌यौ जिय या घर आय कै जाय कहाँ अब॥१४९॥

कवित्त

आरति के ऐन, द्यौसरैन राजैं नेही नैन,
चढ़े चोप छाजैं साजैं दीठि ईठि त्यौं अचूक।
पूरे पन-राचे छाकि पाकि चूरे मत काचे,
तचि साँच आँच के टरैं न टक तें कछूक।
रूप-उजियारे जान प्यारे हैं निहारे जिन,
भीजे घनआनँद कनौड़-पुंज लाय ऊक।
नेमी अंध हौंस मरैं चाहैं तिन रीस करैं,
ऐसैं अरबरैं ज्यौं चकोर होन कौं उलूक॥ १५० ॥

ललित लसौंहीं सु ढरौंहीं नेकु सौंहीं भएँ,
त्यौं ही रहि गई यौं ही डोलति न डीठि है।
हठ पटरानी प्रान पैठिबे कौं फिरि बैठै,
देखि बिन बोलनि मैं रस की बसीठि है।
सुख सनमान देति मुरि दीनैं कानैं मान,
जान प्यारी बिरचैं हूँ राचनि-मजीठि है।
मन दै मनाऊँ सो न पाऊँ घनआनँद पै,
मोहिं यौं विमन करै एरी तेरी पीठि है॥१५१॥

जीति० = जीत का लाभ । सुठि = उत्कृष्ट या अत्यंत । अनखि = झुँझलाकर । [१४९] दब = दबाव । [१५०] ईठि त्यौं = प्रिय की ओर । मत० = कच्चे मत (सिद्धांत)। कनौड़ = संकोच । ऊक = लुक । रीस = बराबरी । अरबरैं = हड़बड़ी मचाते हैं। [१५१] बसीठि = दूतत्व । बिरचैं० = विमुख होने पर भी

सवैया

मृदु मूरति लाड़-दुलार-भरी अँग अंग विराजति रंगमई।
घनआनँद जोवन-माती दसा छवि ताकत ही मति छाक छई।
वसि प्रान सलोनी सुजान रही चित पै हित-हेरनि-छाप दई।
वह रूप की रासि लखी तब तें सखी आँखिन कैं हरतार भई॥१५२॥

कबित्त

माधुरी गहर उठै लहर-लुनाई जहाँ,
कहाँ लौं अनूप रूप-पानिप बिचारियै।
आरसी जौं सम दीजै बूझौ कौं अरूझ कीजै,
आछे अंग हेरि फेरि आपौ न निहारियै।
मोहनी की खानि है सुभाय ही हँसनि जाकी,
लाड़िली लसनि ताकी प्राननि तें प्यारियै।
रीझौ रीझि भीजै घनआनँद सुजान महा,
वारियै कहा सकोच सोचन ही हारियै॥१५३॥

रसहि पिवाय प्यासे प्राननि जिवाय राखै,
लाज सौं लपेटी लसै उघरि हितौन की।
निपट नवेली नेह-झेली लाड़-अलबेली,
मोह-ढरहरी भरी बिरह-रितौन की।
लोने लोने कोने छ्वै छबीली अँखियानि के सु,
रंचकौ न चूकै घात औसर-बितौन की।
परी घनआनँद बरसि मेरी जान तेरी,
हियो सुख सींचै गति तिरछी चितौन की॥१५४॥

सोभा-बरसीली सुभ सील सौं लसीली,
सु रसीली हँसि हेरैं हरै बिरह-तपति है।

मजीठ का सा न मिटनेवाला राग (प्रेम; रंग) है। [१५२] छाक = नशा। हरतार = हठपूर्वक देखने का तार, सिलसिला, टकटकी। [१५३] गहर = गहराई, गहरी। पानिप = पानी; शोभा। [१५४] उघरि० = प्रेम का उद्घाटन।

अति ही सुजान प्रान पुंज-दान बोलनि मैं,
देखी पैज-पूरी प्रीति-नीति कौं थपति है।
जाके गुन बँधें मन छूटै और ठौरनि तें,
सहज मिठास लीजै स्वादनि-सँपति है।
पानिप अपार घनआनँद उकति ओछी,
जतन-जुगति जान्हि कौन पै नपति है ॥१५५॥
छाए परदेस जान प्यारे संग लै सँदेस,
मो मन अँदेस आली साँसनि रुँधै गरै।
मोरनि की कूकैं सुनि उठति हिये मैं हूकैं,
चूकैं नहीं चातिक करेजो काढ़िबे अरै।
दामिनी की कौंध लखि चौंधनि भरत चख,
अंग अंग सीरियौ समीर परसैं जरै।
घेरि घूँटि मारै चहूँघा तें घनआनँद यौं,
बादर अडंबरनि डावाँडोल ज्यौं करै ॥१५६॥
जान प्यारे नागर अनूप गुन-आगर हौ,
जगत-उजागर बिलास-रसमसे हौ।
नवल-सनेह-साने आरसनि सरसाने,
बिधिना बनाय बाने अंग अंग लसे हौ।
छबि-निखरे ह्वै खरे नीकेई लगत मोहिं,
आनँद के घन गूढ़ गाँसनि सौं गसे हौ।
भोर भएँ आए भाँति भाँति मेरे मन भाए,
एहो घरबसे आज कौन घर बसे हौ ॥१५७॥

भरी० = विरह दूर करने में लगी हुई। लोने = सुंदर। औसर० = अवसर को ठीक ठीक बिताने की घात। [१५५] सील = शिष्टता; आर्द्रता। स्वादनि० = स्वादों का ऐश्वर्य। पानिप = पानी; शोभा। उकति० = उक्ति के छोटे आकार में उसके अपार सौंदर्य को भर सकना असंभव है। [१५६] हूकैं = पीड़ाएँ। करेजो० = कलेजा निकालने पर अड़े हुए। अडंबर = बादल में सूर्यकिरणों से ललाई छाना। [१५७] रसमसे = रस में मग्न। घरबसे = उपपति (बन जाने-

तिन हूँ तैं हरई भई है गुरुजन आगैं,
पुरजन-पुंज मैं कहानी सी धौं कौन काज।
तो हित बोहित जानि मोहित विहंग मन,
आसा-गुन बँध्यौ हेरि नेह को सरितराज।
कीजै कहा ऐसी अब अति ही अनैसी बात,
हाहा घनआनँद अमैड़ने के सिरताज।
सुंदर सुजान ह्वै सुहाई पै न आई तोहि,
एहो निरमोही नेकौ लाज हू तजैं की लाज ॥१५८॥

सवैया

प्रान परे निरमोही के पानि सु जानि परै वाकी नाहीँ न हाँ है।
कै अपने सपने हूँ न सोचत, मो चित ऊखिल ही लौं तहाँ है।
ये मड़रात तऊ घनआनँद जीवानमूरति जान जहाँ है।
हाय दई न बसाय बिसासी सौं ठौर-रहेन कौं ठौर कहाँ है ॥१५९॥
जान सजीवन-प्रान लखैं बिन आतुर आँखिन आवत आधे।
लोग चवाई सबै निरदै अति बान से बैन अयान सौं साधे।
को समझै मन की घनआनँद औरई बेदन बौरई नाधे।
पीर-भर्यौ जिय धीर धरै नहिँ कैसैं रहै जल जाल के बाँधे ॥१६०॥

कबित्त

रूप-गुन-आगरि नवेली नेह-नागरि तू,
रचना अनूपम बनाई कौन बिधि है।
चलनि चितौनि बंक भौंहनि चपल हौनि,
बोलनि रसाल मैन-मंत्र हू कौं सिधि है।

वाले)। [१५८] हरई = हलकापन। हित = अपनाव। बोहित = जहाज। मोहित = मुग्ध। सरितराज = समुद्र। अमैड़ = मर्यादा को न माननेवाला। [१५९] पानि० = हाथ मैं, वश मैं। कै० = अपने वश मैं करके या अपने किए को। ऊखिल = अपरिचित, अजनबी। [१६०] आधे = आधे होकर। चवाई = बदनामी करनेवाले। बौरई० = पागलपन ने ठान रखी है (विलक्षण वेदना)। [१६१] बिधि = ब्रह्मा; रीति। सिधि = ऋद्धि; ऐश्वर्य। निधि = खजाना।

अंग अंग केलि-कला-संपति-बिलास घन-
आनँद उज्यारी-मुख सुख-रंग-रिधि है।
जब जब देखियै नई सी पुनि पेखियै यौं,
जानि परी जान प्यारी निकाई की निधि है ॥१६१॥

अघट घटाई झ्यौ निपट निघरघट,
मो घट क्यौं रावरी बड़ाई लौं निपटिहै।
नीके करि देखौ न परेखो उर आनौ, मानौ,
जान प्यारे पूरी पैज हाहा कैसें हटिहै।
दानी सनमानी दीन-दारिद-दलन ह्वै कै,
अति ही अचंभो* जौ कचाई-तन डटिहै।
जियैगौ पियैगौ रस कोऊ† दुखी चातिक तौ,
आनँद के घन को कहौ धौं कहा घटिहै ॥१६२॥

आँखें जौ न देखें तौ कहा हैं कछु देखति ये,
ऐसी दुखहाइनि की दसा आय देखियै।
प्रानन के प्यारे जान रूप-उजियारे, बिना
मिलन तिहारे इन्हैं कौन लेखें लेखियै।
नीर-न्यारे मीन औ चकोर चंदहीन हूँ तें,
अति ही अधीन दीन गति मति पेखियै।
हौ जू घनआनँद ढरारे रसभरे भारे,
चातिक बिचारे सौं न चूकनि परेखियै ॥१६३॥

जान प्यारे जहाँ हौ तहाँ हैं मेरे प्रान संग,
जीवो कछू भ्रम ही सो मानि लीजियत है।
सुनिबो देखिबो स्वाद आदि दै धरम जेते,
सपने मैं होत जो बिचार कीजियत है।

---

[१६२] अघट० = न घटनेवाली तुच्छता से युक्त। निघरघट = ढीठ। परेखो = खेद। तन = ओर। [१६३] न चूकनि० = चूक मैं डालकर परीक्षा मत लीजिए अथवा चातक की भूलों का बुरा न मानिए। [१६४] जीवो० = अपने

* दीन दासन पै आनि दया हियहु लगौ। † जित तित लागी एक तेरी आस।

रावरे सनेह यौं अदेह कीनी लीनी जीति,
आनँद के घन पै अचंभे भीजियत है।
जाकी गति मति औ सुरति सब हारियै जू,
ताहि कहौ कैसँ धौं बिसारि दीजियत है ॥१६४॥

सहज-उज्यारी रूप-जगमगी जान प्यारी,
रति पै रतीक आभा है न रोम-रीस की।
चीकने चिहुर नीके आनन बिथुरि रहे,
कहा कहौं सोभा सुभ-भरे भाल सीस की।
बीच बीच मंजुल मरीचि-रुचि फैलि फबी,
केलि-समै उपमा लसति बिसे-बीस की।
मानौ घनआनँद सिँगार-रस सौं सँवारी,
चिक मैं बिलोकति बहनि रजनीस की ॥१६५॥

मीत मनभावन रिझावन कौं जान प्यारी,
आई घनआनँद घमड़ि आछी बनि है।
मंजन कै अंजन दै भूषन-बसन साजि,
राजि रही भृकुटी जुटौंही बंक तनि है।
अंग अंग नूतन निकाई-उझलनि छाई,
भौन भरि चली सोभा नदी लौं उफनि है।
देखनि दुलार-भोई बोलनि सुधा-समोई,
मुख को सुबास स्वास निसरति सनि है ॥१६६॥

सवैया

भावते के रस-रूपहि सोधि ल, नीकैं भस्यौ उर कै कजरौटी।
रोमहि रोम सुजान बिराजत सोचि तचै मति की मति औटी।

जीने को भ्रम समझती हूँ, मेरे जीवन तो आप हैं। धरम = शरीर के धर्म। अदेह = देहाध्यास शून्य। [१६५] रीस = बराबरी। चिहुर = चिकुर, केश। [१६६] घमड़ि = घिराव, सजाव। मंजन = मार्जन, स्नान। उझलनि = वृष्टि। [१६७] कजरौटी = कज्जली रखने का पात्र।

प्रेम बली न करै सु कहा, घनआनँद नेम-गली-गति लौटी।
मीत मराल सरोवर तो मन, तैँ पिय को हिय कीनौ कसौटी ॥१६७॥

कबित्त

असा-गुन बाँधि कै भरोसो-सिल धरि छाती,
पूरे पन-सिंधु मैँ न बूड़त सकायहौँ।
दुख-दव हिय जारि अंतर-उदेग-आँच,
रोम रोम त्रासनि निरंतर तचायहौँ।
लाख लाख भाँतिन की दुसह दसानि जानि,
साहस सहारि सिर आरे लौँ चलायहौँ।
ऐसैँ घनआनँद गही है टेक मन माहिँ,
एरे निरदई तोहि दया उपजायहौँ ॥१६८॥

सवैया

अंतर-आँच उसास तचै अति, अंग उसीजै उदेग की आवस।
ज्यौं कहलाय मसोसनि ऊमस क्यौँ हूँ कहूँ सु धरै नहीँ थ्यावस।
नैनउ धारि दियैं* बरसैँ घनआनँद छाई अनोखियै पावस।
जीवनिमूरति जान को आनन है बिन हेरैँ सदाई अमावस ॥१६९॥
जान के रूप लुभाय कै नैननि बेंचि करी अधबीच ही लौँड़ी।
फैलि गई घर बाहिर बात सु नीकैँ भई इन काज कनौँड़ी।
क्यौँ करि थाह लहै घनआनँद चाह-नदी तट ही अति औँड़ी।
हाय दई न बिसासी सुनै कछु, है जग बाजति नेह की डौँड़ी ॥१७०॥

दोहा

जानराय ! जानत सबै, अंतरगत की बात।
क्यौँ अजान लौँ करत फिरि, मो घायल पर घात ॥१७१॥

[१६८] न सकायहौँ = न डरूँगा। [१६९] आवस = औँस, भाप। कहलाय = गरमी से व्याकुल होता है। थ्यावस = स्थिरता, धैर्य। [१७०] कनौँड़ी = दबैल, बदनाम। औँड़ी = गहरी। डौँड़ी = डुग्गी। [१७१] अंतरगत = मन।

* नैन उघारि हिये ।

सवैया

आनन की सुथराई* कहा कहौं जैसी बिराजति है जिहि औसर।
चंद तौ मंद मलीन सरोरुह एक हू रंग न दीजियै जौ सर।
नैन अन्यारे तिरींछी चितौनि मैं हेरि गिरै रतिप्रीतम कौ सर।
जान हियें घनआनँद सौं हँसि फैलि फदै सु चँबेली की चौसर॥१७२॥
घूँघट काढ़ि जौ लाज सकेलति लाजहि लाजति है बिन काजनि।
नैननि बैननि मैं तिहि ऐन सु होत कहाऽब सजे पट-साजनि।
सील की मूरति जान रची बिधि तोहि अचंभे-भरी छबि-छाजनि।
देखत देखत दीसि परै नहिं यौं बरसै घनआनँद लाजनि॥१७३॥
लाड़-लसी लहकै महकै अँग रूपलता लगि दीठि-झकोरै।
हास-बिलास-भरे रसकंद सु आनन त्यौं चख होत चकोरै।
मौन भली कहि कौन सकै घनआनँद जान सु नाक सकोरै।
रीझ बिलोएई डारति है हिय, मोहति टोहति प्यारी अकोरै॥१७४॥

कवित्त

रूप-गुन-पैंठी सु अमैठी उर पैठी बैठी,
लाड़नि निरैठी, मति बोलनि हरैं हरी।
जोबन-गहेली अलबेली अति ही नवेली,
हेली ह्वै सुरति बौरी आँचर टरैं टरी।
परम सुजान भोरी बातनि छकाए प्रान,
भावति न आन वेई हियरा अरैं अरी।
फंद सी हँसनि घनआनँद दृगनि गरैं,
मुख सुखकंद मंद उघरि परैं परी॥१७५॥

---

[१७२] सुथराई = बनावट की सफाई। सर = समता। रति = काम का बाण। चौसर = चार लड़ी की माला। [१७३] सकेलति = समेटती है। ऐन = वर। छाजनि = लावा; लज्जा। [१७४] लहकै = हिलती है। टोहति = टटोलती है। अकोरै = आलिंगन (की मुद्रा)। [१७५] निरैठी = मस्त। हरैं = धीरे से।

* सुघराई।

सवैया

लै ही रहे हौ सदा मन और को दैबो न जानत जान दुलारे।
देख्यौ न है सपने हूँ कहूँ दुख, त्यागे सकोच औ सोच सुखारे।
कैसो सँजोग बियोग धौं आहि! फिरौ घनआनँद ह्वै मतवारे।
मो गति बूझि परै तब ही जब होहु घरीक हू आप तें न्यारे ॥१७६॥

खोय दई बुधि, सोय गई सुधि, रोय हँसै उनमाद जग्यौ है।
मौन गहै, चकि चाकि रहै, चलि बात कहै तन* दाह दग्यौ है।
जानि परै नहिं जान! तुम्हैं लखि ताहि कहा कछु आहि खग्यौ है।
सोचनि ही पचियै घनआनँद हेत पग्यौ किधौं प्रेत लग्यौ है ॥१७७॥

कवित्त

घेर-घबरानी उबरानी ही रहति घन-
आनँद आरति-राती साधनि मरति हैं।
जीवनअधार जान-रूप के अधार बिन,
व्याकुल बिकार-भरी खरी सु जरति हैं।
अतन-जतन तें अनखि अरसानी बीर,
प्यारी पीर-भीर क्यौं हूँ धीर न धरति हैं।
देखियै दसा असाध अँखियाँ निपेटिनि की,
भसमी बिथा पै नित लंघन करति हैं ॥१७८॥

चारु चामीकर चंद चपला चंपक चोखी,
केसरि-चटक कौन लेखैं लेखियति है।
उपमा बिचारी न बिचारी, नहिं जान प्यारी,
रूप की निकाई औरैं अवरेखियति है।
सरस-सनेह-सानी राजति रवाँनी दसा,
तरुनाई-तेज-अरुनाई पेखियति है।

[१७६] धौं = न जाने। [१७७] आहि० = लगा हुआ है। [१७८] अतन = कामोपचार से। निपेटिनि = पेटू। भसमी० = भस्म करनेवाली पीड़ा; भस्मक रोग, जिसके होने से खाया हुआ शीघ्र पच जाता है और चाहे जितना खाया जाय तृप्ति नहीं होती। [१७९] चामीकर = सोना। चटक = रंग।

* तैं न।

मंडित अखंड घनआनँद उजास लियेँ,
तेरे तन दीपति दिवारी देखियति है ॥१७६॥

सवैया

रूप-खिलार दिवारी कियेँ नित जोबन छाकि न सूधे निहारै।
नैननि सैन छलै चित सो चित-चाव भस्यौ निज दाव बिचारै।
जीति ही को चसको घनआनँद चेटक जान सयान बिसारै।
जीव बिचारो पस्यौ अति सोचनि हारि रह्यौ सु कहा फिरि हारै ॥१८०॥

कबित्त

बिकच नलिन-लखैं सकुचि मलिन होति,
ऐसी कछू आँखिन अनोखी उरझनि है।
सौरभ-समीर आएँ बहकि दहकि जाय,
राग-भरे हिय मैं बिराग-मुरझनि है।
जहाँ जानप्यारी-रूप-गुन को न दीप लहै,
तहाँ मेरे ज्यौ परै बिषाद-गुरझनि है।
हाय अटपटी दसा निपट चटपटी सौं,
क्यौं हूँ घनआनँद न सूझै सुरझनि है ॥१८१॥

तब ह्वै सहाय हाय कैसैं धौं सुहाई ऐसी,
सब सुख संग लै बिछोह-दुख दै चले।
सींचे रस-रंग अंग-अंगनि अनंग सौंपि,
अंतर मैं बिषम बिषाद-बेलि बै चले।
क्यौं धौं ये निगोड़े प्रान जान घनआनँद के
गौहन न लागे जब वे करि बिजै चले।

अवरेखियति० = ठहराई जाती है। रवाँनी = (रमानी) रमानेवाली अथवा (रवानी) तेजी। [१८०] चित = कौड़ी का चित पड़ना। चेकट = जादू। हारि० = मुग्ध हो रहा है। [१८१] बिकच = खिला हुआ। बिराग = उदासी की मुरझाहट। रूप = सौंदर्य; चाँदी। गुन = गुण; बत्ती। गुरझनि = गाँठ। चटपटी = वेग। [१८२] बै = बोकर। गौहन = साथ। हेली = क्रीड़ाशील

अति ही अधीर भई पीर-भीर घेरि लई,
हेली मनभावन अकेली मोहिं कै चले ॥१८२॥

रोम रोम रसना ह्वै लहै जौ गिरा के गुन,
तऊ जान प्यारी! निबरैं न मैन-आरतैं।
ऐसे दिनदीन पै दया न आई दई तोहि,
बिष-भोयौ, बिषम बियोग-सर मारतैं।
दरस-सुरस-प्यास भाँवरे भरत रहौं,
फेरियै निरास मोहिं क्यौं धौं यौंऽब द्वार तैं।
जीवनअधार घनआँनँद उदार महा,
कैसैं अनसुनी करी चातिक-पुकार तैं ॥१८३॥

सवैया

पानिप-पूरी खरी निखरी, रस-रासि-निकाई की नीवँहि रोपैं।
लाज-लड़ी बड़ी सील-गसीली सुभाय हँसीली चितै चित लोपैं।
अंजन-अंजित-श्री घनआँनँद मंजु महा उपमानि हूँ ओपैं।
तेरी सौं एरी सुजान तो आँखिन देखि ये आँखि न आवति मो पैं ॥१८४॥

कवित्त

कंठ-काँच-घटी तें बचन चोखो आसव लै,
अधर पियालैं पूरि राखति सहेत है।
रूप-मतवारी घनआँनँद सुजान प्यारी,
काननि ह्वै प्राननि पिवाय पीवै चेत है।
छकेई रहत रैनिद्यौस प्रेम-प्यास-आस,
कीनी नेम-धरम-कहानी उपनेत है।
ऐसे रस-बस क्यौं न सोव और स्वाद कहौ,
रोम रोम जाग्योई करत मीनकेत है ॥१८५॥

या हे अली। [१८३] मैन० = काम-लालसाएँ। दिनदीन = दिनदिन दीन
[१८४] पानिप = शोभा, पानी। श्री = शोभा। ओपैं = चमकाती हैं।
[१८५] आसव = शराब। उपनेत = उत्पन्न। मीनकेत = कामदेव।

चातिक चुहल चहुँ ओर चाहै स्वाति ही कौं,
सूरे पन-पूरे जिन्हैं विष सम अमी है।
प्रफुलित होत भान के उदोत कंज-पुंज,
ता बिन बिचारनि ही जोति-जाल तमी है।
चाहौ अनचाहौ जान प्यारे पै अनंदघन,
प्रीति-रीति विषम सु रोम रोम रमी है।
मोहिं तुम एक, तुम्हैं मो सम अनेक आहिं,
कहा कछू चंदहिं चकोरन की कमी है ॥१८६॥

रिसभरी भोरिबे कौं देखी सुनी प्रीति-नीति,
नायक रसीलो बिनै बिनती महा करै।
चोप चाय दायनि सौं अमित उपायनि सौं
ज्यौं ही बनै त्यौं ही लगि प्रापति लहा करै।
मीन जलहीन लौं अधीन ह्वै अनंदघन,
जान प्यारी पायनि पै कब को हहा करै।
दई नई टेक तोहि टारैं न टरति नेकौ,
हार्‌यौ सब भाँति जो बिचारो सो कहा करै ॥१८७॥

सवैया

जीवन हौ जिय को सब जानत जान! कहा कहि बात जतैयै।
जो कछु है सुख संपति सौंज सु नैसिक हौ हँसि दैन मैं पैयै।
आनँद के घन! लागै अचंभो पपीहा-पुकार तें क्यौं अरसैयै।
प्रीतिपगी अँखियानि दिखाय कै हाय अनीति सु दीठि छिपैयै ॥१८८॥

कबित्त

चोप चाह चावनि चकोर भयौ चाहत ही,
सुषमा-प्रकास मुख-सुधाधर पूरे को।
कहा कहौं कौन कौन बिधि की बँधनि बँध्यौ,
सुकस्यौ न उकस्यौ बनाव लखि जूरे को।

---

[१८६] अमी = अमृत। तमी = रात्रि। [१८७] दाय = दावँ। लहा = लाभ।
[१८८] सौंज = सामग्री। नैसिक = थोड़ा। [१८९] सुकस्यौ = भली भाँति

जाही जाही अंग पर्‌यौ ताही गरि गरि सर्‌यौ,
हर्‌यौ बल बापुरे अनंग-दल-चूरे को।
अब बिन देखेँ जान प्यारे यौँ अनंदघन,
मेरो मन भँवै भटू! पात ह्वै बघूरे को ॥१८९॥

दोहा

मोही मोह जगाय कै, अहे अमोही! जोहि।
सो ही मोही सौँ कठिन, क्यौँ करि सोही तोहि ॥१९०॥

सवैया

उर-भौन मैँ मौन को घूँघट कै दुरि बैठो बिराजति बात-बनी।
मृदु मंजु पदारथ भूषन सौँ सु लसै हुलसै रस-रूप-मनी।
रसना-अली कान गली मधि ह्वै पधरावति लै चित-सेज ठनी।
घनआनँद बूझनि-अंक बसै बिलसै रिझवार सुजान-धनी ॥१९१॥

कबित्त

याहि आएँ आवन की आसा उर आय बसै,
चाहै निरबाहै नित हित-कुसरात कौँ।
है री वह बैरी घैरी उघर्‌यौ बिगोवनि पैं,
ओछो जरि गयौ गोवै कहा भेद-बात कौँ।
मधुर सरूप याहि देखियै अनंदघन,
पोखै जानप्यारे-संग रंग-मनजात कौँ।
साँझ सही साथिनि सँजोगहि सजाय देति,
लाग्यौ रहै गोहन ही प्रात प्रान-घात कौँ ॥१९२॥

कस गया। गरि० = गलकर चुक गया या गड़ गड़कर तब निकला। बघूरे = बवंडर। [१९०] मोही = मोहित किया। जोहि = देखकर। सो ही = वह तेरा प्रेमप्रदर्शक हृदय। मोही = मुझसे कठोर हो गया। सोही = यह बात तुझे कैसे फबती है। [१९१] बनी = दुलहिन। पदारथ = रत्न; पद का अर्थ। बूझनि = बुद्धि, मति। [१९२] कुसरात = कुशल। घैरी = बदनामी करने योग्य। बिगोवनि = नष्ट करने के लिए। मनजात = काम। सही = सचमुच,

बिष लै बिसार्‌यौ तन, कै बिसारी अपचार्‌यौ*,
जान्यौ हुतौ मन ! तैं सनेह कछु खेल सो।
अब ताकी ज्वाल मैं पजरिबो रे भली भाँति,
नीकैं आहि, असह-उद्वेग-दुख सेल सो।
गए उड़ि तुरत पखेरू लौं सकल सुख,
पर्‌यौ आय औंचक बियोग बैरी डेल सो।
रुचि ही के राजा जान प्यारे यौं अनंदघन,
होत कहा हेरैं रंक ! मानि लीनौ मेल सो ॥१९३॥

सूझै नहीं सुरझ उरझि नेह-गुरझनि,
मुरझि मुरझि निसिदिन डाँवाँडोल है।
आह की न थाह दैया कठिन भयौ निबाह,
चाह के प्रबाह घेर्‌यौ दारुन कलोल है।
वे तौ जान प्यारे निधरक हैं अनंदघन,
तिनकी धौं गूढ़ गति मूढ़मति को लहै।
आगैं न बिचार्‌यौ अब पाछैं पछताएँ कहा,
मान मेरे जियरा बनी को कैसो मोल है ॥१९४॥

अंतर उद्वेग-दाह, आँखिन प्रबाह-आँसू,
देखी अटपटी चाह भीजनि दहनि है।
सोयबो न जागिबो हो, हँसिबो न रोयबो हू,
खोय खोय आप ही मैं चेटक-लहनि है।
जान प्यारे प्राननि बसत पै अनंदघन,
बिरह-बिषम-दसा मूक लौं कहनि है।
जीवन मरन, जीव मीच बिना बन्यौ आय,
हाय कौन बिधि रची नेही की रहनि है ॥१९५॥

ठीक। [१९३] बिसार्‌यौ = भूल गए; बिषाक्त बनाया। अपचार्‌यौ = मनमानी। सेल = बरछी। डेल = ढेला। [१९४] आह की = 'आह' करने की; अपने मान की, हियाव की। बनी = वणिज। [१९५] चेटक = जादू।

* आप चाह्यो।

डगमगी डगनि-धरनि छबि ही के भार,
ढरनि छबीले उर आछी वनमाल की।
सुंदर वदन पर कोरिक मदन वारौं,
चित चुभी चितवनि लोचन बिसाल की।
काल्हि इहि गली अली निकस्यौ अचानक ह्वै,
कहा कहौं अटक भटक तिहि काल की।
भिजई हौं रोम रोम आनँद के घन छाय,
बसी मेरी आँखिन मैं आवनि गुपाल की ॥१९६॥

सवैया

नेहनिधान सुजान-समीप तौ सींचति ही हियरा सियराई।
सोई किधौं अब और भई, दई हेरत ही मति जाति हिराई।
है बिपरीति महा घनआनँद अंबर तैं धर कौं झर आई।
जारति अंग अनंग की आँचनि जोन्ह नहीं सु नई अगिलाई ॥१९७॥

कवित्त

चाहत ही रीझि लालसानि भीजि सुख सीझि,
अंग-अंग-रंग-संग भाव भरि भ्वै गईं।
रैनिद्यौस जागैं ऐसी लगीं जु कहूँ न लागैं,
पन अनुरागैं पागैं चंचलता च्वै गईं।
हित की कनौड़ी लौंड़ी भईं ये अनंदघन,
फिरैं क्यौं पिछौंड़ी नेह-मग डग द्वै गईं।
माधुरी-निधान प्रान-प्यारी जान प्यारी तेरो,
रूप-रस चाखैं आँखैं मधुमाखी ह्वै गईं ॥१९८॥
आँखैं रूप-रस चाखैं चाहैं उर संचि राखैं,
लोभ-लागी लाखैं अभिलाखैं निबरैं नहीं।
तोहि जैसी भाँति लसै, बरनिबो मन बसै,
बानी गुन गसै, मति-गति बिथकै तहीं।

---

[१९६] ढरनि = हिलना। बनमाला = लंबी माला। [१९७] ही = थी। झर = ज्वाला अगिलाई = अग्निदाह। [१९८] चाहत = देखते ही। कनौड़ीं = दबैल।

जान प्यारी सुधि हूँ अपुनपौ विसरि जाय,
　　माधुरी-निधान तेरी नैसिक मुहाचहीं।
क्यौं करि अनंदघन लहियै सँजोग सुख,
　　लालसानि भीजि रीझि वातैं न परैं कहीं ॥१९९॥

जो कछू निहारैं नैन, कैसैं सो बखानैं बैन,
　　विना देखी कहैं तौ कहा लिन्हैं प्रतीति है।
रूप के सवाद-भीनै बापुरे अबोल कीनै,
　　बिधि बुधिहीनै की अनैसी यह रीति है।
सुख दुख साखी मिलैं बिछुरैं अनंदघन,
　　जान प्रानप्यारे सौं नवेली इन्हैं प्रीति है।
औरहि न चाहैं पन पूरो नित लै निबाहैं,
　　हारैं हँसि आपौ, जीति मानैं नेह-नीति है ॥२००॥

सवैया

चंद चकोर की चाह करै, घनआनँद स्वाति पपीहा कौं धावै।
त्यौं त्रसरैनि के ऐन बसै रबि, मीन पै दीन ह्वै सागर आवै।
मोसौं तुम्हैं सुनौ जान कृपानिधि! नेह निवाहिबो यौं छबि पावै।
ज्यौं अपनी रुचि राचि कुबेर सु रंकहि लै निज अंक बसावै ॥२०१॥

ज्यौं बुधि सौं सुघराई रचै कोऊ, सारदा कौं कविताई सिखावै।
मूरतिवंत महालछमी-उर पोत-हरा रचि लै पहिरावै।
रागवधू-चित-चोरन के हित सोधि सुधारि कै तानहिं गावै।
त्यौं ही सुजान तियै घनआनँद मो जिय बौरई-रीति रिझावै ॥२०२॥

कवित्त

नैनन मैं लागै जाय, जागै सु करेजे बीच,
　　या बस ह्वै जीव धीर होत लोटपोट है।

---

[१९९] निबरैं० = समाप्त नहीं होतीं। मुहाचहीं = मुख का देखना, दर्शन।
[२००] सुख = संयोग और वियोग के साची क्रमशः सुख और दुःख ही हैं।
[२०१] त्रसरैनि = त्रसरेणु, धूलिकण; पुराणों मैं यह सूर्य की पत्नी है। ऐन = अयन, घर। [२०२] बुधि = बुद्धि की अधिष्ठात्री। सुघराई = चतुरता। पोत = काँच

रोम रोम पूरि पीर, ब्याकुल सरीर महा,
घूमै मति गति-आसं, प्यास की न टोट है।
चलत सजीवन - सुजान - दृग - हाथन तें,
प्यारी अनियारी रुचि रखवारी ओट है।
जब जब आवै, तब तब अति मन भावै,
अहा कहा विषम कटाच्छ-सर-चोट है ॥२०३॥
सीस लाय, दृग छाय, हिये पै बसाय राखौं,
इते मान मान आवै प्राननि मैं लै धरौं।
हेरि हेरि चूमि चूमि सोभा छकि घूमि घूमि,
परसि कपोलनि सौं मंजन कियौ करौं।
केलि-कला-कंदिर बिलास-निधि-मंदिर ये,
इन ही के बल हौं मनोज-सिंधु कौं तरौं।
यातैं घनआनँद सुजान प्यारी रीझि भीजि,
उमगि उमगि बेर बेर तेरे पा परौं ॥२०४॥
पाती-मधि छाती-छत लिखि न लिखाए जाहिं,
काती लै बिरह घाती कीने जैसे हाल हैं।
आँगुरी बहकि तहाँ पाँगुरी किलकि होति,
ताती राती दसनि के जाल ज्वाल-माल हैं।
जान प्यारे जौऽब कहूँ दीजियै सँदेसो तौऽब,
अवा सम कीजियै जु कान तिहि काल हैं।
नेह-भीजी बातैं रसना पै उर-आँच लागैं,
जागैं घनआनँद ज्यौं पुंजनि-मसाल हैं ॥२०५॥

सवैया

कंत रमैं उर-अंतर मैं सु लहै नहीं क्यौं सुख-रासि निरंतर।
दंत रहैं गहैं आँगुरी ते जु बियोग के तेह तचे परतंतर।

की गुरिया। बौरई० = पागलपने का ढंग। [२०३] गति० = मार्ग पाने की आशा से। टोट = (त्रुटि) कमी। रुचि = कांति। [२०४] इते० = इतनी अधिक श्रद्धा उमड़ती है। केलि० = क्रीड़ा की माधुरी से भरे। [२०५] पाँगुरी = पंगु।

जो दुख देखति हौं घनआनँद रैन-दिना बिन जान सुतंतर।
जानैं वेई दिन-राति, बखानैं तैं जाय परै दिन-राति को अंतर ॥२०६॥

कवित्त

रसिक-सिरोमनि सुजान सुधानिधि हू की,
रसना रसैबे कौं रसीली सुखधाम है।
जीवन बरसिबे अनंदघन आपुन मैं,
चातिक तैं कोटिगुनी जक आठो जाम है।
आरति परोई सोई जानै न बखानैं बनै,
देखैं दसा औरै बिसरत बिसराम है।
साधा तन हेरियै निबेरियै सु बाधा बारि,
प्राननि अधार तिन्हैं राधा राधा नाम है ॥२०७॥

हिये मैं जु आरति सु जारति उजारति है,
मारति मरोरैं जिय डारति कहा करौं।
रसना पुकारि कै बिचारी पचि हारि रहै,
कहै कैसैं अकह, उदेग रुँधि कै मरौं।
हाय कौन बेदनि बिरंचि मेरे बाँट कीनी,
निघटि परौं न क्यौं हूँ, ऐसी बिधि हौं गरौं।
आनँद के घन हौ सजीवन सुजान देखौ,
सीरी परि सोचनि, अचंभे सौं जरौं भरौं ॥२०८॥

मुख देखैं गोहन लगेई फिरैं भौंर-भौंर,
छूटे बार हेरि कै पपीहा-पुंज छावहीं।

राती = अनुरागमयी, लाल। दसा = विरहावस्था ; बत्ती। नेह = प्रेम ; तेल। बातैं = बातें ; बत्तियाँ [२०६] तेह = तीखापन, आँच। परतंतर = अधीन होकर। जाय० = दिन और रात का सा भेद पड़ जाता है। अनुभव और कथन की स्थितियों में इतना अंतर पड़ जाता है कि दोनों विपरीत सी लगने लगती हैं। [२०७] रसैबे = रसमय करने के लिए। साधा = साध, उत्कंठा। [२०८] निघटि० = गलती तो हूँ पर समाप्त नहीं हो जाती। भरौं = दिन काटती हूँ।

गति-रीझे चायनि सौं पायन-परस-काजै,
रसलोभी विवस मराल-जाल धावहीं।
यातैं मन होय प्रान-संपुट मैं गोय राखौं,
ऐसैं हूँ निगोड़े नैन कैसैं चैन पावहीं।
सींचियै अनंदघन जान प्यारी जैसैं जानौ,
दुसह दसा की बातैं वरनी न आवहीं ॥२०६॥

अंग-अंग-आभा-संग द्रवित स्रवित ह्वै कै,
रचि सचि लीनी सौंज रंगनि घनेरे की।
हँसनि लसनि आछी बोलनि चितौनि चाल,
मूरति रसाल रोम-रोम-छबि-हेरे की।
लिखि राख्यौ चित्र यौं प्रवाहरूपी नैननि पै,
लही न परति गति ऊलट अनेरे की।
रूप को चरित्र है अनंदघन जान प्यारी,
अकि धौं बिचित्रताई मो चित-चितेरे की ॥२१०॥

सवैया

पाप के पुंज सकेलि सु कौन धौं आन घरी मैं बिरंचि बनाई।
रूप की लोभिनि रीझ भिजाय कै हाय इते पै सुजान मिलाई।
क्यौं घनआनँद धीर धरैं बिन पाँख निगोड़ी मरैं अकुलाई।
प्यास-भरी बरसैं तरसैं मुख देखन कौं अँखियाँ दुखहाई ॥२११॥

कबित्त

साखा-कुल टूटै ह्वै रँगीली अभिलाषा भरि,
परि ह्वै पखान बीच घसनि घनी सहै।
सोच सूखी इते मान आनि कै सलिल बूड़ै,
घुरि जाय चायनि ही हाय गति को कहै।
तऊ दुखहाई देखौ छिदति सलाकनि सौं,
प्रेम की परख दैया कठिन महा अहै।

---

[२०६] गौहन = साथ। गोय० = छिपा लूँ। [२१०] सौंज = सामग्री। अनेरे = विलक्षण। [२११] आन = अन्य, बुरी। [२१२] पखान = पत्थर;

प्रिय-मनसा लौं वारी मिहँदी अनंदघन,
परी जान प्यारी नेकु पायनि लग्यौ चहै ॥२१२॥

सवैया

साधनि ही मरियै भरियै, अपराधनि बाधनि के गुन छावत।
देखैं कहा? सपनो हू न देखत नैन यौं रैनदिना झर लावत।
जौ कहूँ जान लखैं घनआनँद तौ तन नेकु न औसर पावत।
कौन वियोग-भरे अँसुवा, जु सँजोग मैं आगेई देखन धावत ॥२१३॥

कवित्त

उठि न सकत, ससकत नैन-बान-बिंधे,
इते हू पै विषम बिषाद-जुर लू बरै।
सूरे पन-पूरे हेत-खेत तैं हटैं न कहूँ,
प्रीति-बोझ बापुरे भए हैं दबि कूबरे।
संकट-समूह मैं बिचारे घिरे घुटैं सदा,
जानी न परत जान! कैसैं प्रान ऊबरे।
नेही दुखियानि की यहै गति अनंदघन,
चिंता मुरझानि सहैं न्याय रहैं दूबरे ॥२१४॥

दसन-बसन ओली भरियै रहै गुलाल,
हँसनि-लसनि त्यौं कपूर सरस्यौ करै।
साँसनि सुगंध सौंधे कोरिक समोय धरे,
अंग अंग रूप रंग-रस बरस्यौ करै।
जान प्यारी! तो तन अनंदघन-हित नित,
अमित सुहाग-राग, फाग दरस्यौ करै।
इते पै नवेली लाज अरस्यौ करै जु, प्यारो
मन फगुवा दै, गारी हू कौं तरस्यौ करै ॥२१५॥

पद्य। [२१३] अपराधनि = अपराधों से बाधा का जाल फैलाते हैं, अपराध की भाँति मिलने में बाधक बन जाते हैं। [२१४] हेत० = प्रेम का रणक्षेत्र [२१५] दसन० = होंठ। ओली = झोली। हित = निमित्त। फगुवा = होली

सुखनि समाज साज सजे तित सेवैं सदा,
जित नित नए हित-फंदनि गसत हौ।
दुख-तम-पुंजनि पठाय दै चकोरनि पै,
सुधाधर जान प्यारे! भलैं ही लसत हौ।
जीव सोच सूखै गति सुमिरैं अनंदघन,
कितहूँ उघरि कहूँ घुरि कै रसत हौ।
उजरनि बसी है हमारी अँखियानि देखौ,
सुबस सुदेस जहाँ भावते वसत हौ ॥२१६॥
तपति उसास, औधि रूँधियै कहाँ लौं दैया,
बात बूझैं सैननि ही उतर उचारियै।
उड़ि चल्यौ रंग कैसैं राखियै कलंकी मुख,
अनलेखैं कहाँ लौं न घूँघट उघारियै।
जरि बरि छार ह्वै न जाय हाय ऐसी बैस,
चित-चढ़ी मूरति सुजान क्यौं उतारियै।
कठिन कुदाय आय घिरी हौं अनंदघन,
रावरी बसाय तौ बसाय न उजारियै ॥२१७॥
कहाँ एतो पानिप बिचारी पिचकारी धरै,
आँसू-नदी नैननि उमगियै रहति है।
कहाँ ऐसी राँचनि हरदि केसू केसरि मैं,
जैसी पियराई गात पगियै रहति है।
चाँचरि-चोप हू सु तौ औसर ही माचति, पै
चिंता की चहल चित्त लगियै रहति है।
तपति-बुझावनि अनंदघन जान बिन,
हारी सी हमारे हियैं लगियै रहति है ॥२१८॥

का उपहार। [२१६] हित = प्रेम के फंदे फँका करते हैं। दै = देकर (भेजकर)। उघरि = उचटकर, पृथक् होकर। घुरि = घुलकर, भली भाँति मिलकर। [२१७] बैस = (वयस्) उम्र। रावरी० = यदि आप का वश चले, आप कर सकँ तो। [२१८] केसू = किंशुक के फूल। चाँचरि = (चर्चरी) वसंत के गाने।

सवैया

अकुलानि के पानि पर्यौ दिनराति सु ज्यौ छिनकौ न कहूँ बहरै।
फिरिबोई करै चित चेटक चाक लौं धीरज को ठिक क्यौं ठहरै।
भए कागद-नाव उपाव सबै घनआनँद नेह-नदी-गहरै।
बिन जान सजीवन कौन हरै सजनी, बरहा-बिष की लहरै ॥२१९॥

कवित्त

रातिद्यौस कटक सजे ही रहै दहै दुख,
कहा कहौं गति या बियोग बजमारे की।
लियौ घेरि औचक अकेलो कै बिचारो जीव,
कढू न बसाति यौं उपाय-बल-हारे की।
जानं प्यारे लागौ न गुहार तौ जुहार करि,
जूझिहै निकसि टेक गहैं पनधारे की।
हेत-खेत-धूरि चूर चूर है मिलैगो, तब
चलैगी कहानी घनआनँद तिहारे की ॥२२०॥

हाहा करि हारी ननिहारी रूखियै महा री,
मो हूँ सौं चिन्हारी मानै तनकौ नहीं कहूँ।
साधि कै समाधि सी अराधति है काहि दैया,
अरहि पकरि अति निठुर करै न हूँ।
प्रानपति-आरति जौ जानै तौ सुजान प्यारी,
नावँ न धरैयै नावँ ऐसे औ कहाय हूँ।
राकानिसि आली व्याली भई घनआनँद कौं,
ढरि चल्यौ चंदा पै न ढरी चंदमुख हूँ ॥२२१॥

चहल = चहलपहल या कीच। [२१९] चेटक = कनौड़ा। ठिक ठहरना = ठिकाने लगना। [२२०] बजमारा = वज्र के मारे भी जो न मरे (गाली)। जुहार० = सहायता के लिए चिल्लाकर। तिहारे० = आप के किए की। [२२१] ननिहारी = न देखना [या 'निहारना' को अकर्मक मानँ तो न देखना]। हूँ = हाँ। ढरि० = रात बीत चली। न ढरी० = चंद्र मुखवाली होकर भी न ढली (चंद्रमा से ही ढलना सीख लेती)।

जान प्यारी! हौं तौ अपराधनि सौं पूरन हौं,
कहा कहौं ऐसी गति, आवत गरो रुक्यौ।
साध मारै सुधा तो सुभाय के मिठासै, ताकी
आसा लै दहति, भै चरन-कंज सौं ढुक्यौ।
इते पै जौ रोष कै रसीली हियो पोढ़्यौ करौं,
तौ न कहूँ ठौर*जी को, वे ह्व झगरो चुक्यौ।
ऐसें सोच-आँचनि अनंदघन सुखनिधि,
लपट कढ़ै न नेकौ हाहा जात ज्यौं फुक्यौ ॥२२२॥
सुधा तैं स्रवत विष, फूल मैं जमत सूल,
तम उगिलत चंद, भई नई रीति है।
जल जारै अंग, और राग करै सुरभंग,
संपति बिपति पारै, वड़ी बिपरीति है।
महागुन गहै दोपै, औषद ह्व रोग पोपै,
ऐसें जान! रस माहिं बिरस अनीति है।
दिनन को फेर मोहिं, तुम मन फेरि डार्‌यौ,
अहो घनआनँद! न जानौं कैसी बीतिहै ॥ २२३ ॥
गरल गुमान की गरावनि दसा को पान
करि करि, द्यौस रैनि प्रान घट घोटिवो।
हेत-खेत-धूरि चूरि चूरि साँस, पावँ राखि,
विप - समुद्वेग - बान - आगें उर ओटिवो।
जान प्यारे जौ न मन आनें तौ अनंदघन
भूलि, तू न सुमिरि परेख चख चोटिवो।

---

[२२२] साध० = यदि तेरी स्वाभाविक माधुरी की इच्छा करूँ तो वह सुधा ही मारे डाल रही है। यदि (शीतलता के लिए) चरण-कमलों में छिपना चाहूँ तो उनकी आशा जलाती है। उनके प्राप्त होने की भी संभावना नहीं। रोष = जोश, साहस। [२२३] बिरस = नीरसता। [२२४] गरावनि = गलानेवाली। पावँ० = डटकर। उर० = छाती पर सहना। परेखँ० = कटाक्ष से

* गैर।

तिन्हँ यौं सिराति छाती तोहि वै लगति ताती,
तेरे बाँटे आयौ है अँगारनि पै लोटिबो ॥ २२४ ॥
विकल विषाद-भरे ताही की तरफ तकि,
दामिनी हूँ लहकि वहकि यौं जर्यौ करै।
जीवन - अधार - पन पूरित पुकारनि सौं,
आरत पपीहा नित कूकनि कर्यौ करै।
अथिर उदेग - गति देखि कै अनंदघन,
पौन बिड़र्यौ सो वन-वीथिनि रर्यौ करै।
बूँदैं न परतिं मेरे जान जान प्यारी ! तेरे
बिरही कौं हेरि मेघ आँसुनि झर्यौ करै ॥ २२५ ॥

सवैया

पलकौ कलपै कलपौ पलकै सम होत सँजोग बियोग दुहूँ।
विपरीति-भरी हित-रीति खरी समझी न परै समझै कछु हूँ।
घनआनँद जान सजीवन सौं, कहियै तौ समै लहियै न सुहूँ।
तित हेरैं अँधेरैई दीसै सबै, विन सूझ तैं पून्यो अबूझ कुहूँ ॥२२६ ॥

तीछन ईछन वान वखान सो पैनी दसान लै सान चढ़ावत।
प्रानन प्यारे, भरे अति पानिप, मायल घायल चोप चटावत।
यौं घनआनँद छावत भावत जान-सजीवन-ओर तैं आवत।
लोग हैं लागि कवित्त बनावत मोहिं तौ मेरे कवित्त बनावत ॥२२७॥

चलि आई सदा रसरीति यहै, किधौं मो निरमोही को मोह नयौ।
घनआनँद प्रान हरैं हँसि जान, न जानि परै उघर्यौ उनयौ।
चित चाह-निवाह की वात रह्यौ, हित कै नित ही दुख-दाह दयौ।
उर आस बिसासन त्रास तजै वसि एक ही वास बिदेस भयौ ॥२२८॥

घायल होने का पछतावा। [२२५] बिड़र्यौ = नष्ट हुआ सा होकर। [२२६] पलकौ० = संयोग मैं कल्प भी पल के समान शीघ्र बीतता था। सुहूँ = (शुद्ध) पूरा, ठीक। कुहूँ = अमावस्या। [२२७] मायल = प्रवृत्त। मेरे० = अर्थात् मेरी कविता का उद्गार स्वाभाविक है। [२२८] उनयौ = छाना। बिसासन =

कबित्त

मोरचंद्रिका सी सब देखन कौं धरे रहैं,
सूछम अगाध-रूप-साध उर आनहीं।
जाहि सूझ तिन हूँ सो देखि भूली ऐसी दसा,
ताहि ते बिचारे जड़ कैसें पहचानहीं।
जान प्रानप्यारे के बिलोकें अबिलोकिबे कौं,
हरष-बिषाद-स्वाद-बाद अनुमानहीं।
चाह मीठी पीर जिन्हैं उठति अनंदघन,
तेई आँखैं साखैं और पाँखैं कहा जानहीं ॥२२९॥

रति-सुख-स्वेद-ओप्यौ आनँद बिलोकि प्यारे,
प्राननि सिहाय मोह-मादिक महा छकै।
पीतपट-छोर लै लै ढोरत समीर धीर,
चुंबन की चाड़नि लुभाय रहि ना सकै।
परसि सरस बिधि रुचिर चिबुक त्यौं ही,
कंपित करनि केलि-भाव-दावँ ही तकै।
लाजनि लसौंहीं चितवनि चाहि जान प्यारी,
सींचति अनंदघन हाँसी सौं भरीन कै ॥२३०॥

भूलनि करी है सुधि, जान ह्वै अजान भए,
खुलि मिले कपट सौं निपट रसाल हौ।
त्यागहि सादर दीनौ मान सनमान कीनौ,
अनुचित चित धरि उचित लहा लहौ।

विश्वासघातों के भय से। [२२९] बिलोकैं० = प्रिय के देखने और न देखने को हर्ष और विषाद समझती हैं। साखैं० = वस्तुतः वे ही ठीक आँखें हैं। अन्य तो मोरपंख में की आँखें हैं जो व्यर्थ की होती हैं। [२३०] ओप्यौ = चमकाया हुआ। सिहाय = लालायित होकर। मादिक = मद, शराब। ढोरत० = हवा करते हैं। चिबुक = ठुड्डी। भरीन = भरन अर्थात् वृष्टि द्वारा। [२३१] भूलनि० = मुझे भूलने की ही याद है। मान = रूठना। लहा = लाभ। हित०=

जहाँ जब तुम जैसैं तहीं तैसैं नीके रहौ अजू,
सब बिधि प्रानप्यारे हित आलवाल हौ।
मन तुम मोह्यौ ताहि नेकु राखे रहियौ जू,
एहो घनआनँद जू गरैं गुनमाल हौ ॥२३१॥

सवैया

जौ उहि ओर घटा घनघोर सौं चातक मोर उछाहनि फूलते।
त्यौं घनआनँद औसर साजि सँजोगिनि-झुंड हिँडोरनि झूलते।
ग्रीषम तैं हतई जु लता द्रुम-अंकनि लागतीं ह्वै रसमूल ते।
तौ सजनी! जिय-ज्यावन जान सु क्यौं इत की हित की सुधि भूलते॥२३२॥

कवित्त

उठे बड़े भोर चैन चोर लाह साह दोऊ,
मति-गति-ठगे न सकत चलि गेह कौं।
छाई पियराई और बिथा हियराई जानै,
जके थके बैन नैन, निदरत मेह कौं।
दुसह दसाहि देखैं समै बिसमथ होत,
खग मृग द्रुम बेली बिसरत देह कौं।
जान घनआनँद अनोखो अनियारो नेह,
दुहूँ दिसि बिषम रच्यौ बिरंचि बेह कौं ॥२३३॥

सवैया

सोएँ न सोयबो, जागैं न जाग, अनोखियै लाग सु आँखिन लागी।
देखत फूल, पै भूल भरी यह सूल रहै नित ही चित जागी।
चेटक जान-सजीवनि-मूरति रूप-अनूप महारस-पागी।
कौन बियोग-दसा घनआनँद, मो मति-संग रहै अति खागी ॥२३४॥

प्रेम के थाला। [२३२] हतई = मारी हुई। [२३३] मेह = वृष्टि। बेह० = (वेध) छेदन के लिए। [२३४] देखत० = प्रिय को जब तक देखती हूँ तभी तक प्रफुल्लता रहती है। खागी = लगी हुई, मिली हुई।

मीत सुजान मिले को महासुख अंगनि भोय समोय रह्यौ है।
स्वाद जगे रसरंग-पगे अति, जानत वेई न जात कह्यौ है।
द्वै उर एक भए घुरि कै घनआनँद सुद्ध समीप लह्यौ है।
रूप-अनूप-तरंगनि चाहि तऊ चित चाह-प्रबाह बह्यौ है ॥२३५॥

अति रूप की रासि रसीलियै मूरति जोहौं जबै तब रीझि छकौं।
घनआनँद जान-चरित्र के रंगनि चित्र-विचित्र दसा सौं थकौं।
अनदेखैं दई जु कछू गति देखियै जीव ही जानै न ब्यौरि सकौं।
यह नेह सदेह अदेह करै पचि हारि बिचारि बिचारि जकौं ॥२३६॥

स्याम घटा लपटी थिर बीज कि सोहै अमावस-अंक उज्यारी।
धूम के पुंज मैं ज्वाल की माल सी पै दृग-सीतलता-सुख-कारी।
कै छबि छायौ सिँगार निहारि सुजान-तिया-तन-दीपति प्यारी।
कैसी फबी घनआनँद चोपनि सौं पहिरी चुनि साँवरी सारी ॥२३७॥

कित जाउँ लै जान-सजीवन! प्रान कौं आन के लेखे न छाँहौं थिजौं।
इहि साल दहौं नित ही दुख-ज्वालऽरु सोचनि लोचन-वारि भिजौं।
दुरि आपुन पै हूं* इकौसैं मिलौं घनआनँद यौं अनखानि छिजौं।
डर डीठि के नीठि न देखि सकौं सु अनोखियै रीझि पै रीझि खिजौं॥२३८॥

मरिबो बिसराम गनै वह तौ यह बापुरो मीत-तज्यौ तरसै।
वह रूप छटा न सहारि सकै यह तेज तवै चितवै बरसै।

[२३५] भोय० = भींगकर मिल गया है। [२३६] न ब्यौरि० = विवेचना करके समझ नहीं सकती। [२३७] बीज = (विद्युत्) बिजली। धूम = धुएँ में लपटों की भाँति। सिँगार = शृंगार (कविपरंपरा में यह श्यामवर्ण माना जाता है)। [२३८] न थिजौं = नहीं समझा जाता। दुरि० = फिर भी स्वयं अपनी ही ओर से छिपकर आप से अकेले में मिलती हूँ। डर० = दृष्टि लग जाने के भय से आप की शोभा भी भली भाँति नहीं देख पाती। अपनी इसी विलक्षण रीझ पर रीझकर खीझती रहती हूँ। [२३९] वह = मीन। यह = मेरा मन। न सहारि० = सँभाल नहीं सकता। यह = मेरा मन।

* आप नए हू।

घनआनँद कौन अनोखी दसा मति आवरी बावरी ह्वै थरसै।
बिछुर मिलैं मीन-पतंग-दसा कहा मो जिय की गति कौं परसै ॥२३६॥

कबित्त

तेरे देखिबे कौं सब ही त्यौं अनदेखी करी,
तू हू जौ न देखै तौ दिखाऊँ काहि गति रे।
सुनि निरमोही एक तोही सौं लगाव मोही,
सोही कहि कैसें ऐसी निठुराई अति रे।
विष सी कथानि मानि सुधा पान करौं जान !
जीवन-निधान ह्वै बिसासी मारि मति रे।
जाहि जो भजै सो ताहि तजै घनआनँद क्यौं,
हति कै हितूनि, कहौ काहू पाई पति रे ? ॥२४०॥
लगी है लगनि प्यारे पगी है सुरति तोसौं,
जगी है बिकलाई ठगी सी सदा रहौं।
जियरा उड़्यौ सो डोलै हियरा धक्यौई करै,
पियराई छाई तन, सियराई दौ दहौं।
ऊनो भयौ जीबो अब सूनो सब जग दीसै,
दूनो दूनो दुख एक एक छिन मैं सहौं।
तेरे तौ न लेखो, मोहिँ मारत परेखो महा,
जान घनआनँद पै खोयबो लहा लहौं ॥२४१॥
कौन की सरन जैयै आपु त्यौं न काहू पैयै,
सूनो सो चितैयै जग, दैया कित कूकियै।
सोचनि समैयै, मति हेरत हिरैयै, उर
आँसुनि भिजैयै, ताप तैयै तन सूकियै।

तपै = तपता है। आवरी = व्याकुल। थरसै = त्रस्त होती है। [२४०] पति = प्रतिष्ठा। [२४१] जियरा = जीव, प्राण। हियरा = हृदय, छाती। धक्यौई० = जलता ही रहता है। दौ = दावाग्नि। खोयबो० = खोने का ही लाभ होता है, अपने को खो बैठती हूँ। [२४२] आपु त्यौं० = अपनी ओर उन्मुख होनेवाला किसी को नहीं पाती। रितैयै० = मन कहाँ हल्का करूँ।

क्यौं करि बितैयै, कैसें कहाँ धौं रितैयै मन,
बिना जान प्यारे कब जीवन तें चूकियै।
बनी है कठिन महा, मोहिं घनआनँद यौं,
मीचौ मरि गई आसरो न जित दूकियै ॥२४२॥

अधिक बधिक तें सुजान! रीति रावरी है,
कपट-चुंगौ दै फिरि निपट करौ बुरी।
गुननि पकरि लै, निपाँख करि छोरि देहु,
मरहि न जियै, महा बिषम दया-छुरी।
हौं न जानौं, कौन धौं ही या मैं सिद्धि स्वारथ की,
लखी क्यौं परति प्यारे अंतर-कथा दुरी।
कैसें आसा-द्रुम पै बसेरो लहै प्रान-खग,
बनक-निकाई घनआनँद नई जुरी ॥२४३॥

बिष को डवा* है कै उदेग को अँवा है, कल
पलकौ न बाहै अथवा है चक्र वात को।
बीजुरी को बंधु किधौं दुख ही को सिंधु है, कि
महामोह-अंध दंड अतन-अलात को।
द्रोह को दिनेस कै उजार निज देस, किधौं
आतम-कलेस है कि जंत्र सुख-घात को।
बरी मन मेरो घनआनँद सुजान प्यारे,
कैस हित सीख्यौ जू तिहारे पच्छपात को ॥२४४॥

मेरो जीव तोहि चाहै, तू न तनकौ उमाहै,
मीन-जल-कथा है कि या हू तें बिसेखियै।

जीवन० = मरूँ भी तो उनके बिना कैसे मरूँ। मीचौ = मृत्यु भी। दूकियै = छिप सकूँ। [२४३] चुगौ = चारा। निपाँख = पंख से हीन ; पक्ष या सहायक से रहित। ही = थी। बनक = वन की वस्तु, फँसाने का चारा ; सजधज। [२४४] डवा = थैला। अँवा = आँवाँ। चक्र बात० = बवंडर। अतन० =

* टिवा।

ता बिन सो मरै, छूटि परै, जड़ कहा ढरै,
भरौँ हौं, न मरौँ जान! हियेँ अवरेखियै।
पलकौ बिछोह-आगै, कलपौ अलप लागै,
बिलपौँ सदाई, नेकु तलफनि देखियै।
सूनो जग हेरौँ रे अमोही! कहि काहि टेरौँ,
आनँद के घन ऐसी कौन लेखैं लेखियै ॥२४५॥

सवैया

अनमानिबोई मन मानि रह्यौ अरु मौन ही सोँ कछु बोलति है।
ननिहारनि ओर निहारि रही उर-गाँठि-त्यौँ अंतर खोलति है।
रिस-संग महा रसरंग बढ़्यौ, जड़ताइयै गौहन डोलति है।
घनआनँद जान पिया के हियेँ कितकौ फिरि बैठि कलोलति है ॥२४६॥

तुम साँची कहौ हित कै चित की कित भूल-भरे इत आय परे।
कि कहूँ पहिली परतीति-मढ़े घनआनँद छाय सुभाय ढरे।
बलि बैठौ सुजान तौ को बरजै धरि पावन पावन नैन करे।
चकि से जकि से निरखौँ परखौँ सुनिहौँ जिहिँ रंग-तरंग तरे ॥२४७॥

कहियै सु कहा रहियै गहि मौन, अरी सजनी उन जैसी करी।
परतीति दै कीनी अनीति महा, विष दीनौ दिखाय मिठास-डरी।
इत काहू सोँ मेल रह्यौ न कछू, उत खेल सी ह्वै सब बात टरी।
घनआनँद जान सयान की खानि भुराई हमारेई पैँड़े परी ॥२४८॥

अब यौँ उर आवति है सजनी उन सोँ सपने हूँ न बोलियै री।
अरु जौ निलजे ह्वै मिलैँ तौ मिलौँ, मन तेँ गस-गूज न खोलियै री।

काम के अलातचक्र का दंड है। जंत्र = यंत्र। [२४५] भरौँ = दिन काटती हूँ। [२४६] उर० = मन की गाँठ के प्रति हृदय खोल रखा है। गौहन = साथ। फिरि० = रूठकर मुँह फेरे बैठी हुई। [२४७] चित की = चित्त की बात। पावन = पैरोँ को। पावन = पवित्र। [२४८] डरी = डली, टुकड़ा। भुराई० = भोलापन मेरे पीछे पड़ गया है। [२४९] गस० = गाँस की लपेट।

दृग देखन की कछु सौं हैं नहीं, इन मोहन भूलि न डोलियै री।
घनआनँद जान महा कपटी चित काहैं परेखनि छोलियै री ॥२४६॥

कबित्त

मुरझाने सबै अंग, रह्यौ न तनक रंग,
बैरी सु अनंग पीर पारै जरि गयौ ना।
इते पै बसंत सों सहायक समीप याके,
महा मतवारो कहूँ काहू तैं जु नयौ ना।
तीखे नए नीके जी के गाहक सरनि लै लै,
बेधै मन कौं कपूत पिता-मोह-मयौ ना।
पवन-गवन-संग प्राननि पठायहौं तौ,
जान घनआनँद को आवन जौ भयौ ना ॥२५०॥

सवैया

वारनि भौंर-कुमार भजैं, पुहुपावलि हास-बिकासहि पूजति।
पाठ कियौ करै आठ हू जाम,सु बोलनि सीखिबें कोकिल कूजति।
वे घनआनँद रीझि छए तकि तो छवि आन क्यौं आँखिन छूजति।
एरी* बसंत-लजावनि कंत सौं जान है मानमई कित हूजति ॥२५१॥
अधरासव-पान के छाक छके कर चाँपि कपोल-सवाद-पगे।
घनआनँद भीजि रहे रिझवार खगे सब अंग अनंग-दगे।
करि खंडन गंडन मंडन दै निरखे तैं अखंडित लोभ लगे।
सुखदान सुजान समान महा सु कहा कहौं आरसी भाग जगे ॥२५२॥

कबित्त

राधा नवयौवन बिलास को बसंत जहाँ,
अंग अंग रंगनि बिकास ही की भीर है।
प्यारो बनमाली घनआनँद सुजान सेवै,
जाहि देखि काम के हिये मैं नाहिं धीर है।

---

[२५०] पिता = अर्थात् मन। [२५१] भजैं = सेवा करते हैं। [२५२] खगे = लगे। गंडन = कपोलपाली। [२५३] साँसन = श्वासों से।

* और।

सुरनि-समाज-साज कोकिल-कुहूक जानै,
साँसन अनेक सुख-सौरभ-समीर है।
स्वाद - मकरंद को मनोरथ मधुप - पुंज,
मंजु वृंदावन देस जमुना के तीर है ॥२५३॥

सवैया

निसद्यौस खरी उर-माँझ अरी, छवि रंग-भरी मुरि चाहनि की।
तकि मोरनि त्यौं चख ढोर रहे, ढरि गौ हिय ढोरनि बाहनि की।
चट दै कटि पै बढ़ि* प्रान गए गति सौं मति मैं अवगाहनि की।
घनआनँद जान लखी जब तें जक लागियै मोहिँ कराहनि की ॥२५४॥
किहि नेह विरोध बढ़्यौ सब सौं उर आवत कौन के लाज गई।
जिहि के भरि भार पहार दबै, जग-माँझ भई तिन तें हरई।
दृग काहि लगे जु कहूँ न लगैं, मन-मानिक ही अनखानि ठई।
घनआनँद जान अजौं नहिँ जानत, कैसे अनैसे हैं हाय दई ॥२५५॥
इत बाँट परी सुधि, रावरे भूलनि कैसैं उराहनो दीजियै जू।
अब तौ सब सीस चढ़ाय लई जु कछू मन भाई सु कीजियै जू।
घनआनँद जीवन-प्रान सुजान! तिहारियै बातनि जीजियै जू।
नित नीके रहौ तुम्हैं चाड़ कहा पै असीस हमारियौ लीजियै जू ॥२५६॥
वधिकौ सुधि लेत,सुन्यौ,हति कै गति रावरी क्यौं हूँ न बूझि परै।
मति-आवरी बावरी ह्वै जकि जाय, उपाय कहूँ कि न सूझि परै।
घनआनँद यौं अपनाय तजी इन सोचनि ही मन मूझि परै।
दिनरैन सुजान-बियोग के बान सहै जिय पापी न जूझि परै ॥२५७॥

[२५४] ढोर० = साथ लगे। बाह = प्रवाह। चट० = कमर को फुरती से घुमाकर। जक = रटन। [२५५] हरई = हल्कापन। अनखानि = रूठना; अन + खानि, खान से अलग। अनैसे = बुरे। [२५६] बाँट = हिस्सा। चाड़ = उत्कंठा। [२५७] आवरी = व्याकुल। मूझि० = मुरझा जाता है। न जूझि० = मर नहीं जाता। [२५८] बीर = भाई या बहादुर। बीरी = बीड़ा

* बट।

कबित्त

एरे बीर पौन ! तेरो सबै ओर गौन, बीरी*
तो सो और कौन, मनैं ढरकौंहीं बानि दै।
जगत के प्रान, ओछे बड़े सौं समान घन
आनँद-निधान, सुखदान दुखियानि दै।
जान उजियारे गुन-भारे अंत मोही प्यारे,
अब ह्वै अमोही बैठे, पीठि पहचानि दै।
बिरह-बिथाहि मूरि, आँखिन मैं राखौं पूरि,
धूरि तिनि पायनि की हाहा ! नेकु आनि दै ॥२५८॥

एकै आस एकै बिसवास प्रान गहैं बास,
और पहचानि इन्हैं रही काहू सौं न है।
चातिक लौं चाहै घनआनँद तिहारी ओर,
आठौ जाम नाम लै, बिसारि दीनी मौन है।
जीवन-अधार जान सुनियै पुकार नेकु,
अनाकानी दैबो दैया घाय कैसो लौन है।
नेह-निधि प्यारे गुन-भारे ह्वै न रूखे हूजै,
ऐसो तुम करौ तौ बिचारन कैं कौन है ॥२५९॥

हमैं तुम्हैं आजु लौं न अंतर हो प्रानप्यारे,
कहाँ तैं दुखौ सो बैरी आड़ आनि है भयौ।
जियरा बिचारो इन सोचनि समाय जाय,
हियरा उदेगनि उजार सम ह्वै गयौ।
रावरे हू रंचक बिचारि देखौ जानमनि,
कौन के सहाय आय महादुख या दयौ।
मारि टारि दीजै ऐसा नीच बीच भलो नाहिँ,
वहै रस भीनौ घनआनँद रहै छयौ ॥२६०॥

उठानेवाला। अंत = अन्यत्र या अंत मैं। पीठि० = पहचानकर विमुख हो गए या पहचान से विमुख हो गए। [२५९] गहैं० = ठहरते हैं। कैं = के लिए।

* बारी, बारि।

अंतर गठीले मुख ढीले ढीले बैन बोलौ,
सुंदर सुजान तऊ प्राननि खरे खगौ।
साँच की सी मूरति ह्वै आँखिन मैं पैठौ आय,
महा निरमोही मढ़े मोह सौं हियो ठगौ।
आनँद के घन उघरे पै छल छाय लेत,
कटुताई-भरे रोम रोमांहे अमी पगौ।
चाह-मतवारी मति भई है हमारी देखौ,
कपट करे हूँ प्यारे निपट भले लगौ ॥२६१॥

सवैया

सौंधे की वास उसासहि रोकति, चंदन दाहक गाहक जी को।
नैननि बैरी सो है री गुलाल अबीर उड़ावत धीरज ही को।
राग विराग धमार त्यौं धार सी,लौटि पर्‌यौ ढँग यौं सब ही को।
रंग-रचावन जान विना घनआनँद लागत फागुन फीको ॥२६२॥
सुनि री सजनी ! रजनी की कथा इन नैन-चकोरन ज्यौं बितई।
मुख-चंद सुजान सजीवन को लखि पाएँ भई कछु रीति नई।
अभिलाषनि आतुरताई-घटा तब ही घनआनँद आनि छई।
सु बिहात न जानि परी भ्रम सी कब ह्वै बिसवासिनि बीति गई ॥२६३॥
मन जैसैं कछू तुम्हैं चाहत है सु बखानियै कैसैं सुजान ही हौ।
इन प्राननि एक सदा गति रावरे, बावरे लौं लगियै नित लौ।
बुधि औ सुधि नैननि बैननि मैं करि बास निरंतर अंतर गौ।
उघरौ जग छाय रहे घनआनँद चातिक त्यौं तकियै अब तौ ॥२६४॥
लगियै रहै लालसा देखन की किहि भाँति भटू निसद्यौस कटै।
करि भीर भरी यह पीर महा बिरहा तनकौ हिय तैं न हटै।

[२६०] आड़े = सामने। [२६१] खगौ = धँसते हो। उघरे = पृथक् हो। [२६२] सौंधे = सुगंधित पदार्थ। अबीर = अभ्रक का चूर्ण, बुक्का। ही = हृदय। धमार = होली के गान। धार = तलवार। [२६३] बिस-० = विश्वास-घातिनी (रात्रि)। [२६४] लौ = लगन। अंतर = मन। गौ = चला गया। उघरौ० = जगत् हट गया। [२६५] बिसमै० = बुद्धि एकबारगी आश्चर्य मैं

घनआनँद जान-सँजोग-समै, बिसमै बुधि एकहि बेर बटै।
सपनो सो टरै, फिरि सौगुनो चेटक बाढ़त डाढ़त घोटि घटै ॥२६५॥
अति सूधो सनेह को मारग है जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं।
तहाँ साँचे चलैं तजि आपुनपौ झझकैं कपटी जे निसाँक नहीं।
घनआनँद प्यारे सुजान सुनौ यहाँ एक तें दूसरो आँक नहीं।
तुम कौन धौं पाटी पढ़े हौ कहौ मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं ॥२६६॥

कवित्त

करुवो मधुर लागै वाको विष अंग भएँ,
याहि देखें रस हू में कटुता बसति है।
वाके एक मुख ही तें बाढ़त बिकार तन,
यह सरबंग आनि प्राननि गसति है।
सुंदर सुजान जू सजीवन तिहारो ध्यान,
तासों कोटिगुनी ह्वै लहरि सरसति है।
पापिनि डरारी भारी साँपिनि निसा बिसारी,
बैरिनि अनोखी मोहिं डाहनि डसति है ॥२६७॥
कारी कूर कोकिला! कहाँ को बैर काढ़ति री,
कूकि कूकि अब ही करेजो किन कोरि लै।
पैंड़े परे पापी ये कलापी निसद्यौस ज्यौं ही,
चातक! घातक त्यौं ही तू हू कान फारि लै।
आनँद के घन प्रान-जीवन सुजान बिना,
जानि कै अकेली सब घेरौ दल जोरि लै।

लीन हो जाती है। चेटक = माया। [२६६] बाँक = वक्र। निसाँक = निःशंक। आँक = अंक, चिह्न। मन = हृदय ; ४० सेर। छटाँक = थोड़ा ; सेर का सोलहवाँ भाग। 'छटाँक' को उलटा पढ़ने से 'कटाछ' होता है अथवा छटा + अंक = शोभा की झलक। [२६७] रस = रसीले अर्थात् सुखद पदार्थ। सरबंग = सर्वांग। लहरि = विष का दौरा। डरारी = डरावनी। बिसारी = बिलैली। डाहनि = नागिन से होड़ लगाकर। [२६८] कोरि० = खरोंचकर निकाल ले। पैंड़े० = पीछे पड़े। कलापी = मोर। घेरौ० = घेरनेवाली सेना।

जौं लौं करैं आवन विनोद-बरसावन वे,
तौ लौं रे डरारे बजमारे घन घोरि लै ॥२६८॥

सवैया

बैरी बियोग की हूकनि जारत, कूकि उठै अचकाँ अधरातक।
बेधत प्रान, विना ही कमान सु बान से बोल सौं, कान ह्वै घातक।
सोचनि ही पचियै बचियै कित, डोलत मो तन लाएँ महातक।
वे घनआनंद जाय छए उत, पैंड़े पर्यौ इत पातकी चातक ॥२६९॥

कवित्त

अंतर मैं बासी पै प्रबासी को सो अंतर है,
मेरी न सुनत दैया आपनीयौ ना कहै।
लोचननि तारे ह्वै सुझावौ सब सूझौ नाहिं,
बूझी न परति, ऐसैं सोचनि कहा दहौ।
हौ तौ जानराय, जाने जाहु न अजान यातें,
आनँद के घन छाय छाय उघरे रहौ।
मूरति मया की हाहा सूरति दिखैयै नेकु,
हमैं खोय या बिधि हो कौन धौं लहा लहौ ॥२७०॥

सवैया

छिति को ढरि गौ वह ढार अहो जिहि मो तन आँखिन ढोरत हे।
अरसानि गही उहि बानि कछू सरसानि सौं आनि रिझोरत हे।
घनआनँद प्यारे सुजान सुनौ तब यौं सब भाँतिन भोरत हे।
मन माहिं जौ तोरन ही, तौ कहौ बिसवासी सनेह क्यौं जोरत हे ॥२७१॥

बजमारे = वज्र मारनेवाला ; वज्र का मारा हुआ, दुष्ट। घोरि० = गरज ले। [२६९] हूकनि = पीड़ाओं से। तन = ओर। तक = टकटकी। पैंड़े० = पीछे पड़ा। [२७०] अंतर = मन। अंतर = पार्थक्य। जानराय = ज्ञानियों में श्रेष्ठ। खोय = जीवन नष्ट करके। लहा = लाभ। [२७१] ढार = ढलन। मो० = मेरी ओर (अनुरागपूर्वक) देखते थे। बिसवासी = विश्वासघाती।

घनआनँद प्यारे सुजान! सुनौ जिहि भाँतिन हौं दुख-सूल सहौं।
नहिं आवनि-औधि, न रावरी आस, इते पर एक सी बाट चहौं।
यह देखि अकारन मेरी दसा कोऊ बूझै तौ ऊतर कौन कहौं।
जिय नेकु बिचारि कै देहु बताय हहा पिय! दूरि तें पाय गहौं ॥२७२॥

बिरहा-रबि सौं घट-व्योम तच्यौ बिजुरी सी खिवैं इकली* छतियाँ।
हिय - सागर तें दृग - मेघ भरे उघरे बरसैं दिन औ रतियाँ।
घनआनँद जान अनोखी दसा, न लखौं दई कैसें लिखौं पतियाँ।
नित सावन डीठि सु बैठक मैं टपकैं बरुनी तिहि ओलतियाँ ॥२७३॥

इत भायनि भाँवरे भौंर भरैं, उत चायनि चाहि चकोर चकैं।
निसिबासर फूलनि, भूलनि मैं अति, रूप की बात न ब्यौरि सकैं।
घनआनँद घूँघट-ओट भए तब बावरे लौं चहुँ ओर तकैं।
पिय के मुख कौतुक देखि सखी! निज नैन बिसेष सुजान छकैं ॥२७४॥

कबित्त

मोहन अनूप रूप सुंदर सुजान जू को,
ताहि चाहि मन मोहि दसा महा मोह की।
अनोखी हिलग दैया! बिछुरै तौ मिल्यौ चाहै,
मिले हू मैं मारै जारै खरक बिछोह की।
कैसें धरौं धीर बीर! अति ही असाधि पीर,
जतन ही रोग याहि नीके करि टोह की।
देखें अनदेखें तहीं अटक्यौ अनंदघन,
ऐसी गति कहौ कहा चुंबक औ लोह की ॥२७५॥

---

[२७२] चहौं = देखती हूँ। [२७३] घट = शरीर। खिवैं = चमकती हैं। इकली = अकेली अथवा इक लौ = एक ही ढंग से, निरंतर। ओलतियाँ = छप्पर का छोर, जहाँ से बरसात का पानी टपकता है, ओरी। [२७४] भायनि = भावों से भरकर। न ब्यौरि० = निर्णय नहीं कर पाते। [२७५] हिलग =

* इक लौ।

सवैया

क्यौं हूँ न चैन परै, दिनरैन सु पैंड़े पर्यौ बिरहा बजमारो।
ज्यौं बहरै न कहूँ छन एक हू, चाहै सुजान सजीवन प्यारो।
ऐसी बढ़ी घनआनँद बेदनि दैया उपाय तैं आवै तँवारो।
हौं ही भरौं अकली, कहौं कौन सौं, जा बिधि होत है साँझ सबारो ॥२७६॥

कबित्त

जोई रात प्यारे-संग बातन न जात जानी,
सोई अब कहाँ तें बढ़नि लियें आई है।
जोई दिन कंत-साथ जीवन को फल लाग्यौ,
सोई बिन अंत देत अंतक दुहाई है।
इनकी तौ रहौ, मेरे अंग अंग औरै भए,
सूखी सुख-लता झालरति मुरझाई है।
आली! घनआनँद सुजान सौं बिछुरि परैं,
आपौ न मिलत महा बिपरीति छाई है ॥ २७७ ॥

सवैया

जिन आँखिन रूप-चिन्हारि भई तिनकी नित नींद ही जागनि है।
हित-पीर सौं पूरित जो हियरा, फिरि ताहि कहौ कहा लागनि है।
घनआनँद प्यारे सुजान सुनौ जियराहि सदा दुख-दागनि है।
सुखमै मुखचंद बिना निरखैं नख तें सिख लौं बिष-पागनि है ॥२७८॥

कबित्त

घर बन वीथिन मैं जित तित तुम्हैं देखौं,
इते हू पै जान! भई नई बिरहामई।
बिषम उदेग-आगि लपटैं अँतर लागैं,
कैसैं कहौं जैसैं कछू तचनि महा तई।

चाह। खरक = खटक। टोह = खोज। [२७६] तँवारो = मूर्छा। सबारो = सबेरा। [२७७] अंतक = यम। झालरति = झलराते हो, लहराते हो। आपौ = अपनापन ; आप, जल ('घन' के साहचर्य में)। [२७८] सुखमै = सुखमय। [२७९] अँतर = अंतर, मन। तपनि = ताप। निदर० = निरादर

फूटि फटि टूक टूक ह्वै कै उड़ि जाय हियो,
वचिबो अचंभा, मीचौ निदर करै गई।
आनँद के घन लखैं अनलखैं दुहूँ ओर,
दईमारी हारी हम आप हौ निरदई ॥ २७९ ॥

सवैया

बिरच्यौ किहि दोष न जानि सकौं, जु गयौ मन मो तजि रोपन तैं।
जिय! ता बिन यौं अब आतुर क्यौं तब तौ तनकौ बिरमायौ न तैं।
घनआनँद जान अमोही महा अपनाय इते पर त्यागि हतैं।
अधबीच पर्‌यौ दुख-ज्वाल जरै सठ! को सुख कौं हठि द्वार दतैं॥२८०॥

पूरन प्रेम को मंत्र महा पन, जा मधि सोधि सुधारि है लेख्यौ।
ताही के चारु चरित्र बिचित्रनि यौं पचि कै रचि राखि बिसेख्यौ।
ऐसो हियो-हित-पत्र पवित्र जु आन-कथा न कहूँ अवरेख्यौ।
सो घनआनँद जान अजान लौं टूक कियौ पर बाँचि न देख्यौ ॥२८१॥

जीव की बात जनाइयै क्यौं करि जान कहाय अजाननि आगौ।
तीरन मारि कै पीर न पावत एक सो मानत रोइबो रागौ।
ऐसी बनी घनआनँद आनि जु आन न सूझत, सो किन त्यागौ।
प्रान मरैंगे, भरैंगे बिथा, पै अमोही सौं काहू को मोह न लागौ ॥२८२॥

तोहिं तौ खेल, पै मो हिय सेल सो, एरे अमोही बिछोह महा दुख।
जाहि जु लागै सु ताहि सहैगो, पै क्यौं न पर्‌यौ लहि तू तौ सदा सुख।
एक ही टेक, न दूसरी जानति, जीवन-प्रान सुजान लियें रुख।
ऐसी सुहाय तौ मेरो कहा बस, देखिहौं पीठि, दुरायहौ जौ मुख ॥२८३॥

करके मृत्यु भी चली गई। निरदई = निर्दय; निर + दई, दैव के शासन से परे। [२८०] बिरच्यौ = उदास हो गया। को० = किस सुख के लिए दरवाजे पर चिपके रहँ। [२८१] पन = प्रतिज्ञा। न अवरेख्यौ = नहीं अंकित की। [२८२] आगौ = अग्रगण्य, बढ़कर। पीर० = पीड़ा नहीं समझता। रागौ =

छप्पय

महो-दूध सम गनै, हंस-बक-भेद न जानै।
कोकिल-काक न ग्यान, काँच-मनि एक प्रमानै।
चंदन-ढाक समान, राँग-रूपौ सम तोलै।
बिन बिवेक गुन-दोष, मूढ़-कबि ब्यौरि न बोलै।
प्रेम-नेम, हित-चतुरई, जे न बिचारत नेकु मन।
सपने हूँ न बिलंबियै, छिन तिन ढिग आनंदघन ॥२८४॥

कहियै काहि जताय हाय जो मो मधि बीतै।
जरनि बुझौं दुख-जाल धकौं, निसिबासर ही तै।
दुसह सुजान वियोग बसौं ताही सँजोग नित।
बहरि परै नहिं समै, गमै जियरा जित को तित।
अहो दई-रचना निरखि, रीझि खीझि मुरझौ सु मन।
ऐसी बिरचि बिरंचि को कहा सर्यौ आनंदघन ॥ २८५॥

सवैया

प्यार को सो सपनो हँसि हेरनि ऐसी चितौनि कहौ कहाँ पाई।
बंक महाविष-भोवन प्रान सुधाई-सनी मुसक्यानि-सुधाई।
यौं घनआनँद चेटक मूरति लै जब अंतर-ज्वाल बसाई।
कैसे दुराइहैं जान अमोही, मिलाप मैं पतियौ ऊखिलताई ॥२८६॥

कबित्त

मिलत न क्यौं हूँ भरे रावरी अमिलताई,
हिये मैं किये बिसाल जे बिछोह-छत हैं।

माना। [२८३] सेल = बरछा (कष्टदायक)। [२८४] मही = मट्ठा। ढाक = पलाश। राँगा = राग। रूपौ = चाँदी भी। कबि = पंडित। ब्यौरि = बिवेक करके। [२८५] बुझौं = बुझती हूँ; शिथिल पड़ती हूँ। धकौं = तपती हूँ। बहरि० = समय कटता नहीं। गमै = भटकता है। सर्यौ = काम निकला। [२८६] बिष० = विष मिला देनेवाली। सुधाई = अमृत से ही। सुधाई = सीधापन। चेटक = मायाविनी। ऊखिलताई = अजनबीपन; उष्णता।

प्रीतम अनेरे मेरे घूमत अनेरे प्रान,
बिष-भोए बिषम-बिसास-बान-हत हैं।
प्यार मैं परम पूरो, सुन्यौ हू न हो सु देख्यौ,
जान परी जान ये अमोहिन के मत हैं।
पौन को प्रबेस हो न जहाँ घनआनँद पै,
तहाँ लै कहाँ तैं बीच पारे परवत हैं ॥२८७॥

आनकानी-आरसी निहारिबो करौगे कौ लौं,
कहा मो चकित दसा-त्यौं न दीठि डोलिहै।
मौन हू सौं देखिहौं कितक पन पालिहौ जू,
कूक-भरी मूकता बुलाय आप बोलिहै।
जान घनआनँद! यौं मोहिं तुम्हैं पैज परी,
जानियैगी टेक टरैं कौन धौं मलोलिहै।
रूई दियैं रहौगे कहाँ लौं बहरायबे की,
कबहूँ तौ मेरियै पुकार कान खोलिहै ॥ २८८ ॥

सवैया

घनआनँद जान! सुनौ चित दै हित-रीति दई तुम तौ तजि कै।
इत साहस सौं घन संकट कोटिक आए समाजन कौं सजि कै।
मन के पन पूरन पूरि रह्यौ सु भजै कित या बिधि सौं भजि कै।
यह देखि सनेह-बिदेह-दसा अति हीन ह्वै दीन गए लजि कै ॥२८९॥

कवित्त

रूप-उजियारे जान! प्रानन के प्यारे, कब
करौगे जुन्हैया दैया बिरह-महा-तमैं।

---

[२८७] मिलत० = नहीँ भरते (घाव)। अमिलताई = फटे रहने की बान; खटाई (अम्ल) अर्थात् अपट। छत = घाव। अनेरे = दूर; विलक्षण। बिसास = विश्वासघात। पारे = डाले। [२८८] आरसी = (आदर्श) दर्पण। त्यौं = ओर। बुलाय० = आप को बुलाकर तब मेरी मूकता (मौन) बोलेगी। पैंज = प्रतिज्ञा। मलोलिहै = पछताएगा। बहरायबे की = बहलाने की; बधिर बने रहने की। [२८९] भजै० = कहाँ भागे। भजि कै = अर्थात् प्रेम करके।

सुखद सुधा तैं हँसि हेरनि पिवाय पिय,
जियहि जिवाय, मारिहौ उदेग से जमैं।
सुंदर सुदेस आँखैं वहुख्यौ बसाय, आय,
बसिहौ छबीले जैसें हुलसि हियैं रमैं।
ह्वैहै सोऊ घरी भाग-उघरी अनंदघन,
सुरस बरसि लाल देखिहौ हरी हमैं ॥२६०॥

सवैया

किंसुक-पुंज से फूलि रहे सु लगी उर दौ जु वियोग तिहारे।
मातो फिरै, न घिरै अबलानि पै, जान मनोज यौं डारत मारे।
ह्वै अभिलाषनि पात-निपात कढ़े हिय-सूल उसासनि-डारे।
है पतझार बसंत दुहूँ घनआनँद एक ही बार हमारे ॥२६१॥

जीवनि-मूरति जान सुनौ गति, जौ जिय गावरो प्यार न पावतौ।
संगम-रंग अनंग उमंगनि भूमि न आनँद-अंबुद छावतौ॥
लाड़िलो जोवन त्यौं अधरासव चोपनि लोभी मनै नहिं भावतौ।
तौ उर-दाहक प्राननि गाहक रूखे भए को परेखो न आवतौ ॥२६२॥

कबित्त

तोहि सब गावैं एक तोही कौं बतावैं बेद,
पावैं फल ध्यावैं जैसी भावनानि भरि रे।
जल-थल-व्यापी सदा अंतरजामी उदार,
जगत मैं नावँ जानराय रह्यौ परि रे।
एते गुन पाय हाय छाय घनआनँद यौं,
कैधौं मोहिं दीस्यौ निरगुन ही उघरि रे।

[२६०] तमैं = अंधकार को। जमैं = यम को। सुदेस = अच्छी बस्ती। भाग० = भाग्य से उद्घाटित, भाग्य से भरी। सुरस = जल; आनंद। [२६१] मनोज = कामदेवरूपी हाथी। पात० = पत्तों का गिरना। डारे = उच्छ्वासरूपी डाल में। [२६२] आनँद = आनंद का बादल; घनानंद। अधरासव = होंठ का आसव (शराब)। परेखो = पछतावा। [२६३] जानराय = ज्ञानियों में श्रेष्ठ। निरगुन =

जरौं बिरहागिनि मैं करौं हौं पुकार कासौं,
दई गयौ तूहूँ निरदई ओर ढरि रे ॥२९३॥

चंदहि चकोर करै, सोऊ ससि देह धरै,
मनसा हू ररै, एक देखिबे कौं रहै द्वै* ।
ज्ञान हूँ तैं आगें जाकी पदवी परम ऊँची,
रस उपजावै तामैं भोगी भोगलात ग्वै ।
जान घनआनँद अनोखो यह प्रेम-पंथ,
भूले ते चलत, रहैं सुधि के थकित ह्वै ।
बुरो जिन मानौ जौ न जानौ कहूँ सीखि लेहु,
रसना कैं छाले परैं प्यारे नेह-नावँ ल्वै ॥२९४॥

सवैया

घनआनँद जीवन-रूप सुजान ह्वै पावत क्यौं दृगप्यास नहीं ।
अरु फूलि रहे कुसुमाकर से सु कहूँ पहचान की बास नहीं ।
रसिकाई भरे अपने मन पै सपने रस आस हू पास नहीं ।
पचि कौने बिरंचि रचे हौ कहौ जु हितूनि हतौ हिय त्रास नहीं॥२९५॥

सूने परे दृग-भौन सुजान जे ते बहुरयौ कब आय बसायहौ ।
सोचनि ही मुरभयौ पिय जो हिय सो सुख सींचि† उदेग नसायहौ ।

निर्गुण (ब्रह्म) ; गुणहीन ; आकाश । दई = दैव, ब्रह्म । निरदई = निर्दय प्रिय ; निर + दई, दैव के शासन को न माननेवाला । [२९४] सोऊ = चकोर भी । एक० = वे एक ही हैं केवल देखने मेँ दो हैं ; प्रेम की चरमावस्था मेँ प्रिय और प्रेमी मेँ अभेद हो जाता है । भोगी० = विषयी भी जिसमेँ डूबकर वशीभूत हो जाते हैँ । विषयानंद को भूलकर प्रेमानंद मेँ मग्न हो जाते हैँ । भूले = बेहोश ; प्रेममग्न । सुधि के० = सतर्क होकर चलनेवाले नहीँ चल सकते । कैं = के ऊपर । [२९५] प्यास पाना = प्यास को समझना ('पीर पाना' की भाँति) । कुसुमाकर = फुलवाड़ी । बास = गंध ; पता । [२९६] सींचि = भरकर ।

* र्वै । † सींचि ।

हाय दई घनआनँद ह्वै करि कौ लौं वियोग के ताप तपायहौ।
एहो हँसी जिन जानौ हहा, हमैं ख्वाय कहौ अब काहि हँसायहौ ॥२९६॥

कबित्त

जहाँ तें पधारे मेरे नैननि ही पाँव धारे,
वारे ये बिचारे प्रान पैंड़ पैंड़ पै मनौ।
आतुर न होहु हाहा नेकु फेंट छोरि बैठौ,
मोहिं वा बिसासी को है ब्यौरो बूझिबे घनौ।
हाय निरदई कौं हमारी सुधि कैसैं आई,
कौन विधि दीनी पाती दीन जानि कै भनौ।
झूठ की सचाई छाक्यौ त्यौं हित-कचाई पाक्यौ,
ताके गुनगन घनआनँद कहा गनौ ॥२९७॥

नित ही अपूरब सुधाधर-बदन आछो,
मित्र-अंक आएँ जोति-जालनि जगत है।
अमित कलानि ऐन रैनद्यौस एकरस,
केस-तम-संग रंग-राँचनि पगत है।
सुनि जान प्यारी! घनआनँद तैं दूनो दिपै,
लोचन-चकोरनि सौं चोपनि खगत है।
नीठि दीठि परैं खरकत सो किरकिरी लौं,
तेरे आगैं चंद्रमा कलंकी सो लगत है ॥२९८॥

उघरि नचे हैं, लोक-लाज तें बचे हैं, पूरी
चोपनि रचे हैं, सुदरस-लोभी रावरे।
जके हैं थके हैं मोह-मादिक छके हैं अन-
बोले पै बके हैं दसा, चीतैं चित चाव रे।

---

[२९७] पैंड़ = डग। झूठ० = झूठ की सत्यता से भरपूर, झूठ ही झूठ से भरा। हित० = प्रेम के कच्चेपन से पुष्ट। [२९८] अपूरब = अद्वितीय; पूर्वेतर दिशा। सुधाधर = चंद्रमा; सुधा + अधर, अमृतपूर्ण होंठ। मित्र = सूर्य; सखा, प्रेमी। कला = चंद्रमा की १६ कलाएँ; विद्या। नीठि = कठिनाई से। [२९९] मादिक = शराब। चीतैं = सोचते हैं, ध्यान मैं लाते हैं। लोचैं =

अवसर न सोच घनआनँद विमोचैं जल,
लोचैं वही मूरति अरबरानि आवरे।
देखि देखि फूलैं ओट भ्रमन ही भूलैं, देखौ
बिन देखैं भए ये वियोगी दृग बावरे ॥२९९॥

सवैया

कित लोग कथा सु वृथा ही करौ, यह तौ तब ही अनुमान लई।
अपनेई सनेह ठगी, भ्रम दै प्रतिबिंबहि मूरति मान लई।
घनआनँद वे हू सुजान हुते, किहि गौं हठ कै सठ-हानि लई।
व्रज देखत होत सुमारनि कौं तजि भाजि वचे हम जानि लई ॥३००॥

चूर भयौ चित पूरि परेखनि एहो कठोर! अजौं दुख पीसत।
साँस हियेँ न समाय सकोचनि, हाय इते पर बान कसीसत।
ओटनि चोट करौ घनआनँद नीके रहौ निसद्यौस असीसत।
प्राननि बीच बसे हौ सुजान पै आँखिन दोष कहा जु न दीसत ॥३०१॥

ज्यौ बहरै न कहूँ ठहरै मन, देह सो आहि विदेह को लेखौ।
देखति जो दुखिया अखियाँ नित वैरियौ की सुपने सु न देखौ।
हौ तौ सुजान महा घनआनँद पै पहचानि की राखौ न रेखौ।
हाय दई यह कौन भई गति प्रीति मिटे हूँ मिटै न परेखौ ॥३०२॥

कबित्त

दूध-धाराधर भूमि झर लायौ व्रज पर,
पूत भयौ नंद के सभागो परिवार को।
सुजस प्रकास्यौ दुख-दारिद-तिमिर नास्यौ,
चहूँ ओर बाढ्यौ निधि मंगल अपार को।
नीरस पर्‌यौ हो सबै जगत रसीले बिन,
आयौ घनआनँद समूह सुखसार को।

कामना करते हैं। अरबरानि = हड़बड़ी, घबराहट। आवरे = शिथिल, दीन। [३००] गौं = बात। सठ० = पूँजी की हानि। [३०१] कसीसत = खींचते हो। [३०२] ज्यौ० = जी बहलता नहीं। [३०३] धाराधर = बादल।

जिये औ जियैंगे भाँति भाँतिन पपीहा-पुंज,
पियैंगे पियूष प्रीति - मंडन उदार को ॥२०३॥

कुल-उजियारी सु दुलारी लली कीरति की,
जाके जनमत मैया मोदनि सिहानी है।
राधा नाम नीको घनआनँद अमी को सोत,
रंचक उचारेँ रसरानी होति बानी है।
सबै जग मंगल-निकेत भयौ याहि आएँ,
महा प्रेम - संपति - विलास - ठकुरानी है।
गोकुल प्रकास्यौ ब्रजचंद के उदोत आली,
आज देखौं भाँति भाँति रावलि रवानी है ॥२०४॥

ह्वैहै कौन घरी भाग-भरी पुन्य-पुंज-फरी,
खरी अभिलाषनि सुजान पिय भेटिहौं।
अमी-ऐन आनन कौं पान, प्यासे नैननि सौं
चैननि ही करिकै, वियोग-ताप मेटिहौं।
गाढ़े भुजदंडन के बीच उरमंडन कौं
धारि घनआनँद यौं सुखनि समेटिहौं।
मथत मनोज सदा मो मन, पै हौं हूँ कब,
प्रानपति पास पाय ताप-मद फेटिहौं ॥२०५॥

सोए बहुतेरो, मेरो सोच हू निबेरौ हेरौ,
हौं न जानौं कब धौं उनींदे भाग ! जगौंगे।
पीर-भरे लोचन ! अधीर हौ, पै जानत जू,
कौन घरी रूप के रसोत जगमगौंगे ?।
अंग अंग ! तुम्हैं कौ लौं दहैगौ अनंग कहूँ,
रंग-भरी-देह जान प्यारे संग खगौंगे।

सभागो = भाग्यशाली। निधि = समुद्र। [२०४] लली० = कीर्ति माता की पुत्री। सिहानी = मुग्ध हो गई। रावलि = अतःपुर। रवानी = आनंद के प्रवाह में मग्न। [२०५] खरी = उत्कट। अमी० = अमृत का भांडार। उरमंडन = हृदय के भूषण, प्रिय। [२०६] रसोत = दारुहल्दी से बनी एक औषध जो

चलौ प्रान ! पलौ, परे दूरि यौं कलमलौ क्यौं,
बिना घनआनँद कितेक दुख दगौंगे ॥२०६॥

सवैया

दृग-नीर सौं दीठिहि देहुँ बहाय पै वा मुख कौं अभिलाखि रही।
रसना विष बोरि गिराहि गसौं, वह नाम सुधानिधि भाखि रही।
घनआनँद जान-सुबैननि त्यौं रचि कान बचे रुचि साखि रही।
निज जीवन पाय पलै कबहूँ पिय-कारन यौं जिय राखि रही ॥२०७॥

कबित्त

तुम दीनी पीठि, दीठि कीनी सनमुख याने,
तुम पैंड़े परे, राखि रह्यौ यह प्रान कौं।
तुम बसौ न्यारे, यह नेक हू न हातो होय,
तुम दुखदाई यह करै सुख-दान कौं।
सुनौ घनआनँद सुजान हौ अमोही तुम,
याको महा मोह मो बिना न जानै आन कौं।
और सबै सहौं कछू कहौं न कहा है बस,
तुम्हैं बदौं तौ पै जौ बरजि राखौ ध्यान कौं ॥२०८॥
बिरह तपत आछे आँसुन सौं न्वाय चोवा,
पायनि पखारि सीस धारि छिन छूजियै।
चूमि चूमि चोपनि लगाय लालसानि भाल,
मंजन कपोलनि कै प्राननि लै पूजियै।
एहो घनआनँद सुजान रावरे जू सुनौ,
रावरी सौं और हियें मनसा न दूजियै।
निरमोही महा हौ पै मया हू बिचारि बारी*,
हाहा नेकु नैननि अतीत किन हूजियै ॥२०९॥

आँख के घाव मैं लगाई जाती है; रसवत्, रसमयता। [२०७] गसौं = ग्रस्त कर दूँ, स्तब्ध कर दूँ। [२०८] पैंड़े० = पीछे पड़े। न हातो० = दूर नहीं होता। [२०९] मंजन = माँजना, रगड़ना। अतीत = अतिथि।

* धारि।

चोख्यौ चित चोपनि, चितौनि मैं चिन्हारी करि,
चाह सी जनाय हाय मोहि कै मनौ लियौ।
भोरी भोरी बातनि सुनाय जान! भोरे प्रान,
फाँसी तैं सरस हाँसी-फंद छंद सौं दियौ।
छलनि छबीले आय छाय घनआनँद यौं,
उघरे बिसासी अंत, निरदै महा हियौ।
वारी मति, हारी गति कहाँ जाहिँ नाहिँ ठौर,
मारत* परेखो देखौ हितू ह्वै कहा कियौ॥३१०॥

सवैया

अँसुवानि तिहारे वियोग ही सौं बरषा-रितु बेलि सी बाल भई।
हिय-खोपनि† चोपनि-कौंपनि झालरि लाज के ऊपर छाय गई।
घनआनँद जान सदा हित झूमनि घूमनि देखियै नित्त नई।
बलि नेकु मया करि हेरौ हहा अबला किधौं फूलि रही तुरई॥३११॥

कबित्त

आरसी उसास ज्यौं तुषार तामरस त्यौं ही,
आतप के ताप रंग-ढंग नवनीत को।
पावक तैं पारो काँजी छिये हूँ बिचारो छीर,
बारुनी तैं सुचि जैसैं लेखौ कफ गीत को।
ऐसैं घनआनँद बिचार-वारपार नाहिँ,
जानै एक जीव जान प्रीतम पुनीत को।
सूछम महा है ताकी तोल कौं कहा है,
राखि जानिबो लहा है यौं दुहेलो मन मीत को॥३१२॥

---

[३१०] छंद = छल। अंत = निदान, अंत मैं। [३११] खोपनि = छप्पर का कोना। कौंप = कौंपल। [३१२] तुषार = पाला। तामरस = कमल। बारुनी = शराब। सुचि = पवित्र। दुहेलो = कठिन खेल खेलनेवाला, कठिनाई से वश मैं आने-

* मानतु। † पोषनि।

सवैया

आनि लई न कछू सुधि हाय, गए करि वैरी बियोगहि सौंपनि।
जाय भुलाय रहे तित ही जित चाह भई है नई चित-चौंपनि।
नाहर आय बसंत भयौ नख-केसू रतौहैं कियौ हिय-कौंपनि।
क्यौं घनआनँद यौं बचियै जिय, जात बिध्यौ अनियारियै कौंपनि ॥३१३॥

हम एक तिहारियै टेक धरैं तुम छैल! अनेकन सौं सरसौ।
हम नाम अधार जिवावत ज्यौं तुम दै बिसवास-विषै बरसौ।
घनआनँद मीत सुजान सुनौ तब गौं गहि क्यौं अब यौं अरसौ।
तकि नेकु दई त्यौं दया-ढिग ह्वै सु कहूँ किन दूर हू तैं दरसौ ॥३१४॥

लोयनि लाल गुलाल भरे कि खरे अनुराग सौं पागि जगाए।
कै रस-चाँचरि चौचँद मैं छतिया पर छैल नखच्छत छाए।
भीजि रहे स्रम-नीर सुजान धरौ डग ढीलियै लागौ सुहाए।
भोर हूँ ऐसी खिलारिनि पै, घनआनँद का छल छूटन पाए ॥३१५॥

कवित्त

जाहि जीव चाहै सो तहीँ पै ताहि दाहैं,
वाहि ढूँढ़त ही मेरी गति मति गई खोय है।
करौं कित दौर, और रहौं तौ लहौं न ठौर,
घर कौं उजारि कै बसत बन जोय है।
बनी आनि ऐसी घनआनँद अनैसी दसा,
जीवौ जान प्यारे बिन, जागैं गयौ सोय है।
जगत हँसत यौं जियत मोहिँ तातैं नैन!
मेरो दुख देखि रोवौ फिरि कौन रोयहै ॥३१६॥

वाला। [३१३] नाहर = सिंह। केसू = किंशुक, पलाश। रतौहैं = रागमय; रक्त से भरा। कौंपनि = कोप से। कौंपनि = कोंपलों से ; नोकों से। [३१४] त्यौं = ओर। दया० = दया करके। [३१५] चौचँद = क्रीड़ा, कौतुक; का० = किस छल से छूटकर यहाँ तक आए। [३१६] जोय = देखकर।

सवैया

घनआनंद मीत सुजान हहा सुनियै विनती कर जोरि करैं।
अरसाहु न नेकु रिसाहु अहो धरि ध्यानहिं दूरि तें पाय परैं।
मन भायौ बियोग मैं जारिबो जौ तौ तिहारी सौं नीकें जरैंऽरु भरैं।
पै तुम्हैं मति कोऊ कहौ हित-हीन, सु या दुख बीच अमीच मरैं ॥३१७॥

घनआनँद जीवन-रूप सुजान हौ प्रान पपीहा-पनैइ पढ़े।
दिसि चाहि दुहूँ पै अचंभो महा, करियै कहा, सोच-प्रवाह बढ़े।
न कहूँ दरसौ, बरसौ बिष बारि सु ये अपराध-गढ़े न कढ़े।
कित कौं नित ही इत याहि दहौ जु रहौ चित ऊपर चोप-चढ़े ॥३१८॥

जिनकौं नित नीकें निहारति हीं तिनकौं अँखियाँ अब रोवति हैं।
पल-पाँवड़े पायनि चायनि सौं अँसुवान कें धारनि धोवति हैं।
घनआनँद जान सजीवनि कौं सपने बिन पाएँई खोवति हैं।
न खुली मुँदी जानि परैं कछु ये दुखहाई जगे पर सोवति हैं ॥३१९॥

पहिलैं पहचानि जु मानि लई अब तौ सु भई दुखमूल महा।
इत के हित बैर लियौ उत ह्वै,करि ज्यौहरि-ज्यौहरि लोभ लहा।
घनआनंद मीत सुनौ अरु ऊतर दूर तें देहु न देहु हहा।
तुम्हैं पाय अजू हम खोयौ सबै हमैं खोय कहौ तुम पायौ कहा ॥३२०॥

सुधि होती सुजान ! सनेह की जौ,तौ कहा सुधि यौं बिसरावते जू।
छिन जाते न बाहर, जौ छल छूटि कहूँ हिय भीतर आवते जू।
घनआनँद जान न दोष तुम्हैं गुन भावते जौ गुन गावते जू।
कहियै सु कहा अब मौन भली नहीं खोवते जौ हमैं पावते जू ॥३२१॥

कबित्त

छाया छियैं लागति सु जागति दृगनि आय,
तू सदा अलग जाकी छाँहौं न दिखाति है।

---

[३१७] अमीच = बिना मृत्यु के ही। [३१८] पपीहा० = चातकपन ही। [३१९] दुखहाई = दुख की मारी। जगैं० = खुली हैं, पर कुछ देखती नहीं। [३२०] ज्यौ-हरि० = जी हरने के व्यापार मैं लाभ के लोभ से या ज्यौहरिबो = जी लेना। [३२१] दोष० = दोष गुण से लगते। हमैं० = मेरा हृदय पहचान पाते।

रोम रोम रही भोय रोय परौं साँस भरौं,
चौंकत चकत मुरझानि अधिकाति है।
जान प्यारी दूरि ही तैं चेटक चरित कोटि,
मति उपचारनि* की हेरत हिराति है।
तेरी गति† चौगुनी कै सौगुनी चुरैल हू सौं,
लगी अलगी सी कछू वरनी न जाति है ॥३२२॥

सवैया

किहि ठान ठनौ हौ सुजान मनौ गति जानि सकै सु अजान कस्यौ।
इहि सोच समाय, उदेगनि माय विछोह-तरंगनि पूरि भस्यौ।
सु सुनौ मनमोहन ताकी दसा सुधि-साँचनि आँचनि वीच रस्यौ।
तुम तौ निहकाम, सकाम हमैं घनआनँद काम सौं काम पस्यौ ॥३२३॥

कबित्त

गतिनि तिहारी‡ देखि थकनि मैं चली जाति,
थिर चर दसा कैसी ढकी उघरति है।
कल न परति कहूँ कल जौ परति होय,
परनि परी हौं जानि परी न परति है।
हाय यह पीर प्यारे ! कौन सुनै, कासौं कहौं,
सहौं घनआनँद क्यौं अंतर अरति है।
भूलनि चिन्हारि दाऊ हैं न हो हमारैं तातैं,
विसरनि रावरी हमैं लै विसरति है ॥३२४॥

सवैया

मो अवला तकि जान ! तुम्हैं विन, यौं बल कै बलकै जु बलाहक।
त्यौं दुख देखि हँसै चपला, अरु पौन हूँ दूनो विदेह तें दाहक।

---

[३२२] छियैं = छूने से। चेटक = माया। उपचार = औषध का यत्न।
[३२३] निहकाम = कामनाहीन। [३२४] गति = दशा ; चाल। परनि० = पड़न, स्थिति। अरति० = अड़ती है। [३२५] बलकै = बकता है। बलाहक =

चंदमुखी सुनि मंद महा तम राहु भयौ यह आनि अनाहक।
प्रान हरौंहर* है घनआनँद लेहु न तौ अब लेहिँगे गाहक ॥३२५॥

कबित्त

मूरति सिंगार की उजारी छबि आछी भाँति,
दीठि-लालसा के लोयननि लै लै आँजिहौं।
रति-रसना-सवाद-पाँवड़े पुनीतकारी,
पाय चूमि चूमि कै कपोलनि सौं माँजिहौं।
जान प्यारे प्रान अंग-अंग-रुचि-रंगनि मैं,
बोरि सब अंगनि अनंग-दुख भाँजिहौं।
कब घनआनँद ढरौंहीं बानि देखैं सुधा-
हेत मन-घट-दरकनि सुठि राँजिहौं ॥३२६॥

सवैया

मो बिन जौ तुम्हैं और रुची तौ रुचै न तुम्हैं बिन मोहिं जियौ जू।
आँखिन मैं ढरिआई रहै सु दहै दुखिया गहि आस हियौ जू।
सूल भयौ गुन जो तिहि अंग को दीप सौं बारि बियोग दियौ जू।
हाय सुजान! सनेही कहाय क्यौं मोह जनाय कै द्रोह कियौ जू॥३२७॥

सखि सूधे सुभाय लख्यौ मग जात सो टेढ़ो ह्वै मारग बीच खग्यौ।
मुसक्यानि गई मुसक्यानिहि मैं मन सो घन नेकु निहारि ठग्यौ।
घनआनँद भीजे कटाछन सौं रस पागि लई तन स्वेद जग्यौ।
जसुदाकृत पुन्य के पुंजनि को फल पापिनि मो अँखियानि लग्यौ॥३२८॥

मेघ। बिदेह = कामदेव। अनाहक = व्यर्थ। हरौंहर = लूट। [३२६] सुठि = भली भाँति। राँजिहौं = राँका लगाऊँगी। [३२७] ढरिआई = आँसू बहना। [३२८] खग्यौ = अर्थात् खड़ा था। पापिनि० = मेरी इन पापिनी आँखों मैं

* धरोहर

हाय सनेही! सनेह सौं रूखे, रुखाई सौं ह्वै चिकनै अति, सोहौ।
आपुनपौ अरु आप हु तैं करि हाते हतौ घनआनँद को हौ।
कौन घरी बिछुरे हौ सुजान जु एक घरी मन तैं न बिछोहौ।
मोह की बात तिहारी असूझ, पै मो हिय कौं तौ अमोहियौ मोहौ ॥३२९॥

जा हित मात को नाम जसोदा सुबंस को चंद कला-कुल-धारी।
सोभा-समूह भई घनआनँद मूरति रंग-अनंग-जिवारी।
जान महा, सहजै रिझवार, उदार, बिलास मैं रासबिहारी।
मेरो मनोरथ हू वहियै, अरु हैं मो मनोरथ पूरनकारी ॥३३०॥

अंक भरौं, चकि चौं कि परौं, कबहूँक लरौं, छिन ही मैं मनाऊँ।
देखि रहौं,अनदेखें दहौं, सुख सोच सहौं जु लहौं सुनि पाऊँ।
जान! तिहारी सौं मेरी दसा यह को समझै अरु काहि सुनाऊँ।
यौं घनआनँद रैनदिना न बितीतत, जानियै कैसैं बिताऊँ ॥३३१॥

गई सुधि-अंग, भई मति पंग, नई कछु बात जतावति हौ न।
दुराव कियैं कहा होत सखी! रँग और भयौ ढँग उत्तर कौ न।
हियैं धरको, तन स्वेद जग्यौ, अरु ऐसी जँभानि की बानि हु तौ न।
बढ़ायहै बेदनि, साँच कहौ, घनआनँद जान चढ़े चित जौ न ॥३३२॥

कबित्त

कहौं जौ सँदेसो ताको बड़ोई अँदेसो आहि,
न्हानै मन वारे की कहैऽब को सुनै सु कौन।
निधरक जान अलबेले निखरक-ओर,
दुखिया कहैऽव कहा तहाँ कौं उचित हौ न।

आ लगा है। [३२९] रूखे = उदासीन ; चिकनाहट से रहित। चिकने = भिनकर ; चिकनाहट से युक्त होकर। करि० = दूर करके। [३३०] जा० = जिसके कारण। जसोदा = यशोदा (यश देनेवाली)। जिवारी = जिलानेवाली। मनोरथ हू० = मेरे मनोरथ (मन के रथ) को भी चलाइए जैसे अर्जुन का रथ चलाया था। [३३१] अंक = गोद। [३३२] धरको = धड़कन। तौ० = तो नहीं थी। [३३३] न्हानै = छुटपन मैं। निखरक = खटक से रहित।

पर - दुख - दल के दलन कौं प्रभंजन हौ,
ढरकौंहे देखि कै बिवस बकि परी मौन।
इत की भसम-दसा लै दिखाय सकत जू,
लालन-सुबास सौं मिलाय हू सकत पौन ॥३३३॥

सवैया

मुख-नेह-रुखाई दिखाई, मरौं, इत को तौ चिन्हारि रही न उनै।
रचि कौन से घात लियौ है हियो,बिन हेरैं न जीव बिचारि गुनै।
घनआनँद ऐसी दसानि घिरयो दुखिया जिय सोचनि सीस धुनै।
अब कैसी भई उन जान हई दई कूक करौं पै न कोऊ सुनै ॥३३४॥

कवित्त

अंतर मैं रहति निरंतर जगी सुजान,
तहाँ तुम कैसैं सोयबे कौं घर कै रहे।
गुपत लपट जाकी तन ही प्रगट करै,
जतननि बाढ़ै, गुरु लोग अर कै रहे।
सीरी परि जात रोम रोम घनआनँद हो,
और याके कोटिक बिकार भर कै रहे।
बारिद-सहाय सौं दवागिनि दबति देखौ,
बिरह-दवागिनि तैं नैना झर कै रहे ॥३३५॥

सवैया

सावन-आवन* हेरि सखी! मनभावन-आवन-चोप बिसेखी।
छाए कहूँ घनआनँद जान सम्हारि की ठौर लै भूलनि लेखी।
बूँदैं लगैं सब अंग दगैं उलटो गति आपने पापनि पेखी।
पौन सौं जागति आगि सुनी ही पै पानी तैं लागति आँखिन देखी ॥३३६॥

ढरकौंहे = ढलनेवाले! भसम = भस्म करनेवाली। [३३४] मुख = मौखिक प्रेम या मुँह देखा स्नेह [३३५] गुरु = बड़े। अर = अड़ करके। [३३६]

* आगम।

परकाजहि देह कौं धारि फिरौ परजन्य जथारथ ह्वै दरसौ।
निधि-नीर सुधा के समान करौ सब ही विधि सज्जनता सरसौ।
घनआनँद जीवन-दायक हौ कछू मेरियौ पीर हियँ परसौ।
कबहूँ वा बिसासी सुजान के आँगन मो अँसुवानहिं लै बरसौ ॥३३७॥

जान छबीले कहौ तुम ही जौन दीसौ तौ आँखिन काहि दिखाऊँ।
स्रौन*-सुधाई सनी बतियानि बिना इन काननि लै कहाँ प्याऊँ।
हाय मर्‍यौ मन पीर तें प्रीतम! या दुखियाहि कहाँ परचाऊँ।
चाहत जीव धर्‍यौ घनआनँद रावरी सौँ कहूँ ठौर न पाऊँ ॥३३८॥

निसद्यौस उदास उसास थकौं न सकौं तजि आस बिसास जकी।
घनआनँद मीत सुजान बिना अँखियान कौं सूझत एक टकी।
इत की गति कौन कहै को सुनै मन ही मन मैं यह पीर पकी।
भरियै किहि भाँति कहा करियै अब गैल सँदेसन हूँ की थकी ॥३३९॥

प्यारे सुजान के पानि को मंडन खंडन बैदी-अखंड-कला को।
ज्यौं सरस्यौं‡ जब ही दरस्यौ बरस्यौ घनआनँद हेत-झला को।
सूछम सो, पै भर्‍यौ अतुलै सुख रंग बिभौ जुग नैन-पला को।
प्रीतम लौं हिय रावत हाय, बिछोह मैं ज्याइवौ माह छला को ॥३४०॥

घूमत सीस लगै कब पायनि चायनि चित्त मैं चाह घनेरी।
आँखिन प्रान रहे करि थान, सुजान! सुमूरति माँगत नेरी।
रोम ही रोम परी घनआनँद काम का रार न जाति निबेरी।
भूलनि जीतति आपुनपौ बलि, भूलौ नहीँ सुधि लेहु सबेरी ॥३४१॥

सम्हारि = जब सँभाल करनी चाहिए तभी भूल बैठे। [३३७] परजन्य = पर्जन्य, बादल; पर + जन्य, जो दूसरे के उपकार के लिए हो। जीवन = जल; प्राण। [३३८] स्रौन = श्रवण, कान। सौँ = शपथ। [३३९] बिसास० = विश्वासघात से स्तब्ध। टकी = टकटकी। [३४०] मंडन = गहना। हेत० = प्रेमारस की वृष्टि। पला = पलड़ा। [३४१] घूमत = चक्कर खाता हुआ। थान=

ललचौंहीं लगौंहीं, भईं तुम सौंहीं इतै अँखियाँ सुख-साध-भरीं।
उत आप निकाई-निधान सुजान, ये वावरी ह्वै अरराय परीं।
घनआनँद जीवन-प्रान सुनौ, बिछुरैं मिलैं गाढ़-जँजीर-जरीं।
इनकी गति देखन-जोग भई जु न देखन मैं तुम्हैं देखि अरीं ॥३४२॥

कवित्त

सुरति करौं तौ बिसरे जौ होहिं जान प्यारे,
वे तौ चित-चढ़े, रंग-मूरति महा रहैं।
सुधि करैं वेई सुधि हू की ऐसी भूलि जाय,
वेसुधि किये से सुधि माँझ या प्रकार हैं।
गूढ़ि गति ब्यौरिवे* की भूलियौ सुरति मोहिं,
रातिद्यौस छाए घनआनँद घटा रहैं।
सुधि कवहूँ न आवै भूलेऊ तनक नाहिं,
सुधि तिन ही मैं तेई सुधि मैं सदा रहैं ॥३४३॥

सवैया

जब तैं तुम आवन-आस दई तव तैं तरफौं कव आयहौ जू।
मन-आतुरता मन ही मैं लखौ मनभावन ! जान सुभाय हौ जू।
बिधि के दिन लौं छिन बाढ़ि परे यह जानि बियोग बितायहौ जू।
सरसौ घनआनँद वा रस कौं जु रसा रस सौं बरसायहौ जू ॥३४४॥

अंगनि-पानिप-ओप खरी, निखरी नवजोवन की सुथराई।
नैननि बोरति रूप के भौंर अचंभे-भरी छतिया-उथराई।
जान-महा-गरुवे-गुन मैं घनआनँद हेरि रत्यौ थुथराई।
पैने कटाछनि ओज मनोज के बानन बीच बिंधी मुथराई ॥३४५॥

स्थान, डेरा। नेरी = निकट। रोर = शोर। सबेरी = शीघ्र। [३४२] अरराय० = टूट पड़ीं। [३४३] ब्यौरिबे० = विचारने की। [३४४] जान = ज्ञानी। बियोग = वियोग दूर करेंगे। रसा = पृथ्वी। [३४५] सुथराई = सफाई। उथराई = किंचित् उठान। रत्यौ० = रति भी थोड़ी पड़ गई। मुथराई = कुंदपन।

* धारिबे।

अभिलाषनि लाखनि भाँति भरीं बरुनीन रुमांच ह्वै काँपति हैं।
घनआनँद जान सुधाधर-मूरति चाहनि अंक मैं चाँपति हैं।
टग लाय रहीं पल पाँवड़े कै सु चकोर की चोपहि झाँपति हैं।
जब तें तुम आवनि-औधि बदी तब तें अँखियाँ मग माँपति हैं ॥३४६॥

मग हेरत दीठि हिराय गई, जब तें तुम आवनि-औधि बदी।
बरसौ कित हूँ घनआनँद प्यारे पै बाढ़ति है इत सोच-नदी।
हियरा अति औटि उदेग की आँचनि च्वावत आँसुनि मैन मदी।
कब आयहौ औसर जानि सुजान बहीर लौं बैस तौ जाति लदी ॥३४७॥

तुम ही गति हौ तुम ही मति हौ तुम ही पति हौ अति दीनन की।
नित प्रीति करौ गुनहीनन सौं यह रीति सुजान प्रबीनन की।
बरसौ घनआनँद जीवन कौं सरसौ सुधि चातक छीनन की।
मृदु तौ चित के पन पै इत के निधि हौ हित के, रुचि मीनन की ॥३४८॥

अति दीनन की, गतिहीनन की पतिलीनन की रति के मन हौ।
सब ही बिधि जान, करौ सुखदान, जिवावत प्रान कृपा-तन हौ।
घनआनँद चातक-पुंजनि पोषन, तोषन रंक महा धन हौ।
जन-सोच-विमोचन, सुंदर-लोचन, पूरन-काम भरे पन हौ ॥३४९॥

कबित्त (अनंगशेखर)

सदा कृपानिधान हौ, कहा कहौं सुजान हौ,
अमान दान-मान हौ, समान काहि दीजियै।
रसाल सिंधु प्रीति के भरे, खरे प्रतीति के,
निकेत नीति-रीति के, सुदृष्टि देख जीजियै।
टगी लगी तिहारियै, सु आप त्यौं निहारियै,
समीप ह्वै बिहारियै उमंग-रंग भीजियै।

---

[३४६] टग = टकटकी। [३४७] मैन = मदन, काम। मदी = मद, शराब। बहीर = सेना का सामान। जाति० = समाप्त होने पर आ रही है। [३४८] निधि = समुद्र। [३४९] पतिलीन = प्रतिष्ठाहीन। [३५०] अमान = प्रमाण से परे या निरभिमान। पयोद० = घनआनंद; आनंद के घन।

पयोद - मोद छाइयै, बिनोद कौं बढ़ाइयै,
बिलंब छाड़ि आइयै किधौं बुलाय लीजियै ॥३५०॥

सवैया

चेटक रूप-रसीले सुजान! दई बहुतै दिन नेकु दिखाई।
कौंध मैं चौंध भरे चख हाय! कहा कहौं हेरनि ऐसैं हिराई।
बातैं बिलाय गईं रसना पै हियो उमड्यौ कहि एकौ न आई।
साँच कि संभ्रम हौ घनआनँद सोचनि ही मति जाति समाई ॥३५१॥

प्यारे सुजान को प्रान-पियारो बस्यौ जब कान सँदेसो सुहायौ।
कोटि सुधा हू के सार कौं सोधि कै पान किये तें महासुख पायौ।
जीव-जिवावन ताप-सिरावन है, रसमैं घनआनँद छायौ।
ये गुनि क्यौं न रचै सजनी! उनि रंग-रचे अधरानि रचायौ ॥३५२॥

कबित्त

जीवहि जिवाय नीकैं जानत सुजान प्यारे!
याही गुन नामहिं जथारथ करत हौ।
चिरजीजै दीजै सुख कीजै मनभायौ मेरो,
मेरी अभिलाषन की निधि कौं धरत हौ।
चाह - बेली - सफल - करन घनआनँद यौं,
रस दै दै उर - आलबालहि भरत हौ।
प्यारे सौं छकौंहीं ढरकौंहीं मृदु बानि-बस,
बिबस ह्वै आप ही तें मो पर ढरत हौ ॥३५३॥

सवैया

कुलाहल होत है गोकुल मैं जनम्यौ सुत नंद के सुंदर स्याम।
चलौ चलियै मिलि दैन बधाई भई अब ही सब पूरनकाम।
जसोमति सौं झगरो अगरो करि लेहु रुचै जिहि जो अभिराम।
लखैं अँखियानि ललाम ललाहि सुनैं घनआनँद लाड़िलो नाम ॥३५४॥

---

[३५१] संभ्रम = भ्रांतिमात्र। [३५२] सिरावन = ठंढा करनेवाले, दूर करनेवाले। [३५३] निधि = भांडार। छकौंहीं = छका देनेवाली, संतुष्ट करने-

मुख-चाहनि कौँ चित चाहत है चख-चाहनि ठौरहि पावति ना।
अभिलाषनि लाखनि भाँति भरे हियरा-मधि, साँस सुहावति ना।
घनआनँद जान तुम्हैँ बिन यौँ गति पंगु भई मति धावति ना।
सुधि दैन कही सुधि लैन चही सुधि पाएँ बिना सुधि आवति ना॥३५५॥

कबित्त

रसिक रसीले हौ छबीले गुन-गरबीले
रंगनि ढरीले हौ छकीले मद-मोह तैँ।
जीवन-बरस घनआनँद दरस आछो,
सरस परस सुख सींच्यौ हँसि जोहतैं।
अचिरजनिधि! हौँ तिहारी सब बिधि, प्यारे!
कृपा होति, फलति ललित लता छोह तैँ।
मिलन तैँ ज्यौँ ही बिछुरन करि डार्‌यौ, वारी
त्यौँ ही किन कीजै हाहा मिलन बिछोह तैँ॥३५६॥

सवैया

रस-रैनि जगी प्रिय-प्रेम-पगी अरसानि सौँ अंगनि मोरति है।
मुख-ओप अनूप बिराजि रही ससि कोरिक वारने, को रति है।
अँखियानि मैँ छाकनि की अरुनाई, हियैँ अनुराग लै बोरति है।
घनआनँद प्यारी सुजान लखैँ डरि डीठि हितू तिन तोरति है॥३५७॥

सुख-स्वेद-कनी मुखचंद बनी बिथुरी अलकावलि भाँति भली।
मद-जोबन, रूप-छकीँ अँखियाँ अवलोकनि आरस-रंग-रली।
घनआनँद ओपित ऊँचे उरोजनि चोज मनोज के ओज दली।
गति ढीली लजीली रसीली लसीली सुजान मनोरथ-बेलि फली॥३५८॥

कहा कहियै सजनी रजनी-गति, चंद कढ़ै कि जियैँ गहि काढ़ै।
अमीनिधि पै बिष-सार स्रवै, हिम-जोति जगाय कै अंगनि डाढ़ै।

वाली। [३५४] अगरो = बड़ा, भारी। [३५५] चाहनि = देखना। सुधि-आवति ना = होश नहीं आता। [३५६] छकीले = छके हुए, परिपूर्ण। [३५७] को० = रति भी क्या है। [३५८] रली = युक्त। चोज = उमंग। [३५९]

सु या पति-संग न जानति, है घनआनँद जान-बिछोह की गाढ़ै।
वियोग मैं वैरिनि वाढ़ति जैसी, कछू न घटै, जु सँजोग हूँ वाढ़ै॥३५६॥
हुलास-भरी मुसकानि लसै, अधरानि तें आनि कपोलनि जागै।
छुटीं अलक मृदु मंजु मिहीं स्रुतिमूल छलानि अनी मुरि लागै।
बड़ी अँखियानि मैं अंजन-रेख लजीली चितौनि हियैं रस पागै।
सुहाग सों ओपित भाल दिपै घनआनँद जान पिया अनुरागै॥३६०॥

कबित्त

कामना-कलपतरु जानि कै सुजान प्यारो,
सींचै घनआनँद सँवारि हिय-थाँवरो।
रूप-निधि साधिबे कौं महा सिद्ध मंत्र मानि,
आनि उर 'गोरी गोरी' जपै नित साँवरो।
प्रेम-सुधा-स्रोत स्रौन सुनैं सुख-सिंधु होत,
मोद - रासि मंगल-निवास ब्रज - भाँवरो।
कलाधर केलि को, सुफल बानी-बेलि को है,
रसना को भाग है रसीलो राधा-नाँवरो॥३६१॥
सहज सुहायौ राधा-माधव के मन भायौ,
कुंज-पुंज छायौ घनआनँद-निवास है।
रितुनि को चिंतामनि रसनि सौं रह्यौ सनि,
देखें बनै जैसो बनि राजै सु प्रकास है।
दंपति-सुजान-केलि-बेलि कै फलित सदा,
कलित ललित लीला - बलित - बिलास है।
ऐसे बनराजै बरनत बानि क्यौं न फूलै,
जाहि चाहि रितुराजौ चाहत बिकास है॥३६२॥

सवैया

जान सुखारे रहौ, रहि आप हौ, होति रही है सदा चित-चीती।
हैं हम ही धुर की दुखहाई बिरंचि बिचारि कै जाति रची ती।

या = रात। [३६०] मिहीं = पतली। अनी = नोक। सुहाग = रोली की बिंदी। [३६१] थाँवरो = थाला। भाँवरो = आवर्त। नाँवरो = नाम। [३६२] कै

प्रान-पपीहन के घन ह्वौ, मन दै घनआनँद कीजै अनीती।
जानौ कहा अनुमानौ हियेँ, हित की गति कौँ, सुख सौँ नित बीती ॥३६३॥
जित चाहत हौ तित जाय मिलै, चित रावरो कोविद-केलि-कला।
जिनकौँ तुम भोरि बिसास करौ सु न साँस भरै बपुरी अबला।
घनआनँद जान! रहौ उनए से, नए बरसौ नित नेह-झला।
नटनायक लायक मायक हौ गति पाय परै न तिहारी लला ॥३६४॥
हम सौँ हित कै कित कौँ हित ही चित-बीच वियोगहि बोय चले।
सु अखैबट-बीज लौँ फैलि पर्यौ बनमाली कहाँ धौँ समोय चले।
घनआनँद छाय बितान तन्यौ हम ताप के आतप खोय चले।
कबहूँ तिहि मूल तौ बैठियै आय सुजान ज्यौं र्वाय* कै रोय चले ॥३६५॥

कबित्त

मेरो चित चाहै घनआनँद सुजान कौं पै,
ढकी लाग-आग की लपेटैँ जीव ही सहै।
वे तौ गौँ गहेले†, हौँ गहाऊँ सो न गहैं गैल,
रहैँ छैल भए नए लेस ताहू को न है।
पातनि तकत, मूल भूले फिरैँ फूले वृथा,
आली! बनमाली जू के फल की कहा कहै।
आवरी ह्वै बावरी तू तावरी परति काहे,
ते ह्याँ घर बसे, ह्याँ उजारि बसि को रहै ॥३६६॥
उघरि दुरे हौ, नीकैँ मिलन उरे‡ हौ, गाढ़े
रंगनि घुरे हौ घनआनँद सुजान जू।

= द्वारा। बनराज = वृंदाबन। [३६३] धुर की = अत्यंत। ती = थी। हित = प्रेम। [३६४] बिसास = विश्वासघात। झला = झड़ी, वृष्टि। पाय० = समझ मैं नहीँ आती। [३६५] हित ही = सुखपूर्वक। अखैबट = अक्षयवट। समोय = अनुरक्त होकर। [३६६] गौँ० = अपनी घात को ही समझनेवाले। तावरी० = गरम क्योँ होती है। घर० = दूसरे से प्रेम कर रहे हैँ। [३६७]

* हाय। † गवेले। ‡ दुरे।

उर बैठि दाहत हौ, चाहनि मैं चाहत हौ,
घात ही निवाहत हौ प्रानन के प्रान जू।
हँसि हँसि खावत हौ, छाँहौं नहीं छ्वावत हौ,
जागि जागि स्वावत हौ आपै हू तैं आन जू।
सूझत हौ बूझत हौ चाहत हौ भाखत हौ,
रहत हौ राखत हौ मौन हौ बखान जू ॥३६७॥

महा अनमिलन-मिलेई मिलौ जब मिलौ,
ऐसे अनमिल कै मिलाप हौ हमैं दई।
हमैं तौ मिलौ, जौ कहूँ आप हू सौं मिले होहु,
मिलौ तौ कहा जू ये मिलाप-रीति है नई।
इतै पै सुजान घनआनँद मिलौ न हाय,
कौन सी अमिलता की लागी जिय मैं जई।
तुम हूँ तें अधिक अमिल मन हमैं मिल्यौ,
तऊ मिल्यौ चाहै, दाहै जऊ जरियौ गई ॥३६८॥

सवैया

नीके नए अति जी के लगौं हैं सुधारे हैं तून प्रसून के सायक।
चौगुनी चोपनि तैसोई चाप चहोरि दै हाथ सज्यौ भटनायक।
पौन-तुरंग चढ़्यौ वनि यौं वनितानि अहेरैं कढ़्यौ दुखदायक।
हौ घनआनँद जान कहाँ रितुराज भयौ रतिराज-सहायक ॥३६९॥

राधे सुजान चितै* चित दै, हित मैं कित कीजति मान-मरोर है।
माखन तें मन कौंवरो है यह वानि न जानति कैसैं कठोर है।
साँवरे सौं मिलि सोहति जैसी कहा कहियै कहिवे को न जोर है।
तेरो पपीहा जु है घनआनँद है व्रजचंद पै तेरो चकोर है ॥३७०॥

उरे=दूर, पृथक्। मौन०=आप के निरूपण के लिए चुप रहना ही ठीक है, आप अनिर्वचनीय हैं। [३६८] जई = अंकुर। [३६९] चहोरि = सँभालकर। [३७०]

* इतै, खतै।

नित लाज-भरे हित-ढार-ढरे, निखरे-सुखरे सुखदायक हौ।
घनआनँद झूमि कटाछन सौं, रसपान-तृषाहि सहायक हौ।
जिय-बेधन कौं अनियारे महा, पै सुधाहि सु धारन लायक हौ।
घिरि घूँघट पैठत जान हियैं निपटै निवटे नटनायक हौ ॥३७१॥

राधा नवेली सहेली-समाज, मैं होरी को साज सजैं अति सोहै।
मोहन छैल खिलार तहाँ रस-प्यास-भरी अँखियानि सौं जोहै।
दीठि मिलैं मुरि पीठि दई हिय-हेत की बात सकै कहि को है !
सैननि ही बरस्यौ घनआनँद भीजनि पैं रँग रीझनि मोहै ॥३७२॥

वह माधुरियै सौं भरी मुसक्यानि, मिठास लहै क्यौं विचारो अमी।
अरु बंक बिसाल रँगीले रसाल विलोचन मैं न कटाछ कमी।
घनआनँद जान अनूपम रूप तैं रीति नई जिय माँझ रमी।
न सुनी कबहूँ सु लखी, चित चोरेई लेति लुनाइयै की लछमी ॥३७३॥

सब ठौर मिले, पर दूरि रहौ, भरि पूरि रहे जिहि रंग झिलौ।
इहि लायक हौ वहौ* नायक हौ सुखदायक हौ, पुनि पाय खिलौ ॥
घनआनँद मीत सुजान सुनौ कहूँ ऊखिल से कहूँ हेत हिलौ।
हम और कछू नहिँ चाहति हैं छिन कौं किन मानस-रूप मिलौ ॥३७४॥

मानस को बन है जग पै बिन मानस के बन सो दरसै सो।
जे बनमानस ते सर से तिन सौं मिलि मानस क्यौं सरसै हो।
हाय दई ! ढरि नेकु इतै सु कितै परसै जिहि ज्यौं तरसै मो।
चातिक-प्रान जिवाय दै जान हहा ! घनआनँद कौं बरसै जो ॥३७५॥

कौंवरो=कोमल। [३७१] निखरे०=साफ-सुथरे। निवटे=पूरे, पहुँचे हुए। [३७२] सैननिं=संकेतों से। [३७३] लुनाइयै०=लावण्यश्री, सौंदर्यलक्ष्मी। [३७४] झिलौ=लीन होते हो। ऊखिल=अपरिचित। हेत०=प्रेम ठानते हैं। मानस०=जिस रूप में मन आप को देखना चाहता है। [३७५] मानस=मनुष्य। मानस=मन। बन०=बनमानुस। सर०=साधारण

* बहु।

बात सुजानन की घनआनँद डारति आहि अचेत किये चित।
काननि बेधति पैठि कै प्राननि, दीसै नहीं* अकुलानि यहै† नित।
क्यों भरियै, करियै सु कहा, हमैं आनि बनी इन लोगन सौं इत।
भीर मैं हाय अकेले अधीर हैं रीझहि लै रिझवार गए कित॥३७६॥

चलिबे मधि बैठि रहे हौ कहा डग द्वै मग साँसहि सोधि चलौ।
किहि ठानहिं बास कहाँ पुनि सोइहि संग बिचारि कै रंग रलौ।
घनआनँद भीजहु रीझि सुजान महा रसपान कै पोष पलौ।
जग मैं छल सो बलि जीवन कौं कल सौं तुम ही किन ताहि छलौ॥३७७॥

जात चले उहि गाँव सबै जिहि ठावँ को ठीक न बूझत काहू।
कैसो मिलाप लियौ इन मौन मिले मन आनि अनेक उलाहू।
कौन के भौन रहे बसि गौन मैं आपनी आपनी चाह उमाहू।
आहि नहीं मधि सोई सुजान सु है घनआनँद ओर-निबाहू॥३७८॥

मंजुल बंजुल-पुंज-निकुंज अछेह छबीलो महारस-मेह तैं।
द्यौस मैं रैन सो चैन को ऐन, पै जोति-पग्यौ जगि दंपति-देह तैं।
हास-बिकास बिलास-प्रकास सुजान समान अदेह के तेह तैं।
भीजि रहे घनआनँद स्वेद, समीर दुलै बिजना भरि नेह तैं॥३७९॥

कबित्त

मद-उनमाद-स्वाद मदन के मतवारे,
केलि कै अबारि लौं सँवारि सुख सोए हैं।
भुजनि उसीसो धारि अंतर निवारि, जानु-
जंघनि सुधारि तन मन ज्यौं समोए हैं।

तलैया। मानस = मानसरोवर। [३७६] भरियै = दिन काटूँ। [३७७] ठानहिं = स्थान पर। जग० = संसार मैं मेरा यह जीवन छल (भ्रम) मात्र है, अपनी चतुराई से उसे आप ही क्यों नहीं छल लेते। [३७८] जिहि० = जिसके ठीक ठिकाने का पता किसी को नहीं। उलाहू = (उल्लास)उमंग। उमाहू = उत्साह। ओर-निबाहू = अंत तक निर्वाह करनेवाला। [३७९] बंजुल = अशोक।

* नई। † नितै।

सुपने सुरति पागैं महा चोप अनुरागैं,
सोए हूँ सुजान जागैं ऐसे भाव-भोए हैं।
छूटे बार टूटे हार आनन अपार सोभा,
भरे रस-सार घनआनँद अहो ए हैं ॥३८०॥

सवैया

बात के देस तैं दूरि परे, नियरे सियरे हियरे दुख दाहै।
चित्र की आँखिन लीनें विचित्र महारस-रूप-सवाद सराहै।
नेह कथै सठ नीर मथै हठ कै कठप्रेम को नेम निबाहै।
क्यौं घनआनँद भींजे सुजाननि यौं अमिले मिलिबो फिरि चाहै॥३८१॥

हिय की गति जानन-जोग सुजान हौ कौन सी बात जु आहि दुरी।
पटक्योई* परै यह अंकुर आँसलो† ऐसी कछू रस-रीति घुरी।
बिछुरैं कित सांति मिलै हूँ न होति, छिदी छतिया अकुलानि-छुरी।
तुम ही तिहि साखि‡ सुनौ घनआनँद प्यार निगोड़े की पीर बुरी॥३८२॥

नाहिं पुकार करै सुनि आहिन, को कित है केहि दोष लगैयै।
संगम पै बिछुरे मरियै, यहि भाँतिन क्यौं जियराहि जरैयै।
ओटनि-चोटनि चूर भयौ चित, मो बिन हो किन बाहिर ऐयै।
ह्वै घनआनँद मीत सुजान कहा अब हेत-सुखेत सुखैयै ॥३८३॥

आवत ही मन जान सजीवन ऐसो गयौ जु करी नहिँ लौटनि।
द्यौस कछू न सुहाय सखी, अरु रैनि बिहाय न हाय करौटनि।
अंग भए पियरे पट लौं सुरझै बिन ढंग अनंग सरौटनि।
हौ सुचितै घनआनँद पै हमैं मारति है बिरहागिनि औटनि ॥३८४॥

अछेह = अखंड। अदेह = कामदेव। तेह = प्रचंडता। [३८०] अबारि० = देर तक। भोए = युक्त। [३८१] कठप्रेम = वह प्रेम जो प्रिय के उदासीन होने पर भी किया जाता है। [३८२] पटक्योई = फूटा पड़ रहा है। आँसलो = वेदनावाला। [३८३] पुकार = आहों पर ध्यान देनेवाला कोई नहीं। [३८४]

* टपक्योई। † ओस लौं। ‡ साधि।

द्रुम-बेलि-महारस-केलि-पगे करि दंपति के हिय को हरनै।
कहि कौन सकै उहि बेस कछू जिहि राधिका मोहन हूँ बरनै।
जमुना-तट कोमल बालुका मैं छबि छाकि धरे मधुरे चरनै।
घनआनँद सो बनराज लसै मम प्राननि काज सदा सरनै ॥३८५॥

भाल लपेटी सुही जुही-माल सिँगार को साज बिराजति खोही।
पीरी पिछौरिया फट फबी मुरली-धुनि पूरि मलारहु मोही।
फूले कदंब-तरें करैं केलि सखा चहुँ ओर महा छबि सोही।
आजु सखी घनआनँद वाहि न जानति हौं ऽब कहौं कत तोही ॥३८६॥

स्याम-मनोहरता तमरूप कि सोहै महा घनआनँद सैनी।
गोपिन के दृग-तारनि की यह रासि किधौं हरि हेरत गैनी।
अंजन सों मनरंजन है ब्रजचंद-चकोरन कौं सुखदैनी।
भाव बढ़ै चित चाव चढ़ै रँग-रैनि किधौं रसराज की रैनी ॥३८७॥

कबित्त

अभिलाषी प्रिय के दृगनि प्रतिबिंबवारी,
मनि बिन्दु जामैं अद्भुत चित-चोरना।
किधौं साँवरे की गोरी भावना सरूप धार्‌यौ,
ताही मैं दिपति जान प्यारी छबि ओर ना।
प्यारे घनआनँद कौं लखि लालसानि भोई,
सातिक सिथिल होति नीवी बर-डोरना।
राग अनुराग भाग सुभग सुहाग-भीजी,
रीझनि छबीली झूलै सरस हिंडोरना ॥३८८॥

करौटनि = करवटैं बदलने मैं। सरौटनि = शिकन, सलवट। [३८५] मधुरे = प्रिय। बनराज = वृंदावन। [३८६] सुही = लाल। खोही = पत्तों की छतरी। पीरी० = पीला दुपट्टा। [३८७] सैनी = श्रेणी, पंक्ति, समूह। दृग-तार = पुतली। गैनी = मार्ग। रँग = आह्लाद। रैनि = रजनी या रैनी, वह गुल्ली जो सोने-चाँदी के तार खींचकर बढ़ाती है। रसराज = शृंगार (श्यामवर्ण)। रैनी = खूँटी। [३८८] छबि० = शोभा की पराकाष्ठा। सातिकत्त्विक = साभाव।

सवैया

कैसैं करौं गुन-रूप-बखान सुजान छबीले भरे हिय-हेत हौ।
औसर-आस लगे रहैं प्रान कहा बस जौ सुधि भूलि न लेत हौ।
चेटक हौ सब भाँतिन जू घनआनँद पीवत चातिक-चेत हौ।
रावरी रीझि न बूझि परै तनकौ मिलि क्यौं बहुतै दुख देत हौ ॥३८९॥

जान हौ ए जू जनाहु कहा, न गए कितहूँ जु कहाँ इत आयहौ।
दीसौ दुरे उर दाहत क्यौं उर तें कढ़ि यौं उर में कब छायहौ।
मोसौं बिछोह कै मोहि मया करि मो मधि रावरे सूधे सुभाय हौ।
ऐसी बियोग-दवागिनि कौं घनआनँद आय सँजोग सिरायहौ ॥३९०॥

दृग दीजियै दीसि परौ जिनसौं इन मोर-पखौवनि कौ भटकै।
मन दै फिरि लीजियै आपु नहीं जु तहीं अटकै न कहूँ मटकै :
करि बंदन दीन भनै सुनियै भ्रम-फंदन मैं कब लौं लटकै।
घनआनँद स्याम सुजान हरौ जिय-चातिक के हिय की खटकै ॥३९१॥

कबित्त

समै के सरूप को जथारथ है बोध ताहि,
आए सो हरष औ बिषादन दगन को।
प्यारो घनआनँद सुजान छायौ आँखिन में,
रस छाके ताके ताहि ठगिया ठगत को।
ताही प्यारो मिलै जौ बिचारै सो तौ ताहू मधि,
ताहि रंग ढंग राखैं सुमन पगत को।
ऐसी दसा भाग्यौ भाग जागै जौ जगाय भेटै,
प्रेममै जगत जेहि प्रेम मैं भगत को ॥३९२॥

नीबी = फुफुँदी। [३८९] चेटक = मायावी। चेत = चेतना। [३९०] जान = ज्ञानी। सिरायहौ = ठंढी करोगे। [३९१] मोर० = मोरपंख की आँखें, जो देख नहीं सकतीं। मटकै = नाचे, चंचल बना रहे। खटक = वेदना। [३९२] ठगिया = ठग। प्रेममै० = जिसके प्रेमी भक्त के लिए सारा संसार प्रेममय दिखाई

सवैया

प्राननि प्रान हौ, प्यारे सुजान हौ, बोलौ इतै पर पीरक हौ क्यौं।
चेटक-चाव दुरौ उघरौ, पुनि हाथ लगे रहौ न्यारे गहौ क्यौं।
मोहन रूप सरूप-पयोद सौं सींचहु जौ, दुख-दाह दहौ क्यौं।
नावँ घरे जग मैं घनआनँद नावँ सम्हारौ तौ नावँ सहौ क्यौं ॥३६३॥

सोरठा

जौ लौं जगै न मूल, तौ लौं सोवै सुरति-सुख।
वही होत अनुकूल, तौ भूलै सुख-सुधि सबै ॥३६४॥

कवित्त

वेई कुंज-पुंज जिन तरें तन बाढ़त हो,
तिन छाँह आएँ अब गहन सो गहिगौ।
सुरति-सुजान-चैन-बीचिन सौं सींची जिन,
बही जमुना, पै हेली! वह पानी बहिगौ।
वहै सुख-स्रम-स्वेद-समै को सहाय पौन,
नाहिं छियै देह, दैया महा दुख दहिगौ।
वेई घनआनँद जू जीवन को देते तिन
ही को नाम मारिनि के मारिबे कौं रहिगौ ॥३६५॥

इतै अनदेखें देखिबेई जोग दसा भई,
तैं तो अनाकानी ही सौं बाँध्यौ दीठि-तार है।
जान घनआनँद बिनाऽब* सुबनक ह्वेरें,
धीरज हिरात सोच सूखत बिचार है।
छीन अति दीनन कौं मोहन अमोही रच्यौ,
महा निरदई हमैं मिल्यौ करतार है।

देता है। [३६३] पीरक = पीड़ा देनेवाले। [३६४] मूल = अर्थात् ईश्वर।
[३६५] गहन = ग्रहण की दुःखदायिनी छाया। बीचि = लहर। [३६६]

तेरैं बहरावनि रुई है कान बीच, हाय
विरही विचारिनि की मौन मैं पुकार है ॥३९६॥

सवैया

लरिकाई-प्रदोष मैं टोड़ लग्यौ हँसि रोय सु औसर खोय दयौ ।
बहुख्यौ करि पान विषै-मदिरा तरुनाई-तमी मधि सोय गयौ ।
तजि कै रसमै घनआनँद कौं जग-धूँधख्यौ चातिक-नेम लयौ ।
जड़ जीव न जागत रे अजहूँ किनि, केसनि ओर तें भोर भयौ ॥३९७॥

मन पारद लौं न रहै थिर ह्वै छिन एक मैं कोटिक ढार ढरै ।
धर अंबर खूँदि खगै न कहूँ जियरा इन सोचन बीच जरै ।
घनआनँद जौ गुरु-ज्ञान-जरी-रस रंचक या मधि आनि परै ।
मिटि जाहिँ विचार-विकार सबै तब सुद्ध रसायन-रूप धरै ॥३९८॥

साँसहि साधि सुधारि महागुन भाव अनेक सो एक से पोहै ।
दै मन मंजु सुमेर तहाँ बिबि आर गतागत कै न बिछोहै ।
फेर परै न कहूँ निज नाम सौं फेरि अनूपम रूपहि जोहै ।
या विधि जो सुमिरै घनआनँद मो मन साधु-सिरोमनि सो है ॥३९९॥

खंजन ऐसे कहा मनरंजन, मीननि लेखौं कहा रस-ढार सो ।
कंजनि लाज को लेस नहीँ, मृग रूखे, सने ये सनेह के सार सो ।
मोतिन के यह पानिप-जोति न, बान-जिवाई न जानत मार सो ।
मीत सुजान सिरावन मो दृग छै घनआनँद रंग अपार सो ॥४००॥

बहरावनि = बहलाना या बहरापन । [३९७] प्रदोष = संध्याकाल । टोड़ = (तुंद) उदर । टोड़ लग्यौ = खाने मैं लगा रहकर। विषै = विषय, भोग-विलास । तमी = रात्रि। धूँधख्यौ = धुंध, माया से आच्छन्न। केसनि = वृद्धावस्था के उज्ज्वल केश ज्ञान का प्रभात होने की सूचना दे रहे हैँ। [३९८] पारद = पारा। धर = पृथ्वी । अंबर = आकाश । खगै न = लगता नहीँ । रसायन = वह औषध जो जरा और व्याधि दूर करनेवाली हो । [३९९] गुन = गुण ; तागा । सुमेरु = माला के सिरे पर की बड़ी गुरिया। बिबि = (द्वि) दोनौँ । गतागत = जाना आना । [४००] बान० = बाण मारकर जिलाना । मार = काम । [४०१] निहो-

मोहिं निहोरिहै तू जु घरीक मैं, मेरो निहोरिबोई किन मानति ।
जासौं नहीं ठहरै ठिक मान को, क्यौं हठ कै सठ रूठनो ठानति ।
कैसी अजान भई है सुजान हे, मित्र के प्रेम-चरित्र न जानति ।
सो मुरली घनआनँद की तिनि तान भरी, कित भौंहनि तानति ॥४०१॥
कान्ह ! परे बहुतायत मैं अकलैन की बेदन जानौ कहा तुम ।
हौ मनमोहन मोहे कहूँ न बिथा बिमनैन की मानौ कहा तुम ।
बौरे बियोगिन आप सुजान ह्वै हाय कछू उर आनौ कहा तुम ।
आरतिवंत पपीहन कौं घनआनँद जू पहचानौ कहा तुम ॥४०२॥

कबित्त

पानिप अनूप रूप जल कौं निहारि मन,
गयौ हो बिहार करिबे कौं चाय ढरि कै ।
पर्यौ जाय रंगनि की तरल तरंगनि मैं,
अति ही अपार ताहि कैसें सकै तरि कै ।
धीर-तीर सूझत कहूँ न घनआनँद यौं,
बिबस बिचारो थक्यौ बीच ही हहरि कै ।
लेस न सम्हार गहि केसनि मगन भयौ,
बूड़िबे तें बच्यौ को सिवार कौं पकरि कै ॥४०३॥

सवैया

–कहौ कछु और, करौ कछु और, गहौ कछु और, लखावत औरै ।
मिलौ सब रंग कहूँ नहिं संग, तिहारी तरंग तकैं मति बौरै ।
गढ़ौ बतियानि, मढ़ौ घतियानि, डढ़ौ छतियानि, निदान की ठौरै ।
महा छल छाय, खुले हौ बनाय, कितै घनआनँद ! चातक दौरै ॥४०४॥

कबित्त

इंदीबर-दलनि मिलाय सोनजुही गुही,
सुही माल हाल रूप गुन न परै गनै ।

रिहै = खुशामद करेगी । ठिक = स्थिरता । सठ० = बुरा रोष । [४०२] अकलैन = अनन्य प्रेमियों की। बिमनैन = विमनस्कों की । [४०३] सिवार = केशों का उपमान । [४०४] निदान = रोग के कारण की पहचान । [४०५]

पीरियै पिछौरी छोर सीस पै उलटि राखैं,
केसर विचित्र अंगरंग भाव सों सनै।
मुरली मैं गौरी धुनि टेरि घनआनँद ह्वै,
तेरे द्वार टहकनि ऊधम घने ठनै।
हाहा हे सुजान! आजु दीजै प्रान-दान नेकु,
आवत गुपाल देखि लीजै बन तैं बनै॥४०५॥

भएँ अनभयो सो सरूप देखियत तेरो,
ताहि तेरी साँस ही की गति साँची साखि रे।
जीवै जग मारि राख्यौ झूठियै प्रतीति साँच,
साँचै झूठ जानि कछू औरै अभिलाखि रे।
कृपाबल पैयै कैसें पगुहीन धैयै निधि,
ऐयै जैयै भूलनि सुधै सुधाहि चाखि रे।
जीवन मरत जौ पै दूरि घनआनँद है,
जीवत तौ मीचु सौं समीप करि राखि रे॥४०६॥

सवैया

ब्रजनाथ कहाय अनाथ करी, कित है हित-रीति मैं भाँति नई।
न परेखो कछू, पै रह्यौ न परै, ठकुराइति-प्रीति अनीतिमई।
घनआनँद जानहिं को सिखवै, सुखई रस सींचि जु बेलि बई।
सुधि-भूल सबै हिय सूल सलै हम सौं हरि ऐसे भए ए दई॥४०७॥

कबित्त

बासर बसंत के अनंत ह्वै कै अंत लेत,
ऐसे दिन पारै जु निहारै जिय राति है।
लतनि की फूलनि तमालनि पै झूलनि कों,
हेरि हेरि नई नई भाँति पियराति है।

सुही = लाल। गौरी = गौरी राग। टहकनि = रह रहकर शोर मचाकर।
[४०६] धैयै = दौड़ूँ। भूलनि० = सुध को भूल जाना। मीचु = मृत्यु।
[४०७] भाँति = ढंग। ठकुराइति० = बड़ों की प्रीति। [४०८] राति =

प्यारे घनआनँद सुजान ! सुनौ बाल-दसा,
चंदन-पवन तैं पजरि सियराति है।
औसर सम्हारौ न तौ अनआयबे के संग,
दूरि देस जायबे कौं प्यारी नियराति है ॥४०८॥

फागुन महीना की कही ना परै बात दिन-
रातैं जैसैं बीतत सुने तैं डफ-घोर कौं।
कोऊ उठै तान गाय, प्रान बान पैठि जाय,
हाय चित बीच, पै न पाऊँ चितचोर कौं।
मची है चहल चहूँ दिसि चोप चाँचरि सौं,
कासौं कहौं सहौं हौं वियोग-झकझोर कौं।
मेरो मन आली वा बिलासी बनमाली बिन,
बावरे लौं दौरि दौरि परै सब ओर कौं ॥४०९॥

दोहा

गोरी ! तेरे सरस दृग, किधौं स्यामघन आप।
दावानल सो पान ये करत विरह-संताप ॥४१०॥

सवैया

घनआनँद-रूप सुजान सनेही पै, आपु ही आपुन-त्यौं बरसौ।
इत मो मधि मेरियै रीति रचौ, उत वाहि निबाहिनि सौं सरसौ।
रसनायक मायक, लायक हौ, कितहूँ झर लाय कहूँ तरसौ।
अब हौं जु कहौं सु तौ दूसरे कौं तुम ही सब रंग मिले दरसौ॥४११॥

इक तौ जग-माँझ सनेही कहाँ, पै कहूँ जौ मिलाप की बास खिलै।
तिहि देखि सकै न बड़ो बिधि क्रूर, वियोग-समाजहि साजि पिलै।
घनआनँद प्यारे सुजान सुनौ, न मिलौ तौ कहौ मन काहि मिलै।
अमिले रहिबो लै मिले तैं कहा, यह पीर मिलाप मैं धीर गिलै॥४१२॥

अँधेरा ही अँधेरा। पजरि० = प्रज्वलित होकर ठंढी पड़ जाती है। [४०९] घोर = ध्वनि। चहल = चहल-पहल। [४१०] स्यामघन = श्रीकृष्ण ; काले-बादल। [४११] तरसौ = त्रस्त करते हो। [४१२] बास = गंध। पिलै =

मनमोहन तौ अनमोह करौ, यह मोहित होत फिरै सु कहा।
अरु जौ अपढार ढरै न ढरै, गुन त्यौं तकि लागत दोष महा।
घनआनँद मीत सुजान सुनौ चित दै इतनी हित-बात हहा।
जिय जाचक ह्वै जस देत बड़ो, जिन देहु कछू किन लेहु लहा ॥४१३॥
अंतर हौ किधौं अंत रहौ, दृग फारि फिरौं कि अभागनि भीरौं।
आगि जरौं अकि पानि परौं अब कैसी करौं हिय का विधि धीरौं।
जौ घनआनँद ऐसी रुची, तौ कहा बस है अहो प्राननि पीरौं।
पाऊँ कहाँ हरि हाय तुम्हैं, धरनी में धँसौं कि अकासहिं चीरौं ॥४१४॥

कवित्त

होनि सौं मढ़ो पै अनहोनि जाके बीच भरी,
जामैं चलि जायबे बनाई रहिठानि है।
साँचो झूठो देखियै सुपेखनै लै पेखियै है,
सोई लखि जैहै जाहि पूरी पहचानि है।
वही घनआनँद ह्वै पोखत सुजाननि कौं,
नीर न्यौरि छीर पीयै हंसनि की बानि है।
कैसो अचरजखानि दीसि पर्यौ जग जानि,
जाको लाभ हानि जाकी उपजै बिलानि है ॥४१५॥

सवैया

घर ही घर चौचँद-चाँचरि दै, बहु-भाँतिन रंग रचाय रह्यौ।
भरि नैन हियैं हरि सूझि सुम्हार सबै करि नाक नचाय रह्यौ।

टूट पड़ता है। धीर० = धैर्य को निगल जाती है। [४१३] अपढार = बेढंगे तौर से ढलनेवाला। लहा = लाभ। [४१४] अभागनि० = अभाग्य को रोकूँ। अकि = अथवा। [४१५] होनि = अस्तित्व, सत्ता। अनहोनि = अनस्तित्व, असत्यता। रहठानि = रहने का स्थान। साँचो० = यह असत् जगत् सत् दिखाई पड़ता है। सुपेखनै० = देखने को तो यह सुंदर तमाशा है, पर इसे सब देख नहीं पाते, जिसकी ज्ञानदृष्टि पूर्ण होती है वही इस खेल को देख सकता है। उपजै० = इसकी उपज ही नाश है। [४१६] चौचँद = बदनामी। करि० =

घनआनँद पै ब्रज-गोरिनि कों नख तें सिख लौं चरचाय रह्यौ ।
लखि सूनो सकै किन रावरो ह्वै बिरहा नित फाग मचाय रह्यौ ॥४१६॥
मनमोहन नावँ रहै सु करौ, पन की पटिहै वह जौ चटिहै ।
बहु ओरनि लै भटकावत क्यौं, अटकावत क्यौं न कहा घटिहै ।
घनआनँद मीत सुजान सुनौ अपनी अपनी दिसि को हटिहै ।
तुम ही तन खोरि लगाइहै जू दृग मोरि कै जौ हम त्यौं डटिहै॥४१७॥

कबित्त

रास-सिंधु-रस दसौं दिसनि उफनि चल्यौ,
तान की चहल चोप आप-आपनी बनी ।
सुघाई सौं भरे सुर साँचे साधै लघु गुरु,
भीजी धुनि सुनि मति राग-रंग है रची ।
पौन गौन थकि औ जड़कियै जगत भयौ,
कौन कहि सकै स्वाद मौन कछू लै पची ।
रीझि,घनआनँद रही है छकि छाय तहीँ,
पावै अब रीझनि कहूँ न रंचकौ बची ॥४१८॥

सवैया

हम सौं पिय साँचियै बात कहौ मन जौ मनत्यौ अरु नाहिं कहूँ ।
कपटी निपटै, हिय दाहत हौ, निरदै जु दई डरु नाहिं कहूँ ।
सब ही रँग मैं घनआनँद पै बस-बात परे परु नाहिं कहूँ ॥
उघरौ, बरसौ, सरसौ, तरसौ, सब ठौर बसौ घरु नाहिं कहूँ ॥४१९॥

कबित्त

मन की जनाऊँ ताके मोहन ही है हो कान्ह,
जानराय गुनहिं लगाऊँ कैसे दोष जू ।

नाक के बल । [४१७] पन की० = इसकी प्रतिज्ञा पूरी हो जायगी । घटिहै = समाप्त हो जायगो । खोरि = दोष । हम० = अर्थात् मरणासन्न हो जायगी । [४१८] चहल = चहल-पहल । जड़कियै = जड़क्रियावाला, स्तब्ध । मौन० = मौन ने ही वह स्वाद कुछ पचा पाया । वह अनुभवगम्य है, अनिर्वचनीय है । [४१९] मन० = आप का मन कहीं अन्यत्र अनुरक्त नहीं है। [४२०] जान-

बिना ही कहें करौ तौ कहिबे की कहा रही,
कहें क्यौं न करौ दीन-प्रान-परितोष जू।
तुम्हैं रिझवार जानि खीझ सौं कहत प्यारे,
हाहा कृपानिधि नेकौ मानियै न रोष जू।
आनँद के घन झूमि झूमि कित तरसावौ,
बरसि सरसि कीजै हेत-लता-पोष जू ॥४२०॥

कौन कौन अंगन के रंगन मैं राँचै, मन-
मोहन हो सोई सुख मुख पुनि ल्यावई।
मौन मिहीँ बात है समुझि कहि जानै जान,
अमी काहू भाँति को अचंभैं भरि प्यावई।
सोवनि जगनि याकी मूरछा सचेत सदा,
रीझि घनआनँद निबेरै याहि न्यावई।
कहै कोऽब मानै, पहचानै कान नैन जाके,
बात की भिदनि मोहिँ मारि मारि ज्यावई ॥४२१॥

सवैया

आँखिन मूँदिबो बात दिखावत, सोवनि जागनि बात ही पेखि लै।
बात-सरूप अनूप अरूप है, भूल्यौ कहा तू अलेखहि लेखि लै।
बात की बात सुबात बिचारिबो है छमता सब ठौर बिसेखि लै।
नैननि-काननि बीच बसे घनआनँद मौन-बखान सु देखि लै ॥४२२॥

कवित्त

सुधि करैं भूल की सुरति जब आय जाय,
तब सब सुधि भूलि कूकौं गहि मौन कौं।
जातें सुधि भूले सो कृपा तें पाइयत प्यारे,
फूलि फूलि भूलौं या भरोसैं सुधि हौन कौं।

राय = ज्ञानियों मैं श्रेष्ठ। [४२१] मिहीँ = सूक्ष्म, गूढ़। कान० = जिसके नेत्रों मैं कान हों, जो देखकर ही मेरी मौन पुकार सुन ले। [४२२] अलेख =

मेरी सुधि-भूलहि बिचारियै सुरतिनाथ !
चातक उमाहै घनआनँद अचौन कौं ।
ऐसी भूल हू सौं सुधि रावरी न भूलै क्यौं हूँ,
ताहि जो बिसारौ तौ सम्हारौ फिरि कौन कौं ॥४२३॥

सवैया

सुधि भूलि रही,मिलि ज्यौं जलदै अब यौं मन क्यौं करि फूलिहै जू।
मिटिहै तबहीं तिहि ताप जबै सुधि आवन की सुधि भूलिहै जू।
घनआनँद भूलनि की सुधि कौं मति बावरी ह्वै रही भूलिहै जू।
सुधि कौन करै इन बातन की कबहूँ तौ कृपा अनुकूलिहै जू॥४२४॥

कवित्त

रसिक रँगीले भली भाँतिनि छबीले घन-
आनँद रसीले भरे महासुख-सार हैं।
कृपा-घन-धाम स्यामसुंदर सुजान मोद-
मूरति सनेही बिना बूझैं रिझवार हैं।
चाह-आलवाल औ अचाह के कलपतरु,
कीरति-मयंक प्रेम-सागर अपार हैं।
नित हित-संगी, मनमोहन त्रिभंगी, मेरे
प्राननि अधार नंदनंदन उदार हैं॥४२५॥

सवैया

जगि सोवनि मैं जगियै रहै चाह बहै बरराय उठै रतिया।
भरि अंक निसंक ह्वै भेटन कौं अभिलाष-अनेक-भरी छतिया।
मन तें मुख लौं नित फेर बड़ो कित ब्यौरि सकौं हित की बतिया।
घनआनँद जीवन-प्रान लखौ सु लिखी किहि भाँति परै पतिया॥४२६॥

कवित्त

थिरता अथिर सोई थिर देखियत देखौ,
सब ही के जिय नेकौ मीच सौं न है चिन्हारि।

ब्रह्म। [४२३] अचौन = आचमन, पीना। [४२४] फूलिहै = समाप्त हो जायगी। [४२५] अचाह० = जिसकी चाह करनेवाला कोई न हो उसके लिए

होनि सही ह्वैहैं अनहोनि हूँ वही है, ऐसी
होनि अनहोनि कौं न सोचै कोउवै विचारि।
दोऊ मिटि गए तें रहै जो सुख, कौन कहै,
ऐसी जाहि सूझै दीजै प्रान तेहि चूकि वारि।
उघरनि छावनि सुजान घनआनँद मैं,
उघरि छए हैं पै पसारि आपनो पसारि ॥४२७॥

सवैया

पीठि दियैं सब दीठि परैं निमुहैं, जग ईठनि कौन सकेरै।
दौरि थक्यौ जित ही तित ही तिनहीं चितयौ न कहूँ हित हेरै।
कागर-भौन लै आगर मौन दै बात बसी पै सुजानहिं टेरै।
नैननि काननि सौंहीं सदा घनआनँद औरनि सौं मुख फेरै ॥४२८॥

प्रेम की पीर अधीर करै हिय, रोवनि कौं दृग आँसुनि ढारत।
चाहनि चोप उमाह उमंग पुकारहि यौं नित प्रान पुकारत।
हौ घनआनँद छाय रहे कित यौं असम्हारहि नाहिं सम्हारत।
एजू सुजान जनाऊँ कहा बिन आरति हौ, अति या विधि आरत ॥४२९॥

हम आपनो सो बहुतेरो करैं कि बचैं अपलोक तें* एकौ घरी।
न रहै बस नैसिक तान भिदैं छिदै कान ह्वै प्रान सुतीखी खरी।
घनआनँद बौरति दौरति ढौरति ढूँढ़ियो पैयत लाज न री।
कित जाहिं कहा करैं कैसें भरैं यह कान्ह की बाँसुरी बैर परी ॥४३०॥

कवित्त

नेही नैन आरत पपीहन की चाह भरयौ,
पानिप अपार धरैं जोबन अदेह को।

कल्पवृत्त हैं। [४२६] बरराय० = बर्राने लगती है। [४२७] मीच = मृत्यु। चूकि = भूलकर, बिना बिचार किए ही। [४२८] निमुहैं = बिना मुँह के। सकेरै = सकेलै, एकत्र करे। आगर = अत्यंत। [४२९] आरति० = आप

* अवलोकनैं।

उठ्यौ काहू भाँति धीर ओरनि अपूरब पै,
इतै पै फुहीनि चैन प्रान मन देह को।
दोउ अद्‌भुत देखौ रसिक सुजान क्यौं न,
लेहिँ देहिँ स्वाद-सुख आनँद अछेह को।
मोहिँ नीको लागत री राधे तेरे लोने इन
अंग अंग अररात रंग नेह-मेह को ॥४३१॥

सवैया

बरसैं तरसैं सरसैं अरसैं न कहूँ दरसैं इहि छाक छईं।
निरखैं परखैं करखैं हरखैं उपजीं अभिलाषनि लाख जईं।
घनआनँद ही उनए इन मैं बहु भाँतिनि ये उन रंग रईं।
रसमूरति स्यामहिँ देखत ही सजनी अखियाँ रसरासि भईं ॥४३२॥

छप्पय

चलनि रही मँडराय रहनि कौं चलनि चल्यौ तू।
छल सो जीवन देखि तऊ तिहि छलनि छल्यौ तू।
वृथा बाद पचि मर्‌यौ सबद-सोधौ न धर्‌यौ तू।
अंत गहैगो मौन कह्यौ कबहूँ न कर्‌यौ तू।
अजौं चेति जड़ जीव किनि कित आयौ जैबो कहाँ।
चित चलाय नित ह्वै अचल, घनआनँद चलिबो जहाँ ॥४३३॥

सवैया

जिय सूझ करौ हठि बूझत हौं कि वृथा रुचि बीच पच्यौ परि क्यौं।
अरु भूलि गई सुधि ऊतरु की अपराधन तैं न बच्यौ डरि क्यौं।
घनआनँद तौ सुनि लेहु अबै सुनै जाय है साँच खच्यौ ढरि क्यौं।
कित कौं करतूतिहि खोरि लई नित या बिधि मोहिँ रच्यौ मरि क्यौं ॥४३४॥

बेदना से रहित हैं। [४३०] अपलोक = बदनामी। [४३१] अदेह = रूप-हीन। अपूरब = अपूर्व, अनुपम; पूर्व से इतर दिशा। अछेह = अछेद्य; अखंड। [४३२] जईं = अंकुर। रईं = अनुरक्त हुईं। [४३३] छल = भ्रांति, मिथ्या। सबद० = वास्तविक बात की खोज। चित० = चित्त मैं विचार करके। [४३४]

हारे उपाय, कहा करौं हाय, भरौं किहि भाय मसोस यौं मारै।
रोवनि आँसू न नैननि देखैंऽरु मौन मैं ब्याकुल प्रान पुकारै।
ऐसी दसा जग छायौ अँधेर बिना हित-मूरति कौन सहारै।
है तिन ही की कृपा घनआनँद हाथ गहै पिय-पायनि पारै ॥४३५॥
जिहि पाय की धूरि लौं जाय न पौन, करै इहि भाय कौं गोन-समै।
तिहि दूरि किती कहि औधि बिचारि, बिचारत क्यौं न कहा बिरमै।
गति बूझि परी, किन सूझत रे, कहिबो न छिपै किहि धा सुगमै।
घनआनँद आहि कृपा नियरो भजि लै रसमै तजि दै बिसमै ॥४३६॥
रस-रंग-भरी मृदु बोलनि कौं कब काननि पान करायहौ जू।
गति हंस-प्रसंसित सौं कब धौं सुख लै अँखियान मैं आयहौ जू।
अभिलाषनि पूरित ह्वै उफन्यौ मन तैं मनमोहन पायहौ जू।
चित-चातक के घनआनँद हौ रटना पर रीझनि छायहौ जू ॥४३७॥

कबित्त

बीतनि को रूप झूठ हेरि हेरि गयौ बीते,
ऐसें जागि जग मैं अहा कहा बिताव रे।
ठहरनि बीतनि तैं बहुरि अहुरि नीकैं,
नह्यो सो न हियो मारि संसय रिताव रे।
कौन नींद सोवत है औसर क्यौं खोवत है,
हेत-बात सुनि हाहा चेतहि चिताव रे।
ऐसें रंग रचै जौ बचै तौ घनआनँद ह्वै,
नचै कैसें ताप आप जीवन हिताव रे ॥४३८॥

सवैया

चितयौ जिहि भाँति, सकौं सहि क्यौं, रहि क्यौं हूँ परै न हितात हियौ।
सु न जानति जीवति कौन सी आस, बिसास मैं प्रेम को नेम लियौ।

पच्यौ = परेशान हुआ। साँच० = सत्य असत्य कैसे होगा। मरि० = कष्ट सहकर। [४३५] सहारै = सहारा दे। [४३६] धा = प्रकार, तरह। [४३७] रस = प्रेम ; जल। [४३८] बीतनि = क्षणभंगुरता। बहुरि० = अहुर बहुरकर, किसी प्रकार बचकर। नह्यो = लगाया। रिताव = खाली कर, दूर कर। [४३९]

घनआनँद कैसे सुजान हौ जू उहि सूखनि सींचि न छाँह छियौ।
करी बावरी रावरी बोलनि हौं कहि प्यारी बनाय कै प्यार कियौ॥४३९॥

कबित्त

सबद-सरूप वहै जानन सुनन चहै,
अचिरज चहै और होत सुर लाग मैं।
बेद-भेद ताको जानि पर्‌यौ यौं सुजाननि कौं,
अगह अगाह नाव तिन हौ बिभाग मैं।
पूरि तानै ठानै पहचानै घनआनँद जौ,
पाँवड़े करत रीझि प्रानपति आगमैं।
सूछम उसास गुन बुन्यौ ताहि लखै कौन,
पौन पट रँग्यौ देखियत रंग-राग मैं॥४४०॥

सवैया

यह नेह तिहारो अनोखो लग्यौ, जु पर्‌यौ चित रूखो सबै तन ही।
बिसरै छिन जो सु करै सुधि तो, गुन-माल बिसाल गुनै गन ही।
हित-चातिक-प्रान, सजीवन जान! रचे बिधि आनँद के घन ही।
दरसौ परसौ बरसौ सरसौ मन लै हू गए पै बसौ मन ही॥४४१॥

कबित्त

मिलन तिहारो अनमिलन मिलावत है,
मिलैं अनमिले कछू करि न सकौं तरक।
जियौं तुम हीं तैं बिना तुम्ह मरि मरि जावँ,
एक गावँ बसि ऐसी जियँ राखियै मरक।
देखि देखि ढूँढ़ौं दुख-दसा देखि मिलौं हाहा,
मीत औ बिसासी यहै कसकै नई करक।

न हितात = अच्छा नहीं लगता। बनाय कै = कृत्रिम। [४४०] सुर = ध्वनि। लाग = प्रीति। आगमैं = आगमन मैं। गुन = सूत। [४४१] तन = ओर। बिसरै० = विस्मृत दशा के क्षण तेरी ही स्मृति मैं लगे रहते हैं। [४४२] मरक=

आनँद के घन हौ सुजान कान खोलि कहौं,
आरस जग्यौ है कैसैं सोई है कृपा-ढरक ॥४४२॥

सवैया

औगुन ही गुन मानि महा, अभिमान भर्यौ अति उत्तम नीच मैं।
नीरसता सरस्यौ नित पै अरस्यौ सु कहूँ सनि आरस-कीच मैं।
ऐसो अचेत जु साँच कियौ भ्रम, जीवन को सुख साधत मीच मैं।
ज्वाल जर्यौ अब होत हर्यौ हरि नेकु कृपा घनआनँद-सींच मैं ॥४४३॥
आयौ महारसपुंज भर्यौ घनआनँद रूप-सिँगार के मौरैं।
सींचत है हिय-देस सुदेस अपूरब आँखिनि टानत ठौरैं।
मोहन-बाँसुरिया सी बजै मधुरे गरजैं धुनि मैं मति बौरैं।
आज की मोरन की सजनी चित दै सुनि लै कछु बोलनि औरैं ॥४४४॥
धर अंबर तें जु कछू लखियै सु सबै गुन-बीत निरूप बन्यौ।
ठहरै न कछू इहि कारन दीठि महा चित चेटक टान ठन्यौ।
घनआनँद तौ सहजै सब जान तकौ रहि जानि जौ बोधि जन्यौ।
उनकी इनकी सुधि भूलि भली जग फागुन-भोर को भेद भन्यौ ॥४४५॥

दोहा

सहज मिलन बिछुरन सहज, सहज सकल व्यवहार।
सहज रचै सोई बचै, वृथा पचै है सार ॥४४६॥
सुख सुदेस को राज लहि, भए अमर अवनीस।
कृपा कृपानिधि की सदा, छत्र हमारे सीस ॥४४७॥
हरि तुम सौं पहचानि को, मोहिं लगाव न लेस।
इहि उमंग फूल्यौ रहौं, बसौं कृपा के देस ॥४४८॥
मोसे अनपहचान कौं, पहचानै हरि कौन।
कृपा-कान मधि-नैन ज्यौं, त्यौं पुकार मधि-मौन ॥४४९॥

खिंचाव। करक = पीड़ा। [४४३] भ्रम = मिथ्या। [४४४] मौरैं = मुकुट से। सुदेस = उत्तम। [४४५] गुन-बीत = गुणरहित। निरूप = रूपहीन। चेटक = माया, जादू। बोधि० = बोध उत्पन्न हो गया हो। [४४६] सहज = सरल,

कबित्त

दीनों जग जनम, जनाइँ जे जुगति आछी,
कहा कहौं कृपा की ढरनि ढरहरे हौ।
आनँद-पयोद ह्वै सरस सींचै रोम-रोम,
भाव-निरभर लै सुभाव-गहभरे हौ।
जीवन-अधार प्यारे आँखिन मैं आय छाय,
हाय हाय अंग-अंग-संग रस ररे हौ।
ऐसें क्यौं सुखैयै सोच-तापनि, हरयौ कै हरी,
जैमैं या पपीहा-दीठि नीठि हू न परे हौ ॥४५०॥

सोरठा

घनआनँद रस-ऐन कहौ कृपानिधि कौन हित।
मरत पपीहा-नैन, दरसौ पै बरसौ नहीं ॥४५१॥

सवैया

रस चौचँद चाँचरि फाग मची, लखि रीझि बिकानि थकी जु चकी।
समुहाय तहीँ हरि भामिनि त्यौं पिचकी भरि ताक तकी कुच की।
उत मूठि-गुलाल उठै उकसें सु लगे पहिलैं छतिया दुचकी।
घनआनँद घूमनि झूमि रहे गुलचाइल लै अचकाँ उचकी ॥४५२॥

कबित्त

देह सौं सनेह सो तौ ह्वै है खेह खिन ही मैं,
नाते सब हाते परि रहैगो नहीं रे नाम।

स्वाभाविक। सार = कठिन। [४४८] कृपा० = कृपा मैं ही। [४४९] कृपा० = जैसे आप के नेत्रौं मैं कृपा के कान लगे हैं वैसे ही मेरी पुकार मौन मैं है। आप देखकर मेरी स्थिति समझते और बिना कुछ कहे ही कृपा करते हैं। [४५०] ढरहरे = द्रवीभूत। आनँद = आनंद के बादल; घनानंद। निरभर = पूर्ण; निर + भर = जो भरा न हो। गहभरे = भली भाँति भरे। नीठि = किसी प्रकार भी। [४५१] ऐन = घर। हित = प्रेम या लिए। [४५२] खेह = धूल।

फूलै भ्रम भूलै कित मोह* फंदनि तू,
तनकौ सम्हारै किन प्रानन के संगी स्याम।
जागत हू सोवै खोवै समै सो रतन बौरे,
पाय घनआनँद तचै अचेत काम धाम।
आएँ औधि-औसर उसासहि उसरि जैहै,
धरेई रहैंगे धनधाम धंधे धूमधाम ॥४५३॥

सवैया

संग लगे फिरौ हौं अलगे रहौ मोहुवै गैल लगावत क्यों नहीं।
नीरस राचनि ही सरसौ रस-मूरति प्रीति पगावत क्यों नहीं।
ढीलो पर्‌यौ तुम तैं घनआनँद हौं गुनरासि खगावत क्यौं नहीं।
जागत सोवत से हौ कहा कहौं सोवत मोहिं जगावत क्यौं नहीं ॥४५४॥

हाते = दूर होकर। काम० = कामना के वर में। उसरि० = छिन्नभिन्न हो जायगा। धूम० = धूम-धक्कड़। [४५४] गुन = गुण; डोर। खगावत = मिलाते क्यौं नहीं; कसते क्यौं नहीं।

*भ्रम।

कृपाकंद-निबंध

कवित्त

नेकु उर आएँ ही बहुत दुख दूरि जात,
ताप बिन ताहि आप चंदन कृपा करै।
लगनि दै लागनि दै पाग अनुरागनि दै,
जागनि जगाय लैकै मंदन कृपा करै।
बानी के बिलास बरसावै घनआनँद ह्वै,
मूढ़ हू प्रगट गूढ़-छंदन कृपा करै।
आरति-निकंदन मिलावै नंदनंदन सु,
आनँदनि मेरी मति बंदन कृपा करै ॥१॥

परे रहौ करम धरम सब धरे रहौ,
डरे रहौ डर कौन गनै हानि लाहे कौं।
लोक परलोक जो कछू हैं तौ न छूँहैं हम,
छीलर रुचै न छीरसिंधु अवगाहे कौं।
महा घनआनँद घमड़ पाइयत जहाँ,
सोच-सूखा परौ करौ कर्म-ढंख-दाहे कौं।
ऐसी रसरासि लहि उलह्यौ रहत सदा,
कृपा-दिखवैया काहू दिसि देखै काहे कौं ॥२॥

सवैया

हरि के हिय मैं जिय मैं सु बसै महिमा फिरि और कहा कहियै।
दरसै नित नैननि बैननि ह्वै मुसक्यानि सौं रंग महा लहियै।

---

[१] मंदन = मंदबुद्धिवालों पर। मूढ़० = मूढ़ भी गूढ़ छंदों की रचना करने लगता है। आरति० = क्लेशनाशक। [२] डरे० = फेंके रहें। छीलर = तलैया।

घनआनँद प्रान-पपीहनि कौं रस-प्यावनि ज्यावनि है वहियै।
करि कोऊ अनेक उपाय मरौ हमैं जीवनि एक कृपा चहियै ॥३॥

स्याम-सुजान-हियैं बसियै रहै नैननि त्यौं लसियै भरि भाइनि।
बैननि बीच विलास करै मुसक्यानि सखी सौं रची चित चाइनि।
है बस जाके सदा घनआनँद ऐसी रसाल महा सुखदाइनि।
चेरी भई मति मेरी निहारि कै सील सरूप कृपा-ठकुराइनि ॥४॥

बैन कृपा फिरि मौन कृपा दृग-दस्टि कृपाऽरु समाधि कृपाई।
ज्ञान कृपा गुन-गान कृपा मन-ध्यान कृपा हरै आधि कृपाई।
लोक कृपा परलोक कृपा लहियै सुख-संपति साधि कृपाई।
यौं सब ठाँ दरसै बरसै घनआनँद भीजि अराधि कृपाई ॥५॥

बलकै झलकै मुख रंग रचै उघरै गुन-गौरव सील ढकै।
मन-बाढ़ चढ़ै अति ऊरध कौं टक-टेक सौं स्याम सुजान तकै।
जक एक, न दूसरी बात कहूँ घनआनँद भीजि कै प्रेम पकै।
दृग देखि छकै उछकै कबहूँ न छबीली-कृपा-मधुपान छकै ॥६॥

कवित्त

मंजु गुंज करै राग-रचे सुर भरै,
प्रेमपुंज छवि धरै हरै दरप मनोज को।
चाव-मतवारो भाव-भाँवरीन लेत रहै,
देत नैन चैन-ऐन चोपनि के चोज को।
और फूल भूलि रीझ भीजि घनआनँद यौं,
बंदी भयौ एक वाही गुन-गन-ओज को।
बानी रसखानी ता मधुव्रत की, लह्यौ जिन
कृपा-मकरंद स्याम-हृदय-सरोज को ॥ ७ ॥

ढंख = पलाश का वन । [३] जीवनि = संजीवनी । [४] रची = अनुरक्त। [५] आधि = मानसिक क्लेश। ठाँ = स्थान। [६] कृपामधु और मदिरा की एकरूपता दिखाई गई है। सील० = शिष्टता न रह जाए; शील से आवृत हो जाए। उछकै न = नशा उतरेगा ही नहीं। मधु = शहद; शराब। [७] चोज=

सवैया

फीके सवाद परे सब ही अब ऐसो कछू रसपान कृपा को।
नीरस मानि कहै न लहै गति मोहि मिल्यौ मन मान कृपा को।
रीझनि लै भिजयौ हियरा घनआनँद स्याम-सुजान-कृपा को।
मोल लियौ बिन मोल, अमोल है प्रेम-पदारथ-दान कृपा को॥ ८॥
नेम लियौ सब बातनि तें अब बैठिहै साधि कै ज्ञान महातप।
प्रेम थप्यौ घनआनँद-रूप सौं देखि तप्यौ जग-बाद के आतप।
कैसें कहै कछु भोई सवाद मिलै बड़ी बेर सौं याहि मिल्यौ टप।
मौन ह्वै जाकी पुकार करै गुनमाल गहैं जपै एक कृपा-जप॥ ९॥
क्यौं हठ कै सठ साधन सोधत होत कहा मन यौं तरसे तैं।
हाथ चढ़ैं जिहिं स्याम सुजान कहूँ तिहिं पायन रे परसे तैं।
नीरस मानस ह्वै रसरासि बिराजत नैसिक जा सरसे तैं।
ऊसर ह्वै सर होत लखे घनआनँद-रूप कृपा बरसे तैं॥१०॥
ज्यौ परसै नहिं स्याम सुजान तौ धूरि समान है अंगनि धोइबो।
त्यौं मन कौं तिनके दरसे बिन बादि बिचारनि बीच घँघोइबो।
वे घनआनँद क्यौं लहियै स्रम कै भरि भार अपारहि ढोइबो।
जागत भाग कृपा-रस पागत दीसत यौं सहजै सुख सोइबो॥११॥
आय जौ छाय तौ धूरि सबै सुख जीवन-मूरि सम्हारत क्यौं नहीं।
ताहि महागति तोहि कहा गति बैठें बनैगी बिचारत क्यौं नहीं।
नैननि संग फिरै भटक्यौ पल मूँदि सरूप निहारत क्यौं नहीं।
स्याम-सुजान-कृपा-घनआनँद प्रान-पपीहन पारत क्यौं नहीं॥१२॥

कबित्त

चाहियै न कछू जाकी चाह तासौं फल पायौ,
यातैं वाही बन के सरूप नैन कीनौ घरु।

उमंग। मधुव्रत = भ्रमर। [८] गति = मोक्ष। [९] आतप = धूप। टप = शीघ्र। [१०] परसे तैं = क्या तू ने स्पर्श किया? मानस = मन; मानसरोवर। नैसिक = थोड़ा। [११] ज्यौ = जी, चित्त। घँघोइबो = गंदे जल मैं डुबोना। [१२] आय० = यदि वह आकर छा जाए। महागति = परम गति। गति =

जहाँ राधा-केलि-बेलि कुल की छवनि छायौ,
लसत सदाई कूल-कालिंदी सुदेस थरु।
महा घनआनंद फुहार सुखसार सींचे,
हित-उतसवनि लगाय रंग-भख्यौ झरु।
प्रेम-रस-मूल-फूल-मूरति बिराजौ मेरे
मन-आलबाल कृस्न-कृपा को कलपतरु॥ १३ ॥

सवैया

साधन-पुंज परे अनलेखे पै हौं अपने मन एकौ न लेख्यौ।
जे निरखे उरझे तिन मैं किनहूँ बिन सोच कछू न विसेख्यौ।
तातैं सबै तजि स्याम सुजान सों साहस औरै हियैं अवरेख्यौ।
प्रान-पपीहन कौं घनआनँद पोप-रसीली कृपा करि देख्यौ ॥१४॥

काहे कौं सोच मरै जियरा परी तोहि कहा बिधि बातनि की है।
हैं घनआनँद स्याम सुजान सम्हारि तू चातिक ज्यौं सुख जीहै।
ऐसे रसामृत-पुंजहि पाय कै को सठ! साधन-छीलर छीहै।
जाकी कृपा नित छाय रही दुख-ताप तें बौरे! बचाय ही लीहै ॥१५॥

कबित्त

साँवरे-सुजान-रंग-संग मति रंग-भीजी,
दरस-परस-पैज-पूरन बसीठि है।
एक गुनहीन नहीं सूझत सरूप जाकौं,
कृपा-मद-अंध तिन्हैं सपने न नीठि है।
सदा घनआनँद बरसि प्रान-चातकनि,
पोखति पुकार बिन ऐसी सुद्ध ईठि है।
साधन असाधन त्यौं सनमुख होत कैसें,
सब दिसि पीठि कृपा-मन तन दीठि है॥ १६ ॥

अर्थात् शक्ति। पारत० = पाजता क्यों नहीं। [१३] बन = वृंदावन। सुदेस= सुंदर। [१४] अनलेखे = अगणित। बिन० = सोच के अतिरिक्त और कुछ न पाया। [१५] छीलर = तलैया। छीहै = छूएगा। [१६] पैज = प्रतिज्ञा।

सवैया

चातिक-चित्त कृपा घनआनँद चोँच की खोँच लु क्यौँ करि धारौँ।
त्यौँ रतनाकर-दान-समै बुधि-जीरन-चीर कहा ल पसारौँ।
पै गुन ताके अनेक लखौँ निहचै उर आनि कै एक बिचारौँ।
कूल बढ़ाय प्रवाह बढ़ै यौँ कृपा-बल पाय कृपाहि सहारौँ॥ १७॥

कबित्त

अमल अपूरब उजागर अखंड नित,
जाहि चाहि चंदहि चितारिबो कलंक है।
तारनि प्रकासै मित्र-मंडल मैँ मंडन ह्वै,
बन घन राजै रसनायक निसंक है।
आनँद-अमृत-कंद बंदनीय प्रानन को,
सुषमा संपत्ति हेरैँ काम कौन रंक है।
चाहते चकोरन कौँ चोपन सौँ लखि लेत,
कृपा-चंद्रिका-मै नंदनंदन मयंक है॥ १८॥

हरि हू को जोतिक सुभाव हम हेरि लहे,
दानी बड़े पै न माँगे बिनु ढरै* दातुरी।
दीनता न आवै तौ लौँ बंधु करि कौन पावै,
साँच सौँ निकट दूरि भाजैँ देखि चातुरी।
गुननि बँधे हैँ निरगुन हू अनंदघन,
मति बीर यहै गति चाहैँ धीर जातु री।
आतुर न ह्वै री अति चातुर बिचार थकि,
और सब ढीले कृपा ही के एक आतुरी॥ १९॥

बसीठि = दूती। नीठि = कठिन। ईठि = इष्ट। [१७] खोँच = काँछ, झोली। रतनाकर = रत्नों का समूह। जीरन = जीर्ण, पुराना। [१८] चितारिबो = ध्यान मैँ लाना। तारा = पुतली; आकाश का तारा। मित्र = सखा; सूर्य। आनँद० = आनंदरूपी अमृत का बादल। मै = युक्त। [१९] जोतिक = जैसा। दातुरी =

सवैया

हौं गुनरासि ढरौ गुन ही गुनहीनन तैं सब दोष प्रमानैं।
हा हा बुरौ जिन मानियै जू बिन जाँचैं कहौ किन दानि बखानैं।
लीजै बलाइ तिहारी कहा करैं हैं हम हूँ कहूँ रीझि बिकानैं।
बूझौ कहैं कहा एक कृपाकैर रावरे जौ मन के मन मानैं॥२०॥

कबित्त

रहो न कसरि कछू साधन के साधिबे की,
स्रम तैं बचाय राखैं सुखन सौं सानि हैं।
लोक परलोक भ्रम भूलि गए सुधि आएँ,
चरित अनेक एक एक रसखानि हैं।
तापु बापुरेनि की सिरानी आय नेकु ही मैं,
छाए घनआनँद सुबात-बस आनि हैं।
अब पहचानि हमैं चाहियै न काहू संग,
बिन पहचानि कृपा-लीनैं पहचानिहैं॥ २१ ॥

सवैया

जल मैं थल मैं भरि पूरि रही सम कै दिखरावति है बिसमैं।
सम रूप सदा गुनहीनन सौं निज तेज तैं त्रासति ताप-तमैं।
घनआनँद जीवनरासि महा बरसै सरसै अरसै न गमैं।
तिन प्रानन संगम रंग अभंग कृपा दरसी सब ठौर हमैं॥२२॥
कोऊ कृपा-बल दूबरो ह्वै करि क्यौं नहिं साधन के सब* साधौ।
लीन कै लोयन प्रान मनौं किन कोऊ समाधिहि पैंचि अराधौ।
मेर कृपा घनआनँद है रस भीजैं सदा जिहिं राधिका-माधौ।
ता बिन ते स्रम-सूल सहैं भ्रम-भूल लहैं सु न एक न आधौ॥२३॥

(दातृत्व) दान की वृत्ति। बीर = हे सखी। [२०] कृपाकर = कृपा की खान। [२१] बात = वायु ; वचन। [२२] सम० = विषम को भी सम कर देती है। अरसैं = चलने मैं आलस्य नहीं करती। [२३] सब = शव, लाश। एक=

* सत, सम।

कबित्त

साधन जितेक ते असाधन के नेग लगौ,
साधन को महा मतसार गहि ताहि तू।
प्रेम सो रतन जातें पायहै सहज ही मैं,
वहै नाम रूप सु अनूप गुन चाहि तू।
राधिका-चरन-नख-चंद त्यौं चकोर कै सु,
बाढ़त अमंद यौं तरंगनि उमाहि तू।
बोहित बिसास ह्वै चढ़ाय लैहै सोई हा हा,
कृस्न-कृपा-सिंधु मेरे मन अवगाहि तू॥ २४॥

पद

जौ पै तो मुख नेकु निहारौं।
त्यौं ही तौ हिय के मझार की सब अभिलाष उघारौं।
बहुतै बहुत प्रान-सर्वसु लै वारि सकौं तौ वारौं।
करि करि पान रूप-आसव, सुधि बिसरि, न संग सम्हारौं।
क्यौं कहि सकौं उचित अनुचित कौं कृपा-भरोसो धारौं।
घनआनँद प्रीतम सुजान हौ मौनहि गहैं पुकारौं॥२५॥

सवैया

चलि जात उसास जो ऊरध को अध-आवन-आस-बिसास नहीं।
गति औसर की अति दीसि परी बरुनी खुलि फेरि फिरैं कि तहीं।
इहि बीच बिचारियै जीवन सो मरियै तिहि साधन-सोच मही।
घनआनँद-गात-कृपा-बस ह्वै अब यौं सब ही करतूति रही॥२६॥

कबित्त

बिन माँगे माँगि लेत सु तौ मूढ़ तातैं गूढ़
गति जानिबे कौं प्रभु अति ही उदार हौ।
कृपा-रस-नायक हौ महा सुखदायक हौ,
लायक हौ बूझ के सदन रिझवार हौ।

एक क्या आधे की भी प्राप्ति नहीं होती। [२४] नेग० = भेंट हो जाय। बोहित = जहाज।[२५] उघारौं = प्रकट करूँ। [२६] गति० = जीवन की गति अवसर मात्र

गुननि सरूप छाय रहे घनआनँद यौं
कहा लौं बखानै मति महिमा-अपार हौ।
बिपति तिनहि परौ जिनके न पति तुम,
मेरे तौ सदाई करतार भरतार हौ ॥ २७ ॥

सवैया

औगुन हूँ करि लेत गुनै निगुनीन ढरै गुन की अधिकाई।
झूमि रही घनआनँद यौं बरसै सरसै सुख-सीतलताई।
मोहिं महारस-रासि मिली जिमि पागि दई मति-मोद-मिठाई।
रीझि कृपा लखि रीझि रही अकि रीझि कै जानति एक कृपाई ॥२८॥
जे करतूति पचैं दुहुँलोक लै तेई लहौ जु कछू उन पायौ।
कोप-कृपानिधि के हिय तें हरि रंकन बाढ़ कृपा-धन आयौ।
जा हित भै हरिबे कौं कहूँ हरि हेत सदा घनआनँद छायौ।
सो उलटी रखवारी करै यह रीति अनोखी, दुरै न दुरायौ ॥२९॥
सदा इव मूरति प्रेम पगे भली भाँति लगे भए आप हि आप।
महा निहचै सौं रचे रचियै हिय के सियराने प्रबोध प्रताप।
खिले हित रंग मिले नित संग झले सब अंग हिले चित चाप।
कृपा घनआनँद छाँह बढ़े तिन्हैं ब्यापत क्यौं दुख-आतप-ताप ॥३०॥

कवित्त

मन की जनाऊँ ताके मोह नाहिं है हो कान्ह,
जानराय गुनहिं लगाऊँ कैसैं दोष जू।
बिना ही कहैं करौ तौ कहिबे की कहा रही,
कहैं क्यौं न करौ दीन-प्रान-परितोष जू।
तुम्हैं रिझवार जानि खीझ सौं कहत प्यारे,
हा हा कृपानिधि नेकौ मानियै न रोष जू।

है। [२७] बूझ = बुद्धि। [२८] अकि = या कि, अथवा। [२९] करतूति० = जो कर्म-साधन मैं परेशान रहते हैं। [३०] इव० = मूर्ति की भाँति। हिले० = चित्त के सतरंगी धनुष से युक्त। [३१] मोह = भ्रम। [३२]

आनँद के घन भूमि भूमि कित तरसावौ,
बरसि सरसि कीजै हित-लता-पोष जू ॥ ३१ ॥

सुधि करैं भूल की सुरति जब आय जाय,
तब सब सुधि भूलि भूलौं गहि मौन कौं।
जातैं सुधि भूलै सो कृपा तैं पाइयत प्यारे,
फूलि फूलि भूलौं या भरोसैं सुधि हौन कौं।
मेरी सुधि भूलहि बिचारियै सुरतिनाथ,
चातिक उमाहै घनआनँद अचौन कौं।
ऐसी भूल हू सौं सुधि रावरी न भूलै क्यौं हूँ,
ताहि जौ बिसारौं तौ सम्हारौं फिरि कौन कौं ॥३२॥

सवैया

सुधि भूलि रही मिलि ज्यौं जलपै अब यौं मन क्यौं करि फूलिहै जू।
मिटिहै तब ही तिहि ताप जबै सुधि आवन की सुधि भूलिहै जू।
घनआनँद भूलनि की सुधि कौं मति बावरी ह्वै रही भूलिहै जू।
सुधि कौन करै इन बातन की कबहूँ तौ कृपा अनुकूलिहै जू ॥३३॥

कबित्त

रसिक रँगीले भली भाँतिनि छबीले,
घनआनँद रसीले भरे महा सुखसार हैं।
कृपा-घन-धाम स्यामसुंदर सुजान मोद-
मूरति सनेही बिना बूझैं रिझवार हैं।
चाह-आलबाल औ अचाह के कलपतरु,
कीरति-मयंक प्रेम-सागर अपार हैं।
नित हित-संगी मनमोहन त्रिभंगी मेरे
प्राननि अधार नंदनंदन उदार हैं ॥ ३४ ॥

सुधि० = प्रिय की भूल का स्मरण करने से जब उनकी स्मृति हो आती है। अचौन = आचमन, पीना। [३३] फूलिहै = फूल जायगी, समाप्त हो जायगी।

सवैया

हारे उपाय, कहा करौं हाय, भरौं किहि भाय मसोस यौं मारै।
रोवनि आँसू न नैननि देखैंऽरु मौन मैं व्याकुल प्रान पुकारै।
ऐसी दसा जग छायौ अँधेर बिना हित-मूरति कौन सहारै।
है तिन ही की कृपा घनआनँद हाथ गहै पिय-पायनि पारै ॥३५॥
जिहि पाय की धूरि लौं जाय न पौन, करै इहि भाय कौं गौन-समै।
तिहि दूरि किती कहि औधि विचारि, विचारत क्यौं न कहा बिरमै।
गति बूझि परी, किन सूझत रे, कहिवो न छिपै किहि धा सुगमै।
घनआनँद आहि कृपा नियरो भजि लै रसमै तजि दै बिषमै ॥३६॥

कबित्त

मिलन तिहारो अनमिलन मिलावत है,
मिलैं अनमिले कछू करि न सकौं तरक।
जियौं तुम हीं तें बिना तुम्हैं मरि मरि जावँ,
एक गावँ बसि ऐसी जियँ राखियै मरक।
देखि देखि ढूँढौं दुख-दसा देखि मिलौ, हा हा
मीत औ बिसासी यहैं कसकैं नई करक।
आनँद के घन हौ सुजान कान खोलि कहौं,
आरस जग्यौ है कैसैं सोई है कृपा-ढरक ॥ ३७ ॥

सवैया

औगुन ही गुन मानि महा, अभिमान भस्यौ अति उत्तम नीच मैं।
नीरसता सरस्यौ नित पै अरस्यौ सु कहूँ सनि आरस-कीच मैं।
ऐसो अचेत जु साँच कियौ भ्रम, जीवन को सुख साधत मीच मैं।
ज्वाल-जस्यौ अब होत हस्यौ हरि नेकु कृपा-घनआनँद-सींच मैं ॥३८॥

[३४] अचाह० = अचाह व्यक्ति के लिए कल्पवृक्ष। [३५] मसोस = पछतावा। पारै = डालै। [३६] किहि० = किस प्रकार। आहि = है। रसमै = आनंदमय, प्रेमरूप। बिषमै = विषमय ; विषम। [३७] मरक = खिंचाव। ढरक=ढलना। [३८] नीच = नीच मन। भ्रम = मिथ्या संसार। मीच = मृत्यु। [३९]

दोहा

सुख-सुदेस को राज लहि, भए अमर अवनीस ।
कृपा कृपानिधि की सदा, छत्र हमारे सीस ॥३९॥
हरि तुम सौं पहचान को, मोहिं लगाव न लेस ।
इहि उमंग फूल्यौ रहौं, बसौं, कृपा के देस ॥४०॥
मो से अनपहचान कौं पहिचानै हरि कौन ।
कृपा-कान मधि-नैन ज्यौं, त्यौं पुकार मधि-मौन ॥४१॥

कबित्त

दीनौ जग जनम, जनाइँ जे जुगति आछी,
कहा कहौं कृपा की ढरनि ढरहरे हौ ।
आनँद-पयोद ह्वै सरस सींचे रोम-रोम,
भाव-निरभर लै सुभाव-गहभरे हौ ।
जीवन-अधार प्यारे आँखिन मैं आय छाय,
हाय हाय अंग-अंग-संग रस ररे हौ ।
ऐसैं क्यौं सुखैयै सोच-तापनि, हरयौ कै हरी,
जैसैं या पपीहा-दीठि नीठि हू न परे हौ ॥ ४२ ॥

सोरठा

घनआनँद रस-ऐन, कहौ कृपानिधि कौन हित ।
मरत पपीहा-नैन, दरसौ पै बरसौ नहीं ॥४३॥

दोहा

तुम नियरे अति दूर हौ, मिलन उपाय न कोय ।
एक करौ, हरि कृपा तैं अनहोनी हू होय ॥४४॥

अवनीस = हम राजा हो गए। [४०] इहि० = क्योंकि आप 'अनपहचान' पर कृपा करते हैं। [४१] कृपा० = जिस प्रकार आप के नेत्रों में कृपा के कान हैं उसी प्रकार मेरी पुकार भी मौन में है। [४२] ढरनि = ढलना। ढरहरे = ढलनेवाले,कृपालु। आनँद० = आनंद के बादल ; घनआनंद। निरभर = निर्भर, पूर्ण। गहभरे = भली भाँति भरे हुए। रस० = रसयुक्त। नीठि = कठिनाई से भी। [४३] रस = जल ; प्रेम। ऐन = अयन, घर। [४४] एक० = अद्वैत

सवैया

संग लगे फिरौ हौं अलगै रहौं मोहुवै गैल लगावत क्यौं नहीं।
नीरस रावनि ही सरसौ रसमूरति प्रीति पगावत क्यौं नहीं।
ढीलो पर्‍यौ तुम तें घनआनँद हौ गुनरासि खगावत क्यौं नहीं।
जागत सोवत से हौ कहा कहौं सोवत मोहिं जगावत क्यौं नहीं ॥४५॥

कवित्त

लेखैं नाहिं जनम अलेख तव सब बातैं,
ऐसी जग-पैंठ मैं गवैंबोई लहैगो कहा।
लहाछेह कहौं तौ है अंतर अनंत परै,
या बिधि की मिलनि बियोग दौ दहैगो कहा।
चिरजीवौ मोहिं मारि तुम्हैं सुख होय प्यारे,
परबस महा कहा सह्यौ न सहैगो कहा।
कृपा-घनआनँद पपीहा की पुकार जागौ,
तुम सनमुख भए बिमुख रहैगो कहा ॥ ४६ ॥

छप्पय

भूल न कबहूँ होय सुरति की सुरति देहु हरि।
सुरति किये ही रहौ कृपा-अवलोकनि सौं ढरि।
सुचि चरित्र रुचि परचि राचि चित-चेत थकै तहँ।
निज सरूप की लहनि कहनि अरु कहनि लहनि जहँ।
सुंदर देस अनंदघन छाय रहे सु बिनोद बनि।
संदेह-तापव्यापनि हरौ अंतरजामी जानमनि ॥४७॥

सवैया

सुरझै किन दै उरझै मन तू ममता गुरझै उरझावत क्यौं।
जित को तित ही लगिहै अलगौ इत के छित-फंदनि आवत क्यौं।

कर दो, मिला लो। [४५] खगावत० = बाँधते या कसते क्यौं नहीं। [४६] पैंठ = हाट, बाजार। गवैंबोई = खोना ही। लहाछेह = तीव्र। [४७] सुरति० = अपने प्रेम की स्मृति। चेत = चेतना, बुद्धि, होश। [४८] गुरझैं = गाँठ।

घनआनँद कृस्न-कृपा-रस कौँ करि पान हियैँ न जिवावत क्यौँ।
निहचै जचि रे थिरता सचि रे पचि रे रचि रे भ्रमि धावत क्यौँ ॥४८॥

कवित्त

जिहि जिहि ठौर जाहि जाहि भाँति जानराय,
जुगनि जुगनि जगमगे हौ जनन कौँ।
पूरन-कृपा-पियूष-पालन रहे हौ सदा,
प्रानन तैं प्यारे अपनैन के पनन कौँ।
गोविंद गुसाइँ त्यौँ ही माँगत हौँ गोद,
गाय गिरा-अरगाई गुन-गरिमा-गनन कौँ।
मन घनआनँद तिहारी चोप चातक है,
चाहत है संनिधि सवादनि सनन कौँ॥ ४९ ॥

विष्णुपद

अटकनि इतै निपट भटकनि है सटकनि भली सबै दिस तैं रे।
गटकनि कृपा-सुधानिधि चरितनि तिन तजि पियौ बिषै-बिस तैं रे।
परौ अचेत प्रेत जीवत ही अजहूँ सम्हरि मोह-निस तैं रे।
नित हित मैं उदार घनआनँद रस बरसत आनँद-मिस तैं रे ॥५०॥

कबित्त

दान के विधान यौँ बखानत सुजान संत,
दानी बहु भाँति और जाचक अनंत हैं।
सूछम पुनीत पै निपट ताकी प्रीति जानि,
जानत जे एक दानीराय साजवंत हैं।
फूल आगे लागै पाछे अंकुर मनोरथ को,
पानिप-निधान मान-महिमा-महंत हैं।
तातैं मन चातक तू पन लै सजीवन सौं,
कृपा-घनआनँद अधार जराजंत हैं॥ ५१ ॥

सचि = संचित कर। [४९] जन = दास। अपनैन० = अपनों की प्रतिज्ञाओं के लिए। अरगाई = थककर पृथक् हो गई। [५०] सटकनि = हटना। गटकनि = पीना। [५१] फूल = पुष्प ; प्रसन्नता। जराजंत = वृद्ध जीव या वृद्धता का

कबित्त

पन ऊँची दीठि नीठि नीचियौ न होति,
कहूँ ऐसे मन-चातक भए जे कृपाकंद के।
सुधा को सुरालै लखैं नीच कीच कैसैं चखै,
तोपे रस-पोपे घनआनँद अमंद के।
जिन पर रीझि-भीजे छाए सुख-संपदा लै,
लसत रसत प्यारे जसुमति औ नंद के।
तिन्हैं तेई तकैं तेऊ तिहि पानि छकैं और,
कैसैं देखि जकैं जे अजाची जगबंद के॥ ५२॥

सवैया

द्वार न जाइहै या जन के जगदीस तिहारियै पौरि पर्‌यौ है।
आस के पासहि काटि कृपा-बल पूरन पैज भरोसो भर्‌यौ है।
ह्वै अनुकूल हरौ हिय सूल खरो अनखाय उदार अर्‌यौ है।
हौ पनधारी सुनौ घनआनँद सींचन की अभिलाष हर्‌यौ है॥ ५३॥

कबित्त

दौरि दौरि थाक्यौ पै थक्यौ न तऊ दौरनि तैं,
गति भूले मन की न दूरि कछू तो तैं रे।
तातैं ठौर दीजै याहि, सुधि लीजै मोदघन,
बूझियै न बिड़रौ अनाथ तोहि होतैं रे।
हाय हाय हे अमोही हारि कै कहत हा हा,
आय बनी अब ह्वैहै वही रची जो तैं रे।
आस-बिसवास-ऐन साधन हूँ साधन दैन,
साधन कृपा है और कहा सधै मो तैं रे॥ ५४॥

थंत्र। [५२] कंद = बादल। सुरालै = सुरालय, मदिरा का स्थान या देव-लोक। जगबंद = जगद्वंद्य। [५३] जन = सेवक। पौरि = द्वार। पास = पाश, फंदा। खरो० = अत्यंत क्षुब्ध होकर। हर्‌यौ = हराभरा, प्रसन्न। [५४] मोदघन = आनंद के बादल ; घनआनंद। बिड़रौ = (बिरल) कोई। होतैं =

दोहा

प्रगट प्रेम-पद्धति कही, लही कृपा-अनुसार।
आनँद-घन उन पै सदा, अद्भुत रस-आसार ॥ ५५ ॥
सुरति स्याम सौं मिलि रही, करति धाम के काम।
यह गति व्रज-अवलानि की, परम प्रेम तकि राम ॥५६॥
बँधि बाँधे मोहन गुनी, सुनी न ऐसी प्रीति।
याही तें सब ही अमिल, या व्रज की रस-रीति ॥५७॥
प्रेम-अवधि आनंदघन, लिये महारस पागि।
सर्वसु साध्यौ बिसरि सुधि, मोह-दसा उर जागि ॥५८॥
कहि न परत कछु अगम गति, जगमोहन बस जाहि।
व्रज को प्रेम अगाध है, को अवगाधै ताहि ॥५९॥
सदागमन मुरली धरे, गावत व्रज को प्रेम।
व्रजनायक नेही निपुन, गहे प्रेम को नेम ॥६०॥
गोरस है सो रस लियौ, जो रस रहै न कोय।
लैन दैन अति रसमसी, गति दति रही समोय ॥६१॥
घर बैठी बन मैं फिरै, गोपिन की यह गैल।
गोहन क्यौं न लगौ रहै, रसिया मोहन छैल ॥६२॥
गाँव गाँव पोखरि बगर, व्रज मोहन मँडराय।
कहौ ताहि कल क्यौं परै, जिनके चैन चुराय ॥६३॥
एकहि लगि दुहुघा खरी, लगी पुरातन प्रीति।
गोपी और गुपाल की, निपट नवेली रीति ॥६४॥

होते हुए। [५५] आसार = वृष्टि। [५६] सुरति = स्मृति, ध्यान। तकि = देखो। राम = अपने राम, आत्माराम, मन। [५७] गुनि = गुणी, डोरेवाला। [५८] मोह० = अचेतनावस्था। [५९] अवगाधै = थहाए। [६०] सदा० गमन = निरंतर घूमते हुए। [६१] रसमसी = रसयुक्त। गति = मोक्ष, मुक्ति। दति० = भली भाँति डूबी है। [६२] गैल = रीति। गोहन = साथ। [६३] पोखरि = पुष्करिणी, तलैया। [६४] दुहुघा = दोनौं ओर। [६५]

परम प्रेम-गति अगम अति, अमल अपूरब रूप।
सब तें न्यारी सुचि सुमिल, ब्रज रस-रीति अनूप ॥६५॥

मधुर मुरलिका-नाद सौं, मति गति लई बिलोय।
निगम-बान बेधे परम, विषम बिषामृत भोय ॥६६॥

प्रेम-परावधि ब्रजबधू, सुनि बंसी-धुनि मंद।
तजत भईं सब सकुच तब, भजत भईं ब्रजचंद ॥६७॥

आरज-पथ भूलीं भले, बिबस परीं हित-फंद।
ब्रजमोहन मनमोहनी, पूरन प्रेम अमंद ॥६८॥

थकित चलीं सुनि मुरलिका-सुधुनि अपूरब गैल।
बिबस भईं अपबस कियौ, मदन-मनोहर छैल ॥६९॥

अतुल अरूप सरूप गुन, गोपी परम पुनीत।
जिनके बस रसनिधि सदा, स्याम सजीवन मीत ॥७०॥

ब्रज बृंदाबन देखियै, पूरन प्रेम-समाज।
गोपराज-नंदन नवल, नित बरसत रसराज ॥७१॥

चोप बाल ब्रजचंद की, अदभुत केलि अभंग।
छाके हूँ अछके रहत, अछके छाक-उमंग ॥७२॥

गिरि बन घन जमुना पुलिन, जल थल अमल बिहार।
सदा कुलाहल मचि रह्यौ, लीला ललित अपार ॥७३॥

परम अमिल अति ही सुमिल, हरि-ब्रजबधू-बिलास।
जाचत हैं बिधि संभु से, श्रीब्रजमंडल-बास ॥७४॥

सुमिल = सुगमता से मिलनेवाली। [६६] बिलोय = मथ लिया। भोय = डुबोकर, भिंगोकर। [६७] परावधि = पराकाष्ठा। [६८] आरज-पथ = मर्यादा का मार्ग। [६९] अपूरब० = अनुपम मार्ग (प्रेम का)। [७०] मीत = मित्र, प्रिय। [७१] नंदन = पुत्र। रसराज = शृंगार। [७२] चोप = उत्साह। छाके० = छकने पर भी अछके रहते हैं और न छकने पर भी छके रहते हैं। [७३] गिरि = गोबर्धन। बन = बृंदावन। पुलिन = तट। [७४]

श्रीपद-अंकित व्रज-मही, छवि न कही कछु जाय।
क्यौं न रमा हूँ को हियो, या सुख कौं ललचाय ॥७५॥
रची निरंतर केलि यह, अद्भुत अमल रसाल।
विहरत भरि आनंद सौं, गोपी-मदनगुपाल ॥७६॥
मिलि बिछुरत बिछुरैं मिलत, अचरज्ञ मिलत बिछोह।
जगमोहन जग तैं विलग, व्रज-बन-लीला मोह ॥७७॥
देखत भूलो सो लगै, लखि व्रज को ब्यौहार।
चकचौंधी सब दै चखनि, अचरज प्रेम-बिचार ॥७८॥
यह बिनोद या व्रज बनै, अद्भुत अमल अखंड।
गान करत व्रजकेलि को, कोटि कोटि ब्रहमंड ॥७६॥
रसिक-सिरोमनि साँवरो, रमनी-मनि व्रजबाम।
बिलसत हुलसत एकरस, व्रज वृंदावन-धाम ॥८०॥
महाभाग व्रज की वधू, जिन बस कियौ गुपाल।
रिनी रहत हित मानि कै, सुकृती परम रसाल ॥८१॥
गोपिन की पदवी अगम, निगम निहारत जाहि।
पदरज बिधि से जोवहीं, कौन लहै फिरि ताहि ॥८२॥
एक कृपाबल पाइयै, मति गति रहि भरिपूरि।
निकट होति, पाछे परैं श्रीपद-पंकज-धूरि ॥८३॥
गोपिन को रस गुपुत अति, प्रगट करै तिहि ठौर।
भव सनकादिक सुमिरि कै, चकित रहत धरि मौन ॥८४॥
गोपी मदनगुपाल मिलि मोहन व्रजबन-केलि।
अति प्यारी भारी नवल, निरवधि आनँद-बेलि ॥८५॥

बिधि = ब्रह्मा। [७५] श्रीपद = श्रीकृष्ण के चरणचिह्न। रमा = लक्ष्मी। [७६] निरंतर = अर्थात् नित्य। [७७] बिलग = पृथक्। [७८] भूली = विस्मृति में पड़ी। [७६] ब्रहमंड = ब्रह्मांड। [८०] व्रज० = व्रज की गोपियाँ। [८१] रिनी = ऋणी। सुकृती = पुण्यात्मा। [८२] बिधि = ब्रह्मा। जोवहीं = ताका करते हैं। [८३] पाछे = पीछे पड़ने से। [८४] भव = शिव।

परम प्रेम मति को लहै, मन बुधि थकी विचारि।
या रस-बस मोहन रसिक, रहत अपनपौ हारि ॥८६॥
गोपी रस-संपुट कियौ, हियो आपने स्याम।
ब्रजवन बसि हुलसत सदा, प्रगट इकौसे धाम ॥८७॥
अतुल रूप-गुन-माधुरी, परम अपूरब साज।
गोपी और गुपाल को, अति रसमसो समाज ॥८८॥
परम प्रेम गुन रूप रस, ब्रज-संपदा अपार।
जय जय जय श्री गोपिका, जय जय नंदकुमार ॥८९॥

—— ——

[८५] निरवधि = सीमाहीन, असीम। [८६] अपनपौ = अपनत्व। [८७] संपुट० = बंद कर लिया। इकौसे = एकांत, अकेले। [८८] रसमसो = रसीला। [८९] संपदा = वैभव।

वियोग-बेलि

(बंगाली बिलावल)

सलोने स्याम प्यारे क्यौं न आवौ। दरस-प्यासी मरैं तिनको जिवावौ।
कहाँ हौ जू कहाँ हौ जू कहाँ हौ। लगे ये प्रान तुम सौं हैं जहाँ हौ॥१॥
रहौं किन प्रान-प्यारे नैन-आगैं। तिहारे कारनै दिन-रैन जागैं।
सजन! हित मानि कै ऐसी न कीजै। भई हैं बावरी सुधि आय लीजै॥२॥
कहौं तब प्यार सौं सुखदैन बातैं। करौ अब दूर तें दुखदैन घातैं।
बुरे हौ जू बुरे हौ जू बुरे हौ। अकेली कै हमैं ऐसें दुरे हौ॥३॥
सुहाई है तुम्हैं यह बात कैसें। सुखी हौ साँवरे, हम दीन ऐसें।
दिखाई दीजियै हा हा अमोही। सनेही ह्वै रुखाई क्यौंऽब सोही॥४॥
तुम्हैं बिन साँवरे ये नैन सूनै। हिये मैं लै, दिये बिरहा अभूनै।
उजारौ जौ हमैं काकौं बसैहौ। हमैं यौं रवाय कै औरैं हँसैहौ॥५॥
कहौं अब कौन सौं बिरहा-कहानी। न जानी ही न जानी ही न जानी।
लिखैं कैसें पियारे प्रेम-पाती। लगै अँसुवन झरी ह्वै टूक छाती॥६॥
पर्यौ है आन कै ऐसो अँदेसो। जरावै जीव औ कानन सँदेसो।
दसा है अटपटी पिय आय देखौ। न देखौ तौ परेखौ है परेखौ॥७॥
अजू ऐसैं कहौ कैसें बितैयै। अवधि बिन हूँ सदा पैंडो चितैयै।
अनोखी पीर प्यारे कौन पावै। पुकारौं मौन मैं कहि बैन आवै॥८॥
अचंभे की अगिन अंतर जरौं हौं। परौं सीरी भरौं नाहीं मरौं हौं।
कहा जानौं तिहारे जी कहा है। असोची मोहिं तोसी सो महा है॥९॥

---

[५] अभूनै = (अजूनै) जो कभी जीर्ण न हो, जो समाप्त होनेवाला न हो, चिरस्थायी।

तिहारे मिलन की आसा न छूटैं । लग्यौ मन बावरौ तोरैं न टूटै ।
अजौं धुन बाँसुरी की कान बोलै । छबीली छैल-डोलन-सँग डोलै॥१०॥

सलोनी स्याम-मूरत फिरै आगैं । कटाछैं बान सी उर आन लागैं।
मुकट की लटक हिय मैं आय हालै । चितौनी बंक जिय मैं आय सालै ११॥

हसन मैं दसन-दुति की होत कौंधैं । वियोगी नैन चेटक चाय चौंधैं ।
अधर को देख प्यासे नैन दौरैं । अमी के पान बिन ह्वै बिवस बौरैं१२॥

अचानिक आय मदन जब सतावै । कहौ तब की दसा कहि को बतावै ।
लगै लालन! बिरह की तब चटपटी । सहैं कैसैं यह गत अटपटी ॥१३॥

बहै तब नैन तैं अँसुवान-धारा । चलावै सीस पै बिरहा जु आरा ।
इतै पै जौ न पाऊँ पीर प्यारे । रहैं क्यों प्रात ये बिरही बिचारे ।१४।

सुहाई है तुम्हैं कैसैं अनैसी । कहौं कासौं करौ तुम ही जु ऐसी ।
जरावै नीर तौ फिर को सिरावै । अमी मारै कहौ जू को जिवावै १५

जु चंदा तैं झरैं दैया अँगारे । चकोरन की कहौ गति कौन पारै ।
अजू ब्रजनाथ गोपीनाथ कैसे । करै बिरहा हमारे हाल ऐसे ॥१६॥

अचंभो है अचंभो है यहाँ जू । सनेही हौ कहौ कीनौ कहा जू ।
हियो ऐसो कठिन कब तैं कियो है । बली अबलीन मारैं सुन लियो है १७

करौ अब सो तुम्हैं आछी लगै हो । जसोदानंद जैसैं जग-जगे हो ।
तिहारे नाम के गुन बाँध डारी । बिचारो जू बिचारी है बिचारी।१८॥

दसा*दिखराय बिनती कीजिये जू । परे पायन हिये धरि लीजिये जू ।
भरोसो है भरोसो है भरोसो । रही ब्रत धारि अजू अब तो परोसो॥

रँगीले हौ छबीले हौ रसीले । न जू अपनीन सौं हूजै गँसीले ।
लगौ नीकै सबै बिधि प्रान-संगी । तिहारी मौन है प्यारे तरंगी॥२०॥

तुम्हैं बिनु क्यौं जियैं तुम ही बिचारौ। बचैं कैसैं कहौ तुम ही जु मारौ ।
रहौ नीके अजू घनस्याम प्यारे । हमारे हौ हमारे हौ हमारे ॥२१॥

*दया ।

तिहारी हैं तिहारी हैं तिहारी। विचारी हैं विचारी हैं विचारी।
तिहारे नाम पर हम प्रान वारैं। जहाँ हौ जू तहाँ रहियैं सुखारैं२२
तुम्हैं निसद्योस मनभावन असीसैं। सजीवन हौ करौ हम पै कसीसैं।
लगै जिन लाड़िले जू पौन तातौ। सुहाई है हमैं तुम कौं सुहाती॥२३॥
गहौ तुम ही जू प्यारे दीन दोखैं। दया की वृस्टि सौं फिर कौन पोखैं।
सुरत कीजै बिसारैं क्यौं बनैगी। बिरहिनी यौं अवधि कब तक गिनैगी
हियो ऐसो कठिन कब तक कियौ है। मिलौ औरन हमैं बिरहा दियौ है।
नहीं पाई परै प्यारी लपेटैं। कहौं हा हा कहाँ धौं आह पेटैं॥२५
भई सूधी सुनौ बाँकेबिहारी। न करिहैं मान फिर सौंहैं तुम्हारी।
पढ़ाई मूड़ अब पायन परैंगी। कहौ जोई अजू सोई करैंगी॥२६॥
दई कौं मान कै, अब आन ज्यावौ। पियासी हैं पियारे सुरस प्यावौ।
तिहारी हैं बिछुर क्यौं हूँ जियैंगी। बिरह-घायल हियो ज्यौं त्यौं सियैंगी
बिसासिन बाँसुरी फिरि हूँ सुनैंगी। कियौ ही सीस ऐसैं सिर धुनैंगी।
न तोरौ जू कहौ क्यौं हूँऽब जोरी। निगोड़ी प्रीति की दुखदैन डोरी२८
करी तुम तो अजू गुनखान हाँसी। परी गाढ़ैं गरैं बिसवास फाँसी।
न छूटै जू न छूटै जू न छूटै। ठगौरी रावरी बिरहीन लूटै॥२९॥
हमारी एक तुम सौं टेक प्यारे। मिलन मैं कै कपट ह्वै गए न्यारे।
चकोरी बापुरी ये दीन गोपी। अहो ब्रजचंद क्यौं पहचान लोपी३०
छबीले छैल तुम को पीर काकी। बिथा की कथा तैं छतिया जु पाकी।
सजीवन साँवरे कब धौं ढरौगे। मेरे साधा, बिरहबाधा हरौगे॥३१॥
टरै नाहीं हिये तैं हेत-थाती। सम्हारौ आय कै प्यारे सँघाती।
बढ़ै आसा हियैं भादौं-नदी सी। न दीसे कौं मसोसैं भाँवरी सी॥३२॥

---

[२३] कसीसैं = खिंचना, रुजू होना अर्थात् कृपा करना। [२५] पेटैं = घिराव। [३२] सँघाती = संगी।

तिहारी ह्वै दुखारी बूझिये क्यौं। सुनौ सुखदैन प्यारे दीन हैं ज्यौं।
दईमारीन की अब दया आनौ। परैं पाँ दूर तें ब्रजनाथ मानौ॥३३॥
सनेही ह्वै तुमैं सँग राख जानैं। सबै मिल रावरे गुन कौं बखानैं।
अजू अब संग लागे प्रान प्यारे। सुने निज कान मोहन गुन तिहारे३४
तिन्हैं घर बात कैसे सह परी है। बिना ही काज ज्यो जूझै भरी है।
हमैं तुम तौ लगौ सब भाँति नीके। करौ किरपा तो रावैं*साल ही के३५
कहा वारैं निछावरि ह्वै रही हैं। कहैं कौ लौं कही हैं जू कही हैं।
रसिक सिरमौर हौ रस राखि लाजैं। तनक मन नाम के गुन बीच दीजै३६
धरैये नावँ को अब नावँ ऐसैं। दुहाई है सुहाई परै कैसैं।
सदा तें रावरी बिन मोल चेरी। धरनि तें काढ़ि बन बंसीनि घेरी३७
किये की लाज है ब्रजराज प्यारे। बिराजौ सीस पै जग मैं उज्यारे।
सदा सुख है हमैं तुम साथ आछैं। लगी डोलैं छबीले-छाँह पाछैं॥३८॥
तुम्हैं देखैं तुम्हैं भेटैं भलैं ही। जगैं सोयैं 'रु बैठैं यौं चलैं ही।
न न्यारी हैं न न्यारी हैं न न्यारी। भई हैं प्रानप्यारे प्रानप्यारी॥३९॥
हमारी औ तिहारी एक बातैं। रँगीले रंग रातें-द्यौस रातैं।
सदा आनंद के घन स्याम संगी। जियौ ज्यावौ सुधा प्यावौ अभंगी४०

---

[३५] साल = पीड़ा। करौ० = यदि आपकी कृपा हो तो हृदय की व्यथाओं को रोना पड़े। [३८] पाछैं = रहते हुए। [४०] अभंगी = अखंड, निरंतर।

* हरौ ये।

प्रकीर्णक

कबित्त

लाजनि लपेटी चितवनि भेद-भाय-भरी,
लसति ललित लोल-चख-तिरछानि मैं।
छबि को सदन गोरो बदन, रुचिर भाल,
रस निचुरत मीठी मृदु मुसक्यानि मैं।
दसन दमक फैलि हियैं मोती-माल होति,
पिय सौं लड़कि प्रेम-पगी बतरानि मैं।
आनँद की निधि जगमगति छबीली बाल,
अंगनि अनंग-रंग ढुरि मुरि जानि मैं॥ १॥

सवैया

झलकै अति सुंदर आनन गौर, छके दृग राजत काननि छ्वै।
हँसि बोलनि मैं छबि-फूलन की बरषा उर-ऊपर जाति है ह्वै।
लट लोल कपोल कलोल करै, कल कंठ बनी जलजावलि द्वै।
अँग अंग तरंग उठै दुति की, परिहै मनौ रूप अबै धर च्वै॥ २॥

कबित्त

छबि को सदन, मोद मंडित बदन-चंद,
तृषित चखनि लाल! कब धौं दिखायहौ।
चटकीलो भेष करें, मटकीली भाँति सौं ही,
मुरली अधर धरें लटकत आयहौ।

---

[१] भाय = भाव। लड़कि = लटक या ललक के साथ। निधि = खजाना। [२] जलजावलि० = दो लर की मोतियाँ की माला। [३] ढुराय =

लोचन दुराय, कछू मृदु मुसक्याय, नेह-
भीनी बतियानि लड़काय बतरायहौ।
विरह-जरत जिय जानि, आनि प्रानप्यारे,
कृपानिधि! आनँद को घन बरसायहौ॥ ३॥

वहै मुसक्यानि, वहै मृदु बतरानि, वहै
लड़कीली बानि आनि उर मैं अरति है।
वहै गति लैन औ बजावनि ललित बैन,
वहै हँसि दैन हियरा तें न टरति है।
वहै चतुराई सों चिताई चाहिबे की छवि,
वहै छलताई न छिनक बिसरति है।
आनँद निधान प्रानप्रीतम सुजान जू की,
सुधि सब भाँतिन सों बेसुधि करति है॥ ४॥

जासों प्रीति ताहि निठुराई सों निपट नेह,
कैसें करि जिय की जरनि सो जताइयै।
महा निरदई, दई कैसें कै जिवाऊँ जीव,
बेदन की बढ़वारि कहाँ लौं दुराइयै।
दुख को बखान करिबे कौं रसना कैं होति,
ऐपै कहूँ वाको मुख देखन न पाइयै।
रैन-दिन चैन को न लेस कहूँ पैयै, भाग
आपने ही ऐसे, दोष काहि कौं लगाइयै॥ ५॥

सवैया

भोर तें साँझ लौं कानन-ओर निहारति बावरी नेकु न हारति।
साँझ तें भोर लौं तारनि ताकिबो तारनि सौं इकतार न टारति।

मटकाते हुए। लड़काय = ललककर। [४] लड़कीली = ललकवाली। बैन = बेणु, बाँसुरी। चिताई = चैतन्य की हुई। [५] बढ़वारि = बढ़ती। कैं = कई। ऐपै = इतने पर भी, किंतु। [६] न हारति = थकती नहीं। तारनि = तारों को। तारनि सौं = पुतलियों से। इकतार = एक सा, लगातार। भावतो = प्रिय।

जौ कहूँ भावतो दीठि परै घनआनँद आँसुनि औसर आरति।
मोहन-सौंहन जोहन की लगियै रहै आँखिन के उर आरति ॥ ६ ॥

कबित्त

भए अति निठुर, मिटाय पहचानि डारी,
याही दुख हमैं जक लागी हाय हाय है।
तुम तौ निपट निरदई, गई भूलि सुधि,
हमैं सूल-सेलनि सो क्यौंहूँ न भुलाय है।
मीठे मीठे बोल बोलि, ठगी पहिलैं तौ तब,
अब जिय जारत कहौ धौं कौन न्याय है।
सुनी है कै नाहीं, यह प्रकट कहावति जू,
काहू कलपायहै सु कैसैं कल पायहै ॥ ७ ॥

सवैया

आँखिन आनि रहे लगि आस कि बैस-बिलास निहारियै हूँगे।
कानन बीच बसैं भरि प्यास अमी-निधि बैननि पारियै हूँगे।
यौं घनआनँद ठौरहि ठौर सम्हारत हैं सु सम्हारियै हूँगे।
प्रान परे उरझैं मुरझैं कि कहूँ कबहूँ हम वारियै हूँगे ॥ ८ ॥

रूप-सुधारस-प्यास-भरी नित ही अँसुवा ढरिबोई करैंगी।
पीवन-साध असाध भई इहि जीवन कौं मरिबोई करैंगी।
हाय महा दुख है सुखदैन ! बिचारौ हियैं, भरिबोई करैंगी।
क्यौं घनआनँद मीत सुजान ! कहा अँखियाँ बरिबोई करैंगी ॥ ९ ॥

तुन्हैं प्रान लगे तुम प्रानन हूँ मनमोहन सोहन मानियै जू।
निठुराई सौं कौ लौं निबाहियैगी कबहूँ तौ दया उर आनियै जू।

आँसुनि० = उस अवसर पर आँसू गिराती है, अथवा आँसू गिराकर अवसर खो देती है। सौंहन = संमुख। जोहन = देखना। आरति = लालसा। [७] सूल० = वेदना की हूक। कलपायहै = तरसाएगा। कल = चैन। [८] अमी-निधि = अमृत के समुद्र। पारियै० = कानों मैं पड़ेंगे, सुनने को मिलेंगे। [९] साध = उत्कंठा। असाध = असाध्य। भरिबोई = दुःख से दिन काटना।

दरसे तें कहौ हो कहा घटिहै घनआनँद चातक-दानियैं जू।
बरसौ सरसौ अरसौ न दई जग-जीवन हौ जग जानियैं जू ॥१०॥

कवित्त

नंद को नवेलो अलबेलो छैल रंग-भर्यौ,
कालि मेरे द्वार ह्वै कै गावत इतै गयौ।
बड़े बाँके नैन महा सोभा के सु ऐन आली,
मृदु मुसक्याय मुरि मो तन चितै गयौ।
तब ते न मेरे चित्त चैन कहूँ रंचकौ है,
धीरज न धरै सो, न जानौं धौं कितै गयौ।
नेकु ही मैं मेरो कछू मो पै न रहन पायौ,
औचक ही आय भटू लूट सी बितै गयौ ॥११॥

जाके उर बसी रस-मसी छवि साँवरे की,
ताहि और बात नीकी कैसे करि लागिहै।
चखनि चषक पूरि पियौ जिन रूप-रस,
कैसैं सो गरल-सनी सीखनि सौं पागिहै।
आनँद को घन स्यामसुंदर सजल अंग
छाड़ि, धूम-धूँधरि सौं कैसैं कोऊ रागिहै।
ये तौ नैन वाही की बदन हेरैं सीरे होत,
और बात आली सब लागति ज्यौं आगि है॥१२॥

हिलग अनोखी क्यौं हूँ धीर न धरत मन,
पीर-पूरे हिय मैं धरक जागियै रहै।
मिले हूँ मिले को सुख पाय न पलक एकौ,
निपट बिकल अकुलानि लागियै रहै।
मरति मरूरनि बिसूरनि उदेग-बाढ़ि,
चित चटपटी मति चिंता पागियै रहै।

[१०] सोहन = शोभन। अरसौ० = आलस्य मत करो। [११] ऐन = घर। लूट० = लूट सी करके। [१२] रसमसी = रसीली। चषक = प्याला।

ज्यौं ज्यौं वहरैयै सुधि जी मैं ठहरैयै,
त्यौं त्यौं उर अनुरागी दुख-दाह दागियै रहै ॥१३॥

सवैया

रैन-दिना घुटिबो करैं प्रान, झरैं अँखियाँ दुखिया झरना सी।
प्रीतम की सुधि अंतर मैं कसकै सखि ज्यौं पँसुरीनि मैं गाँसी।
चौचँद-चार चवाइन के चहुँ ओर मचैं, बिरचैं करि हाँसी।
यौं मरियै भरियै कहि क्यौं सु परौ जिन कोऊ सनेह की फाँसी ॥१४॥

अलि! जो विधिना व्रजवास न देतौ न नेह को गेह हियो करतौ।
अरु रूप-ठगी अँखियाँ रचतौ नहीं रूखियै दीठि सौं लै भरतौ।
कहि तौ लखि नंद को छैल छबीलो सु क्यौं कोऊ प्रेम-फँदा परतौ।
दुख कौं लौं सहौं घुटि कैसैं रहौं भयौ भाकसी देखैं बिना घर तौ ॥१५॥

होते हरे हरे रूखे जो दूखे, कितै गई सो चिकनानि तिहारी।
मोह-मढ़ी बतियाँ जु गढ़ी सु कढ़ी छतिया छिदि बंक बिहारी।
चूक पै मूक भए ही बनै, घनआनँद हूकनि होति दुखारी।
एहो कहा भयौ कान्ह कठोर ह्वै एक ही बारि चिन्हारि बिसारी ॥१६॥

कवित्त

छवि सौं छबीलो छैल आजु भोर याही गैल,
अति ही रँगीली भाँति औचक ही आयगौ।
चटक मटक भरी लटकि चलनि नीकी,
मृदु मुसक्यानि देखैं मो मन बिकायगौ।
प्रेम सौं लपेटी कोऊ निपट अनूठी तान,
मो तन चिताय गाय लोचन ढुरायगौ।
तब तैं रही हौं घूमि झूमि जकि बावरी ह्वै,
सुर की तरंगनि मैं रंग बरसायगौ ॥१७॥

धूम० = धूएँ का धुंध। [१३] हिलग = लगन। मरूर = पीड़ा। [१४] गाँसी = फाँस। चौचँद० = बदनामी की चर्चा। [१५] भाकसी = (भस्त्री = भाथो) भट्टी। [१६] होते० = रूखे दूखे भी जिससे हरे (प्रसन्न) हो जाते थे। [१७] ढुरायगौ = मटका गया। घूमि = मतवाली हो गई हूँ। [१८]

छवि की निकाई पहो मोहन कन्हाई, कछू
बरनी न जाई जो लुनाई दरसति है।
वारिधि-तरंग जैसे धुनि-राग-रंग जैसे,
प्रतिछिन अधिक उमंग सरसति है।
किधौं इन नैननि सराहौं प्रानप्यारे,
रूप-रेलहिँ सकेलैं तऊ दीठि तरसति है।
ज्यौं ज्यौं उत आनन पै आनँद सु ओप ओरैं,
त्यौं त्यौं इत चाहनि मैं चाह बरसति है ॥१८॥

सुंदर सरस लोनो ललित रँगीलो मुख,
जोवन-झलक क्यौं हूँ कही न परति है।
लोचन चपल चितवनि चाय-चोज-भरी,
भृकुटी सुठौन भेद-भायनि ढरति है।
नासिका रुचिर अधरानि लाली सहजै ही,
हँसनि दसन-जोति हियरा हरति है।
नख-सिख आनँद उमंग की तरंग बढ़ि
अंग अंग आली छवि छलक्यौ करति है ॥१९॥

बैस है नवेली अलबेली ऊठ अंग अंग,
झलकै अनंग-रंग ऐंड़त चलत है।
सहज छबीले दसननि मैं रची री बीरी,
अधर-तरंगनि सुधा सी उझलत है।
छकै छुवैं कान वारौं कोटि तीखे बान, ऐसे
नैननि बिहँसि हेरि मैन निदलत है।
कारी घुँघरारी अलकनि के छलानि, छैल
tाननि लुभाय फिरि प्राननि छलत है ॥२०॥

रेला = प्रवाह, अधिकता। चाहनि० = देखने से लालसा की वृष्टि होती है।
[१९] सुठौन = सुंदर। [२०] ऊठ = उठान। उलझत० = उड़ेलता है।
मैन० = काम को पराजित करता है। छला = केशों के छल्ले। [२१]

रूप-गरबीलो अरबीलो नंद-लाड़िलो सु
　　दृग-मग उरझ्यौ परत आली उर मैं।
काननि ह्वै प्राननि निकासि लेत एरी बीर!
　　ऐसी कछू गावत मधुर बंसी-सुर मैं।
ढोरियै दरेरनि निदरि लाज देखिबे कौं,
　　पौरि पौरि याही रौरि माची ब्रज-पुर मैं।
कैसे करि जीजै,बसि कीजै कहा,महा सोच,
　　चार्यौ ओर चलत चवाव लघु-गुर मैं ॥२१॥

पीरे पीरे फूलनि की माला रचि हिय धारि,
　　वारि वारि ताही कौं सफल करै काय कौं।
ऐसे धीर काचे, पूरे प्रेम-रंग राचे बीर!
　　पीरे फल चाखैं अभिलाखैं नीके दाय कौं।
डोलैं बन बन बावरे ह्वै साँवरे सुजान,
　　धाय धाय भेटैं भावती ही दिसि बाय कौं।
उमगि उमगि घनआनँद मुरलिका मैं
　　गौरी गाय ढौरी सौं बुलावैं गोरी गाय कौं ॥२२॥

तेरे हित हेली! अनुराग-बाग-बेली करि,
　　मुरली-गरज भूमि भूमि सरसत है।
लोने अंग रंग जानि चंचला छटा सौं पट
　　पीत कौं उमगि लै लै हियैं परसत है।
चाह के समीर की झकोरनि अधीर ह्वै ह्वै,
　　उमड़ि घुमड़ि याही ओर दरसत है।
लोचन सजल क्यौं हूँ उघरैं न एकौ पल,
　　ऐसैं नेह-नीर घनस्याम बरसत है ॥२३॥

उरझ्यौ० = धँसे आ रहे हैं। ढोरियै = साथ लगना। रौरि = शोर। [२२] दाय = दाँव। बाय = वायु (आकाश)। गौरी = एक राग। ढौरी = ढंग। गोरी = गौर वर्ण। [२३] हेली = हे सखी। घनस्याम = श्रीकृष्ण ; बादल।

आई आन गाँव तें नवेली पास पायसैं सु,
गुरु-जन-लाज के समाजनि मैं आवरी।
आनँद-सरूप अलि साँवरो तक्यो ता कहूँ,
दीठि के मिलत वढ़ि पर्यौ चित चाव री।
रीझि-परबस पर बस न चलत कछू,
ऐसैं ही मैं होरी को रँगीलो बन्यौ दाव री।
दिन ही मैं तिन-सम कानि के कपाट तोरि,
धूँधरि अबीर की कौं मानत विभावरी॥ २४॥
गोरी बाल थोरी बैस, लाल पै गुलाल-मूठि
तानि कै चपल चली आनँद-उठान सौं।
बायें पानि घूँघट की गहनि चहनि-ओट
चोटनि करति अति तीखे नैन-बान सौं।
कोटि दामिनीनि के दलनि दलमलि, पाय
दाय जीति आय झुंड मिली है सयान सौं।
मीड़िबे के लेखें कर मीड़िबोई हाथ लग्यौ,
सो न लगी हाथ रह्यौ सकुचि सखान सौं॥ २५॥
नीकी नई केसरि को गारौ हू गरब गारै,
फीकी रोरि, गारि सी निहारैं रूप गोरी को।
चाह चुहचुही मँजी एड़िनि ललाई लखैं,
चपरि चलत च्वै बरन बूकी बोरी को।
हँसि बोलैं कोरिक कपूर सोंधे बारि ढारि,
डारि डारि दीजै हो कलंक इन्हैं चोरी को।
प्यारे घनआनँद के राग भाग फाग देखौ,
रस-भीजे अंगनि अनूठो खेल होरी को॥ २६॥

---

[२४] पास = निकट, पड़ोस। पायसैं = जेवनार मैं। आवरी = व्यग्र। बिभावरी = रात्रि। [२५] चहनि = देखना। [२६] गारौ = गौरव। गारि सी = अर्थात् रोली कलंकित सी जान पड़ती है। चुहचुही = आर्द्र। बूकी० = लाल बुकनी और उसमैं रँगी वस्तु का। सोंधे = सुगंधित पदार्थ, इत्र

सवैया

बैस नई अनुरागमई सु भई फिरै फागुन की मतवारी।
कौंवरे हाथ रची मिहँदी डफ नीकैं बजाय हरै हियरा री।
साँवरे भौंर के भाय भरी घनआनँद सौनि मैं दीसति न्यारी।
कान ह्वै पोखति प्रानपियैं मुख-अंबुज च्वै' मकरंद सी गारी ॥२७॥
पिय के अनुराग सुहाग-भरी रति हेरैं न पावति रूप-रफै।
रिझवारि महा रसरासि-खिलारि गवावति गारि बजाय डफै।
अति ही सुकुवारि उरोजनि भार भरैं मधुरी डग लंक लफै।
लपटै घनआनँद घायल ह्वै दृग-पायल छ्वै गुजरी-गुलफै ॥२८॥

कवित्त

नई तरुनई भई, मुख आछी अरुनई,
सरद्-सुधाधर-उदोत-आभा रद की।
अंग अति लोनी लसै ललित तिलोनी सारी,
भाग-भरे भाल दिपै बैंदी मृगमद की।
बोलै हो हो होरी घनआनँद उमंग-बोरी,
छैल-मति छकै छबि हेरैं रदछद की।
रोरी भरि मुठी गोरी भुज उठी सोहै मनौ,
पराग सौं रली भली कली कोकनद की ॥२९॥

सवैया

घूँघट-ओट तकै तिरछी घनआनँद चोट सुघात बनावै।
बाँह उसारि सुधारि वरा वर बीर! छरा धरि ढूकति आवै।
कौंधि अचानक चौंधि भरै चख, चौकस चौंकति छाँह न छ्वावै।
बाल अनूठियै ऊठ गुलाल की मूठि मैं लालहि मूठि चलावै ॥३०॥

आदि। ढारि = गिराकर। [२७] सौनि० = अबीर की ललाई से भरे मुँहवाली होकर। [२८] रफै = सुंदर ढंग। लफै = लचकती है। दृग० = नेत्ररूपी नूपुर। गुजरी० = गोपी का टखना। [२९] तिलोनी = फुलेल से सुगंधित। रदछद = होंठ। रली = भरी। कोकनद = लाल कमल। [३०] उसारि =

दाँव तकैं, रस-रूप छकैं, बिथकैं मति पै अति चोपनि धावै।
चौंकि चलैं, ठठि छैल छलैं, सु छबीली छराय लौं छाँह न छ्वावै।
घूँघट-ओट चितै घनआनँद चोट चितै अँगुठाहि दिखावै।
भावती गौं-बस ह्वै रसिया हिय-हाँसनि सौं सनि आँखि अँजावै ॥३१॥

पिय नेह अछेह भरी दुति देह दिपै तरुनाई के तेह तुली।
अति ही गति धीर समीर लगैं, मृदु हेमलता जिमि जाति डुली।
घनआनँद खेल-अलेल दसैं बिलसैं, सु लसै लट भूमि झुली।
सुठि सुंदर भाल पै भौंहनि बीच गुलाल की कैसी खुली टिकुली ॥३२॥

आछी तिलौंनी लसै अँगिया गसि चोवा की बेलि बिराजति लोइन।
साँवरी पोति-छरा छलकै छवि गोरी अँगेट लखैं सम कोइ न।
एड़ी-झँवैंलिनि ताकि थकैं घनआनँद छैल छकैं डग दोइन।
भावती गौं पगि लावनि सौं लगि डोलैं लला के लगौंहैं लोइन ॥३३॥

कवित्त

चिहुँटि जगाई अधराति औटपाई आनि,
जानि भहराई सम्हराई मुँह चाँपि कै।
संकट सनेह को बिचारैं प्रान जात घुटे,
उरे नाह, नाहर-डरनि उठी काँपि कै।
दिन होरी-खेल की हराहर भर्यौ हो सु तौ,
भाग जागं सोयौ निधरक नैन ढाँपि कै।

वस्त्र में से निकालकर। बरा = भुजा पर पहनने का एक गहना। छरा = माला की लड़। ढ़ुकति० = पास चली आती है। ऊठ = उमंग। मूठि चलावै = जादू करती है। [३१] ठठि = शान से डटकर। छराय० = पकड़ी जाने की आशंका से। चोट० = आघात करके। [३२] तेह = जोश। तुली = युक्त। अलेल = मग्न होकर किलोल करना। खुली = फबती है। [३३] तिलौनी = सुगंधित। लोइन = सुंदर। पोति = काँच की गुरिया। अँगेट = अंगदीप्ति। झँवैलिनि = झाँवे से रगड़ी हुई। लावनि = पैर रखना, चलना। लोइन = लोचन। [३४] चिहुँटि = चुटकी काटकर। औटपाई = नटखट। उरे = दूर

सपने की संपत्ति लौं दुखदैन जान्यौ घन-
आनँद कहा धौं सुख पायौ पंथ नाँपि कै ॥ ३४ ॥
भावती सहेट अंक भरि भेंटि संक मेटि,
रंक थाती छाती धरि रहे आप आप कौं।
निपट अनूठी दसा, हेरत हिरानी बीर !
बानियौ सिरानी,क्यौं बखानियै मिलाप कौं।
आगें कहा बीती, भई तब हीं सुरति-रीती,
जैसें सर छूटि न मिलत फिरि चाप कौं।
सोभा-रस चाखैं अभिलाखैं हुतीं आँखैं,
घनआनँद उछरि ओछी फूलीं भूलीं जाप कौं ॥३५॥

सवैया

प्रेम-अमी-मकरंद-भरे बहुरंग प्रसूननि की रुचि-राजी।
देखत आज बनै बनराजहि रूप अनूपम ओप बिराजी।
राग-रची अनुराग-जची सुनि हे घनआनँद बाँसुरी बाजी।
मैन-महीप बसंत-समीप मतौ करि कानन सैन है साजी ॥३६॥
पातरे गात किए नवसात, निकाई सौं नाक चढ़ाएँई बोलै।
राचे महावर पायनि त्यौं तकि चायनि आय गस्यारेई डोलै।
स्यामहि चाहि चलै तिरछी, मनु खेलै खिलारि न घूँघट खोलै।
आली सौं आनँद बातनि लागि मचावति घातनि घामरि घोलै ॥३७॥
हरि-नेह-छकी तरुनाई के तेह सु गेह मैं लाज सौं काज करै।
मिस ठानि चलै रसिया रहठानि त्यौं आनि भटू अँखियानि अरै।
घनआनँद रूप-गरूर-भरी धरनी पर सूधे न पाय परै।
पिय को हिय ताहि लखैं अभिलापनि लाखनि लाखनि भाँति भरै ॥३८॥

(हो जाने पर)। नाहर = शेर। हराहर = झीना झपटी। नैत = सुअवसर। [३५] सहेट = संकेतस्थल। सिरानी = बंद हो गई। सुरति० = सुधहीन। [३६] रुचि = सुंदर पंक्ति। बनराज = वृंदावन। [३७] नवसात = सोलहो शृंगार। गस्यारेई = मस्ती से चक्कर काटती हुई। घामरि = बेहोशी। [३८]

कवित्त

रही मिलि भीति पै सभीति लोक-लाज-भरी,
रीझी कहूँ स्यामै देखि दसा ताकी को कहै।
फंद की मृगी लौं छंद छूटिबे को नेकौ नाहिं,
चारयो ओर कोरि कोरि भाँतिन सौं रोक है।
मोहन को बोल सुनैं धुनै सीस, मन ही मैं
घुनै सोच भारी, गुनै गहि बूडै सोक है।
उघरै न वास गुरुजन आसपास घन-
आनँद बतास कहा अहा नेह-झोक है ॥३९॥
तरुनाई-वारुनी-छुटनि-मतवारे भारे,
झुकि धुकि धाय रीझि उरझि गिरत हैं।
सम्हरि उठत घनआनँद मनोज-ओज,
बिफरत बावरे न लाजनि घिरत हैं।
सुघराई सान सौं सुधारि मसि असि कसि,
कर ही मैं लियैं निसवासर फिरत हैं।
तेरे नैन-सुभट चुहट-चोट लागैं बीर,
गिरिधर-धीरता के किरचा करत हैं ॥४०॥

सवैया

चाल-निकाई लखैं बिलखै पचि पंगु मरालिनि-माल बिसूरति।
पाय परै न परै मति पाय सची तरसै थरसै न कछू रति।
घूँघट-बीच मरीचनि की रुचि कोटिक चंदन को मद चूरति।
लाजनि सौं लपटी घनआनँद साजन के हिय मैं हित पूरति ॥४१॥

कवित्त

सिसुताई-निसि सियराई बाल-ख्यालनि मैं,
जोवन बिभाकर-उदोत-आभा है रली।

रहठानि = वासस्थान। [३९] छंद = उपाय। घुनै = क्षीण हो रही है। बास = वस्त्र, रहस्य। बतास = वायु। [४०] बिफरत = उत्पात करते हैं। मसि = अंजन। असि = तलवार। चुहट = कसक। किरचा = टुकड़े। [४१]

गमागम-बस भयौ रस को समागम है,
आगे तेँ अधिक अब लागन लगी भली ।
सकुच-बिकच-दसा देखौं मन आई मनौ,
चाहति कमल होन कौन रूप की कली ।
बड़भागी रागी चलि ऐहै घनआनँद सौं,
आँखिनि सिरैहै मधु लैहै भावतो अली ॥४२॥

अलप अनूप लटपटी सु लपेटी रूप,
अलग लगी सी तामैं केती सूध-बाँक है ।
कोटिक निकाई मृदुताई की अवधि सोधौं,
कैसे कै रची है जामैं बिधि-बुधि राँक है ।
डीठि नीठि आवै कोऊ कहि क्यौं बतावै, जहाँ
बात हू के बोझ हिय होत नमि साँक है ।
चलि चित चोरै मुरि मनहिँ मरोरै सुठि,
सुभग सुदेस अलबेली तेरी लाँक है ॥४३॥

लाली अधरान की रुचिर मुसक्यान-समै,
सब मुख भोर ही सिँदूरा की सी फैल है ।
जोबन गरूर गरुवाई सौं भरे, बिसाल
लोचन रसाल चितवनि बंक छैल है ।
सुंदर-सलोने लोने अंगनि की दुति आग
मन मुरझानो मंद मैन को सो मैल है ।
दुहूँ हाथ अंसनि तेँ पीरो पट ओढ़े लखि,
ठाढ़ो सिंह-पौरि रौरि परि थाकी गैल है ॥४४॥

मंजु मोरचंद्रिका-सहित सीस साँवरे के,
कैसी आछी फबी छबि पाग पँचरंग की ।

सची = इंद्राणी । थरसै = त्रस्त होती है । [४२] बिभाकर = सूर्य । गमागम= जाना (शैशव का) और आना (यौवन का) । बिकच = खिलने की । सिरैहै = शीतल करेगा । [४३] लटपटी = टेढ़ी-मेढ़ी । सूध = सीधी । बाँक = वक्रता । साँक = सशंक । लाँक = कमर । [४४] सिँदूरा = उषा की रक्तिमा ।

दारिम-कुसुम के बरन झीने नीमा मधि,
दीपति दिपति सु ललित लोने अंग की।
मंजन करत तहाँ मन बनितान के,
निहारि मोती-मालहि बिचारि धारा गंग की।
आनँदनि भरो खरो, मुरली बजावै, मीठी
धुनि उपजावै राग-रागिनी-तरंग की ॥४५॥

सवैया

नैन के सैन मैं कोटिक मैन लजैऽरु भजै तजि कै सर पाँचनि।
आनँदमै मुसक्यानि लखैं पघिलयौंई परै चित चाह की आँचनि।
ता पिय के हिय कौं हँसि हेरि लई सुघरई सी नई गति नाचनि।
नूपुर-बीन सौं लीन कै प्यारी प्रवीन अधीन किये सुर साँचनि ॥४६॥
जात नए नए नेह के भार बिँधे उर ओर बनी बरुनी के।
आनँदमै मुसक्यानि उदोत मैं होत है रोल तमोल अमी के।
भोर की आवनि प्रान अँकोर किये तित ही चलि आए जही के।
डारियै जू तिन तोरि कै लालन और दिनान तें लागत नीके ॥४७॥
नैन किये नरजी दिनरैन रती-बल कंचन-रूपहि तोलैं।
बारह बानि बनी ठनी षोड़स प्यारी के प्रेम छकी नित डोलैं।
श्रीवन-रानी के छत्र की छाँह करैं सुख-बारिधि माहिँ कलोलैं।
चाड़ न काहू की, लाड़-लड़ी हम गोरी गरूर भरी नहिँ बोलैं ॥४८॥
पूरन चंद के चूरन कौं तट धूरि हँसै सु कपूर किती पति।
जौ मघवा-मनि को सतु सोधियै तौऽब कहा परसै पय की मति।
स्याम के संग पगी सब अंग, लसै रस-रंग तरंगनि की गति।
आनँद-मंजन आँखिन अंजन होत लखैं सविता-दुहिता अति ॥४९॥

मैन = कामदेव ; मोम। [४५] नीमा = नीचे पहनने की कुरती। मंजन = स्नान। [४६] सर० = अपने पाँचौं बाणों को। प्रवीन = (वीणा बजाने मैं) निपुण। [४७] रोल = प्रवाह। तमोल = तांबूल। अँकोर = भैंट। [४८] नरजी = तौल करनेवाला। रती = रति (प्रेम) ; रत्ती। बारह० = बारह बानी सोना, कुंदन ; बारह आभूषण। षोड़स = सोलह श्रृंगार। श्रीवन० = राधा।

गोपी—

छैल नए नित रोकत गैल सु फैलत का पै अरैल भए हौ।
लै लकुटी हँसि नैन नचावत बैन रचावत मैन-तए हौ।
लाज अँचै बिन काज खगौ तिनहीँ सौँ पगौ जिन रंग-रए हौ।
पैंड़ सबै निकसैंगी अबै घनआनँद आनि कहा उनए हौ ॥५०॥

श्रीकृष्ण—

हैं उनए सु नए न कछू, उघटै कत ऐंड़ अमैड़ अमानी।
बैन बड़े बड़े नैनन के बल बोलति क्यौँ हौ इती इतरानी।
दान दियैं बिन जान न पाइहैं आइहै जौ चलि खोरि बिरानी।
आगें अछूती गईं सु गईं घनआनँद आज भई मनमानी ॥५१॥

गोपी—

जाय करौ उहि माय पै लाड़ बढ़ाय बढ़ाय किये इतने जिन।
भीत की दौरनि खोरनि है सठता हठ ओरनि सौँ समझै बिन।
दान न कान सुन्यौ कबहूँ कहूँ काहे कौ कौन दयौ सु लयौ किन।
टोड़िक ह्वै घनआनँद डाँटत काटत क्यौँ नहीँ दीनता सौँ दिन ॥५२॥

श्रीकृष्ण—

देहैगी दान जु ऐहै इतै, नहीँ, पैहै अबै सु किये कौ सबै फल।
बाबा दुहाई, सुहाई कहौ जिय, जानि कै मानि छुटै न कियैं छल।
एकहि बोल, दै जाहु चली झगरो सगरो मिटि बात परै सल।
नावँ पर्‌यौ अबला घनआनँद ऐंठति ग्वैंठति भौँह किते बल ॥५३॥

चाड़ = लालसा, यहाँ अपेक्षा या परवाह। [४९] पति = प्रतिष्ठा। मघवा० = इंद्रमणि, नीलम। पय = पानी। मति = समता। सबिता० = यमुना। [५०] अरैल = अड़नेवाले। तए = तप्त। खगौ = छेड़ते हो। [५१] उघटै० = अर्थात् ताना क्यौँ मारती है। अमैड़ = मर्यादा को न माननेवाली। अमानी = किसी की मान-प्रतिष्ठा न माननेवाली। खोरि० = दूसरे की गली मेँ। [५२] भीत० = अर्थात् छेंकना। टोड़िक = पेटू। [५३] बात० = अर्थात् झगड़ा

गोपी—

जीभ सँभारि न बोलत हौ, मुँह चाहत क्यौं अब खायौ थपेर।
ज्यौं ज्यौं करी कछु कानि-कनौड़ त्यौं मूड़ चढ़े बढ़े आवत नेरैं।
खाय कहा फल माय जने, जिय देखौ विचारि पिता तन तेरैं।
कंज कनेरहि फेर बड़ो घनआनँद न्यारे रहौ कहौं टेरैं ॥५४॥

श्रीकृष्ण—

लेहु भया ! गहि सीसन तें दधि की मटुकी अब कानि करौ कित।
जैसे सौं तैसे भए ही बनै घनआनँद धाय धरौ जित की तित।
एकहि एक बराबरि जाहु, करौ अपने अपने चित को हित।
फेरियै क्यौं दुहूँ हाथ सकेरियै, जौ विधिना घर बैठे दयौ वित ॥५५॥

गोपी—

गोद भरै, वित धाय कै जाय धरौ गहि मोद सौं माय के आगे।
पेट परे को लखै फल ज्यौं, उपजे हौ सपूत सुभागनि जागे।
बाँटिहै बोलि बधाई कमाई की जाति मैं जातैं महापति पागै।
बास दिये को यहै फल है घनआनँद जौ छिन दोष न लागै ॥५६॥

मधुमंगल—

नंदलला रससागर सौं ललिता ! रिस की सलिता न बढ़ैयै।
नागरि आगरि हौ बहु भाँति तुम्हैं अब कौन सी बात पढ़ैयै।
चोखन तोष नहीं उपजै घनआनँद क्यौं गुन दोष कढ़ैयै।
नेकु ढरैं सुधरैं सब काज, अकाज इतौ अपलोक चढ़ैयै ॥५७॥

ललिता—

सुनि रे मधुमंगल ! दान-कथा सु जथारुचि होत वृथा हठि है।
कर ओड़ि, दिखाय दया, मृदु ह्वै चलियै बहु भाँति बिनै करि है।

मिटे। सल = परत। [५४] कानि० = मर्यादा और एहसान का विचार। फेर = अर्थात् अंतर। [५५] सकेरियै = समेटो। बित = धन। [५६] पति = प्रतिष्ठा। [५७] सलिता = सरिता। आगरी = चतुर। चोखन = तैश से।

घनआनँद ओट अमेठ कियेँ कहियै कहा पै अब पैयति है।
रिझवारनि पै गुन गाय रिझावहु देहिँ लली की निछावरि है ॥५८॥

सखा—

स्याम सुजान सबै गुन-खानि बजावत बैन महा सुर साँचनि।
अंग त्रिभंग, अनंग-भरे दृग भौंह नचाय नचावत नाँचनि।
कीरतिदा-कुलमंडन ज्यौं निरखै भरि नैन बढ़ै सुख-माँचनि।
दान हँसैं चुकिहै घनआनँद रीझन ही रुकिहैं हित-आँचनि ॥५६॥

सखी—

आवौ सखी चलि कुंज मैं बैठि लखैं घनआनँद की सुघराई।
पैठन देहिं न एक सखै, अकिलैं इन्हैं छेकि करैं मनभाई।
भावती टेक रही बहु भाँति, किये न बनै, अति ही कठिनाई।
लेति हौं राधे बलाय, कह्यौ करि, आज मनौ इतनी हम पाई ॥६०॥

राजदुलार-भरी इकसार, सुभाय मथैं मन डारति पी को।
कुंज चली सुखपुंज अली सँग भाल बिराजत लाज को टीको।
लोचन कोरनि छोरनि ह्वै मुसक्यानि मैं ह्वै दरसै हित ही को।
बोलनि बापुरी डारियै वारि लखैं घनआनँद रूप लली को ॥६१॥

रंग रह्यौ सु न जात कह्यौ उमह्यौ सुखसागर कुंज मैं आएँ।
केलि पर्‌यौ रस को झगरो अति ही अगरो निबरै न चुकाएँ।
काहू सम्हारि रही न भटू तनकौ तन मैं घनआनँद छाएँ।
प्रेम पगे रिझवारिन की तहाँ रीझि कै रीझहि लेत बलाएँ ॥६२॥

['घनानंद-कवित्त' से]

अकाज = व्यर्थ। अबलोक = कलंक। [५८] मधुमंगल = कोई कृष्ण-सखा। ओढ़ि = पसारकर। ओठ = हौंठ टेढ़ा-मेढ़ा करने से। [५६] कीरतिदा = यशोदा। [६०] सुघराई = चतुरता। [६१] इकसार = एक ढंग से। ही = हृदय। [६२] अगरो = अधिक। निबरै० = रसक्रीड़ा समाप्त होने पर भी

कवित्त

लाख अभिलाषन की चिंता गुनकथनन,
सुधि करि दीन की उदेग दसा दहियौ।
लाप के प्रलाप उनमाद के सँताप व्याधि,
पापिन की आप नेकु वेगि सुधि लहियौ।
जड़ता कही न जात ज्यौं तौ अति अकुलात,
नैनन कही है बात मेरी ओर चहियौ।
जानी दिलजान सौं जु मानी वा सुजान सौं,
निसानी द्वै कै प्रान सौं निदान प्रान कहियौ ॥६३॥

एकै डोलै वेचत गुपालहि दहेंड़ी लियें,
नैनन समायौ सो हीं बैनन जनात है।
और उठि बोलै आगैं लाव री कहा है मोल,
कैसो धौं जम्यौ है ज्यौं सवादै ललचात है।
आनँद को घन छायौ रहत सदा ही व्रज,
चोपन पपीहा लौं चहूँधा मँडरात है।
गोकुल बधून की बिकान पै बिकाय रह्यौ,
गली गली गोरस ह्वै मोहन बिकात है ॥६४॥

विविध * सुगंध भाँति भाँति भाव फूल बिछे,
सब रस रीति जामैं केसरि की भोलना।
बिसद सुवास नाना विधि सौं सँभारि रच्यौ,†
चौकस गुननि गस्यौ गूढ़ गाँस खोलना।
राधा-मन‡ मोहन-बिलास को सुखासन है,
दोऊ एक बानक सलोने मिठबोलना।

समास नहीं होती। रीझि० = रीझ को भी रिझाकर। [६३] लाप = संलाप, बातचीत। निसानी = पहचान का चिह्न। [६४] दहेंड़ी = दही की मटकी।

* सरस। † सुबासना बसन सौं सुधारि सज्यौ। ‡ मज।

तनकौ न कहूँ बसौ बस न तनक मेरो,
मन ब्रज-मंडल को उड़न-खटोलना ॥६५॥

सवैया

धुनि पूरि रहै नित कानन मैं अज को उपराजिबोई सी करै।
मनमोहन जोहन गोहन के अभिलाष समाजिबोई सी करै।
घनआनँद तीखियै तानन सौं सर से सुर साजिबोई सी करै।
कित है वह बैरिन बाँसुरिया बिन बाजिबे बाजिबोई सी करै ॥६६॥
आपु ही तें मन हेरि हँसे तिरछे करि नैनन नेह के चाउ मैं।
हाय दई सु बिसारि दई सुधि कैसी करौं सु कहौ कित जाउँ मैं।
मीत सुजान अमीत कहा यह ऐसी न चाहियै प्रीति के भाउ मैं।
मोहन मूरति देखिबे कौं तरसावत हौ बसि एक ही गाउँ मैं ॥६७॥
दृग फेरियै ना अनबोलियै सो सर से ही लगे कित जीजियै जू।
रसनायक दायक हौ रस के सुखदाई ह्वै दुःख न दीजियै जू।
घनआनँद प्यारे सुजान सुनौ बिनती मन मानि कै लीजियै जू।
बसि कै इक गाँव मैं एहो दई चित ऐसो कठोर न कीजियै जू ॥६८॥

['शृंगार-संग्रह' से]

तब तौ दुरि दूरहि तैं मुसक्याय बचाय कै और की दीठि हँसे।
दरसाय मनोज की मूरति ऐसी रचाय कै नैननि मैं सरसे।
अब तौ उर माहिं बसाय कै मारत एजू बिसासी कहाँ धौं बसे।
कछु नेह-निबाह न जानत हे तौ सनेह की धार मैं काहे धँसे ॥६९॥

['सुजान-शतक' से]

कबित्त

गुरनि बतायौ राधामोहन हू गायौ सदा,
सुखद सुहायौ वृंदाबन गाढ़े गहि रे।

---

[६५] बिसद = निर्मल। [६६] अज = नाद-ब्रह्म। उप० = उत्पन्न। समा० = संचय। [६७] भाउ = भाव, वृत्ति। [६८] रस = आनंद। [६९] हे = थे।

अद्भुत अभूत महि-मंडन परे तें परे,
जीवन को लाहु हाहा क्यौं न ताहि लहि रे।
आनँद को घन छायौ रहत निरंतर ही,
सरस सुदेस सौं पपीहापन बहि रे।
जमुना के तीर केलि कोलाहल भीर ऐसी,
पावन पुलिन पै पतित परि रहि रे ॥७०॥

ऊधौ विधि-ईरित भई है भाग-कीरति,
लही रति जसोदा-सुत-पावन-परस की।
गुलम लता ह्वै सीस धर्‍यौ चहै धूरि जाकी,
कहियै कहा निकाई महिमा सरस की।
झूम्यौई रहत सदा आनँद को घन जहाँ,
चातकी भई है मति माधुरी बरस की।
आँखिन लगी है प्रीति पूरन पगी है अति,
आरति जगी है ब्रजभूमि के दरस की ॥७१॥

विरह-बिसूरे पीर-पूरे मन सबन के,
राति-द्यौस भयौ जिन्हैं पलकौ कलन को।
औधि-आस ओसनि सहारैं हाय कैसें करि,
जिनको दुसह दीसै पारिबो पलन को।
या विधि वियोग ब्रज बावरो भयौ है सब,
बाढ़त उदेग महा अंतर-दलन को।
आनँद-पयोद-के पपीहनि पै छायौ अब,
दीरघ दुसह घाम स्याम के चलन को ॥७२॥

आँखिन को जो सुख निहारे जमुना के होत,
सो सुख बखाने न बनत देखिबेई है।

---

[७०] बहि = वहन कर। [७१] ईरित = वोषित। आरति = लालसा।
[७२] कल = चैन। पारिबो = बिताना। [७३] आदरस = दर्पण। सलाका

गौर स्याम रूप आदरस है दरस जाको,
गुपित प्रकट भावना बिसेखिवेई है।
जुग कूल सरस सलाका दीठि परस ही,
अंजन सिंगार रूप अवरेखिवेई है।
आनँद के घन माधुरी को झर लागि रहै,
तरल तरंगनि की गति लेखिवेई है ॥७३॥
['मिश्रबंधु-विनोद' से]

सवैया

नेह सों भोय सँजोय-धरी हिय-दीप-दसा जु भरी अति आरति।
रूप-उज्यारे अजू ब्रजमोहन सौंहनि आवनि ओर निहारति।
रावरी आरति बावरी लौं घनआनँद भूलि वियोग निवारति।
भावना-थार हुलास के हाथनि यौं हित मूरति हेरि उतारति ॥७४॥
['खोज', सन् १९१२]

कबित्त

चलि रे सुबल आजु वाही के बगर कालिह,
जो ही मेल खाइ घनआनँद सु औसरै।
फरहरे गात मँडरात मोर भाँवरी दै,
छूटे बार मोतिन की द्वै-लरी बनी गरै।
आँचर उलटि सीस डारै कौन जानै क्यौं,
निहारैं तेही होवै त्यौं सुबात मन मैं धरै।
औचक ही कित इत डीठि के परत पीठि,
दैनि देखि नैन ईठि नीठि न कह्यो करै ॥७५॥
['खोज', सन् १९२३]

= अंजन लगाने की सलाई। [७४] नेह = प्रेम ; घृत। भोय = भिंगोकर। सँजोय = जलाकर। दसा = अवस्था ; बत्ती। [७५] बगर = घर। [७६]

सवैया

कीरति की मति की गति की अति की रति-प्रापतिदाइनि देखी।
देवनदी अहियान-पदी महिमान बदी स्रुति साखि बिसेखी।
और कहाँ कहि कौन सकै घनआनँद यौं उर ही अवरेखी।
तेरेई तीर तिविक्रम, ताकि दया करि दै बिदिसा अनिमेखी॥७६॥

कबित्त

नाद को सवाद जानै बापुरो बधिक कहा,
रूप के बिधान को बखान कहा सूर सौं।
सरस परस के बिलास जड़ जानै कहा,
नीरस निगोड़ो दिन भरै भखि ऊरसौं।
चाह की चटक तैं भयौ न हियें खौंप जाके,
प्रेमपीर कथा कहै कहा भकभूर सौं।
चाहै प्रान-चातक सुजान घनआनँद कौं,
दैया कहूँ काहू कौं परै न काम कूर सौं॥७७॥

[खोज, सन् १६२६]

सवैया

मन मेरो घनेरो अनेरो भयौ अब कौन के आगे पुकार करौं।
सुखकंद अहो ब्रजचंद सुनौ जिय आवति है तुम ही तैं लरौं।

अति० = अत्यंत प्रेमप्राप्ति की दात्री, अत्यंत प्रिय बना देनेवाली। देवनदी = गंगा। अहियान० = शेषशायी विष्णु के पद से उद्भूत। स्रुति = वेद। अवरेखी = विचार किया। तिबिक्रम = त्रिविक्रम, वामन का अवतार। बिदिसा = विदिशा, एक नदी। पुराणानुसार यह पारियात्र पर्वत से निकली है और वामन ने त्रिविक्रम का रूप यहीं धारण किया था। अनिमेखी = निरंतर। [७७] सूर = अंधा। भरै = काटता है। भखि = खाकर। ऊरसौं = कुरस, स्वादहीन वस्तु को। खौंप = कौंपल, अंकुर। भकभूर = उजड्ड, मूढ़। [७८] अनेरो =

अनमोह भए जन मोहत हौ मनमोहन या बिधि याहि अरौं ।
घनआनँद ह्वै दुख-ताप तपावत भावते नावँहिं नावँ धरौं ॥७८॥

कबित्त

गौर भए स्याम गोरी साँवरी ह्वै रही देखौ,
रूप की निकाई आजु औरै पेखियत है।
बदलि परी है प्रीति-रीति परतीति-नीति,
निपट अचंभे की समीति लेखियत है।
देखैं भूलियत कछू कहत न आवै सखी,
इनकी हिलग नई नई देखियत है।
चिरजीवौ जोरी घनआनँद बरस यह,
ब्रज बृंदावन ही मैं यौं बिसेखियत है ॥७९॥

['खोज', सन् १९२४]

---

* दृष्ट । [७९] समीति = समूह । हिलग = लगन ।

आनंदघन

(भक्त कवि)

इश्कलता

दोहा

छैल छबीलो साँवरो, गोपवधू-चित-चोर।
'आनँदघन' बंदन करै, जै जै नंदकिसोर॥ १॥

लगा इस्क ब्रजचंद सों, सुंदर* अधिक अनूप।
तब ही 'इस्कलता' रची, आनँदघन सुखरूप॥ २॥

स्याम सुजान बिना लखैं, लगे बिरह के सूल।
तामैं इस्कलता भई, घन आनँद को मूल॥ ३॥

संयोगी सैं इस्क सैं, इस्क-बियोगी खूब।
आनँदघन चस्मों सदा, लगा रहे महबूब॥ ४॥

बिरह-सूल सों बारि करि, घन आनँद सों सींच।
इस्कलता झालरि रही, हिये चमन के बीच॥ ५॥

अरिल्ल

सजन सलोना यार नंद दा सोहना।
रसिक बिहारी छैल सु मनमथ मोहना।

---

[२] इस्क = प्रेम। [४] चस्म = आँख। महबूब = प्रिय। [५] सूल =

* अंधर, अंदर।

दिखलाओ मुखचंद सु झाँकी प्यारियाँ।
आनँद-जीवन जान असाडी ज्यारियाँ॥ ६॥
पल पल प्रीति वढ़ाय हुआ बेदर्द है।
आसिक-उर पर जान चलाई कर्द है।
घनी हुई महवूब सु मरम न छोलियै।
आनँद-जीवन जान दया करि बोलियै॥ ७॥
क्यौं चितचोर किसोर हुआ वेपीर है।
भौंह कमानैं तान चलाया तीर है।
अंत कहा हौ लेत नंद के लाड़िले।
आनँदघन के जान सुचित के लाड़िले॥ ८॥
इस्क नहीं यह होय करंदे जोर हौ।
लीना चित्त चुराय अनोखे चोर हौ।
जानी जू दिल-जान कपट की प्रीति है।
आनँद-जीवन जान अटपटी रीति है॥ ९॥
प्यारे प्रीति वढ़ाय लिया चित चोरि कै।
छूटो दै इठलाय चलौ मुख मोरि कै।
रूप-सुधा दरसाय दिया क्यौं जहर है।
आनँद-जीवन जान किया तैं कहर है॥ १०॥
हौ हलधर के वीर चले कित जात हौ।
निठुर कान्ह महवूब सुनिंदे बात हौ।
इत्थे आवत नाहिं सु की तकसीर है।
आनँद-जीवन जान कहर वेपीर है॥ ११॥

= पीड़ा ; काँटा। बारि = काँटे की रोक। [६] दा = का (पुत्र)। सोहना = (शोभन) सुंदर। मनमथ = कामदेव। असाडी = हमारी। ज्यारियाँ = जिलाने-वाली। [७] कर्द = छुरा। घनी० = बहुत चोट कर चुके। [८] अंत० = मारते क्यौं हो। [९] करंदे० = जबर्दस्ती करते हो। [१०] छूटो० = हाथ झटकाकर। कहर = आफत। [११] हलधर० = बलदाऊजी के भाई। सुनिंदे = सुनो। इत्थे =

भरि पिचकारिन रंग सुरंग गुलाल है।
बाजत चंग उपंग झाँझ डफ ताल है।
गावति हैं व्रजनारि फाग रँगबोरियाँ।
आनँद-जीवन जान सु हो हो होरियाँ॥ १२॥

लावनी

खूबी कहै तुसाडी हो हो हो हो हो हो होरी है।
बूका बंदन अगर कुमकुमा भरै गुलालन झोरी है।
आनँद-रंग घनैं सो भिजवै हाथ लिये पिचकारी है।
महर-लहर व्रजचंद यार दी, जिंद असाडी ज्यारी है॥१३॥

अहो अहो नँद-नंद साँवरे छिन छिन बानिक न्यारी है।
ओढ़ौ जरद दुसाला याराँ केसरि की सी क्यारी है।
आनँदघन-हित प्यारे जानी मूरत लगदी प्यारी है।
महर-लहर व्रजचंद यार दी जिंद असाडी ज्यारी है॥१४॥

सजन सनेही यार नंद दे एती क्या मगरूरी है।
दरदवंद दरसन दी खातर बंदी हुकम हजूरी है।
व्रजमोहन घनआनँद तैंडी निपट अटपटी न्यारी है।
महर-लहर व्रजचंद यार दी जिंद असाडी ज्यारी है॥१५॥

याराँ गोकुलचंद सलोने दिया चस्म दा धक्का है।
ढोरि दिया घनआनँद जानी हुसन सराबी पक्का है।

(अत्र) यहाँ। की = क्या। तकसीर = अपराध, चूक। [१२] चंग = डफ के ढंग का एक बाजा। उपंग = जलतरंग। ताल = मँजीरा। [१३] तुसाडी = आपकी। बूका = बुक्का, अभ्रक का चूर्ण। बंदन = सिंदूर। महर = कृपा। दी = की। जिंद = जिंदगी, जीवन। असाडी = हमारी। ज्यारी = जिलानेवाली। [१४] बानिक = मुद्रा। जरद = पीला। लगदी = लगती। [१५] सजन = स्वजन, प्रिय। नंद दे = नंद के पुत्र। मगरूरी = घमंड। दरसन० = दर्शन के लिए। तैंडी = तेरी बात। [१६] चस्म० = आँख की चोट। ढोरि० = पीछे लगा

सैन-कटारी आसिक-उर पर तैं यारां झुक झारी है।
महर-लहर ब्रजचंद यार दी जिंद असाडी ज्यारी है ॥१६॥

दरदबंद डाला बेदरदी खूब इस्क दा फंदा है।
हंस हंस मन मूसि लिया बे वड़ा गरीब गिरंदा है।
टुक भी तो घनआनँद प्यारे सुनियो अरज हमारी है।
महर-लहर ब्रजचंद यार दी जिंद असाडी ज्यारी है ॥१७॥

जिगर जान महबूब अमाने को बेदरदी दैंदा है।
पाक दिलाँदे अंदर धँस कर बिना साफ दिल लैंदा है।
आनँदघन हो प्रान-पपीहा निसदिन सुध न बिसारी है।
महर-लहर ब्रजचंद यार दी जिंद असाडी ज्यारी है ॥१८॥

दिलपसंद दिलदार यार तू मुजनूँ की तरसाँदा है।
रात-दिहाडे तलब तुसाडी अकल इलम लडाँदा है।
मैंनूँ ध्यान न आवत जानी तू घन-कुंज-बिहारी है।
महर-लहर ब्रजचंद यार दी जिंद असाडी ज्यारी है ॥१९॥

नंद महर दा कुँवर कन्हैया मैंडा जीवन जानी है।
बिसरै नहीं रैनदिन जी से प्यारा प्रीतम प्रानी है।
दीजै यही असानूँ झाँकी आनँदघन गिरधारी है।
महर-लहर ब्रजचंद यार दी जिंद असाडी ज्यारी है॥२०॥

रहौ खुसी महबूब नंद दे मनमानै तित जावौ जू।
कहीं कदी घनआनँद जानी इन गलियन भी आवौ जू।

लिया। सैन = इशारा। झुकि० = क्रुद्ध होकर चलाई है। [१७] हंस = हँसकर। मूसि० = चुरा लिया। बे = रे। गिरंदा = फंदा लगानेवाला, फँसानेवाला। [१८] अमाने = जो किसी की माननेवाला न हो। दैंदा० = देता है। बिना० = नापाक, अस्वच्छ। लैंदा० = लेता है। [१९] की = क्या। तरसांदा = तरसाँता है। दिहाडे = दिन। अकल = अक्ल, बुद्धि। इलम = इल्म, यत्न। [२०] महर = गोपों के सरदार। मैंडा = मेरा। असानूँ =

आस लगी अँखियाँ नूँ याराँ दीजै झाँकी प्यारी है।
महर-लहर ब्रजचंद यार दी जिद असाडी ज्यारी है ॥२१॥

दोहा

आनँदघन बरसावनो, स्याम सलोनो गात।
आवत धीर-समीर तें, चल्या पुलिन को जात ॥२२॥

उपमान

इननूँ क्यौं कर गहि सकौं घनआनँद दीया।
मैं तैंडी लटकन फँद्या क्या तुजनूँ कीया।
क्यौं महबूब सुजान तैं औरै क्या कीया।
मैंडा दिल तैंने अबे क्यौं मुसि कै लीया ॥२३॥
चोर लिया चित चाहते घनआनँद जानी।
मैंडा दिल तैं मोहि कै उर औरहि टानी।
इस्क-सहर के बीच है यह अकह कहानी।
अलकौं सें बाँधे रहे महबूब गुमानी ॥२४॥
क्या कहियै ब्रजमोहना तू मानै नाहीँ।
तू ही जानैगा अबे अपने दिल माहीँ।
घनआनँद नित दीजियै नहिँ कीजै नाहीँ।
अँखियाँ तैंडी चुभि रहीँ मैंडे दिल माहीँ ॥२५॥

दोहा

आनँद के घन जानि कै, कीनौ तुम सौं हेत।
रूप-सुधा दरसाय कै, कहर-जहर क्यौं देत ॥२६॥
बंसी के बिच मोहनी, मोहन याको नावँ।
आनँदघन निरमोहिया, मोह्यौ सिगरो गावँ ॥२७॥

अरल्ल

कालिंदी के तीर बजी हरि-मुरलिया।
समझि परै नहिं प्रान अनोखा सुर लिया।

हम को। [२१] कदी = कभी। [२२] धीर-समीर = कुंज विशेष। पुलिन = तट। [२३] इननूँ = इनको। तैंडी = तेरी। फँद्या = फँसा हुआ। तुजनूँ = तुझको। मैंडा = मेरा। अबे = ओ, ऐ। मुसि कै = चुराकर। [२५] मैंडे = मेरे। [२८] सुर = स्वर,

पूरि रही धुनि कान न छाँड़त गैल है।
आनँद-जीवन जान छबीलो छैल है ॥२८॥
वाढ़ी गाढ़ी पीर करेजैं आय कै।
मोहन मन हरि लिया सुबैन बजाय कै।
लागा मैंनूँ तीर इस्क दा खूब है।
आनँद-जीवन जान कान्ह महबूब है ॥२९॥
बीजु-छटा पटपीत घनाँ तन स्याम है।
इंद्रधनुष वनमाल लाल अभिराम है।
वंसी-धुनि घन-घोर रूप-जल छलमलै।
आनँद-जीवन जान मेघ लौं झलमलै ॥३०॥
दीजै तुजनूँ सीख सलोने साँवरे।
खून करैं ये नैन हुए लड़बावरे।
खूनी कीजै जाय करेजैं घाव है।
आनँद-जीवन जान न आन बचाव है ॥३१॥

दोहा

बरसै आनँदघन अनत, इत नित नित ही छाय।
प्रान-पपीहा को दसा, कहै कौन अब जाय ॥३२॥
आनँद के घन तुम बिना, हीतल नेही दीन।
पल हू कल नहिं परत है, जैसे जल बिनु मीन ॥३३॥

उपमान

आनँद के घन तुम बिना, मुजनूँ नहिं भावै।
नयन असाडे लाग तैं तुम ही नूँ धावैं।

ध्वनि। [२९] बैन = वेणु, बाँसुरी। मैंनूँ = मुझको। दा = का। [३०] बीजु = विद्युत्, बिजली। घनाँ = बादलों सा। बनमाल = घुटनों या पैरों तक लंबी माला। घोर = ध्वनि, गर्जन। रूप = सौंदर्य। छलमलै = छलकता है। [३१] लड़बावरे = सिरचढ़े, दुलरुए। [३२] अनत = अन्यत्र। [३३] हीतल० = प्रेमी हृदय। [३४] मुजनूँ = मुझको। असाडे = हमारे। तुम ही नूँ = तुम्हारी

हुन क्या कीजै लाड़िले वेपन नहिँ पावै।
जुलम करैं जे बावरे तुजनूँ तरसावै ॥ ३४ ॥
तैंडे मुख पर तिल अवे अति खून करंदा।
अलकैं तैंडी यौं छुटी ह्वै नागिन लसँदा।
तिलक बीच छापे अबे दिल का है फंदा।
चंदागोविंद सु नँद दे घन आनँद-कंदा ॥ ३५ ॥

दोहा

आनँदघन हित पोखि कै, पाले प्रान अमीन।
ते ही अब बिललात या, जैसे जल बिनु मीन ॥ ३६ ॥

लावनी

दे गिरंद गिरँदा हूआ वे जिंद असाडी छीनी है।
छिप छिप कर मुखड़ा दिखला वै रीति अनोखी लीनी है।
मगजदार महबूब करंदा खूब मजे दी यारी है।
महर-लहर ब्रजचंद यार दी जिंद असाडी ज्यारी है ॥ ३७ ॥
अहो अहो घनआनँद जानी जित्थूँ तित्थूँ जाँदा है।
बेपरवाही जाहर कर कर चस्माँ नूँ चमकाँदा है।
नोक नजर टुक करदा नाहीँ की तकसीर हमारी है।
महर-लहर ब्रजचंद यार दी जिंद असाडी ज्यारी है ॥ ३८ ॥
ब्रजमोहन घनआनँद जानी जद चश्माँ विच आया है।
इस्क सराबी कीया मुजनूँ गहरा नसा पिलाया है।
तन मन और जिहान माल दी सुधि बुधि सबै बिसारी है।
महर-लहर ब्रजचंद यार दी जिंद असाडी ज्यारी है ॥ ३९ ॥

ही ओर। हुन = अब। [३५] करंदा = करता है। लसंदा = सुशोभित हैं। नँद दे = नँद के पुत्र (गोबिंदचंद्र)। [३६] अमीन = अमृताँ से। [३७] गिरंद = फंदा। गिरंदा = बंधन लगानेवाला। जिंद = जिंदगी, प्राण। असाडी = हमारी। मगजदार = बुद्धिमान्। [३८] जित्थूँ० = जहाँ तहाँ जाता है। चस्माँ नूँ० = आँखों को चमकाता है। नोक = अनी, कोना। करदा० = करता नहीँ। की० = हमारा अपराध क्या है। [३९] जद = जब। चश्माँ = नेत्रों के बीच। इश्क० =

हीन भए जल मीन छीन बुधि मैंडी पीर न पावै है।
लाय कलंक यार अपने को तेही छिन मर जावै है।
आनँदघन इस दिल दी बेदन लहै सुजान-विहारी है।
महर-लहर ब्रजचंद यार दी जिंद असाडी ज्यारी ॥ ४० ॥

दोहा

आनँद के घन छैल की, छबि निरखै धरि ध्यान।
'इस्कलता' के अरथ कौं, समुझै चतुर सुजान ॥ ४१ ॥
आनँद के घन छैल सौं, करि ले चित को चाव।
'इस्कलता' जौ चाहियै, तौ वृंदावन आव ॥ ४२ ॥
'इस्कलता' ब्रजचंद की, जो बाँचे दै चित्त।
वृंदावन सुखधाम सो, लहौ नित्त ही नित्त ॥ ४३ ॥

——

प्रेममदोन्मत्त । मुजनूँ = मुझको । [४०] हीन० = मिलाइए 'सुजानहित-प्रबंध', छंद ४, पृष्ठ ५ ।

यमुना-यश

चौपाई

जमुना को जस बरन्यौ चाहौं। अति अगाध कैसैं अवगाहौं।
जमुना कहँ रसवती बानी। होति मधुर रसनिधि की रानी ॥१॥
जाके तीर रसिक रसरंगी। बसत लसत गोपाल त्रिभंगी।
जमुना को रस कहत न आवै। नित-बिहार-रस-पारस पावै ॥२॥
जो रस अगम अगोचर महा। सो याके तट प्रगटित अहा।
या जमुना की भाग-निकाई। मति अति रीझि विचारि बिकाई ॥३॥
महा रसवती राधापति की। पूरन-प्रेम-तरँग नित तकी।
श्रीजुत अंगराग की धारा। जमुना-रूप अनूप अपारा ॥४॥
सविता पिता उजागर यातें। कृस्नचंद सुख पावत न्हातें।
विविध केलि सुख-बेलि बढ़ावै। बनमाली कौं निपटै भावै ॥५॥
जमुना बृंदाबन की सोभा। नितनित प्रगटि करति हित-गोभा।
कुंजनि पुंज तरंगनि तोषै। कुंज-रवन कौं बहु विधि पोषै ॥६॥
जमुना पाय हेत की खानि। कौन सकै पामर नहिँ जानि।
गुपत प्रगट रस जमुना जानै। जमुना को हित को पहचानै ॥७॥
घूमति फिरति भरति भाँवरी। नित संगम-रंगति साँवरी।
गौर बरन राधा को गोय। स्याम-रंग मैं धर्‍यौ समोय ॥८॥
राधा को रस जमुना जानै। भानु-नंदिनी नातो मानै।
जमुना-हृदै रहति नित राधा। जमुना लखँ टरति भ्रम-बाधा ॥९॥

---

[६] गोभा = अंकुर। [७] हेत = हित, कल्याण। [९] भानुनंदिनी = भानु (सूर्य) की पुत्री, (यमुना); (वृष-) भानु की पुत्री (राधा)।

सुख-सेवा साधिबो करति है। राधा-धव के रसहि ढरति है।
यह जमुना को मरमु कह्यौ है। जमुना ही की कृपा लह्यौ है ॥१०॥

या जमुना कौं हौं ही गाऊँ। या जमुना को सुदरस पाऊँ।
या जमुना मैं नित ही न्हाऊँ। या जमुना तजि कहूँ न जाऊँ ॥११॥

यह जमुना मेरी सुखदायनि। याकी लहरि भरयौ चित चायनि।
उफनत स्याम-रसामृत-सिंधु। बिबिध भाव वर पूषन-बंधु ॥१२॥

या जमुना को मोहिं प्रसाद। रसनैं जमुना-सुजस-सँवाद।
ऐसी जमुना मोकौं चहियै। जमुना-कृपा कहाँ लौं कहियै ॥१३॥

जमुना के तट फूल्यौ फिरौं। हेरि तरंगनि रंगनि हिरौं।
जमुना लीला-रंग दिखावै। परम प्रीति की रीति सिखावै ॥१४॥

यह जमुना जीवति है मेरी। जमुना सी जमुना ही हेरी।
ऐसइ या जमुना हौं देखौं। नित नित नैननि भाग बिसेखौं ॥१५॥

जमुना-महिमा वेद बखानैं। सप्तसिंधु-मेदिनि जग जानैं।
जमुना जा करुना-रस-रैनी। दरस-परस पूरन-पद-दैनी ॥१६॥

जमुना देखि न देखै जम कौं। भानकुवरि मेटति दुख-तम कौं।
जमुना-जलहि सहज हू पियैं। तब दव-ताप न व्यापति हियैं ॥१७॥

जमुना देखत ही हरि दरसैं। स्याम रूप आनंदनि बरसैं।
बहुत भाँति महिमा जमुना की। कहि न सकति न सकति रसना की१८

गोकुल-घाट पियौ जिन पानी। जमुना-रस-महिमा तिन जानी।
जमुना-तीर बसत बलबीर। गोचारन-सुख बिलसत तीर ॥१९॥

स्याम-सरीर गुननि गंभीर। जमुन-तीर बिहरत बलबीर।
कुँवर कान्ह जमुना मैं न्हात। मसरत सुभग साँवरे गात ॥२०॥

---

[१०] राधा-धव = राधा के पति, श्रीकृष्ण। [१२] पूषन० = सूर्य का बंधु, चंद्रमा। [१३] रसनैं = रसना को, जीभ को। [१४] रंगनि = आनंद मैं। हिरौं = खो जाता हूँ। [१७] दव = दावाग्नि। [१८] न सकति = नहीं सकती।

कहा कहौं जमुना को भाग। अंग-रंग पूरन रस-पाग।
पैरत जमुना अपने रंग। कान्ह कौतुकी ग्वारनि संग ॥२१॥
विविधि कलोल केलि विस्तारत। जमुना सौं पूरन पन पारत।
यह जमुना रस-रास खिलावै। पुलिन सुमंडल रुचिर रचावै ॥२२॥
स्रमित जानि व्रजमोहन धीर। जमुना सीतल सजति समीर।
वहुत भाँति जमुना सुख देति। उमँग-भरी हित-लहरैं लेति ॥२३॥
महल टहल की चहल-पहल है। जमुना लहरनि भरी लहलहै।
जमुना विहरत बैठि सहेसनि। सगन स्यामसुंदर सजि बेसनि ॥२४॥
जमुना विविधि कलोलनि ठानति। टहल-रीति जमुनाई जानति।
यह जमुना जु भरी जजमानि। दंपति-सुख-संपति की दानि ॥२५॥
मधुर-केलि-चिंतामनि जमुना। रटि जमुना जटि राखी रसना।
जमुना दई रसवती वानी। तव जमुना-रस-रीति बखानी ॥२६॥
जमुना जमुना जमुना कहौं। धीर-समीर-तीर वसि रहौं।
जमुना मोकौं सब कछु दियौ। दरसि परसि सरसान्यौ हियौ ॥२७॥
जमुना नावँ जगत-उजियारो। रसिक जननि कौं अति ही प्यारो।
जो जन जमुना को रस चाखै। सो नित जमुना जमुना भाखै ॥२८॥
जमुना चाहि चैन चित होत। उमगि चलत लीला-रस-सोत।
जमुना कहत जीभ जगि परै। कृस्नचरित-लीला-रस ढरै ॥२९॥
जमुना वहत कृस्न ढरि आवै। रस ही रस निज दरस दिखावै।
जमुना ढरैं ढरत व्रजनाथ। वहुरि जानि कै गहत सुहाथ ॥३०॥

सकति = शक्ति। [२०] मसरत = मसलते हैं, रगड़ते हैं। [२४] टहल = काम-धंधा। सहेसनि = सहर्ष; मिलाइए 'सूर' की पंक्ति—'किधौं वहि देस बाल नहिं झूलति गावत गीत सहेसनि।'—भ्रमरगीत, २८०। सगन = मंडली-सहित। [२५] टहल = सेवा। भरी = भरी-पूरी, संपन्न। जजमानि = यजमान का स्त्रीलिंग रूप, दानशीला। [२६] जटि० = जड़ रखा है। [२७]

ऐसो जमुना को प्रताप-बल। और कहा यातैं उत्तम फल।
जमुना को फल जमुना ह्वैयै। नित ही जमुना जमुना गैयै ॥३१॥

जमुना जाँचैं जमुना पैयै। मन बच करि जमुनाई ध्यैयै।
जमुना सब-स्वारथ-भंडारिनि। जमुना परमारथ-बिस्तारिनि ॥३२॥

जमुना है मंगल की माला। जमुना देखी दीन-दयाला।
जमुना जो कछु मो पर ढरी। पावन पैज प्रगट है करी ॥३३॥

जमुना सुकृत कहाँ लौं बरनौं। पालै पोखै राखै सरनौं।
जमुना सुख-समाज दरसावै। नीरस मनहिं परसि सरसावै ॥३४॥

कृस्न-तरंगिनि यातैं कहियै। जमुना देखि कृस्न उर गहियै।
जमुना तैं निरवधि रस लहियै। जमुना चहियै जमुना चहियै ॥३५॥

जाके मन जमुना को पन है। रती अतुल को पूरो मन है।
जमुना जमुना जमुना एक। जमुनाई सौं निवहौ टेक ॥३६॥

वृंदावन जिहिं जमुना-कूल। यह नित ही मोकौं अनुकूल।
जमुना-तट बनराज निकेत। सदा स्याम को निज संकेत ॥३७॥

यह-जमुना यह बन मेरो धन। या जमुना सौं ही मेरो पन।
यह जमुना यह वन यह पन है। यह जमुना बन मान्यौ मन है ॥३८॥

जमुना बन पन मन मैं बसौ। रसना जमुना के रस रसौ।
स्रवन सदा जमुना-जस सुनौ। मति जमुना-कीरति-गुन गुनौ ॥३९॥

जमुना-वचन मौन मैं रचौ। मन जमुना-चिंतन मैं खचौ।
जमुना सुंदर लोचन देखैं। सजौ सिंगार सुअंजन रेखैं ॥४०॥

राधा मोहन-सहचरि दरसौ। जमुना दरसि केलि-सुख सरसौ।
जमुना को आनंद अमोघ। गोपीजन-वल्लभ रस-ओघ ॥४१॥

मो पर ढरौ भरौ रस-रंगनि। निरखत जमुना रुचिर तरंगनि।

धीर० = कुंज विशेष; मिलाइए—'धीरसमीरे यमुनातीरे।'—गीतगोविंद। [३३] पैज = प्रतिज्ञा। [३४] सरनौं = शरण मैं भी। [४१] ओघ = प्रवाह,

निरवधि रस की रासि रसीली। हित-कादंबिनि नित बरसीली ॥४२॥

प्रगट पुहमि अत्ररजमय देखी। जमुना-कीरति-कला विसेखी।
जमुना को मंगल जस गायौ। रसना निज सवाद-फल पायौ ॥४३॥

जमुना-जस जैसैं मन भायौ। जमुना ही अपढार कहायौ।
जमुना-रस-जस ऐसैं कह्यौ। बानी निज परमारथ लह्यौ ॥४४॥

जमुना-जस कौं जियरा तरस्यौ। जमुना-कृपा-सुरस उर सरस्यौ।
तव कछु जमुना-मरमहि परस्यौ। बानी ह्वै आनँदघन बरस्यौ ॥४५॥

दोहा

जमुना-जस बरन्यौ बिसद, निरवधि रस को मूल।
जुगल-केलि-अनुकूल है, बसिबो जमुना-कूल ॥४६॥

बाढ़। [४२] कादंबिनि = मेघमाला। [४४] अपढार = औढर, मनमौजी।

पदावली

विनय] (१) [राग भैरव, चौताल

ए जगतारन करुनासिंधु उदार
दीन असँभारन लेत सँभार।
अधम-उधारन बहु-विधि-सुख-विस्तारन
स्वामि दयाल परिपूरन पारन व्रतधार।
अघ-वारन-कंठीरव दारुन दुख-दल-
बिदारन गुन अपारन को सकत विचार।
आनँदघन-रस-धारन सकल-सँताप-निवारन
घमड़ि बिराजौ प्रान-पपीहनि-पार॥

याचना] (२)

अब मेरो स्वारथ हू परमारथ तिहारें है हा हरि हाथ।
तुम ही तें तुमकौं जाचति हौं देहु दया करि नाथ सब सुख साथ।
गाय गाय ज्यौं त्यौं जीवत हौं रावरे बिसद बिरुद गुन-गाथ।
प्रान-पपीहन के आनँदघन, मीन-दीपन पाथ॥

युगल-केलि] (३)

प्रात उठे री स्यामा-स्याम कुंज तें निसि-बिलास-अरसाने।
मंद मंद गति अति रति-पागे जागे चोपनि परम प्रेम-सरसाने।
अंगनि दुति द्रुम-बेलिनि फैलति सुंदर मुख सुखमय दरसाने।
गोरि-स्याम आनँदघन-दामिनि देखत नैन सिराने।
जमुना-तीर झूमि झूमि बरसाने॥

---

[१] बारन = हाथी। कंठीरव = सिंह। पार = पालनेवाले। [२] दीपन =

गुण-गान] (४) [इकताल

गुपाल तेरेई गुन गाऊँ।
करहु निरंतर कृपा कृपानिधि विनती करि सिर नाऊँ।
टरै न मोहन मूरति हिय तैं देखि देखि सुख पाऊँ।
आनँदघन हौ बरसि सिरैयै प्रान-पपीहा ज्याऊँ॥

कृपा-याचना] (५) [चौताल

अपार-गुन-ग्राम हौं कहा गाऊँ।
तीरहि गएँ थकित मति गति होति, तुम लौं कहौं धौं हौं क्यौं करि आऊँ।
अमित चरित की तरल तरंगनि विसमय बूड़ि न ठिक ठहराऊँ।
है उपाय मो हित-बोहित आनँदघन सुदृढ़ कृपा जौ पाऊँ॥

गोवर्धन-पूजन] (६) [झपताल

गिरिराज दाहिनो देत आनंद सौं नंद वृषभानु परिकर-सहित देखौ।
बाल-गोपाल-गोधन-कुसल-छेम-हित नित लहत यहि पूजि सब लेखौ।
कान्ह कुल-मंडन थप्यौ उथपि अमरपति प्रगट्ट दरस्यौ देवगिरिवर सुवेखौ
आनँदघन नँदनंदन उदार की लीला ललित अमित अद्भुत बिसेखौ॥

उपालंभ] (७) [तालजात्रा

आनु रे मोरी प्रीति लगी है।
कल न परति घरि पल छिन बिन देखैं प्यारे।
कठिन कठिन बीतत दिन गिनत रैनि तारे।
कहा कहियै पिय तुम सौं बसत हिय-मझारे।
आनँदघन चातिक-जन क्यौं बध्यौ बिसारे॥

खंडिता] (८) [मूलताल

आए जू आए भोर, भलेई।
रसिक रँगीले छबीले मया करि सब निसि
जागे दृग अनुरागे पागे-रंग-तमोर।

जिलानेवाले। पाथ = जल। [५] हित० = कल्याणरूपी जहाज। [६] गिरिराज = गोवर्धन। परिकर = मंडली। [८] तमोर = तांबूल। बिजन =

बैठो जू बैठो बिजन डुलाऊँ स्रमित भए नए जुगुलकिसोर।
आनँदघन रस बरसि सिराए छाए हैं इहिं ओर॥

विरहिणी] (९)

जीयरा मैं क्यौं समझाऊँ।
क्यौं समझाऊँ क्यौं बहिराऊँ क्यौं परचाऊँ।
रूप-उज्यारे अँखियन तारे ब्रजमोहन देखे बिन हाहा।
उठि उठि धावै ठौर न पावै गहि गहि ल्याऊँ फिर मुरझावै।
दैया री यह पीर निगोड़ी निपट सतावै कहाँ दुराऊँ।
मेरे मन की कोउ न पावै जैसैं हौं दिनरैन बिताऊँ।
प्रान-पपीहन की यह बेदनि आनँदघन बिन काहि सुनाऊँ॥

वेणु-नाद] (१०) [तालजात्रा

आव रे जिय-ज्यावन प्यारे; अँखियाँ भई हैं दरस-पियासी।
हियो उमग्यौ है रहत न रोक्यौ सांवरे ब्रजचंद हहा रे।
जब तैं सुनी है मोहन मुरलिया, तरफरात ये प्रान बिचारे।
अपने पपीहनि ज्याय लीजियै आनँदघन रस राखि सुखारे॥

विरह-संदेश] (११)

निमानिया तुझ बिना असी कुइयाँ।
दरस दिखावीं आनि जिवावीं नतर ईबी मुइयाँ॥

खंडिता] (१२) [मूलताल

रसमसे लाल तिहारे नैन कहत ये निसि जगिबे के चैन।
भली करी भोर हीं भाग-राग-भरे हमैं आए सुखदैन।

(व्यजन) पंखा। [११] निमानिया० = मर्यादा न माननेवाला, अमानी। असी = हम। कुइयाँ = कुंइँ, कुमुदिनी। नतर = नहीं तो। [१२] रसमसे = रस-

सौहं न देखि सकति डीठि-डर नखसिख बने नवल छबि-ऐन ।
आनँदघन प्राननि पोखत हौ बोलि अमीनिधि बैन ॥

विरह-व्यथा] (१३) [इकताल

प्रान मेरे तुम संग लागि रहे ब्रजमोहन ।
इतने पै घर ही मैं जीवति ए अपराधी तजत न गोहन ।
सब विधि तुम्हें सुखी चाहति है स्याम सुजान सुभाय की सोहन ।
अपने पपीहनि राखि लीजियै आनँदघन पिय विरह-बिछोहन ॥

विरुद-रच्छा] (१४) [झपताल

बिरुदै सुमिरि बेसँभारनि सँभारौ ।
अकारन-करुन, कहा करनी निहारौ ।
सुकृती कुसल ह्वै मिलौं तुमहिं तौ कहौ या विधि कृपानिधि पलै पन तिहारौ।
संकटहरन प्रभु प्रभाव कित दुरि रह्यौ दलमलत दीन यह प्रबल मतवारौ।
ताप-आतप तलफि बिलखि मुरझात जन नाम आनँदघन कौन हित धारौ ॥

यमुना-प्रशस्ति] (१५) [तालजात्रा

तरनितनूजा तोहि तकौं।
चंचलता तजि भजि नँदलालै मन करि तेरे तीर थकौं।
धीर-समीर सुदेस ठावँ ठिक ठहरि भला बिधि पनहिँ पकौं।
सावकास ह्वै घनी घुटनि तें बिसद पुलिन मँडराय सकौं।
सरस सिँगार सुदेस स्याम कौं लखि चखि मादिक-रूप छकौं।
निरवधि रस की रासि रसीली तरल तरंगनि संग बकौं।
उघरि परौं अनुराग-उमँग मैं नाद-बिवस मरजाद ढकौं।
ब्रज-नवबधू-बिमोहन लीला लटकि एक टक टेक टकौं।
एरी कुँवरि कलिंदनंदनी बिनती बिरचि बिचारि चकौं।
महिमा अमित कृपा आनँदघन चोपनि चातक जलपि जकौं।

युक्त । [१३] गोहन = साथ । सोह = शपथ । [१४] हित = लिए । [१५] सावकास० = छूटकर । मादिक० = सौंदर्यरूप मदिरा । ढकौं = धारण करूँ ।

वृंदावन-प्रशस्ति] (१६) [झपताल

सकल-सुषमा-सदन वनराज राजै।
राधिका-मदनमोहन-निवासित सदा अति मधुर केलि-हित संपदा साजै।
तरनितनया तीर जगमगत जोतिमय पुहुमि पै प्रगट सब-लोक-सिरताजै।
अद्भुत अनूप आनंदघन-रसरूप महामंगलकरन पूरन-कला जै।

ब्रज-प्रशस्ति] (१७) [मूलताल

मंगल आरती ब्रज मंगल की करियै मंगल रूप निहारि।
मंगल ब्रज, मंगल वृंदावन, मंगलदायक जमुना-वारि।
मंगल गोपी-गोप धेनु-हित गिरि गोधन मंगल-विस्तारि।
मंगल मुरली धुनि आनँदघन मंगल गुन लीला उर धारि॥

नारद-स्तुति] (१८)

रिषि-मुनि-सत्तम, सब बिधि उत्तम, हरि-हित-हारद नमो नमो।
पर-उपकारक गुह्यक-तारक रस-आसारद नमो नमो।
प्रेम-प्रकासक भ्रम-तम-नासक मुख ससि सारद नमो नमो।
भवनिधि-पारद गान-विसारद जय जय नारद नमो नमो॥

रूप-माधुरी] (१९) [आड़ो चौताल

नित आइबे की गैल।
रहत गाहत गहत वहियै सब समै ब्रज-छैल।
लखी बारक कोऊ निकसत वदन आभा फैल।
चाँपि चोप चकोर की, चख भए रूप-अरैल।
अब कहा सोचति सखी सुनि मची आरति-रेल।

बलपि० = बकते हुए धुन मैं लग जाऊँ। [१६] बनराज = वृंदावन। निवासित = बसा हुआ। [१७] गिरि० = गोवर्धन पर्वत। [१८] हरि० = विष्णु के हार्दिक प्रिय। हारद = (हार्द) हार्दिक। गुह्यक = एक प्रकार के देवता। आसार = वृष्टि। आसारद = वर्षक। सारद = शारदीय। भव० = संसार-सागर से पार करनेवाले। [१९] अरैल = अड़नेवाले। ऐल = अधिकता।

मुरलिका कल विकल धुनि की, जाति समझि हठैल।
उघरि मिलि आनंदघन सौं कौन की सु दवैल ॥

दानलीला] (२०) [रामकली, इकताल

गोरस जौ चाहै तौ दीजियै जौ रस चाहै सोऽब दियौ क्यौं जाय।
देखि बिरानी धरोहरि पै मन बहकावै ऐसो ढीठ न कान्ह सकाय।
औरनि लौं मो हूँ सौं उरझत नित-नित कैसैं निबहियै हाय।
आनँदघन रसबादनि घमड्यौ कोऊ काहू दिन देहिंगो समझाय ॥

(२१) [मूलताल

बहुत दिनन को दान दुरायौ लैहौं गहि गनि एकौ झूठ न भाखौंगो।
ब्रज मोहन दानी सब जानत साँची सौंहनि साखौंगो।
आनँदघन रस रिझै भिजैहौं तब सब दैहै जोइ जोई अभिलाखौंगो ॥

(२२)

डगर न छाड़ै मेरी लँगर कन्हैया।
आनि अचानक घेरि लेत है कैसें बचौं अकेली हौं दैया।
हौं सकुचौं वह ढीठ न मानत निडर निपट रसदान-लिवैया।
आनँदघन घुरि लाजनि भिजवै ऐसे हैं गोकुल के रहवैया ॥

(२३) [तालजात्रा

रहौ जू रहौ गहौ आपनी गैल भए रसिया दान के।
ओटपाव के दाव चाव रचि घेरत हौ अबलानि आनि भरे जोबन गुमान के।
बढ़ि बढ़ि बोलत ऐंड़े डोलत लोभी हौ रसपान के।
आनँदघन रसबादनि उनए मिस ही मिस ढिग ढूके आवत गिधए आन के॥

खंडिता] (२४) [रूपताल

भुरहरैंई कान्ह कहौ कित भूले।
रैन-रसमसे नैन बिराजत मनौं कोकनद फूले।

---

[२१] रिझै = रिझाकर। [२२] लँगर = शरारती, नटखट। [२३] ओटपाव = शरारत। गिधए = परचाए हुए। [२४] भुरहरैंई = बड़े तड़के। धुरवा =

रुचिर अधर मसि-रेख रही लसि अति रति-रस अनुकूले।
आनँदघन घुरि घमड़ि सजल भए अलकनि धुरवा झूले॥

(२५)

अहो हरि, आए महा हरबर में कहा बनि आवै टहल दरबर मैं।
साधु-सिरोमनि घरमहिँ सावन धोखैं धँसे परबर मैं।
सजल सिथिल सब अंग देखियत पैरे निपट मनोरथ-सर मैं।
द्वैजचंद की पाँति प्रगट उर आनँदघन रस-झर मैं॥

बिरह-संदेश] (२६) [मूलताल

रूप-उज्यारे अँखियन तारे ब्रजमोहन प्रानन के प्यारे तुमसौं कहा कहियै।
तिहारी औसेरनि कैसैं सहियै मनहिँ मसोसनि गहियै रहियै।
तुमहिँ न सोच कछू काहू को जाहि लगी जानति है वहियै।
आनँदघन पिय बरसि सरसि तब अब यौं दुसह परेखनि दहियै॥

उराहंभ] (२७) [तालजात्रा

तुम्हैं काहू की कछू कहा, अजू भए कान्ह कठोर महा।
नेह-कनावड़ नेकु नहीं कहुँ अपनी गौं के अहा।
बस करि देत बिसारि बिसासी लेत फिरत नित नए लहा।
आनँदघन इन प्रान-पपीहन की गति कौन हहा॥

बिरह-व्यथा] (२८) [रामकली, तालजात्रा

ब्रजवासी कान्ह हौ हो कबहुँ तौ सुधि दीजै।
लागी रहै औसेर घरी घरी खरी कठिन परी हरी हरी जियरा क्यौं धीजै।
दुसह परेखनि कैसैं मन समझैयै हा हा कहौ तुम्हहिँ कहा कीजै।
आनँदघन पिय अचरज-झर बरसौ कोऊ सूखै कोऊ भीजै॥

बादलौँ के स्तंभ। [२५] हरबर = हड़बड़ी। दरबर = उतावली। द्वैज० = द्वितीया का चंद्रमा; नखक्षत। [२६] औसेरनि = प्रतीक्षाजन्य दुःख। परेखनि = पछतावों से। [२७] नेह० = प्रेम का दबाव माननेवाले। बिसासी = विश्वास-

राधा-विलासी] (२९)

कान्ह राधा-रंग-विलासी।
गोकुल-जीवन प्रान-छबीलो गिरि-गोवरधन-बासी।
जमुना-तीर-बिहारी मोहन कुंज-कुटीर-निवासी।
आनँदघन ब्रजमडल-मंडन बट-संकेत-उपासी॥

प्रेम-पीड़ा] (३०) [मूलताल

तिहारी पीर है प्यारे तुम हूँ तें अति प्यारी।
पूरि रही है पिरौंहैं हिय मैं होति न कबहूँ न्यारी।
याको दुख सुख कहियै कासौं अकथ कथा अरु रसना बिचारी।
आनँदघन पिय याको घमड़नि दुरति न जात उघारी॥

खंडिता] (३१)

छाड़ौ जू तुम छाड़ौ मेरी बाँहा।
भोर भएँ रसवाद करन कित आए मो सौं हाहा।
आनँदघन घुरि कितहूँ बरसे, उघरि अब इतहूँ सरसे काँहा।
तहीं जाउ जहाँ पायौ है नयो लाहा॥

(३२) [आड़ो चौताल

गोरे बदन बिथुरे केस।
रैन जागे मैन-पागे नैन अरुन सुदेस।
मृदु कपोलनि पीक लाकैं भाल स्रमकन-लेस।
मुदित आनन-कांति पर बलि करौं नव राकेस।
अंग-अंग प्रति भीर छबि की, बनौ सहज सुबेस।
निरखि दुति आनंदघन-दृग भयौ चैन बिसेस॥

यमुना-स्तुति] (३३)

सबिता-नंदनी सुख देति।
कृपा-रस-पूरन सदाई उमगि लहरैं लेति।

छाती। लहा = लाभ। [२८] धीजै = धैर्य धरे। [३०] पिरौंहै = पीड़ा सहनेवाले। [३२] राकेस = पूर्णिमा का चंद्रमा। [३३] रमेति = धारण

स्याम-सुंदर-रंग-संगिनि अंगराग रमेति।
नीर-महिमा माधुरी को बदति बानी नेति।
तीर-भूमि निहारि हिय तें जाति भँडता चेति।
द्रवत आनँदघन निरंतर परत नाहिंन छेति॥

(३४) [झपताल

कृपा-कादंबिनी जमुना विराजै।
मोह-मंडित दरस, प्रेम-पूरित परस,
स्यामरस विमल जस-संपदा साजै।
अद्भुत अभूत भूतल लसति बसति
नित हेतमय नाम के लेत भ्रम भाजै।
आनँदघन घमड़ि तीर विहरत रमड़ि
व्रजवधू-बसकरन बंसिका गाजै॥

वाणी-महिमा] (३५)

सुरसरित-हरिचरित-मजित सुबानी।
महा मोहन-मधुर-रस-बलित ललित अति
सुखद सुछंद सुचि काव्यकुल रानी।
बदन सुषमा-सदन दरस, महिमा बरस,
परस सर्वार्थदायक महत मानी।
व्रजरमनि-रमन-आनंदघन-चातकी
विसद अद्भुत अखंडित जगत जानी॥

खंडिता] (३६) [मूलताल

हो जी हो जी व्रजराज कँवार अमलाँरा माता आया जी मन भाया।
म्हाँने थारी ओलू सतावै थे ओठै बिलमाया।
अधराँ अंजन, माथै अलतौ लाग्या छै खरा सुहाया।
सगली रैन आनँदघन बरस्या मगड़े, ह्वाँ पर छाया।

करती है। बदति० = अनिर्वचनीय है। भँडता० = बुरी चेतना। छेति = (छिद्र) रुकावट। [३४] रमड़ि = रमण करते हुए, मन रमाते हुए। [३६] कँवार =

अभिलाष] (३७) [चौताल

सुदिन ह्वैहै जाहि भेटिहौं स्याम।
तन की तपति विपति हरि जैहै पैहै मन बिस्राम।
बहुत भाँति के सुखनि सौं चिहैं रसमूरति ब्रजजीवन नाम।
आनँदघन हित-रमड़-घमड़ सौं हरिहैं बिरहा-घाम॥

वेणुवादन] (३८)

बरजि री बरजि अनोखे छैल कौं मेरे द्वार मुरली न आनि बजावैं।
हौं सुनि सिथिल होति इत घर मैं उत बाहिर सब लोग चवाव चलावैं।
जिय की दसा जौ जीऊ जाने तौ इन बातनि मैं कहा पावैं।
चातुर ह्वै आतुर आनँदघन छाए पराए, प्रान-पपीहनि तावैं॥

(३९)

बंसी बाजि बाजि घर घालै।
घरबसी सौं कोऊ बोलै न चालै।
ब्रजमोहन की अधर-सुधा लै देति सौंति के साल।
जाकी बनि आवै सो गावै रस-बस ह्वै छिन छाड़ै न लालै।
आनँदघन गरजै सो लेखै परम प्रीति-पन पालै॥

वियोग व्यथा] (४०) [रूपताल

ढरकि ढिग आवौ लाल ढरारे मोहन स्याम उज्यारे।
दूर भजेऊ भजति भाव तैं क्यौं हित बोल बिसारे।
मन उरझयो हो सुनि सुनि गुनि गुनि मोहन गुननि तिहारे।
अब आनँदघन सुरस सौं चियै चातक-प्रान बिचारे॥

कुमार। अमलौंरा० = नशे से मतवाला। ओलू = विरहजन्य स्मृति। ओठै = वहाँ। अलतौ = (अलता) महावर। सगली = सारी। मगड़ै० = मार्ग मैं। [३७] जाहि = जिस दिन। हित = प्रेम। [३८] छाए० = दूसरे के यहाँ छाए हैं। तावैं = संतप्त कर रहे हैं। [३९] घरबसी = रखेली। सो = वह (राधा या गोपी)। [४०] ढरारे = द्रवीभूत होनेवाले। [४१] रचन = रचना।

सर्वस्व-समर्पण] (४१) [रूपताल

देवी पूजि पूजि वर पायौ।
चीर-चोर चित-चोर और को सरवस दै अपनायौ।
को समझै यह प्रेम-नेम-गति पूरन पन दरसायौ।
रसमय-वचन-रचन आसा-बल उर आनँदघन छायौ॥

उपालंभ] (४२) [तालयात्रा

जमुना-तीर की वातैं।
सालति हैं हियँ स्याम उज्यारे सरद की रातैं।
को जानत हो ऐसैं करौगे व्रजमोहन घातैं।
आनँदघन रस-रीझनि भीजे कहियत हैं यातैं।

श्रीकृष्ण-चरण-चिह्न] (४३) [झपताल

नंदनंदन-चरन वंदन करौं हौं।
राधिका नव-उरज - राग - रंजित ललित
अति संवलित क्यौं कमल सरवरौं हौं।
रुचिर दछिन सु अँगुठा मल कूल क्रम
जव चक्र छत्र लखि चख सुख भरौं हौं।
अरध पद लौं सुभग तर्जनी-संधि तैं
सूछम सुरेख कुंचित चित धरौं हौं।
मध्यमा-तर मंजु कंज सपताका धुज
दृग-अलि तहीं हिय कहत फरहरौं हौं।
छिंगुनी तरैं चारु अंकुस कुलिस लसत
मन-गज-गर वर गिरिथकनि अनुसरौं हौं।
मंगल-सदन चारु साथिये तिन तरें जुत
जंबु फल चारि तकि सुख फरौं हौं।

---

[४३] सरवरौं = समानता हूँ। कूल = पास। क्रम = क्रमशः। कुंचित = टेढ़ी। थकनि = स्थिर होना (वज्र से पंख कट जाने पर)। साथिये = सथिया,

तिन मधि बन्यौ अस्टकौन सब सिधि-
भौन दाहिने बल बाम करि भव तरौं हौं।
बाम अभिराम अँगुठा-मूल संख सुभ
मध्यमा-तरैं निभ निहारि न टरौं हौं।
तिन द्वै तरें धनु अवनि चित चढ़ि रह्यौ
ता तरैं गोपद न नेकु बिसरौं हौं।
तिहिं तर त्रिकौन घट चँवर सुधासर
अरध बिधु मीन दुति किहि पटतरौं हौं।
कहत को बाम पै दाहिनो मोहिँ नित
हित चित लगाय रुचि पानि पकरौं हौं।
उदित ससि सरद के कोटि, नख पाँति
पर वारि त्रिभुवन-चकोरनि दुख दरौं हौं।
सुढरि गुलफनि पीठि तकि दीठि थकि
रही मनसा रढ़ति पूनरिन ही अरौं हौं।
बृंदाबिपिन अवनि-सीस-आभरन जुग
गति कलाधर रासरसिक उचरौं हौं।
बिहरत सुजान प्यारी सहित जमुना-तट
प्रान-पट आनंदघन बिस्तरौं हौं॥

श्रीराधा-चरण-चिह्न] (४४)

राधिका-चरन बंदन करि बखानौं।
पाय जिन बल नंदनंदनहिं हाथ करि
चैन भरि नैन मधि दैहौं थिर थानौं।
बाम अँगुठा-मूल जव चक्र जगमगत
हिय-हरित-करन दुख-दल-दलन जानौं।

स्वस्तिक। सुख० = सुख के फल फला लूँ। दाहिने० = इस दाहिने के सहारे संसार को बाँयाँ करके तर जाऊँ। निभ = चमक (चंद्रिका)। अवनि = पृथ्वी। पटतरौं = समता दूँ। [४४] जमख = (यमल) दोनौँ (कमल और ध्वज)।

अरध पद लौं सुभग तर्जनी-संधि तें
सूछम सुरेख अनिमेय उर आनौं।
मध्यमा-तर कमल धुज अमल दुति जमल,
मन-मधुप सुख-सदन प्रान-धन मानौं।
तिन तर पुहपलता लहलहति महमहति
सुफलित ललित नित चित-थावरे टानौं।
छवि-धनी छिंगुनी-निकट करी-वसकरन
इतर मदमत्त मन करसन प्रमानौं।
पुनि चक्र-तर रुचिर वलय अरु छत्र छवि
कवि कहि सकत कौन मौन अनुमानौं।
अरुन एँड़ी उदित अरध विधु मुदित लखि
पिय-चख-चकोर-जुग चोप चित सानौं।
यौं सुमनि वाम पद केलि-लीला-रसद
अति विसद मति तिहिं प्रसाद पहचानौं।
दुतिय एँड़ी मकर कामधुज स्याम तन
रति-समर-समय फरहरनि गुन गानौं।
तापर मनोरथ सुरथ अरु विलस गिरि
तिन इत उतैं गदा सकति करि ध्यानौं।
अँगुठा-सुमूल सुभ संख सोभित महा
सारदा-स्रौन-हित चित-विधि धवानौं।
पिय-जिय-निवास बेंदी छिंगुनिया-तरैं
ता तर सुकुंडल निरखि लजत भानौं।
रासमंडल-रसिक बरदानि देव विमाननि
मधि यौं चित चाहत लुभानौं।
मनसा-सिंहासन सुदेस आनंदघन
तापर विराजित सुचि रुचि बनक वानौं॥

थावरे = थाले मैं। करी० = हाथी को वश मैं करनेवाला अंकुश। इतर = दूसरा। रसद = रसदायक। इत उतैं = इधर उधर। सकति = शक्ति, बरछी। स्रौन० =

यमुना-वंदना] (४५) [तालजात्रा

जमुना आगैं जमुना पाछैं जमुना देखौ सब ही ठौर।
बनवारी की ढूँढ़ि थकनि मैं जमुना ही लौं मेरी दौर।
याके तीर सदा खुलि खेलत राधारमन रसिक-सिरमौर।
अब आनँदघन-घमड़-भरोसैं या बिनि कौन ताकियै और ॥

प्रेमी मन] (४६)

लगौं हैं मन ही औरैं होत।
ज्यौं जलचर विचरत अनेक पै, अमिल मीन गति-गोत।
जंत अनंत उलूक आदि हैं देखत चंद-उदोत।
कछु चकोर की चोप न्यारियै अमित सुधा को सोत।
जहाँ जगमगै प्रेम-दिवाकर तहाँ नेम न खद्योत।
आनँदघन-हित त्रिपित पपीहा कहूँ अमी तें ओत ॥

साधु-संगति] (४७) [देवगांधार, तालजात्रा

तिन सब कछु साध्यौ हो जिन साधी साधु-जननि संगति।
पतितपावन पुरुषोत्तम पदवी पावन कौं परम गति।
धोय धोय मन-बसन-बासना रच्यौ रुचि रंगति।
आनँदघन-रस परसि प्रसादहि पाय पल्यौ पन-पंगति ॥

नयन-बाण] (४८) [चौताल

मृगसावकनैनी री तैं क्रस्नसार नंदकुमार मोह्यौ।
गोहन लयौ लगाय लगौं हौं
मदन-पारधी की भेदनि ललचौं हौं अँखियन जोह्यौ।
बृंदाबन जमुना के तीर हरियारो ठावँ तहाँ टोह्यो।
आनँदघन हित पारि छंद-फँद विषम बान सौं मरम पोह्यौ ॥

सुनने के लिए। धवानौं = (ध्वान) ध्वनित हुआ। बँदी = बिंदु। सुदेस = सुंदर। [४६] गति० = चंचल (होकर भी)। सोत = स्रोत। अमी० = अमृत में डूबा हुआ भी। ओत = ओत-प्रोत। [४८] पारधी = व्याध।

मोहन-महिमा] (४६)

गन गंधर्व गुनी गिरापति गुरु गनेस गुन गरवै गावत हैं तिहि हारे।
गाय गाय छकि जीभ थकि जीवत हैं जनम कहि हारे।
सेस महेस निगम असेस गनि पावत नाहिँ विचारि विचारे।
ब्रजमोहन आनँदघन हौ चित-चातक-घन रखवारे॥

प्रेम-प्रसूति] (५०) [ख्याल, मूलताल

ब्रजमोहन सोहन सौं प्रीति लगी है अब तौ मेरी।
कहा करैगी सासु ननदिया रहत इनकी घेरी।
× × × आनँदघन रस चितवनि हेरी॥

सुरतांत] (५१) [विभास, चौताल

सब रैनि जगाई री प्रानेस्वर यातैं दृगनि ललाई छाई।
अंगनि आलसताई लेते जँभाई लागति मोहिँ सुहाई।
आरस की सरसाई नीके देति दिखाई कंचुकि हिय दरकाई।
रोम रोम कामांकुर प्रगटे आनँदघन बरखि सुहरखी है हरष-हँसाई॥

(५२) [तालजात्रा

भुज भरि भरि गाढ़ैं लगाई री सु तौ प्यारे छतियाँ।
आनन पियराई धरके हियराई लगाई बहुत भँतियाँ।
पीक कपोल सुहाग छाप जगि, लगियै आवति आँखैं मदमतियाँ।
अँग अँग ऊठ अनूठ भई आनँदघन घुरि घुरि दुरि दुरि भिजई सब रतियाँ॥

प्रेम-क्रीड़ा] (५३) [चौताल

अचानक मूँदी री अँखियाँ ओटपाई अछन अछन पाछैं ह्वै आय।
हौं जमुना के तीर इकौसैं न्हाय बसन पलटाय।
सुखावति केस कहूँ तैं बैरी विचारौ धाय।
जो कोऊ कहुँ देखि पावतो कैसी होती हाय।
आनँदघन घमज्यौई रहैं इन बातनि ज्यौं अनखाय॥

टोह्यौ = खोजा, ढूँढ़ा। पोह्यौ = बेधा। [४६] गरवै = भारी। [५१] हरष० = हर्ष की हँसी। [५२] ऊठ = उठान। [५३] ओटपाई = नटखट। अछन० = धीरे

यमुना-महिमा] (५४)

सरस दरस जमुना को पाएँ परम प्रेम-परस पाइयै।
भाव-लहर-बढ़वारि होति हियँ राधामोहन गाइयै,अपूरब रस मैं न्हाइयै।
वृंदावन सोभा की सीमा थकि थकि याही कौं धाइयै।
आय तीर सब पीर बहाइयै आनँदघन छाइयै॥

पूर्वराग] (५५) [मूलताल

मन उरझै सुरझत नहीँ क्यौँ हूँ चलत भवन पग परत पिछौँड़े।
इत आरस सिथलानि ओर अकुलानि बढ़ी,
यातैं ठिठकि ठिठकि फिरि फिरि चितवत हित-बानि कनौंड़े।
पुनि ढिग आय अंक भरि भेटत मगन होत अति रति-रस औंड़े।
बिछुरत रहत न बनत आनँदघन सुधि आवत जब गुरुजन भौंड़े॥

अभिलाष] (५६) [इकताल

मेरो चित चाहै री नित निधरक देखौँ मोहन स्यामैं।
रूप जोबन गुन कहा करौँ जौ आवै न प्रीतम कामैं।
त्यौँ जु लगौँ इहि लाज निगोड़ी मोहिँ कहा मीठो है यामैं।
आनँदघन-हित प्रान-पपीहा जीवत लै लै नामैं॥

(५७)

जसोदा के लालैं लड़ाय लड़ाय मेरी रसना लाड़िली भई।
लटकि लटकि उनहूँ सौं बोलति रसरंग-रई।
कहि न सकति या सुख-सवाद कौं ऐसैं भोइ गई।
आनँदघन-हित चतुर चातकी-चित नित चोप नई॥

विरह-व्याधि] (५८) [चौताल

अब यह पीरी परनि लागी हो, लाल जान देह घर अपनैं।
तुमहिँ कहा सोच, घुरि कै यहै ढिग बिन मोहिँ परै जिय कँपनैं।

धीरे। इकौसैं = अकेले मैं। घाय = घात। [५४] बढ़वारि = वृद्धि। [५५] औंड़े = उमड़े हुए। [५७] लड़ाय = प्यार करके। रई = अनुरक्त। [५८] परसौं =

ए दैया ब्रज के गैल-गब्बारनि परसौं हौं नहिं सपनें।
आनँदघन उघरै न भ्रम तौ देइ देव-जपनें पूजा पै थपनें॥

विरह-मिलन] (५६) [इकताल

हरि मेरी सम्हारि ही में रहैं।
बिछुरि बिछुरि हौं जाति मिले में वहै भुज गहैं सु गहैं।
कहा भयौ भूले से रहियत सो सचेत नित हैं।
सोवै जगत जगत ढिग बैठे, मौन हु बात कहैं।
प्रान-अधार सदा के संगी सुख दै स्रमन लहैं।
आनँदघन उदार जग-जीवन अपनी सील सहैं॥

नयनोक्ति] (६०) [झपताल

रसमसे नैन अरसौंहैं ललौंहैं सिथिलौंहैं झपकौंहैं मृदु हँसौंहैं।
सौंहैं जोहैं कछू लजौंहैं मन मोहैं घूँघट में तिरछौंहैं लसौंहैं।
सुभाव चपलौंहैं छकौंहैं उमगौंहैं सनेह-चिकनौंहैं अनखौंहैं जौंहैं।
कटाछि-बरसौंहैं सुसील दरसौंहैं आनँदघन प्राननि बसौंहैं॥

प्रबोधन] (६१) [चौताल

जागौ जागौ हो निसि के मतवारे।
भोर भयौ लागे बोलन सुक-सारो चहवारे।
गुरुजन सोच नहीं तनकौ जिय कौन सुभाव तिहारे।
ब्रज के लोग सहज ही चवाई मो जिय है डर भारे।
आनँदघन तुम छाय रहे रुचि, काके भरम उघारे॥

सुरतांत] (६२) [इकताल

रही निसि पाछिली घरी चारि।
सुरत-रगमगे जगे परसपर लगे भरन अँकवारि।
निपट अटपटी चाह-चटपटी नाहिंन सकत सम्हारि।
आनँदघन अभिलाषन छाए बतियाँ कहत उघारि॥

स्पर्श करूँ। [५६] स्रमन० = कष्टों को ले लेते, दूर कर देते हैं। सील० = अपने स्वभाव की रक्षा में तत्पर रहते हैं। [६१] सारी = सारिका, मैना।

रहःकेलि] (६३) [चौताल

मोहिँ जगाय जगाय जागै री वाके जिय की न जानियै बात।
इकटक नैन लगाय लखैं हौं लजाय रहौं नकवानी भई उहि गात।
तऊ नई नई रुचि छिन छिन इन भाँतिन ही जु होत परभात।
अति गति काहि न परति आनँदघन इत आवत उत जात॥

प्रेमाभिलाष] (६४) [चौताल

बरति मेरी रसना ब्रजमोहन की केलि।
अद्भुत सुख-सवाद को भार धरैं कित सबै सकेलि।
मधुर विनोद सदा फल जामैं फलिन ललित अभिलाषा-बेलि।
आनँदघन-रस-रूप-चातकी की गति गसि नीकैं खुलि खेलि॥

पूर्वानुराग] (६५)

अरी चलि चलि उठि चलियै घर कौं ये तौ मचलि परे हैं।
इन बातनि कबहूँ न अघाने (ये धुर के रस के लोभी
रसिक छैल) अति छल-बलनि भरे हैं।
चोरी मैं चौचँद सटताई चतुर कहाय निसंक खरे हैं।
फूँकि फूँकि धरि पाय ब्रज बसत,ये आनँदघन छाय छाय उघरे हैं॥

सुरतांत] (६६) [तालजात्रा

आई है उनींदी तू सुनि राधे पिय के संग सब निसि की जागी।
घुरि घुरि आवत नैना तेरे ढुरि ढुरि आनँदघन-गर लागी रस पागी।
आगैं आय बलैया लैहौं अगनि रंगनि की रुचि रागी।
झपि रहे री नेकु बिजना ढुराऊँ जिय की जीवनि जान सभागी॥

पूर्वराग] (६७) [ललित, मूलताल

यह जोवन ऐसो काम करै, अपनी अरनि अरै।
कित कौं छैल छबीलो मोहन मेरी दीठि परै।

चहवारे = चहचह बोलनेवाले। भरम = भेद, रहस्य। [६३] नकवानी० = नाक मैं दम हो गया। [६४] गसि = बाँधकर, रोककर। [६५] धुर के = परम, अत्यंत। [६६] घुरना = झपकना। [६७] उघरि० = खुल्लमखुल्ला

मन मिलि गयौ मिलत ही अँखियन आई घूमि घरै।
अपनो सो बरजत बहुतेरो नेकु न धीर धरै।
चलत चवाव चाव चित वाढ़त क्यौं हित-टेक टरै।
उघरि घुरौंगी आनँदघन सौं अब सब डारि डरै॥

प्रेमोन्माद] (६८)

सब जग कान्ह कान्हई दीसै अब मेरी स्याम-रँग-रँगी दीठि।
रूप-उज्यारो सनमुख डोलै लाज रही दै पीठि।
कैसो घूँघट कहति कौन सौं क्यौं ऽब करौं सुनि सुघर बसीठि।
उघरि परी आनँदघन-घमड़नि ऊतर दीजै नीठि॥

विरह-संदेश] (६९) [तालजात्रा

लागी है रे निरमोहिया तोही सौं जिय की लाग।
घर मैं बैठि कहाँ लौं साधौं या विरहा-वैराग।
अब तौ सब डर डारि सदा सँग विहरौंगी बन-बाग।
प्रान-पपीहन के आनँदघन उचित न क्यौंहूँ त्याग॥

पूर्वराग] (७०)

सलोने स्याम प्यारे बैन बजाय रिझाय लई।
जमुना-तीर कदम-तर ठाढ़ौ भोरहि भेंट भई।
देखत ही मनमोहन मूरति सब सुधि बिसरि गई।
आनँदघन पिय हँसि चितवनि मैं नखसिख लौं भिजई॥

दानलीला] (७१) [मूलताल

चले किन जाहु लला तुम सूधे आपनी गैल।
काहे कौं उरझत काहू सौं भली भई भए छैल।
दान दान यौं ही करि राख्यौ रोकत खोरि खरेई अरैल।
आनँदघन रसबादनि उनए फिरत मनावत सैल॥

प्रेम करूँगी। [६८] सुघर० = ऐ चतुर दूती। नीठि = कठिनाई से।
[७०] बैन = बाँसुरी। [७१] मनावत० = मौज उड़ाते फिरते हो।

पूर्वराग] (७२)

मेरो मन मोहन सौं मान्यौ सलानी मूरति जब तैं हेरी।
अब तौ जानि परी घट बाहिर उघरि उघरि बरसे री।
आनँदघन कहा करैगी सासु ननदिया रहत न इनकी घेरी॥

बलदेव-प्रशस्ति] (७३)

मदघूर्नित लोचन गोरोचन-बरन रोहिनी-नंदन बल हलधर राजैं।
गोपालनि कौं मोहि अधिक दै ब्रज-बन लीला साजैं निज सुख काजैं।
मंगलनिधि अच्युत अनंत प्रभु सदा मगन अपनी रुचि छाजैं।
आनँदघन नीलांबर-धरन उदार दीन-हित जस-निसान जग बाजैं।
सुमिरत ही सब दुख भाजैं॥

खंडिता] (७४) [कालिंगरो, इकताल

वारी हो वारि डारी हो आजु की तिहारी या छबि पै।
रसिक छैल बिहारी, ऐसी न कहूँ निहारी, कैसैं कही जाय काहू कवि पै।
जावक-तिलक भाल निपट लग्यौ रसाल
त्रिन तोरि डारियै नवल नीकी फबि पै।
आनँदघन पिय रसीले लजीले नैन बल कै उघारैं जात दबि पै॥

पूर्वराग] (७५) [इकताल

जमुना-तीर कान्ह डोलै हे।
भेदभरी बाँसुरी पै मोहिँ बोलै हे।
सासु-डरन साँस भरौं छतियाँ छोलै हे।
प्रान प्यासे आनँदघनहिँ मिलवै को लै हे॥

(७६) [मूलताल

अब तौ जानी है जू जानी, ऐ ब्रजमोहन सुखदानी।
मेरी तिहारी लाग ननदिया दुरि कितहूँ पहचानी।

---

[७३] घूर्नित = नशीले। बल = बलदाऊ। [७४] फबि = फबन, छटा। बल कै = बलपूर्वक। [७६] चौकसि = सावधान।

चौकसि भई रहति है बैरिनि ज्यौंऽब निकसियै पानी।
याके डर सूखति आनँदघन इत के डर नकवानी॥

रूपवर्णन] (७७) [इकताल

आवै आवै है देख्योंई भावै, उजियारो स्याम सुहावै।
गोकुल को कान्ह कहावै, मनमोहन बैन बजावै।
सुनि चेटक चितहि लगावै, रसभीजी तानि गावै।
चितवनि मैं चोप जनावै, मेरोऊ ज्यौं ललचावै।
कोऊ कहाँ लौं हिलग दुरावै, आनँदघन उघरि भिजावै॥

(७८) [आसावरी, चौताल

नैननि मन रोम रोम कान्है कान्ह रम्यौ है।
कोऊ बेचत कोऊ लेत गुपालहि गोरस लौं
फिरत बिकात कहाँ नीको नेहै जम्यौ है।
गोकुल प्रेम की पैंठ सदाई* जहाँ जगजीवन ऐसो भ्रम्यौ है।
आनँदघन अचरज रस झूमि झूमि सुक सनकादिक
सेस संकर गिरीस† सीस रज-बकसीस नम्यौ है॥

विरह-वेदना] (७९) [रूपताल

बिछुरिबे को दुख न जात है‡ स्याम।
बीच दियेँई मिल बिसासी ये कपटिन के काम।
हौं भोरी बेकाज बिकाई निज सरबस दै उलटे दाम।
निधरक छाय रहे आनँदघन हम बिलखत ये§ धाम॥

प्रिय-प्रतीक्षा] (८०) [इकताल

सगरी रैनि जागे री ये बियोगी नैन।
हरि-मग हेरि ब्रजमोहन अवधि बदि
लुभाने पायौ कहूँ न यौं चैन।

---

[७७] चेटक = जादू। [७८] पैंठ = बाजार। रज० = पदरज का प्रसाद पाने

* सुहाई। † गिरिजा। ‡ जानत नाहीं। § निज।

कहा करौं मन क्यौं हूँ न समझत तनहिं दहत दुखदाई मैन।
आनँदघन पिय चोपनि छाए आए अजहुँ तनैन ॥

विरहोन्माद] (८१) [दोहा

सुधि आएँ पिय मिलि खिली, यौं याही वन माँझ।
सरसौं सी फूलति सखी, देखति फूली साँझ ॥

उपालंभ] (८२) [चौताल

सुनहु कान्हा व्रजवासी, तिहारे दरस-रस की हौं प्यासी।
तुम ही सौं मन लागि रह्यौ अब सब तें भयौ है उदासी।
ऐसी भाँति मरियत भरियत एक गावँ बसि भए प्रवासी।
प्रान-पपीहा के आनँदघन दैया निपट विसासी ॥

मुरली-माधुरी] (८३) [इकताल

वंसी मोहन की फँदवारी।
मदन-गुपाल बजाय हमारे प्रान-गरैं गहि डारी।
घुटत अधीर पीर को पावै दरसन-आस जियारी।
आनँदघन-रस पियैं जियैं तौ रमैं विरही व्रतधारी ॥

प्रसाधन] (८४)

मिहँदी राचनि लागि लसी है नवेली के हाथ।
छुटे वार मुख ओप डहडही अलि गावत गुनगाथ।
व्रजमोहन की नवल दुल्हैया सोहति ललित सहेली-साथ।
आनँदघन पिय उमँगनि उनए भरत सु बलि कौं बाथ ॥

उपालंभ] (८५) [ख्याल, तालजात्र

न जानियै कौन भाँति मिलौ तिहारी भँवर की सी रीति।
व्रजमोहन आनँदघन प्यारे ठौर ठौर सवाद हिलौ दई नई परतीति ॥

के लिए। [८१] फूली साँझ = सायंकाल का वह समय जब अंधकार आने के पूर्व प्रकाशाधिक्य जान पड़ता है। [८२] बिसवासी = विश्वासघाती। [८३] फँदवारी = फंदा। जियारी = जिलानेवाली। [८४] राचनि = अर्थात् ललाई। डहडही = भरी पूरी। बलि = प्रिया। बाथ = अँकवार। [८५] सवाद० = स्वाद

पूर्वराग] (८६) [मूलताल

ठगिया बसत है री अरी यही गावँ।
जमुना-तीर तैं मन न हाथ मेरे, सुधि न रहत घर पावँ।
परी ठगौरी लगि वहि ढौरी बौरी भई जागत बररावँ।
साँवरे बरन आनँदघन भिजई जानौं न कहा धौं नावँ॥

निर्मोही प्रिय] (८७) [तालजात्रा

कहा बनि आई रे जियरा ! तोहि करि निरमोही सौं मोह।
अब तौ आनि पर्यौ कितहूँ तैं बैरी बीच्र बिछोह।
काहे कौं पछितात परेखनि तैं ही कियौ अपनो हित टोह।
वे आनँदघन तू है चातिक, वे चुंवक तू लोह॥

टोड़ी की तान] (८८) [टोड़ी

बजावै कान्ह तीखी तान टोड़ी की।
मुरली अधर धरें सुंदर बदन मैन-मद-घमरे नैनन,
केसरि-खौरि छुटी अलकैं और मुरि परसनि ठोड़ी की।
मन ही मन मैं रीझि रीझि तहाँ ताही सौं होड़ा-होड़ी की।
सुघर-सिरोमनि आनँदघन पिय की छवि देखैं
सुधि काहि लाज निगोड़ी की॥

मुरली-माधुरी] (८९) [मूलताल

सुधियौ न रहै तन की तनकौ भनकौ मुरली की सुनत ही कान।
तान-बान लगि घूमत घायल प्रान उत चाहत चलि जान।
रीझि मुरझि अरबरनि उरझि ससकत न सकत उठि, मगन-गान।
आनँदघन पिय को मिलन अभिलाखत
सुर-बिमान चढ़ि कौन सुकृत-अभिमान॥

हो लेते फिरते हो। [८६] लगि० = उसके पीछे लगकर। बररावँ = बर्राती हूँ। [८७] कहा० = क्या लाभ हुआ। टोह = खोज। [८८] मैन० = काममद से नशीले। सुघर = चतुर। [८९] भनक = चीण ध्वनि। मगन० = गान मैं

(९०) [झपताल

बजावै साँवरो बंसी जमुना-तीर ठाढ़ो पनघट पर कैसैं जैयै।
घट पट-सँभार तजि निकट कौं धैयै मोहिनी धुनि सुनि लुभैयै।
वाकी छवि हेरि तन सुरति बिसरैयै डगमगत पग डग भरन हूँ न पैयै।
जौऽब आनँदघन नीठि घर ऐयैं तौ निपट ही अररैयै॥

(९१) [इकताल

सलानैं ब्रज बगराई है, अपने रस की ठगौरी।
ब्रजमोहन सब ही भाँति नीरस रीति चलाई है।
काहू की कछु कही न परति अति ही गिराई है।
आनँदघन मुरली-धुनि-घमड़नि प्रेम-दुहाई है॥

गो-चारण] (९२) [चौताल

गैयनि चराय चराय गौं गहि करत कान्हा कितेऊ काम।
गिरि गोवरधन घटियाँ घेरत हेरत हौ नव वाम।
हम जानैं जैसे हौ मोहन गोहन लागत सोहन स्याम।
आनँदघन कहा भूमि आवत घर जान देउ किन फिरत बरावत घाम॥

खंडिता] (९३)

तिलक महावर को अति सोहै।
लाल आजु की बानिक मो मन आगे हूँ तैं मोहै।
मूड़ चढ़ाय लई अनुरागिनि अब ताकी पटतर कौं को है।
ऐंड़ि भाग उनयौ आनँदघन उघरी परत अहो है॥

लीन। सुर० = स्वर; देवता। [९०] अररैयै = गिर पड़ती हूँ। [९१] गिराई = वाणी ही, बहुत अधिक कहने पर भी। [९२] घटियाँ = घाटियाँ। सोहन = शोभन। घाम बराना = मुसीबत टालना। [९३] बानिक = सजधज। पटतर = समता। ऐंड़ि० = ऐंड़ाकर अर्थात् भली भाँति। उघरी० = रहस्य की बात उद्घाटित

कृपा-याचना] (६४)

ज्ञान ध्यान धारना समाधी धरि धरि देखे पै न देखे।
ईस गिरीसन हूँ जौ कहूँ देखे तौ चटपटिन रतन परेखे।
× × × अपनीयें इच्छा बिसेखे।
मोसे अनकछु की गिनती कहावत एक कृपा-गुन उर अवरेखे।
आनँदघन ह्वै ढरौ तौ हरौ दुख पूरौ परै सब लेखे॥

दधिदान] (६५) [रूपताल

ऐंड़ी ऐंड़ी सिर धरै दहेंड़ी।
अब सब दिन को दान कान्ह को देत बनै है लखि पाई गिरि-छैंड़ी।
रूखी परिखत रीति ग्वारि कित बहुत बार यौं गई अमेंड़ी।
आनँदघन सौं मिलि चलि दामिनि नातर मचिहै दधि की उरैंड़ा-उरैंड़ी॥

उपालंभ] (६६)

कहा मन मिलाएँ होत अनमिले सौं
जाको सहज चंचल पर्यौ है सुभाय।
दिन दस गौं लागि लाहौ बपुरी अबलानि भुराय।
करत फिरत बिसवास बधुनि को ब्रजमोहन कहूँ मोहे न हाय।
कहूँ उघरि कहूँ घमड़ि आनँदघन रचत नए नए दाय॥

प्रेम की रहन] (६७) [चौताल

नेही सो बिदेही और जग माँझ कौन है।
बिरह को ताप महा आनँद को सीत सहै,

हो रही है। [६४] ध्यान० = अष्टांग योग की साधना से। चटपटिन० = हड़-बड़ी में ही रत्न की परीक्षा की। अनकछु० = अत्यंत तुच्छ की भी। अवरेखे = विचारे। [६५] ऐंड़ी = अभिमान से टेढ़ी। दहेंड़ी = (दधिभांड) दही की मटकी। छैंड़ी = घाटी, उपत्यका। अमेंड़ी = मर्यादा को न माननेवाली। उरैंड़ा० = (उलेड़ना) अभिमान से बलपूर्वक गिरा देना। [६६] लाहौ = लाभ। भुराय = ठगकर। उघरि = हटकर। घमड़ि = अर्थात् छाकर। दाय = बात।

नाहीं कछु कहै जाके सम वन भौन है।
जीवत अदृस्ट-बल खाय पै न जानै स्वाद,
खाटो कटु तिक्त मीठो किधौं यह लौन है।
वृंदावन-प्रभु प्यारो वस्यौ रहै नैनन मैं,
देखन कौं बावरो सो भयौ फिरै मौन है॥

(९८) [मूलताल

वेगि लै आव री लालबिहारी प्रानपिया कौं, प्रानपिया कौं।
कलमलात उनके देखन कौं राखि लै बिकल जिया कौं।
हाहा करति हौं पायनि परति हौं चेरी मानि अधीन तिया कौं।
आनँदघनहिं मिलै सियरो करि बिरहा-जरत हिया कौं॥

मन की बात] (९९) [इकताल

मन की बात नहीं जानै री, जब तें देखे मोहन सोहन स्याम।
कैसैं रहौं कहौं अब कासौं को अब मानै री।
उर अरि रही रसीली मूरति प्राननि छानै री।
चातक-रट लागी आनँदघन पानै पानै री॥

रूप-माधुरी] (१००) [रूपताल

मोरचंद्रिका सीस धरैं यह साँवरो चेटक है धौं को।
पैठि परत आँखिन ह्वै अनेरो याहि निरखि पन लै निबहै धौं को।
फिरि याकी मोहन मुरली सुनि धीरज धरि धरि तरुनी रहै धौं को।
गुपत प्रगट भिजवै आनँदघन मन की गति पति बिसरि रहै धौं को॥

विरहोद्वेग] (१०१) [इकताल

मोहिं तुम ही तुम दीसत हौ।
स्याम उज्यारे नैननि तारे अब क्यौं रीसत हौ।

---

[९७] बिदेही = देहाध्यासशून्य। जीवत० = अदृष्ट के बल से वह अनेक वस्तुएँ खाता है, पर उनका स्वाद नहीं जानता। [९८] चेरी = दासी। [९९] अरि = अड़कर। छानै = बझती है। पानै = पानी। [१००] चेटक = जादू। धौं को = न जाने

इतने पै न जान दीसत हौ तौ प्रान परेखनि पीसत हौ।
तुमहि जु दीसि परी सोई दीसौ पै नहिं प्यास परीसत हौ॥

विरही कृष्ण] (१०२) [मूलताल

राधा राधा दीसै स्यामैं घर राधा बन राधा।
चायनि भरि गायनि लै निकसत दुरि मिलिबे की साधा।
ब्रज बसि कैसैं बनत कुलीननि लोकलाज गुरुजन की बाधा।
आनँदघन चातक लौं जीवत रसबस प्रान समाधा॥

विरागी मन] (१०३) [चौताल

को पावै ये भेद जो गावै मेरो बैरागी जियरा।
ब्रजमोहन के सँयोग वियोग भख्योई रहै हियरा।
अँसुवन जल सौं अधिक जगति जोति परेखनि होत मनौं पियरा।
आनँदघन औसेर - अँध्यारनि दुसह - दसा दियरा॥

राधा-रूप] (१०४)

तेरी निकाई तोहि दई है विधाता राधे रूप रती भरिपूरि।
रति रंभा सची उमा रमा आदिकनि के गरब डारे री चरननि चूरि।
रसिक मुकुटमनि ब्रजमोहन मनमानी जानी
बखानी वेदनि महिमा भूरि पदवी परम पूरि।
आनँदघन पिय कौं रस संपति दैनी जिय की जीवनि मूरि।

(१०५)

मंजन करि कंचन-चौकी पर बैठी बाँधति केसनि जूरौ।
रुचिर भुजनि की उचनि अनूपम ललित करनि विच झलकत चूरौ।

कौन। अनेरो = अनोखा। [१०१] दीसि० = आप को जो दिखाई पड़ता है उसे ही देखते हैं। परीसत० = स्पर्श करते हो। [१०२] साधा = उत्कंठा। समाधा = समाधान। [१०३] अँसुवन० = आँसुओं से वेदना की ज्वाला बढ़ती है। पियरा = पीला। औसेर० = प्रतीक्षाजन्य दुःखरूपी अंधकार के लिए विरह की दुस्सह दशाएँ दीपक का काम करती हैं। [१०४] रूप० = सौंदर्य का रत्ती-

लाल-जटित बर भाल सुबैंदी कछुक रह्यौ फबि माँग सिंदूरौ।
आनँदघन प्यारी-मुखछबि पै वारौं कोटि सरद-ससि पूरौ॥

यमुना-महिमा] (१०६)

कृस्न-तरंगिनि रस-रंगिनि जमुना जाको दरस परस
सरस करत हिय नैननि बैननि।
कहा कहियै देखि देखि रहियै लहियै जे जे अपूरब चैननि।
बृंदावन बिनोद दरसावनि भानुकुँवरि लगियै रहै नैननि।
याके तीर बलबीर धीर आनँदघन घमड़ि घमड़ि
बसत लसत बरसत केलि-कुंज-ऐननि॥

विरह-निवेदन] (१०७) [मूलताल

तू जब चाही री मुसुकौंहीं सखियनि तब तैं उन मन मानी।
मोहन रसिकराय रसनागर सब ही बिधि सुखदानी।
प्रीति बढ़ै चित चोप-रंग चढ़ै सो कीजै सुनि सुघर सयानी।
आनँदघन तोसौं हित गति चातिक तैं अधिकानी॥

मोहन-रूप] (१०८)

तेरी लटकि चलनि पर वारी, वारियै वारि वारि डारी रे।
ब्रजमोहन रस-भीनी मूरति लगति प्यारी रे।
हँसि चितवनि मदछाकी अँखियनि जीय-जियारी रे।
रिझै भिजै लीनी आनँदघन रसिकबिहारी रे॥

पनघट-लीला] (१०९)

कैसैं कै जाऊँ जमुना-जल लँगर छैल ठाढ़ो गैल माँझ करै बोली ठोली।
ब्रजमोहन आनँदघन उनयोई रहै कहि कहाँ लौं रहौं दैया ऐसैं अबोली॥

भर अंश भी छोड़ा नहीं, उसे परिपूर्ण करके तुझे वह रूप विधाता ने दिया है। सची = इंद्राणी। [१०५] चूरौ = कलाई पर के कड़े। बैंदी = माथ पर पहना जानेवाला गहना। [१०६] ऐन = अयन, घर। [१०७] हित० = प्रेमदशा। [१०८] वारियै = निछावर होना ही। जियारी = जिलानेवाली। [१०९]

वेणुवादन] (११०) [देशी टोड़ी

मुरली में मोहन मंत्र बजावै कान्ह छबीला छैल ।
ब्रजगोरिन के गोहन लाग्यौ बरज्यौ न मानैं अरैल ।
प्रेम-लहरि उठि तन उरझावै नाद निगोड़ो निपट बिसैल ।
रोम रोम आनँदघन छायौ बिरह-बिथा को फैल ॥

उपालंभ] (१११) [आसावरी, इकताल

निमाणी जिंद लगी वे तैंडी नाल ।
वेखणी कारण तपदी वे कान्ह वेखि असाडे हाल ।
तुझ गल मैंडा कुझ वस नाहीं चलदी ज्यों भी त्यों भी करी वे बेहाल ।
आनँदघन हुण बंदियाँ विचारियें यों जानी वे तुसाडे ख्याल ॥

संदेश] (११२) [काफी, मूलताल

वो वो वो मैं वारी वारि वारि जाँमी ।
अरज असाडी सुन ब्रजमोहन सोहन मुख विखलाँमी ।
तुज वाजू असी खरी वो निमाणी खिमा दिल परचाँमी ।
प्राण-पपीहा हे आनँदघन रिमिझिमि रिमिझिमि आँमी ।

विरह-व्यथा] (११३) [ईमन बिलावल

अब तौ लागी लगनि तुम सौं है ।
ब्रजमोहन कित ह्वाँ हिलगे तुम, अपनी अपनी गौं है ।

लँगर = ढीठ । [११०] गोहन = साथ । निगोड़ो = (स्त्रियों की गाली) बुरा । बिसैल = जहरीला । फैल = फैलाव, प्रभाव । [१११] निमाणी = मनमानी करनेवाला । वेखणी० = आप के दर्शन के लिए । तपदी = तपती हूँ । वेखि = देखो । असाडे = हमारे । गल = बात में । मैंडा = मेरा । कुझ = कुछ । हुण = अब । बंदियाँ = दासियाँ । तुसाडे० = तेरे विचार । [११२] वारि जाँमी = निछावर हो जाती हूँ । असाडी = हमारी । विखलाँमी = दिखाइएगा । तुज० = तेरे भरोसे । असी० = हम खड़ी हैं । खिमा = क्षमा । खिमा० = अपने मन को

छिन-पल कल न परत बिन देखैं गति चकोर-ससि-लौं है।
आनँदघन पिय बरसि सिराए हिये परेखनि दौं है॥

वेणुवादन] (११४) [भीमपाली

बन बजी बँसुरिया कैसें रहूँ घर दैया।
कलमलात जियरा मिलिवे कौं को है धीर धरैया।
न्यौज* लगौ यह लाज निगोड़ी, करिहै कहा चवैया।
उघरि घुरौंगी आनँदघन सौं अब डर करै बलैया॥

भक्त का अभिलाष] (११५) [बिलावल, इकताल

माँगि मन ब्रजवासिन सौं टूक।
तजि बिंजन सब स्वाद इतै उत यहै विचार अचूक।
प्रान राखि अभिलाष स्याम को, लोकलाज दै लूक।
आनँदघन दिसि त्रिषित पपीहा ह्वै, बन मैं करि कूक॥

सूर्यस्तुति] (११६) [कपोतताल

दिनदेव दिवाकर दिव्य रूप दीनदयाल।
परम धाम पुनीत परिपूरन प्रताप, तूरन चूरन भ्रम-तम-जाल।
बंदनीय विभु, विज्ञान-प्रकास, विकासक हृदै कमला-कमल-माल।
आनँदघन उदै उदयाचल मैं अब उपजैयै हरि-अनुराग अमोल लाल॥

क्षमा से परचाओ, मन मैं क्षमा ले आओ। प्राण० = प्राण-पपीहों के पास। आँमी = आना। [११३] हिलगे = प्रेम करने लगे। गौं = घात। दौं = दावाग्नि [११४] न्यौज लगना = देवता को अर्पित हो जाना, बलि चढ़ जाना (स्त्रियों की गाली)। चवैया = बदनामी करनेवाले। उघरि० = खुल्लमखुल्ला प्रेम करूँगी। डर० = मेरी बला डरे। [११५] टूक = टुकड़ा। बिंजन = व्यंजन। लूक = (आग की) लुत्ती। करि० = चिल्लाओ। [११६] तूरन = तूर्ण, शीघ्र।

* आग।

पनघट-लीला] (११७) [मूलताल

मोहिं न करि रे नकबानी लंगर होत अबार जान दै जमुना पानी।
कहा तेरैं आयौ राज, लाज तजि खोवत औरैं काज,
तोहि तलबाहि, घरबसे न जानत बिरानी।
भरि भरि डगरि गईं सँग कों, हौं कौन बेर की घिरी हाय,
उतर न आयहै बूझैगी जब ननँद जिठानी।
आनँदघन हठ सठ स्वारथ लगि जानी हो पहचानी हो पहचानी।
रावरी अब सु बावरी जु फिरि पत्याय
इहिं गैल निगोड़ी आजु तैं करिहौं सयानी॥

(११८) [रूपताल

गागरि दै रे उचाय लँगर अठिलात कहा, ए लँगर अठिलात कहा।
अब ही जो कोऊ कितहू तैं देखि पायहै परिहै कठिन महा।
या ब्रज के सब लोग चवाइ करत फिरत हैं चही-चहा।
आनँदघन हठ घमड़ छाँड़ि किन, पायनि परत हहा॥

गोपिका-प्रीति] (११९) [इकताल

गोकुल की नारि नवल अनुराग-भरी रहैं
स्यामसुँदर देखन कौं दिनदिन हीं।
मधुर रूप-रस पिवतिं जियतिं आनँद उमगि उमगि छिनछिन हीं।
इनको सुख येई पै समझतिं रहि न सकतिं उन देखे बिन हीं।
रोम रोम भीजी आनँदघन यह रस तौ पायौ है इनहीं॥

---

[११७] न करि नकबानी = दिक मत कर। लंगर = शरारती। अबार = देर। तेरैं० = क्या तेरा ही राज हो गया है। खोवत० = तू दूसरे का काम बिगाड़ता है। तलबाहि = उतावली। घरबसे = उपपति, यार। न जानत० = दूसरे की पीड़ा नहीं समझते। डगरि० = चली गईं। कौन० = न जाने कितनी देर से। रावरी पत्याय = आप की बात का विश्वास करे। निगोड़ी करिहौं = अर्थात् त्याग दूँगी। [११८] दै रे० = उठा दे। चही-चहा = (लुक-छिपकर) देख-ताक

वेणुवादन] (१२०)

वँसुरिया सौति तें अधिक दहै।
वन घन लियेँ फिरत मोहन सौँ कौन कहै।
देखनि हूँ की चोर, कानिवस को यह सूल सहै।
परी न रहन देति घर हू मैँ साँसन गिनत रहै।
चाहत कियौ कछू इतने पै कल पल एक न है।
आनँदघन पिय वसौ किये, पै वैठी वैर चहै॥

शिव-स्तुति] (१२१)

संकर गिरिजापति नंदीस्वर चंद्रचूड़ गंगाधर।
आदिनाथ कैलास-निवासी भक्तराज भव भयहर।
महाईस जगदीस जोगिमनि महादेव सिव संभु दयापर।
आनँदघन सुरूप गोपेसुर, मंडित वृंदावन थर॥

संत-प्रशस्ति] (१२२)

जिनके मन सुविचार परै।
गुरुपद-पदुम परम परसादहि पाय प्रेम आनंद भरै।
जग तें विरल विवेक-देस बसि देखन कौं तित रहत ररै।
खान-पान परिधान आन विधि अनासकत ह्वै करम करै।
साधारन सुभ असुभ न जानत, नित निहचै रुचि-सोच टरै।
सावधान अति विरह-बावरे, मिलि सरूप इहिँ ढार ढरै।

(करना)। हहा = हाय। [११६] दिन० = प्रतिदिन। [१२०] देखनि० = मैं उनके देखने की भी चोर हूँ, देखती भी हूँ तो लुक-छिपकर। कानि = मर्यादा। कल० = एक क्षण का भी चैन नहीं। पिय० = प्रिय को वश कर लेने पर भी वैर की बात लगाए रहती है। [१२१] दयापर = दयापरायण, दयालु। सुरूप = गोपेश्वर-रूप, श्रीकृष्ण-रूप। [१२२] विरल = पृथक्। ररै = रटे। परिधान = पहनावा। आन० = दूसरे ही प्रकार का होता है। अनासकत = अनासक्त, विरक्त। रुचि० = इच्छापूर्ति न होने का सोच। मिलि० = भगवान्

अमल अनूप विदेह रूप धरि थिर मति करि निज गति विचरैं।
तिनके पद पावन की रज मैं अखिल-लोक-उपकार धरैं।
कृस्न-रसासव अति सुपान तैं पूरन, पूरनकाम खरैं।
तत्वबोध की बलक छलक-बस दोक-गाँस-ब्यौरनि उघरैं।
कब धौं मिलैं हाय हग हूँ वे संत-कलपतरु कृपा फरैं।
सोभा-मूल फूल-सुख बरसत सरसत छाया हरैं हरैं।
सुभ सीतल सुदस्टि-धारावलि सींचैंगे उर-दाह-बरैं।
आनँदघन अमोघ रसदायक प्रान रहत अभिलाष अरैं॥

मोहन-माधुरी] (१२३) [सुघराई, रूपताल

कान्ह की देखौ हो सुघराई।
सुघराई सुर सौं मुरली मैं अपनीयै तान बजाई।
मोहिं जनाई मैं हूँ पाई उनकी हित-अँगराई।
आनँदघन पिय घर बैठें हूँ रीझनि-भीज भिजाई।

अभिलाष] (१२४)

यह मेह मोहीं पर बरसैहौ।
रसभीजी चितवनि चितै चाहि चाप-चटक सरसैहौ।
कहा कहौं मन अँखियन की गति जब मोहन मुख दरसैहौ।
उघरि घुरौंगी आनँदघन सौं कौं लौं ज्यौं तरसैहौ॥

(१२५) [कन्नड़ी बिलावल, मूलताल

बनवारी के सँगवा फिरिहौं, गुरजन-डरनि कहा घर घिरिहौं।
सनमुख ह्वै ह्वै ब्रजमोहन कौं भावभरी भटभेरनि भिरिहौं।

के रूप मैं मिलकर। धरैं = धरा है, रखा है, होता है। खरैं = उत्कृष्ट। बलक० = छलबल से। दोक = द्वैत, दो का भाव। गाँस = ग्रंथि। ब्यौरनि = पृथक् करने का विवेक। उघरैं = उद्घाटित हो जाता है। हरैं० = धीरे धीरे। [१२३] सुघराई = चतुरता, सुंदरता। हित० = प्रेम की अँगड़ाई, प्रेम का स्फुरण। [१२४] चटक = फुरती। [१२५] भटभेरनि = आकस्मिक मिलन। [१२६]

अब तौ जिय ऐसी बनि आई प्रीतम के मन तैं क्यौं फिरिहौं।
आनँदघन-हित चातक-चोपनि कौं लौं इन अँसुवनि-झर झिरिहौं॥

पूर्वराग] (१२६)

नैना मेरे लागे री, स्यामसुँदर ब्रजमोहन पिय सौं।
बिन देखें नहिं चैन सखी री निसिदिन इकटक जागे री।
लोकलाज कुलकानि बिसारी उनहीं सौं अनुरागे री।
आनँदघन-हित प्रान-पपीहा कुहुकि कुहुकि पन पागे री॥

पनघट-लीला] (१२७)

अरी पनघटवा आनि अरै।
अटपटि-प्यास-भर्‌यौ ब्रजमोहन पलकनि ओक करै।
रुचि रचाय ललचाय, निहोरै मेरोऊ धीर हरै।
उघरि उघरि भिजवै आनँदघन चोपनि लाय झरै॥

(१२८)

बंसी बजावै रँग सौं, जमुना के तीर कन्हैया।
हौं दौरति हो सो ही इकौसैं औचक दीठि परि गयौ दैया।
रूप-गहर मन जाय पर्‌यौ है जैसैं भँवर जाजरी नैया।
उघरि उघरि भिजवै आनँदघनताननि बिष बाननि बरसैया॥

(१२६)

आँखिन लाग्यौ री गोपाल।
जमुना-तीर गई गागरि लै भरि लाई जंजाल।
औचक दीठि पर्‌यौ ब्रजमोहन ठाढ़ौ गहें* तमाल।
चितवनि मैं भिजई आनँदघन ये पनघट के हाल॥

कुहुकि = चिल्लाकर। [१२७] ओक = अंजली। [१२८] इकौसैं = एकांत मैं।

* उठँगि।

प्रेमी मन] (१३०)

सलोने स्याम सौं मन लाग्यौ री।
गिनत नहीं कुलकानि तनिक हूँ अब ऐसो अनुराग्यौ री।
कल न धरत पल-छिन बिन देखैं उनहीं के रस पाग्यौ री।
आनँदघन-हित भयौ पपीहा और सबै कछु त्यागौ री॥

वेणुवादन] (१३१)

कहा विष घोर्यौ है बँसुरी मैं, अरी इन साँवरिया रसवादी।
घूमत मन, धीरज न धरत ज्यौं करि देख्यौं कसु री मैं।
एक गाँव बसि कैसैं भरियै कठिन कसक पँसुरी मैं।
अब आनँदघन उघरि घुरौंगी लैहौं यह जसु री मैं॥

उपालंभ] (१३२)

तुम सौं न नेह लगैयै ब्रजमोहन हो बिसासी।
पावत नाहिं पराई बेदन डोलत भँवर बिलासी।
अपनी गौं दुरि हिलत मिलत हौ रस लै देत उदासी।
आनँदघन पिय हौ बरसौं हैं राखत आपनि प्यासी॥

पूर्वराग] (१३३)

बनवासी कान्हा चित्त चढ्यौ री, तातैं मोहिं घर-अँगना न सुहाय।
सुधि बुधि सोधि लई सुनि सजनी मुरली तनिक बजाय।
जिय की दसा कहति नहिं आवै घूमि घूमि मुरझाय।
उघरि मिलैं बनिहै आनँदघन अब तौ मो पै रह्यौ न जाय॥

(१३४)

रंगी साँवरिया तेरी बनक न बरनी जाय।
जब जब देखौं तब तब भूलौं अँखियन घाली आय।

गहर = गहराई। जाजरी = टूटी-फूटी। [१३१] कसु = खींच-तान। भरियैं = सहूँ। [१३२] पावत० = दूसरे की पीड़ा नहीं समझते। उदासी = उदासीनता।

रहि न सकौं मिलि सकौं न भ्रर-डर मनहीं मुरझौं हाय।
सोचति रहौं कछु न ठिक ठहरै अरु कछुवै न बसाय।
देखि जिऊँ तोहीं आनँदघन हाहा जिय तरसाय॥

वेणुवादन] (१३५)

बैन बजावै बनमाली अरी हौं कलमलाउँ सुनि घर मैं।
गोहन पस्यौ सखी ब्रजमोहन ताननि वेधत मरमैं।
कैसैं रहौं कहाँ लौं साधौं टारत धीरज-धरमैं।
आनँदघन सौं उघरि मिलौंगी झुरसति बिरहा-झर मैं॥

पूर्वराग] (१३६)

कहि सुघर सनेही स्याम मिलैंगे कब री।
हेली, मेरो जियरा व्याकुल होत है अब री।
चितवनि मैं करि गए ठगौरी इत ह्वै निकसे जब री।
कहा करौं कछु बनि नहिँ आवै अति गुरजन की दब री।
उघरि परैगी बात भरम की लखि लैहैंगे सब री।
आनँदघन-रस भीजी रीझी लै मिलि काहू ढब री॥

उपालंभ] (१३७)

निमाणियाँ दी वस्ती, वो होवे बंगी रहै, तैंडी जान।
ऐसी वे तुसाडे दरस-भिखारी, होवे सौदा दस्त-ब-दस्ती।
तैंडे वे कारणें फिरणे दिवाने हुसन-प रस्त अलमस्ती।
आनँदघन ब्रजमोहन जानी तैंडे तलब दी मस्ती॥

ब्रज के विरही] (१३८)

निपट बिरहिया लोग या ब्रज के।
स्याम सनेह सगबगे सब ही रूप रगमगे नैन।

आपनि = अपनी; जल से। [१३४] घाली = आघात किया। [१३५] मरमैं = मर्मस्थल। झुरसति = झुलसती हूँ, जलती हूँ। [१३६] दब = दाब। भरम = भेद, रहस्य। ढब = ढंग, तरीका। [१३७]बस्ती = रखेली। बंगी = टेढ़ी। दस्त० = हाथोंहाथ। हुसन० = प्रेमसाधक। अलमस्ती = मौजी। तलब० = नशे की।

मिलि मिलि बिछुरैं बिछुरैं मिलि मिलि पावत चैन कुचैन।
आनँदघन झर लग्यौ सदाई घर राखत रस-बढ़वार।
मौन धरैं मचि रहौ चहूँ घाँ कान्है कान्ह पुकार॥

पूर्वराग] (१३९)

जेमन करिया कान्ह देखी, सेई करिबो।
प्रान-सखी बिसाखा बिनती मनैं धरिबो।
बंसी-धुनि सुनिबो या छबिकारी, मदन-अनल जातौं अंतरमा डारी।
स्यामे रमि रम कथा बूझिते ना पारी, आनँदघन ब्रजमोहन बिहारी॥

(१४०)

गोकुल के कान्हा मेरो मन मोह्यौ।
डगर चली हौं जात सहज ही मो घाँ मुसकि मुसकि जोह्यौ।
अब तनकौ धीरज न रहत है अपनो सो बहुतै टोह्यौ।
रीझनि ल भिजई आनँदघन मुरली की ताननि पोह्यौ॥

(१४१)

हौं कहा करौं हे, गोकुल गाँव बसि कैसैं भरौं हे।
जमुना-तीर कान्ह बंसी बजावै,वाकी धुनि सुनि मेरो ज्यौ बौरावै।
त्रासै ननँदिया सासुरिया, काहू विधि कछु न बसाय।
ताननि बाननि बेधै प्रान, और दसा कहा करौं बखान।
औरन सौं हौं करौं दुराव, उघरि परे पै कौन उपाव।
छाँह छुवन हूँ को न बनाव, गैल-गखारनि चलै चवाव।
मो ही जो गति लागी मोहिं, कै औरनि हूँ, बूझौं तोहिं।
जो कछु ही सो दई जताय, हा हा अब हित की सु बताय।
आनँदघन या विधि रह्यौ छाय,बिरह-ताप डारत तन ताय॥

---

[१३८] सगबगे = सराबोर। रगमगे = लीन। [१३९] जेमन० = जिस प्रकार कृष्ण को देखूँ वही करूँगी। छबिकारी = सुंदर। रमि० = रमणीय। बूझिते० = समझ नहीं सकती। [१४०] डगर = मार्ग। मो घाँ = मेरी ओर। अपनो = अपने भरसक बहुत यत्न किया। पोह्यौ = बेध दिया। [१४१] भरौं = दिन

गोपी-प्रेम] (१४२)

लई कन्हैया ने हो घेरि।
खोरि साँकरी माँझ सजौटै आय गयौ कितहू तैं हेरि।
कौरि भरी औ धरी औचकाँ अकेली काहि सुनाऊँ टेरि।
आनँदघन घुरि सराबोर करि पठई घर लौं निपट लथेरि॥

प्रिय-प्रतीक्षा] (१४३)

हो जी साँवला थे तो भला बिष बसाया।
व्रजमोहन आनँदघन ऊभी ऊभी बाट डीकाँ थे ओठे झर लाया,
नहीं आया, परचाया॥

वृंदावन] (१४४) [सारंग, चौताल

यह वृंदावन, यह जमुना-तीर, यह सारँग राग।
यह भाग-भरी भूमि, यह तरु-लता झूमि, ये बिहंग बड़भाग।
राधा-मोहन को सुहाग-बाग।
याकी लहलहानि याही मैं पैयत सींच्यौ आनँदघन अनुराग।
याहि चाहिबो आँखिन को फल समझति स्यामा-स्याम
जे नित सेवत हैं करि जाग॥

युगल-विहार] (१४५)

अतिसुगंध मलयज घनसार मिलाय, कुसुम-जल सौं छिरकाय,
उसीर-सदन बैठे मदनमोहन संग लै राधा प्रानप्यारी रति रंगनि।
जमुना-तीर बानीर-कुंज, मंजु त्रिविध पवन सुखपुंज,
परसि रोमांच होत छबीले अंगनि।
बृंदावन-संपति दंपति बिलसत हुलसत ऐसैं अपनी भरि भरि उमंगनि।
आनँदघन अभिलाष भरे खरे भीजे संगम-रससागर की अतुल तरंगनि॥

बिताऊँ। ताय डारत = जला डालता है। [१४२] माँझ० = संध्या होते ही। कौरि = (क्रोड़) गोद। औचकाँ = अचानक। लथेरि = दलमलकर। [१४३] थे = आप। ऊभी = खड़ी। बाट० = मार्ग जोहती हूँ। ओठे = वहाँ। परचाया = वहीं परच गए। [१४४] जाग = जागरण। [१४५] मलयज =

पूर्वराग] (१४६)

एक ही बगर बसत बनमाली पै मेरी आली आँखि लौं आँखि न दीसत।
हित जताय चित कठिन कियौ री अधिक बधिकहू तें प्रान परेखनि पीसत।
निकट आय मनभायौ करत किन, दूर तें क्यौं बिष-सरनि कसीसत।
आनँदघन सब बिधि वे सुखी रहौ निसिदिन जात असीसत॥

वेणुवादन] (१४७) [रूपताल

हौं कहा करिहौं मेरी दैया मोहन-बँसुरिया बजी है।
मनहि घुमावत तन बौरावत बैरहि लैन सजी है।
लाज-लपेटी कौ लौं रहियै धुनि धीरज की करत धजी है।
आनँदघन रस-प्यासनि त्रासनि अकि कोऊ अबला न लजी है॥

गोवर्धन-प्रशस्ति] (१४८) [झपताल

गिरिराज-कंदरा-मंदिर अमंद अति मंदार-तरुवृंद-आवृत बिराजै।
सुख-सेज सौरभ सकल सौंज अनुकूल
अनुचर-निकर वर प्रमोद सौं साजै।
कृस्न वृषभानुजा-संग विहरत जहाँ
समै-रुचि साधि कै करत हित-काजै।
जयति गिरिनाथ व्रजनाथ-हिय
हाथ किय आनँदघन सुजस-दुंदुभी बाजै॥

वृंदादेवी-स्तुति] (१४६) [चौताल

वृंदादेवी वृंदावन-सेवी राधा-मोहन की हितकारिनि।
नित नित चित-चिंतन-फल दै दै रिझए भिजए विहारी-विहारिनि।
मोहिँ मिली महामंगल-स्वामिनि निज वनवास-आस-पन-पारिनि।
याहि मनाऊँ या गुन गाऊँ आनँदघन रस रसनैं प्याऊँ
सब ही विधि है अंतर की ताप निवारिनि॥

चंदन। घनसार = कपूर। उसीर = खस। बानीर = बैंत। [१४६] कसीसत = खींचते हैं। [१४७] धजी = धज्जी, टुकड़ा। अकि = या कि। [१४८] मंदार = कल्प-वृक्ष। आवृत = घिरा। सौंज = सामग्री। निकर = समूह। समै० = समयानुकूल

श्रीराधा-चरण] (१५०)

श्रीराधा-चरन करि मन ! मेरे वंदन ।
मोहन-मधुप भर्‌यौ अभिलापनि स-हित लेत मकरंदन ।
बन-अवनी रवनी-सिर-मंडन जगमगात दुति उदित अमंदन ।
वेद पपीहा लौं आनँदघन रटत निरंतर छंदन ॥

पूर्वराग] (१५१)

जब जब सुधि आवै मोहन बनवारी की तव तव मन बन-
तन निकसि जाय ।
डरी रहत परवस हौं घर मैं यासौं यौं न बसाय ।
मुरली-भनक इतै पै सतावै आनि हाथ होति अनपाय ।
बिरह-घाम व्यापत अति मो पर आनँदघन मँडराय ॥

श्रीकृष्ण-स्तुति] (१५२)

सरनागत स्वामी, सरबदयाल अंतरजामी ।
जिन जिन जहाँ जहाँ सँभारे तहाँ तहाँ धाए कृपानिधि गरुरगामी ।
मोसौं न और अधमन मैं दूसरो कपटी कुटिल कामी ।
अतिनामी आनँदघन अघ-ओघ-वहावन
सुदृस्टि-जिवावन बेद भरत हैं हामी ॥

वेणुवादन] (१५३)

निकसि निकसि मन तन तैं बन-तन कौं जाय हाय याहि कहा बनि आई ।
कबहूँ कबहूँ मुरली की टेर सुनि आवत बाहिर हाय यौं बौराई ।
घर मैं रहै याकौं घर बन ठहर्‌यौ सासु ननँद न्याय रहत रिसाई ।
आनँदघन-हित अँसुवनि भीजी सोचनि . सूखति मेरी माई ॥

रुचि । [१४६] पारिनि = पालनेवाली । [१५०] स-हित = प्रेमपूर्वक । बन० = वनभूमि मैं । रवनी० = रमणी श्रेष्ठ राधिका की (द्युति) । अमंदन = परिपूर्ण । [१५१] तन = ओर । डरी० = पड़ी रहती हूँ । अनपाय = दुष्ट । [१५२] सरब = सर्व । सँभारे = स्मरण किया । नामी = प्रसिद्ध । अघ० = पापसमूह । हामी = स्वीकृति । [१५३] बन० = वन की ओर । न्याय = उचित ही । [१५४]

पूर्वराग] (१५४) [मूलताल

तुम सौं लग्यौ है सनेहरा।
रूप-उज्यारे प्राननि प्यारे ब्रजमोहन दृग-तारे,
कह्यौ न परत कछु रह्यौ न परत है सह्यौ न परत छिन छेहरा।
उघरि उघरि अति बरसन लाग्यौ अम्बरज को यह मेहरा।
आनँदघन दिन-दूलह तुमहूँ बाँधौ जू पन-सेहरा॥

(१५५) [तालजात्रा

न रहै मेरो मन बिन देखें ब्रजमोहन उजियारे।
आनँदघन रसपान करन कौं प्रान-पपीहा निसिदिन रटत बिचारे॥

गोवर्धन-पूजन] (१५६) [मूलताल

महाराज ब्रजराज पूजि गिरिराज परम आनंदे।
बल मोहन लै संग रंग सौं दाहिने दै दै नंदे।
गोपी-गोप-समाज भाव भरि फूले फिरत सुछंदे।
जय जय धुनि आनँदघन गरजनि सुनि मघवा-मद मंदे॥

अभिलाष] (१५७) [इकताल

परौ जौ ब्रज-रज-परस-सवाद।
ब्रजमोहन की चरन-धरन छवि लोचन लहैं प्रसाद।
प्रान पोष पाइहैं तबहीं सुनिहैं मुरली-नाद।
आनँदघन झर लगै निरंतर बढ़ै प्रेम-उनमाद॥

चेतावनी] (१५८) [पूरबी, झपताल

सुमिरन करि रे मन सार, यह सब धोखा है संसार।
हरिचरनन चिंतवन करि निरंतर जिन ही लावै वार।

सनेहरा = प्रीति। छेहरा = वियोग। मेहरा = मेघ। दिन० = प्रतिदिन दूल्हा, नित्य दूल्हा। पन० = पन का मौर (मुकुट)। [१५६] ब्रजराज = नंदराय। बल = बलदाऊ। नंदे = प्रसन्न हुए। सुछंदे = स्वच्छंद। मघवा = इंद्र। मंदे = धीमा। [१५७] परौ० = ब्रज की धूल के स्पर्श का सुख मिले। [१५८]

छिनहीँ छिन जात बै बीति यौँ चेति तू कौन काको बंधु कैसो परिवार।
आनँदघन-चरित अमृत-रसधार करि पान ह्वै अमर निरधार॥

शिव-स्तुति] (१५९) [चौताल

नाद-महंत गिरिजा-कंत दीनन के दयावंत।
तिहारी कृपा तैं निसिदिन गाऊँ श्रीहरिगाथा जैसैं गाय आए संत।
बरदराज सब काज-सँवारन मंगलमूरति अनघ अनंत।
आनँदघन कौं ब्रजजीवन-त्यौं सरस राखियै जानि आपनो जंत॥

पूर्वराग] (१६०) [इकताल

गुजरिया गुपाल के रंग बीधी गोहन लागियै डोलै।
करति नहीँ कुलकानि तनकहूँ जोवन-रूप-छकी
सु गुमान भरियै न बोलै।
ज्यौँ ज्यौँ चलत चबाव चहूँ दिसि त्यौँ ही त्यौँ रस-सिंधु कलोलै।
आनँदघन मुखचंद निहारै चातक-चोप चकोरनि टारै
अति अनुरागहि तोलै॥

नयनोक्ति] (१६१) [चौताल

अरी मेरी अँखियनि बानि परी मोहन-मूरति देखैँ बिन न रहति।
सब मिलि देत बहुत बिधि सिख सखी ये अमैड़ तनकौ न गहति।
कहा करौँ कैसैँ करि रोकौँ उमगि उमगि काहू त्यौँ न चहति।
आनँदघन रस भीजी रीझी औसेरनि जल बहति दहति॥

पूर्वराग] (१६२) [तालजात्रा

मेरो मन मेरे हाथ नहीँ कहा करौँरी बीर।
ब्रजमोहन के बिछुरन की अलि निपट अटपटी पीर।

सार = तत्त्व। छिन हीं० = देर मत कर। बै = वयस्। [१५९] नाद० = नाद-के सर्वश्रेष्ठ ज्ञाता। अनघ = निष्पाप। जंत = (जंतु) जीव। [१६०] गुजरिया = (गुर्जरी) गोपी। बीधी = (बिद्ध) रँगी। कलोलै = लहराती है अर्थात् स्नान करती है। तोलै = अर्थात् साधती है। [१६१] अमेड़ = मर्यादा को न माननेवाली। न चहति = नहीँ देखती। औसेर = प्रतीक्षाजन्य पीड़ा।

कैसैं दुराऊँ† सखीॐ नैननि भरि भरि आवत नीर।
आनँदघन पिय के बिन देखें† प्रान-पपीहा अधीर॥

उपालंभ] (१६३)

निपट निठुर तिहारी बानि, दैया तुम सों यों ही करी पहचानि।
ब्रजमोहन मोहे न कहूँ पै कहा जानौं अकुलानि।
हम भोरी तुम चतुर सनेही कौन रची विधना यह आनि।
आनँदघन ह्वै प्यासनि मारत प्रान-पपीहनि जानि॥

विरह-व्यथा] (१६४)

सुजान तोरे देखन कौं मेरो जिय तरसै घरी घरी छिन छिन बल ना।
घर अँगना न सुहाय हाय अब कहा करौं क्यौं भरौं तोरे बिन कल ना॥

(१६५) [चौताल

चटपटी लगाय गए पिय मन कौं कहा करौं बातनि मोह बढ़ाय।
भूलैं सुरत्यौ लई न बिसासी कासौं कहौं दुख हाय।
रसलाभी ललचाय रहे कहुँ ब्रजमोहन हौ भँवर-सुभाय।
आनँदघन-हित प्रान-पपीहनि निसिदिन रटत बिहाय॥

वसंतागम] (१६६) (सारंग, चौताल

लहकन लागी री बसंत-बयार‡ मन बनवारी लौं लग्यौ बहकन।
जानौं ना आगैं कह करिहै जब लगिहै पलास-बन दहकन।
मदन मरक कबहूँ कि काढ़िहै औरैं पुहुप लागे बरन बरन महकन।
आनँदघन पिय कित अब छाए इत कुंज कुहू लागी गहकन॥

जल = आँसू। [१६२] बीर = सखी। [१६४] बल० = शक्ति नहीं रह गई। कल = चैन। [१६५] सुरत्यौ० = सुध भी न ली। [१६६] लहकन = चलने लगी। मरक काढ़ना = बदला लेना। कुहू = कोयल की ध्वनि। गहकन लागी =

ॐ धीरज धरिहौं। † ब्रजमोहन जानी। ‡ बहार।

उत्सुकता] (१६७) [मालव, मूलताल

वन तें ब्रजमोहन आवन की वेर भई है।
गोधन-धूरि-धुंधरी देखेँ आँखिन जोतिन जोति नई है।
मुरली-धुनि सुनियत अति नियरेँ विरह-विथा दुरि दूरि गई है।
आनँदघन पिय-आगम उलही उर अभिलाष-जई है॥

पूर्वराग] (१६८)

दुरजन बाहिर गुरजन घर मैँ।
लाल गस्यारेँ बोल सुनायौ प्रान परे अरबर मैँ।
निपट अटपटी पीर सखी री को पावै या मरमैँ।
आनँदघन ब्रज रस-झर लायौ हौं ही विरहा-झर मैँ॥

(१६९) [गौरी-ईमन, कपोतताल

अँखियाँ उठि उठि उठि दौरेँ बन की ओर आली।
भोर के नंदकिसोर गए इहिँ ओर सु तब तेँ लगी है आवन-आस।
सुंदर बदन-छवि-पान करन कौं बाढ़ी है
अधिक प्यास मोहूँ तेँ भई अति उदास।
कहा धौं अवार भई दई अब लौं ज्यौं त्यौं करि
राखी इनकी दसा देखेँ आवत त्रास।
वे आनँदघन हैँ हो भट्ठ, को लहै उर की गति गौरी गावैँ बिभास॥

चैतन्य-प्रशस्ति] (१७०) [इकताल

श्री चैतन्य दयानिधि धीर।
कलिकाल-मलीन-दीनजन-पावन-करन परम गंभीर।

भरने लगी। [१६७] बेर = वेला, समय। उलही = निकली। जई = अंकुर। [१६८] गस्यारेँ = गली मैँ। अरबर = मुश्किल। विरहा० = विरहाग्नि। [१६९] अवार = देर। भट्ठ = वधू, सखी। गौरी = गौड़ी, एक रागिनी जो रात के पहले पहर मे गाई जाती है। बिभास = एक राग जो सबेरे गाया जाता है। [१७०] नाव = नाम; नौका। पठए० = पार किया। अभंग = निरंतर। बिभंगित = तरंगित।

पूरनचंद नंदनंदन को उदै सदा उमगनि की भीर।
बहुत नाव चढ़ाय बहुत जन प्रेम-मगन करि पठए तीर।
भाव-तरंग अभंग बिभंगित महा मधुर रस-रूप सरीर।
निज जन रतन-जाल जुत राजत धुनि हुंकार उसास समीर।
त्रिविध ताप तें जरत जीव जे सीतल किये परस-पद-नीर।
करुना-दस्टि-बृस्टि सौं सींचै जय जय जय आनंद-मुदीर॥

पूर्वराग] (१७१)

आई री बहुरि दुखदाई साँझ।
दिन देखन कौं दाँव दूरि तें बनत बनवारी सौं
अब ताहू में परी है लाँझ।
उनहूँ कौं उदेग मोहीं सौं भाँवरि भरत गलानि माँझ।
छाँह-छिवन दूभर आनँदघन इतर देहरी करत झाँझ॥

वेणुवादन] (१७२)

मुरली मैं कौन ठगौरी है।
स्त्रौननि सुनी तनक भनकौ जिन सुधि बुधि तजि भई बौरी है।
उठि उठि चलत न रहत भवन पग लागो देखन की ढौरी है।
आनँदघन पिय की प्यारी यह हम ही सौं अति खौरी है॥

(१७३) [मूलताल

मुरली-धुनि सुनैं कान्ह रट लागी मेरी रसना कैं।
जब तें गवने बनवारी तब तें ये अँखियाँ
अवसेरति इकटक उत ही भाँ कैं।

परस० = चरणोदक के स्पर्श से। मुदीर = (मुदिर) बादल—आनंद के बादल (श्रीचैतन्य); आनंदघन (कवि) [१७१] लाँझ = (लंघन) बाधा। छिवन = छूना। दूभर = कठिन। इतर = और, प्रिय। देहरी = देहली के पास, निकट ही। झाँझ = शोर। [१७२] ढौरी = धुन। खौरी = बुराई। [१७३] कैं = के, को। अवसेर = प्रतीक्षाजन्य पीड़ा। साध = लालसा। कानन० =

मुरली-धुनि सुनिवे कौ साधन प्रान बसेरो कानन ग्राँकैं ।
वे आनँदघन इत चित चातक को जानै कित कौं धावैं
अरु आवैं कित ह्वै मारग सूधैं बाँकैं ॥

चेतावनी] (१७४)

मन ! बन तैं बाहिर जिन जाय ।
राधा-हिलन-मिलन-सुख स्यामहि पुरवत यहै बनाय ।
दिनहीं धरि राखत उर-अंतर, निसि तैं निपट सहाय ।
तरु-तरु लता-लता मैं दरसत भस्यौ सुदंपति-भाय ।
याही मैं भाँवरी भस्यौ करि विनवत हाहा खाय ।
आनँदघन सौं चातक-पन गहि रस लै प्यास बढ़ाय ॥

वन-विहार] (१७५) [इकताल

गोकुल घाँ के ग्वार, डगर बताइ रे ।
हौं भूली बिछुरि परी सहचरिन संग तैं डोलत बन किललाइ रे ।
साँझ निकट घर दूरि साँवरे हियरा सोच सताइ रे ।
सुनत ही झूमि आए आनँदघन दीनी गैल जताइ रे ॥

रूप-माधुरी] (१७६) [तालजात्रा

अरे अरे साँवरे, तैं कहा टोना कीनौ ।
मुरली माँझ ठगौरी गौरी पूरत ही मेरो मन हरि लीनौ ।
केसरि-खौरि घूमरे नैना बिथुरी अलक बदन रँग-भीनौ ।
रीझनि लै भिजई आनँदघन तो पर सरबसु वारि दीनौ ॥

विरह-व्यथा] (१७८) [मूलताल

सहोणी ! मैं कद लगि इस्क छिपावाँ, सहोणी !
गुज्झे घाव दिलाँ दे अंदर कित वल कूक मचावाँ ।

बन की ओर । [१७४] बन = वृंदावन । पुरवत = पूरा करता है । बनाय = भली भाँति । निसि तैं = रात होते ही । सहाय = सहायक । हाहा खाय = दीनता दिखाकर । [१७५] घाँ कैं = ओर के, वाले । किललाइ = चिल्लाकर । [१७६] गौरी० = गौड़ी रागिनी बजाते ही । घूमरे = नशीले । [१७७] सहोणी =

बंसीवाले नें आइल कीती दारू दरसन पावाँ।
वेखे बाजू जिंद नराँ दी, किस मिस इस परचावाँ।
वे गहराँ दी गल्लाँ आनँदघन कैनूँ आखि सुणावाँ॥

चेतावनी] (१७८) [झपताल

हरि-सरन तकहि मन ! मरन-भय भाजै।
हरि-सरन प्रान कौं परम अवसान-पद जहाँ सुख-संपदा संतन विराजै।
धाम धामी और दास-सेवा-समय एक रस निरद्वंद दुंदुभी बाजै।
देस अद्भुत महा विभव कहियै कहा
आनँदघन घमड़ि अमित छवि छाजै॥

पूर्वराग] (१७९) [मूलताल

मेरी तिहारी लगनि, अनसहन सहि न सकैं बाम।
राई लोन भरौं तिनि आँखिनि जिनहिं न देख्यौ भावै यह धन-धाम।
मोहिं तुम्हैं धुर को सँजोग-सुख थिर चिर रहौ आठहू जाम।
आनँदघन बरसौ सरसौ हित, तेई दुहेली दहौ दुख-घाम॥

विरह-संदेश] (१८०) [धनाश्री, झपताल

ऐसो को जो तिहारो गुन गाय जानै, गाय जानै तुमहिं रिझाय जानै।
दीन रसना जौ कछु बखानै तौ कृपा के प्रसाद कौं पाय जानै।
कृस्न कमनीय कोविद करुन जानमनि तुम बिना कौन ये भाय जानै।
प्रान-चातकन के आनँदघन सुनौ बिरही बिचारो बरराय जानै॥

सखी। कद० = कब तक। छिपावाँ = छिपाऊँ। गुज्झे = (गुह्य) गहरा। कित० = किस ओर। कीती = की। दारू = दवा। वेखे = देखे। बाजू० = जीवन के अवलंब। नराँ दी = मनुष्यों की। गहराँ दी = हृदय की गहराई से निकली हुई। गल्लाँ = बातें। किस० = किस बहाने से इसे बहलाऊँ। कैनूँ = किसको। आखि = कहकर। सुणावाँ = सुनाऊँ। [१७८] अवसान० = अंतिम स्थान। [१७९] अनसहन = न सहनेवाली। धुर को = अत्यंत। तेई० = वे ही अभागिनें दुःख की धूप से जलें (जिन्हें मेरी तुम्हारी प्रीति नहीं रुचती)। [१८०]

विरही-विनय] (१८१)

हमारी इतनी विनती चित धरियै।
अपने दासनि के दासनि कौं काहू विधि कछु करियै।
सुनहु रसीले कान्ह छबीले तनिक दया त्यौं ढरियै।
आनँदघन ह्वै प्रान-पपीहैं पालि पोखि लै भरियै॥

तीव्र राग] (१८२) [मूलताल

लगै जौ चटक-चोप की चोट।
तौ क्यौं सही परै प्राननि के प्रानन सौं पल ओट।
पाथर हू तैं खोटे जड़ मेरे मन ही की कछु खोट।
तौ लौं कहा होय नहिं जौ लौं कसकै लोटक-पोट।
स्याम सजीवन की बातैं सुनि सुनि चेतन हूँ की टोट।
चरन-धूरि ब्रजगोरिनि की जाचत है निलज निघोट।
बृंदावन-रस भिदै न याके कपट कुटेव अगोट।
द्रुम-बेलिन लखि फुरै सु कैसैं ललित रँगीली जोट।
भरि दै री जमुना करुना करि इहि रस आसा-ओट।
घटिहै कहा कृपा-कादंबिनि चारिक छीँटनि छोट॥

पूर्वराग] (१८३)

बरजति बरजति इन अँखियन ब्रजमोहन मुख चाह्यौ।
धीरज धन दै हाथ पराये बिरह के विषहि बिसाह्यौ॥

बरराय० = केवल बकना जानता है। [१८१] दया० = दया की ओर ढलिए, दया करने मैं प्रवृत्त होइए। [१८२] चटक० = तीव्र उत्कंठा। प्राननि० = अर्थात् प्रिय। पल० = क्षण भर का वियोग। खोटे = बुरे। खोट = बुराई, अपराध। कसकै० = लोटपोट हो जाने की कसक न हो। चेतन० = चेतना की भी हानि हो जाती है, चेतना जाती रहती है। निलज० = अति निर्लज्ज। अगोट = आधार। जोट = जोड़ा। आसा० = आशा और प्राप्ति के बीच का व्यवधान। कादंबिनि = मेघमाला। छोट = छोटे, लघु। [१८३] मुख० = मुख

उनहिं कहा कहि दोष दीजियै इनहीं उरझनि नेह निवाह्यौ।
मनमोहन लगाय आनँदघन तन हूँ बन लैं गाह्यौ॥

विरह-व्यथा] (१८४) [रूपताल

नंदनंदन हिये मैं बसैं आँखैं देख्योई चाहैं।
चोप-चटपटी की गति अति ही अटपटी बिन बानियैं कराहैं।
दुसह दसा हौं ही जानति जैसें बूड़ति उछरति प्रीति-परेखनि गहिरे थाहैं।
वे आनँदघन प्रान-पपीहनि की सुधि भूले उनए कहूँ नए लाहैं॥

विरह-संदेश] (१८५) [झींमपाली,

तुम सन मोरी लगन लगी लला तुम बिन रह्यौ न जाय रे।
घरी पल मोहिकौं जुग सम बीतत बेगि सम्हारौ आय रे।
बिरहा मोहिकौं अधिक सतावै कछु न बसावै हाय रे।
प्रान-पपीहा तरफरात हैं आनँदघन हौ सहाय रे॥

श्रीकृष्ण-गुण-गान] (१८६) [काफी, झपताल

गुन गाय लै गोकुलानंद के ब्रज-सुख-कंद सुछंद के।
मंगल-मुकुट-मनि मनोरथ-कलपतरु उदार अति अद्भुत अमंद के।
सकल-संसार-स्रुति-सार मोहन महा सनक सनंद के।
ललित लीला-वलित संपदा-संकुलित अतुलित जस अमल जगवंद के।
क्रीड़त सदा सुहृद-संग जमुना-तीर लाड़िले जसोमति-नंद के।
कृपा-धन-मूल आनँदघन अनुकूल हरन द्वंद्व भ्रम-फंद के॥

प्रिय-मिलन] (१८७) [मूलताल

गोपाल प्यारे, भला किया।
खरी पियासी आँखडियानूँ जीय-जियावन दरस दिया।

देखना। बिसाह्यौ = खरीदा। बन० = वन तक उन्हें खोजता फिरा। [१८४] नए० = नए लाभ के कारण। [१८५] मोहिकौं = मुझे। कछु० = कुछ वश नहीं चलता। [१८६] अमंद = श्रेष्ठ। सनक = ब्रह्मा के मानस पुत्र। सनंद = सनंदन (ब्रह्मा के मानस पुत्र)। बलित = युक्त। संकुलित = परिपूर्ण।

उमरदराज गरीबाँ दी बस्ती कीती महर सवाब लिया।
आनँदघन ब्रजमोहन जानी कुरबानी मुख देखि जिया ॥

उपालंभ] (१८८)

घनस्याम पियारे ये बातैं।
मन औरै मुख औरै बतावत छाँड़त नाहिं कपट की घातैं।
काहू पै दिनहीँ झूमत हौ काहू पै त्यौँ बितवौ रात।
रसिक छैल रिझवार नित नए ये छल बल सीखे हैं कातैं।
करत फिरत बिसवास भोरिनि के, चतुर-सिरोमनि हौ तातैं।
उघरि उघरि बरसत आनँदघन बनि आई तुम ही मँडरातैं ॥

श्रीराधा-चरण] (१८९)

मृदु तरवनि मैं लसति ललाई।
झमकि जहाँ पग धरति लाड़िली मनहु अरुनता आनि बिछाई।
महा रुचिर बर गोरी गुलफनि मुक्तावलि फबि रही सुहाई।
संभ्रम होत निरखि नैनन दुति झलमलाति अति अद्भुत झाँई।
जगमगि रह्यौ सुरँग जावक पै सरस रसिक रचना जु बनाई।
नवल अंग* की मंजु मयूखनि चहुँ दिसि खुलि खिलि रही जुन्हाई।
बिविध न्यास अनयास प्रकासत नटनागर लखि लेत बलाई।
तब की कहा कहौँ आनँदघन जब पिय-सँग निर्तति सुखदाई ॥

पूर्वराग] (१९०) [मालकोस, मूलताल

सनमुख चाहन कौं चित चाहै लाज निगोड़ी रोकति आनि।
मोहन रूप माधुरी पान करन की नैननि बानि।

जगबंद = जगद्वंद्य। [१८७] ख्वरी = अति प्यासी आँखों को। उमर० = लंबी उमरवाले। गरीबाँ = गरीबों की बस्ती पर। कीती = की। महर = कृपा। सवाब = पुण्य। कुरबानी = निछावर हूँ। [१८८] कातैं = किससे। [१८९] गुलफ = एँडी के ऊपर की गाँठ। न्यास = पैर रखने की क्रिया। लेत० = बलिहारी

* रुचिर नखनि।

घूँघट कानि करत त्यौं सजनी उपजी जिय में अति अरसानि।
रीझनि भिजए प्रान-पपीहा आनँदघन रसखानि॥

विरह-व्यथा] (१८१) [तालजात्रा

अरे हीरे! तो दरस कौं तरसै मेरा जियरा घरी पल।
आनँदघन छाय रहे कहुँ कासौं कहौं यह बिथा न परै निसिदिन कल॥

(१८२) [मूलताल

तिहारी बतिया उघरि परी,
हा हा स्याम उज्यारे काहे कौं सौं हैं खात।
ब्रजमोहन आनँदघन प्यारे रस के लोभी लागी अनत झरी॥

(१८३) [सोहनीताल

जिंद निमाणी! तपदी, सौं हैणा मुख वेखलामी जानी।
ब्रजमोहन बे-परवाह गुमानी वो वो वो तैनूँ तैनूँ तैनूँ जपदी॥

नयनोक्ति] (१८४) [पूरबी, धनाश्री

देखन को फल हो मोहन देखैं।
नातर खुली मुँदीयै कैसी आँखैं कौन धौं लेखैं।
कहा तिलौं छैं पौं छैं अँगौं छैं रचि काजर की रेख।
आनँदघन ब्रजनाथ दरस बिन भीजी बरति परेखैं॥

गो-दोहन] (१८५) [हमीर, रूपताल

दुहत मन गाय-दुहन के साथ, कान्ह छबीलो ग्वार।
हाथ दोहनी देत लेत* धीरज न रहत फिरि हाथ।
नई हिलग की चोप-चटकबस चितवनि ही में भरत बाथ।
आनँदघन यौं भिजवै रिझवै खिरक मैं गोकुलनाथ॥

लेते हैं। निर्तति = नाचती है। [१८३] जिंद = जिंदगी। सौं हैणा = प्रिय। वेखलामी = दिखलाओ। तैनूँ = तुझको। मुँदीयै० = मुँदी सी ही। तिलौंछना = तेल से चिकनाना। अँगौंछना = गीले कपड़े से पौंछना। [१८५] बाथ = अँकवार।

* लोटआ।

मातृस्नेह] (१९६) [हमीर कल्याण,

जसोमति आरती उतारै उमगि आपनो ज्यौ वारै।
चित चढ़ि रही ललन की वन तें गोधन लै घर आवनि,
अति आरति सौं वदन निहारै।
लै वलाय, आँचर मुख पौंछति प्रेम-पुचकरनि वरसति प्यारै।
दूधनि भरी सपूती या विधि आनँदघन-हित कान्ह पपीहैं पारै॥

व्रजदूलह] (१९७)

झुरमट लाग्योई रहै नँदरानी के आँगन।
व्रज की नवल बधू रँगभीनी, मोहन स्याम चितै बस कीनी,
आवत मिस लै लै कछु माँगन।
कौ लौं दुरति सरक सनेह की हियरा बिध्यौ बिबस सर-साँगन।
दिन-दूलह आनँदघन पिय की भाँवरि घर घर, वँध्यौ परसपर काँगन॥

पूर्वराग] (१९८) [मूलताल

मेरे मन मैं मोहन-मृदु-मूरति गड़ी।
को पावै यह पीर अटपटी जिय की गति अति रति-जाग-जड़ी।
जौ लौं दुराय सकी तौ लौं निबह्यो अब न दुरति वनी कठिन बड़ी।
आनँदघन की घमड़नि उघरति तू हितू तातैं
तोसौं कहति, है यह निपट अड़ी॥

उपालंभ] (१९९) [रूपताल

उन्हैं कहा मेरी सी चटपटी है कान्ह सदा के निखरके।
वे रस-लोभी आहिं पाहुने को जानै कै घर के।
अपनी गौं उठि गोहन लागत व्रजमोहन हैं भरे छुरबर के।
आनँदघन कहुँ अवधनि कौंधत कितहुँ बात के झरके॥

खिरक = गाय बाँधने का स्थान, गोठ। [१९७] झुरमट = भीड़। मिस लै = बहाना करके। सरक = मद्य का नशा। साँग = बरछी। काँगन = कंगन, कंकण। [१९८] जाग = जागरण अर्थात् आधिक्य। [१९९] निखरके = बेखटके रहनेवाले।

नयन-व्यथा] (२००)

तेरी सूरत देखिबे कौं मेरे लालची नैन भए।
तरसत बरसत रहत रैन-दिन ऐसी चाह छए।
एहो कान्ह तैं कहा कीनो जु दिखाइ हू न दीनो अए।
आनँदघन-हित प्रान-पपीहा, भरोसेंई गिधए॥

(२०१) [मूलताल

नैना तरसत हैं, पिय-मूरति देखन कौं।
मोहन-मुख-लालसानि उनए उघरे बरसत हैं।
लोक-लाज त्यौं तनक न ताकत अति ही अरसत हैं।
आनँदघन-हित प्रान-पपीहा पल पल तरसत हैं॥

युगल-प्रीति] (२०२)

ब्रजमोहन की प्यारी, तेरो भाग बड़ौ।
मुरली मैं तेरो गुन गावत जाकी धुनि मोहे जंगम जड़ौ।
तेरे लाड़ की कहा कहियै जाहि लाड़नि लाड़त अलकलड़ौ।
आनँदघन, पै तो हित चातक सौतिन के हियैं साल गड़ौ॥

प्रेम-पीड़ा] (२०३) [इकताल

कठिन हिलग-पीर दैया कासौं कहियै।
बिन देखैं मोहन-मुख माई रैनि-दिना दुख ही मैं दहियै।
नित जित तित छूछे बबाव सुनि सुनि सब ही के बोलनि सहियै।
आनँदघन पिय सौं जु भेंट तनकौ कहूँ होइ तौ कहा चहियै॥

(२०४) [मूलताल

भटू, निपट अजान इतौ हित की पीर न जानै।
ब्रजमोहन बहुनायक छैलवा मेरी सी मोसौं अरु
वाकी सी वाही सौं कपट अटपटी बतियानि ठानै॥

आहि = हैं। कै = कितने। छरबर = छलबल। बात० = हवा चलते ही। [२००]
अए = अये, आश्चर्यबोधक अव्यय। गिधए = परचे हैं। [२०१] अरसत = अलसाते हैं।

उपालंभ] (२०५) [श्याम कल्याण, इकताल

अहो हरि हम सौं बतियाँ कब साँची बोलौगे।
कपटी कान्ह कौन दिन दैया मन की गुंजनि खोलौगे।
अवधिन बदि बदि आस बढ़ावत अपनी गौं इत उत डोलौगे।
आनँदघन पिय बरसि परेखनि छतियाँई छोलौगे॥

(२०६) [भूपाली

तिहारे देखे बिना मैं कैसें भरौं दिन-रतियाँ।
कैसें मिलैं क्यौंऽब अनमिलैं तुम्हैं जो किये बिरह छत छतियाँ।
काहे कौं मन मोहि लियौ तब कहि कहि कै हित-बतियाँ।
आनँदघन कितहू बरसौ पै इतहू लगी ओलतियाँ॥

पूर्वराग] (२०७) [पूरिया, मूलताल

तू नैक दरसन दै रे हे निरमोही नैन तपत हैं आज।
कहा करौं कछु बस न चलत मेरो बैरिनि भई यह लाज।
तन मन की गति भूलि जाति सब तनक सुनत बन बंसी-बाज।
आनँदघन-हित प्रान-पपीहनि रटना ही सौं काज॥

वेणुवादन] (२०८) [ईमन

मेरी आली री मोहिँ सुनत बाँसुरिया
सुधि न रहै तन की तनकौ तेरी सौं।
चकित होति मुख-जोति पै, रहि न जाय,चलि
उन पै,घर मैं परी रहति गुरुजन-घेराघेरी सौं।
कैसें करियै कौ लौं भरियै कुल की कानि जँजर-जेरी सौं।
आनँदघन रसपान करन कौं प्रान-पपीहा तरफरात हैं उरझेरी सौं॥

---

[२०२] अलकलड़ौ = अलकलड़ेता, दुलारा। [२०५] गुंज = गाँठ। [२०६] ओलती = ओरी, वह छोर जहाँ से छप्पर का पानी चूता है (यहाँ 'आँसू की झड़ी')। [२०७] बाज = बजना, ध्वनि। [२०८] जँजर = (जर्जर) पुरानी और शक्तिहीन। जेरी = रस्सी। उरझेरी = हृदय की व्याकुलता। [२०६]

ललिता] (२०९)

अनखि अनखि ज्यौं ज्यौं बोलै री लड़ीली
ज्यौं त्यौं मोहिं लगति अति नीकी।
मो सी मनमेलू सौं रूसी रति-अचगरी निपट खुटाई ही की।
हौं तेरे नैननि बैननि ह्वै समझति सब जु कसक है जी की।
आनँदघन घुरि घुरि ढुरि ढुरि भिजई
रिझई तू सुधि करि लैं सीबी की॥

युगल-जोड़ी] (२१०) [इकताल

कान्हर है गोकुल को, राधा बरसानेवारी।
है हो या ब्रज की जीवनि यह जोरी सरस बिरंचि-सँवारी।
धुर की लगनि लगी अति गाढ़ी बाढ़ी चोप-चटक जो प्यारी।
नवल नेह रस-झर आनँदघन लाग्यौइ रहत सदा री॥

पूर्वराग] (२११)

लालची नैन हमारे देखैं बिन न रहैं।
अपनो सो बरजति बहुतेरो ये तनकौ न गहैं।
मन हरि-हाथ दियौ लै इनहीं अटपटि चोप चहैं।
आनँदघन रस चाखि बस भए सबके बोल सहैं॥

बिरहिणी] (२१२) [तालजात्रा

मैं कैसैं भरौं कहा करौं प्यारे ब्रजचंद बिना।
रैन अँधेरी बिरह सतावै कल परै नहीं एकौ छिना।
क्यौं हूँ क्यौं हूँ होत सवारो बाट निहारौं सबै दिना।
आनँदघन पिय भूलेहू लई प्रान-पपीहनि की सुधि ना॥

लड़ीली = लाड़िली, आनबानवाली। मनमेलू = मनमिलानेवाली, हितू। अचगरी = छेड़छाड़। सीबी = शीत्कार, सी सी। [२१०] धुर की = चरम सीमा की। [२११] बोल = बात, व्यंग्य। [२१२] भरौं = समय काटूँ।

पूर्वराग] (२१३)

मोहन सों नैना लागे घूँघट की सुधि काहि रही है।
चितवत चकित रहत इत उत ही निसदिन इकटक टेक गही है।
इनकी पीर न पावै कोऊ, अंजन-रंजन एक वही है।
आनँदघन हित तरसत बरसत लोकलाज कुलकानि वही है॥

पूर्वराग] (२१४)

अणी मिठबोलणा यार निमाणी दा।
इत वल आँवदा कूक सुणाँवदा महरम-हाल दिवाणी दा।
मुरली बजाँवदा इस्क जगाँवदा गाहक हत्थ-बिकाणी दा।
आनँदघन ब्रजमोहन प्यारिया मुझ्क बंदी कुरवाणी दा॥

(२१५) [मूलताल

तू की जाणदा वे हाल निमाणिया ब्रजमोहन आनँदघन वेपरवाह।
ताती वात न लागै तैनूँ प्यारे वुरी वे गरीबाँ दी आह वाह वाह॥

(२१६) [चौताल

अरी मेरे प्रानन के प्यारे हैं बनवारी।
स्याम रूप नैनन के अंजन बानिक पै हौं वारी।
पल पल कोटि कलप सम बीतत लागति दसौ दिसा अँधियारी।
आनँदघन रसपान करन हित चित चातक-व्रतधारी॥

कुँवर कन्हैया] (२१७)

वारी हौं वारि डारी आछी बनक पै नंद के कुँवर कन्हैया।
कोटि काम हू तें अभिराम ललित सलोनी मूरति आँखिन जोतिजगैया।

सवारो = सबेरा। [२१३] अंजन० = इन नेत्राँ के लिए उनके दर्शन अंजन की भाँति रंजनकारी हैं। [२१४] अणी = अरी। वल = ओर। महरम-हाल० = मुझ्क दीवानी के हाल से वह सुपरिचित है। प्यारिया = प्यारा। [२१५] की० = क्या जानता है। ताती० = गरम हवा। गरीबाँ० = गरीबाँ की

स्रौननि सुधा पिवाय जियावत मुरली-मधुर-तान-सुनैया।
प्रान-पपीहनि हित आनँदघन नित हीं रस-बरसैया॥

पनघट-लीला] (२१८) [रूपताल

ए गागरी भरन गई जमुना-तीर नीर भरन हूँ न पाई आई धीर रितै।
डीठि परि गयौ कान्ह अचानक ता दिन तें नहिं चैन चितै।
बीर कहा कहौं पीर मरम की चितवनि में कछु गयौ चितै।
अब आनँदघन पिय सौं मिलौं, ज्यौ सुख पावै ज्यौं इतै॥

पूर्वराग] (२१९) [सूलताल

मोर मन बाँधिलवा है तोरे गुन छैल छबिलवा रसिक रसिलवा।
आनँदघन उजियारे ब्रजमोहन छबि-मतवारे हँसि नैन-बान भरि साँधिलवा॥

(२२०)

मोरे मितवा तुम बिन हा रे रह्यौ ना जाय।
बिषम बियोग जरावै जियरा हा रे सह्यौ न जाय।
निपट अधीर पीर-बस हियरा हा रे गह्यौ न जाय।
आनँदघन पिय बिछुरन को दुख हा रे कह्यौ न जाय॥

राधा रानी] (२२१) [तालजात्रा

सुहागिनि राधा रानी।
स्याम सुँदर ब्रजराज लाड़िलो जाके बस अभिमानी।
सोभा को सिर छत्र बिराजै बृंदाबन रजधानी।
जीति लियौ कियौ रूप-पपीहा आनँदघन रसदानी॥

पूर्वराग] (२२२) [इकताल

हेली मन हरि लीनौ इन साँवरे सलोने बिन देखें रह्यौ न जाय।
सुंदर बदन-सुधा-पान चसकैं चख रहे लुभाय।
कहियै कहा महा दहियै दुख पल पल कलप बिहाय।
प्यासे प्रान रहत चातक लौं आनँदघनहिं मिलाय॥

आह बुरी होती है। [२१८] आई० = धैर्य खो आई। नहिं० = चैन नहीं है। ज्यौ = जो, जीव। [२१९] बाँधिलवा = बँधा हुआ। रसिलवा = रसीले।

श्रीकृष्ण-विरह] (२२३) [मूलताल

कैसैं कैसैं मन वहराऊँ, गहत गहत न रहत है।
लोनो मुख सुखनिधि देखैं विन आँखिन कहा दिखाऊँ।
सुनि सजनी राधा के विछुरें विरह विकल आपनपौ न पाऊँ।
दरस-वरस आसा आनँदघन झरै भरोसैं छाऊँ॥

पूर्वराग] (२२४) [तालजात्रा

तुम सनु मोर मनुवा है, लागि रही लौ ललना।
रूप-उजियारे निहारे विना सु परै निस-द्यौस कल ना॥

युगल-जोड़ी] (२२५) [ईमन, मूलताल

रँगीली जोरी की हौं वलि जाऊँ।
ललित रास-गुन कदम-मूल वन घर है जाको जमुना-कूल सुठाऊँ।
गोरी साँवरी दृगनि भाँवरी निरखौं सुखनि सिहाऊँ।
आनँदघन जीवन-धन दामिनि राधा-मोहन नाऊँ॥

बृंदावन-महिमा] (२२६)

बृंदावन-महिमा कौन बरनि सकै जाहि जानत एकै मोहन।
मंजुल द्रुम-वेलिन दल-फूल-फलनि मैं दरसति राधा-मूरति,
यह सुख समझत जाके जोहन।
श्रीपद-परस सरस नित हितमय अद्भुत, भाग-निकाई गोहन।
दंपति चातक-जुगल आनँदघन करत मनोरथ-दोहन॥

व्रजरस-रहस्य] (२२७) [चौताल

को पावै हो व्रजरस का भेद।
जानत पै न वखानत मन ही मन अनुमानत वेद।
श्रीगोपी-पदरज-प्रसाद-वल अगम सुगम
और साधन सकल ये खेद।

साँधिलवा = साधनेवाले। [२२४] सनु = साथ। [२२५] जोहन = देखने से। [२२६] मनोरथ० = अभिलाषा की पूर्ति। [२२७] ढौरि = डुलाकर। [२२८]

आनँदघन याही रस भीजि रीझि पीत-बसन-छोर
ढौंरि सुखवत सुख-स्रम-स्वेद ॥

भक्त का अभिलाष] (२२८)

मोकौं सरन रहौ राधे ये चरन तेरे लहौ मन-नैन इनहीं मैं बसेरे ।
झलकत रुचि रुचिर ललकत पिय-मन चोपनि एकटक हेरे ।
परसन कौं तरसत रहत नागर भागनि बल अभिसरत सु नेरे ।
आनँदघन श्रीवृंदावन-अवनी-मंडन जीवन-धन हैं मेरे ॥

मानवती] (२२९)

कौन हठ परी है, हौं न जानौं, प्रानप्यारो कब को हा हा करत ।
तेरो ज्यौं तनक कठोर मैं कबहुँ न पायौ दैया अबकैं न ढरत ।
हौं हूँ फिरि तोसौं न बोलिहौं, मो बिन कौनहु सौं काज न सरत ।
आनँदघन अरु तो सी निठुर सौं पपीहा
प्यासन मरत यह दुख क्यौं हूँ सह्यौ न परत ॥

यमुना-माहात्म्य] (२३०)

आनँद-मंगल-दाता दरसन सूरसुता को ।
जब जब देखिये नव नव लागति अद्भुत रूप जु ताको ।
हरि-राधा सहचरि-समूह मिलि बिहरत कूल कुतूहलता को ।
रसना छाय रहौ आनँदघन जस याकी प्रभुता को ॥

वेणुवादन] (२३१) [मूलताल

नंद महर को कान्ह अचगरैं मुरली-टेर सुनाय ठगी हौं ।
धरम धीर कैसैं धौं साधौं सुर के संग लगी हौं ।
मोहन-मूरति आँखिन आड़ी, याही तें निस-द्यौस जगी हौं ।
आनँदघन रीझनि भरि भिजई चेटक-चटक दगी हौं ॥

अभिसरत० = निकट आते हैं । [२२९] हा हा० = दीनता प्रदर्शित करते हैं ।
अबकैं० = इस बार ढलता ही नहीं । [२३०] सूर० = यमुना । कुतूहलता० =
कुतूहल के लिए । [२३१] अचगरैं = नटखटपने से । आड़ी = अड़ गई ।

पूर्वराग] (२३२)

स्याम सलोने सौं दृग अटके रोके रहत न घूँघट-पट के।
रूप-रसासव छके न मानत वहुत भाँति हौं हटके।
मोहूँ अपवस किये नचावत गोहन मोहन नागर नट के।
आनँदघन इनकौं सिख ऐसें जैसें तुप लै फटके॥

श्रीराधाचरण-महिमा] (२३३) [इकताल

वृषभान-कुँवरि के चरन सरन-अभिलाषा-भरन।
सीतल-सुख दरसक-मनरंजन कंज न ऐसे लसत सरन।
श्रीवृंदावन-अवनी-मंडन रास-विलास-न्यास-गति-वितरन।
आनँदघन कौं रसद विसदवर सदा विराजौ अभयकरन॥

विरहिणी] (२३४) [तालजात्रा

कौन देस वसायौ है निरमोही कान्ह
हमारी अँखियनि ऐसें उजारि।
आस वढ़ाय उदास भए विसवास कियौ
घनआनँद प्रान-पपीहनि प्यासनि मारि॥

स्वादी लोचन] (२३५) [नायकी, चौताल

लोचन स्वादी हैं छवि-रस के।
देखि देखि पिय-मुख सुख पावत त्यागी पलक-परस के।
ताही मैं मुसकनि-आसव छकि नाहिं रहे मो वस के।
क्यौं कुलकानि करैं आनँदघन जिनहिं परे ये चसके॥

अभिलाप] (२३६) [मूलताल

देखन न दैहौं काहू कौं हौं आपने लाल पियारे को हौं।
पलकनि संपुट करि राखौंगी रूप-उज्यारे को हौं।

---

[२३२] रसासव = आनंद का आसव (शराव)। हटके = मना किया। अप-वस = अपने वश में। तुष = धान की भूसी। [२३३] सरन० = शरणागत की। दरसक = दर्शक। सरन = तालाबों में। न्यास० = गति (चाल) का न्यास (रखना) सोच देनेवाला है। [२३५] त्यागी० = पलकों का स्पर्श

निधरक देखि न सकति दीठि डरि रहि रहि
निकसति हारे को हौं।
आनँदघन रसमूरति व्रजमोहन गुन-भारे को हौं।

उपालंभ] (२३७) [अड़ानो, सूलताल

कहूँ नैन मन कहूँ मैन-रस-बस-हियरे हौ लाल पियारे।
अनमिलना मैं मिलौं सुमिल से ये रँग रँगि, नित नित जु तिहारे।
मोह-मढ़ी बतियानि गढ़न हौ सुघर साँच के साँचे ढारे।
आनँदघन अचिरज-झर बरसत उनए हू पै निपट उघारे॥

वेणुवादन] (२३८)

कान्ह तिहारी मुरली में कछु टौना है हो।
खग मृग मोहित होत यहै गति हम ही कौं ना है हो।
आनँदघन रसप्यासनि बरसत बस यामैं नाहीं हौना है हो।
तान-बान लगि मिटै न कैसैं जाको जीव रिझौना है हो॥

गिरि-धारण] (२३९)

आजु गिरि धार्यौ हो व्रजराज के लला।
कहि न जात छल-बल की निकाई छबीली छिंगुनी-छोर छाजै ज्यौं छला।
कछू न काहू को गयौ व्रज नीकैं राखि लियौ भई है सकल विधि भली भला।
अति ही चकित आयकै पायनि नयौ लखि सुरपति आनँदघन की कला॥

वेणुवादन] (२४०) [चौताल

नंद महर को कान्ह किसोर छबीलो मेरेई बगर नित आवै।
मुरली मैं रसभेद भरै, भरि तियनि सुनाय रिझावै।
मन अरबरत दौरि देखन कौं सासु-ननद को त्रास तन तावै।
आनँदघन-हित प्रान-पपीहा तरफरात हैं बीर! पीर को पावै॥

त्याग दिया, निर्निमेष रहते हैं। चसके = टेव, अभ्यास। [२३६] हारे० = विवश होकर। [२३८] कौं = के लिए। रिझौना = रीझनेवाला। [२३९] छला = छल्ला, अँगूठी। कला = विद्या। [२४०] बगर = घर। अरबरत =

नयन-सुषमा] (२४१)

आँखैं तेरियै देखी तब कही पै सब काहू पै परति न लही।
याही तैं मृग मीन कमल खंजन इनकी सरवर नहीं।
सरल-कुटिल, मंथर-अधीर, सित-असित, सुछवि लै विराजि रही।
इनके गुन-गन गनि को सकै जिन विचित्र
आनँदघन बस कीने जब मिसहीं मुसकि चही॥

चितवन की ठगोरी] (२४२) [मूलताल

क्यौं जू कान्ह कहौ तिहारी चितवनि मैं कौन ठगौरी।
चाहत ही चित जात विवस ह्वै लागि रहति हित-ढौरी।
कैसैं आपुन साधि राधियै सब सुधि टरति होति बुधि बौरी।
लाजौं रीझि भीजि आनँदघन मिलौ चहति भरि कौरी॥

हिँडोला] (२४३) [तालजात्रा

सारी सुरँग चुहचुही निपट पहिरे राधा गोरी।
साँवरे-वरन-गोल-कपोलनि हिलि मिलि खिलै
झूलै जोवन-उमंग-रँग-बोरी।
नथ के मुकता पानिप-भरे भाल पै दिपति लाल बैंदी
मधुर अधर बीरी खान उघरि करत चित की चोरी।
आनँदघन पिय को हिय नीवी-कसनि-गसनि बस्यौ
लंक-लचक निसंक अंक भरति दृगनि ओ री॥

श्रीराधा-प्रेमी] (२४४) [मूलताल

स्याम घन तेरियै घाँ घुरि बरसै।
उघरि उघरि मुरली गरजनि मैं सुर के धुरवा सरसै।

उतावला होता है। बीर = सखी। को पावै = कौन समझे। [२४१] मंथर = धीमा। मिसहीं = बहाने से। चही = देखा। [०४२] ढौरी = धुन। राधियै = काम निकालूँ। कौरी = क्रोड़, गोद। [२४३] सुरँग = लाल। चुहचुही = चटकीली। निपट = अत्यंत। साँवरे = श्रीकृष्ण। बैंदी = माथे पर पहना जानेवाला

रमड़ौ रहत रैन-दिन राधे! रसमूरति चातक लौं तरसै।
आनँदकंद नंदनंदन त्यौं कौंधि कहूँ दै दरसै॥

प्रेम-घन] (२४५) [इकताल

उघरि उघरि मो हियें बरसै तिहारो नेहरा-मेहरा, नेहरा-मेहरा।
व्रजमोहन नवरंग छबीले तिहारी बातनि बातनि कौन छेहरा॥

जन्म-बधाई] (२४६)

आजु बधावन, सुंदर वर घनस्याम पियरवा अइलौ मोरे छेरवा।
उमड़ि उमड़ि घुमड़ि घुमड़ि रस रखिलौ नेह-मेहरवा॥

स्मरण] (२४७) [केदारो, चौताल

तुम कौं जे सुमिरि सुमिरि जीवत हैं, तिनके तुम प्रान-जीवन हौ स्याम।
तिहारे गुननि सौं सुरति पोहि टोहि बिरह-खौंप सीवत हैं।
दरस लालसा लगि रहे लोचन, पलक-परस नेकु न छीवत हैं।
आनँदघन ये प्रान-पपीहा एक आस-बस प्यासन ही पीवत हैं॥

उपालंभ] (२४८) [मूलताल

तुम सौं मेरी प्रीति लगी, पै तिहारी कौन ठौर।
साँची कहौ व्रजमोहन हा हा कहावत और।
मोहीं सौं कै औरन हूँ सौं तोहिं है उर की रौर।
आनँदघन पिय अचिरज-झूमनि रसिक छैल-सिरमौर॥

एक गहना या बिंदी। नीबो = फुफुँदी। कसनि० = कसने की गाँठ। [२४४] घाँ = ओर। घुरि = शब्द करके। सुर = स्वर। धुरवा = बादलों के स्तंभ। रमड़ौ० = रमा रहता है। आनँदकंद = आनंदघन। कौंध० = कहीं कौंधता हुआ दिखाई देता है। [२४५] नेहरा० = स्नेह का बादल; आनंदघन। छेहरा = अंत। [२४६] बधावन = बधाई। अइलौ = आए। छेरवा = बच्चा। रखिलौ = रखा। नेह० = प्रेम का बादल; आनंदघन। [२४७] सुरति = सुध। टोहि॥ खोजकर। खौंप = फटा अंश, चीर। पलक० = निर्निमेष रहते हैं। [२४८]

प्रभावुकता] (२४९)

मोहन की चलनि चितवनि हँसनि बोलनि गावनि टगौरी।
सब ही भाँतिन हौं तो मोहि लई भूलि गई सुधि बुधि भई बौरी।
छिन-पल कल न परति बिन देखैं लगियै रहति निस-दिन यह ढौरी।
चख-चातकन की तपति तबहिँ तौ मिटै
आनँदघन पिय दरसैं बरसैं कहुँ जौ री॥

वेणुवादन] (२५०) [रूपताल

मुरली के जोरनि संग लगायँई डोलै।
कहा करै बपुरी ब्रज-अबला, गरब-गाँठि गहि खोलै।
धुनि सुनि और होति थिर चर गति, भोरी बिचारिनि की मति कोलै।
आनँदघन हूँ भिजए रिझए क्यौं न बोल बड़ बोलै॥

(२५१) [मूलताल

मुख मुरली मैं केदारो कैसैं गावै।
जैसी जैसी जीव आवै तैसी तैसी तानि भौंह दरसावै
दृग-बिलास देखैं भावै।
चेटक रूप साँवरो मोहन रीझि रीझि मोहूँवै रिझावै।
आनँदघन देखत ही भीजी तू जानत है चित के चावै॥

रासलीला] (२५२)

रीझनि बिवस भए रसरंगी मोहन राधा के गावत ही रस-रास मैं।
सुरस बादन मोय गई मति, गति बिथकी
नैननि संग आछे मुख-उजास मैं मोहन बिलास मैं।
ऐसे रिझवार वारि मोहिँ बलैया लागौ या समैं।
आनँदघन ऐसैं ही नित नित घमड़ि हुलसौ बिलसौ बृंदाबन
जमुना-पुलिन प्रकास मैं॥

उर की० = हृदय की उमंग, प्रेम। [२५०] कोलै = विह्वल हो जाती है। [२५१] केदारो = एक राग। [२५२] उजास = उजाला। पुलिन = तट।

(२५३) [झपताल

आजु प्यारे पीय के मिलनि की राति है।
खुलि खिली सुभ सरद में संजोगिनी रंग भरि अंग न समाति है।
बहु विधि विलास रस-रास, सुख स्रमपगे जगमगे
जुगल-वर संगम हिताति है।
आनँदघन घमड़ि केलि-संपति रमड़ि प्रीति-रसमसनि सरसाति है॥

चेतावनी] (२५४)

ब्रह्म गुन गाय लै रे मन ! गाय लै ऐसें रसना लड़ाय लै।
सकल स्रुतिसार अविकारकारी महा मंगल सुधाहि अचवाय लै।
जीवन-अधार धारन करि सुधारि, भलें अंतर निरंतर बसाय लै।
चातक-चखनि चोप विवस ह्वै एकरस आनँदघनहिं बरसाय लै॥

(२५५) [रूपताल

हरिनाम लै रे लै रे मन ! हाहा, जीवन-जनम-सफलता को यह लाहा।
सेस महेस सुरेस आदि गुन गनत सुछंदन गाहा।
आनँदघन-रस प्रान-पपीहनि प्यावैगो कब आहा॥

प्रवास-विरह] (२५६) [ख्याल, तालजात्रा

मारौ गरजि गरजि घन ! मारौ हो, डरावौ
प्रीतम प्यारे बिना मैं कैसें भरौं हौं।
तैसियै निसि अँधियारी कारी तैसियै सियरी पवन
परसि परसि तन जरौं हौं॥

मानमोचन] (२५७) [मूलताल

आए री बदरवा नीके स्याम बरन मनहरन छबीले रस-बरसीले।
आनँदघन ब्रजमोहन पिय पै उठि चलि हठ तजि
कसि कसि मोहन बचन कहाँ, ढीले ढीले॥

---

[२५३] स्रम = स्वेद। हिताति० = प्रेम करती है। रमड़ि = रमकर। रस-मसनि = लगन। [२५४] लड़ाना = दुलराना। अचवाय लै = पिला ले। [२५५]

(२५८) [तालजात्रा

कैसैं भरौं तुम बिना अब मोहिं कठिन कठिन बीतत पल - छिनवा।
तिहारे देखन की औसेर लगी रहै बलमा! निसि - दिनवा॥

पूर्वराग] (२५९) [मूलताल

मितवा रे तुम सन मोरी लागी लगन कैसैं हूँ न छूटै।
आनँदघन यह प्रान-पपीहा आस लागि जीवत है
यह तौ तोरेऊ न टूटै॥

याचना] (२६०) [आड़ो, चौताल

जौ तुम दियौ है ब्रजवास तौ पूरन करौ यह आस।
रसिक-संग अभंग निरखत रहौं रास-विलास।
राग-रंग-तरंग भीजौं सरस प्रेम-समाज।
राधिका रमनी-मुकुटमनि कान्ह ब्रज-युवराज।
अतुल आनँद-उमँग की कछु कहि न आवति बात।
बिबस आनँदघन-घमड़ मैं सुधि न रजनी-प्रात॥

पूर्वराग] (२६१) [बिहागरो

पिय-मूरति देखन की सु माई, मेरी अँखियनि बानि परी।
लोक-लाज सौं काज कहा रह्यौ अब यह जानि परी।
गुरजन-सिख सुनि सुनि गुनिबे की उर आसानि परी।
आनँदघन-हित प्रान-पपीहा हिलगनि आनि परी॥

रूपदर्शन] (२६२) [इकताल

रीझि रीझि मुख देखि रहै।
लाल लाड़िली की छवि मोहे चकित भए कछुवै न कहै।

गाहा = गाथा, प्रशस्ति। [२५८] बलमा = (वल्लभ) प्रिय। [२५९] मितवा = मित्र। [२६०] अभंग = अखंड। [२६१] गुनिबे० = हृदय की आशाओं को विचारने की पड़ी रहती है। [२६२] मोय = भीँगकर। गहर =

मोय मोय मन खोय जात है रूप-गहर की मिति न लहै।
आनँदघन पिय रसिक-मुकुटमनि भाग-निकाई दृगनि चहै॥

संघट्टन] (२६३) [मूलताल

तुम हित सेज रची चलियै जू।
सुनहु प्रवीन राधिका नागरि, है यह बात निपट भलियै जू।
रसिक-मुकुटमनि पंथ निहारत नाखत दृगनि कुंज-गलियै जू।
आरति समझि कहर कित कीजै यह रजनी फूली फलियै जू।
औसर भलो बन्यौ मिलिबे को आजु निहाल करौ अलियै जू।
आनँदघन पिय सौं हिलि मिलि कै करियै रंगभरी रलियै जू॥

जिज्ञासा] (२६४)

हौं तुम सौं एक बात बूझति हौं, साँची कहौ।
मिले माँझ अनमिले से मोहन कैसी भाँति रहौ।
उघरेँ हू अंतरपट राखत अपने गुननि गहौ।
चोपनि झूमि झूमि आनँदघन नित नए नेह नहौ॥

(२६५) [तालजात्रा

पुकारि पुकारि हारी हो गुपाल काहे न दरसन देत।
आनँदघन कितहूँ पिय छाए प्रान-पपीहा हौं बिलखाए
कंत ढरारे अंत कहा हौ लेत।
अब अति निठुर भए ब्रजमोहन करि करि ऐसो हेत।
औसेरनि हाहा जिन सुखवौ सींचौ आसा-खेत॥

युगल-छबि] (२६६)

मेरी आँखिन सुख दैबो करौ रंगभरी जोरी।
स्यामसुंदर रसिक छैल राधिका नव गोरी।

गहराई। मिति = थाह। नाखत = डालते हैं। आरति = उत्कंठा। कहर करना = जुल्म करना। अलियै = सखी ही। रलियै = क्रीड़ा ही। [२६४] अंतरपट = वस्त्र, परदा। नेह० = प्रेम बाँधते हो, करते हो। [२६५] ढरारे = ढलनेवाले।

यहै सुरूप यहै गोवरधन यही रसीली बातैं।
यह वृंदावन यह जमुना ये दिन येई रातैं।
इनके कौतिक देखि देखि अपनो जीउ जियाऊँ।
इनके गुन गाय गाय इनही कौं रिझाऊँ।
आनँदघन घमड़ि सदा रस-संपति सरसौ।
दंपति की मधुर केलि ऐसैंई दरसौ॥

प्रियागम] (२६७)

अहोणी, दिलजानी ढोलन पाया।
रब कीता साडे रे दिल दा भाया।
व्रजमोहन घन प्यारिया पपीहाँ दे घर आया॥

पनघट-लीला] (२६८) [मूलताल

गगरिया भरन न देत स्यामसुंदर व्रजमोहन रस को प्यासो डोलै।
आनँदघन मोहियै भूम्यौ कहा कहौं चेटक चितवनि के सैनन ही बोलै॥

(२६९) [शंकराभरण, इकताल

देख्यौ देख्यौ राधा को वृंदावन देख्यौ।
जीवन जनम-करम अपनो सब भाँति सफल करि लेख्यौ।
जमुना के तट सजल स्याम घन सब दिन सहज सुहायौ।
दंपति सुख-संपति निज मंदिर हित-मंडप नित छायौ।
सब तैं ऊँच्यो लसत पुहुमि पै दीसत दूरि दुरायौ।
अमित अखंडित अतुलित महिमा अद्भुत निगमनि गायौ।
मोहन महा मदनमोहन को बानिक बरनौं कैसैं।
दरस्यौ बरस्यौ करौ सदाई आनँदघन यह ऐसैं॥

अंत० = प्राण क्यौं लेते हो, मारते क्यौं हो। सींचौ = सींचा हुआ। [२६६] कौतिक = कौतुक, खेल। दरसौ = दिखाई दे। [२६७] अहोणी = हे सखी। दिल० = प्रिय। ढोलन = दूल्हा, प्यारिया = प्यारा। पति, प्यारा। रब = ईश्वर। कीता = किया। साडे० = हमारा मनचाहा। [२६८] चेटक = जादू। [२६९] दुरायौ = छिपा हुआ, फैला हुआ। [२७०]

(२७०) [परज, तालजात्रा

साँवला सोहणा मिठबोलन।
महरम दिलजानी भँउरा गुज्झ गुलाँ दी घुंडियाँ खोलन।
जीव जिवाँदा गावँदा भावँदा आवँदा नी लटकेंदड़ा ढोलन।
प्रान-पपीहाँ दा आनँदघन रत्त-दिहाड़े, छुड़िया कोलन॥

वेणुवादन] (२७१) [मूलताल

मुरली हियरा सुर-साल करै, ऐसे हाल करै।
प्रान समोय लेति तानन सौं अटपटे ख्याल करै।
बसति ससति सी धरी धरनि मैं ये जंजाल करै।
आनँदघन रस बरसि विलासिनि अंतर उज्वल करै॥

पूर्वराग] (२७२) [इकताल

निगोड़ो नेहरा बढ़ै।
ज्यौं ज्यौं निरखत मोहन को मुख सौगुनो रंग चढ़ै।
चोप-चटक लागी हिय है रसना गुन-नाम रढ़ै।
हँसि चितवनि कौंधनि आनँदघन मति-गति मोह मढ़ै॥

(२७३) [तालजात्रा

देख्यौ नाहीं नंदकिसोर।
हौं हूँ लई चिकनई राति-द्यौस मँडरात लगौ जब देख्यौ याही ओर।

सोहणा = (शोभन) सुंदर। महरम = मर्मी। भँउरा = भ्रमर। गुज्झ = गुह्य। गुलाँ० = फूलों की। नी = नु (निश्चयार्थक) लटकेंदड़ा = लटक के साथ झूमता हुआ। ढोलन = प्रिय, पति। प्रान० = प्राणरूपी चातकों का। रत्त-दिहाड़े = रातदिन। छुड़िया = अपनी प्रतिज्ञाओं को न पालनेवाला। [२७१] सुर-साल = स्वरों के काँटे। समोना० = डुबाना, भिँगाना। ख्याल = खेल। ससति० = साँस भरती हुई। [२७२] रढ़ै = रटती है। [२७३] लई० = हृदय चिकना गया; प्रेम का प्रादुर्भाव हो गया। बरबट = बरबस। अँकोर = भेँट।

कैसैं अपवस राखौं अपनपौ है बरवट चित-चोर।
अब आनँदघन उघरि घुरौंगी लै कर प्रान अँकोर ॥

राधा रानी] (२७४) [मूलताल

वृंदावन-रानी राधा है।
रास-रसिक ब्रजमोहन पिय की पुरवनि साधा है।
याकी छत्र-छाँह सुख वसियत सकल समाधा है।
आनँदघन चातक-व्रत सेवत प्रेम अगाधा है ॥

वेणुवादन] (२७५) [इकताल

बाँसली हे वीर ! घणाँ दिन पाड़ै छै।
भला घराँ रा माणसा नूँ कानाँ लागि बिगाड़ै छै।
काँई कराँ, क्यौं वस नहिं चालै, घर बैठा नूँ ताड़ै छै।
कँड़ै खड़ी रहै आनँदघन छानी वात उघाड़ै छै ॥

विरह-निवेदन] (२७६) [मूलताल

बिरहा ऐसी कै सताई जू तिहारे मिलन बिन
जान अकेली न छाड़ै छति कौं।
स्यामसुँदर ब्रजमोहन आनँदघन पिय तुमहिँ
दया कबहुँ उपजै गति कौं ॥

वेणुवादन] (२७७) [इकताल

मोहन प्यारे की मुरलिया बाजि रही।
सोवन देति न सोवत वैरिनि ऐसी टेक गही।

---

[२७४] साधा = इच्छा। समाधा = समाधान (सब बातों का निराकरण)। [२७५] बाँसली = बाँसुरी। वीर = सखी। घणाँ० = बहुत ही हैरान कर रही है। भला० = भले घरों के लोगों को। कानाँ = कानों में। काँई० = क्या करूँ। घर० = घर बैठे को भी पीड़ा पहुँचाती है। कँड़ै = अति निकट। छानी = (छन्न) छकी बात खोल देती है। [२७६] ऐसी कै = इतना अधिक। छति = छत (से मार्ग देखती है)। गति० = मेरी ओर आने के लिए। [२७७] चही =

तानति बानति प्रानति बेधै निरदै निपट चही।
इतने पै धुनि सुनियै भावै गति नहिं जात कही।
मेरी सी गति मेरीयै किधौं औरनि हू की यही।
घर के घेर परी तरसति हौं आनि बनी सुसही।
आनँदघन पिय बस करि राखे पूरन प्रीति नही।
गरव-भरी गरजै सौ लेखै रस की रासि लही॥

पूर्वराग] (२७८) [तालजात्रा

हो सुदिन सनेहरा लाग्यौ रसिक छैल छबीले रँगीले मोहन सौं हो।
उघरे भाग आनँदघन घमड़ौ हँसीली भौंहिन रसीले जोहन सौं हो॥

विरही मोहन] (२७९) [गौर, रूपकताल

मोहन राधा के अनुराग छक्यौ मुरली मैं गुन गावै।
बासर विरह-सरक उर सालत बन बन डोलैं ऐसैं जिय बहरावै।
पीत बसन दुति देखि पलकनि सौं परसि नैननि कौं मनै मनावै।
आनँदघन यौं प्रान-पपीहनि रस-प्यासनि परचावै॥

वेणुवादन] (२८०) [खंभायची, तालजात्रा

कान्हर थारी बाँसली हो मोहनी मन मोहि लियो छै।
तीखी तीखी तानाँ बानाँ प्राणाँ माहौं गैलो कीयो छै।
थे तो म्हारा रूड़ा राजिंदा म्हे तो थानै आपो दीयो छै।
अब म्हानै जग खारो लागै आनँदघन रस नीका पीयो छै॥

(२८१) [इकताल

असाडा दिल लीता नी, मुरलीवालै नैं।
रत्त-दिहाड़े किथाँई न लगदा, की जाणाँ क्या कीता नी।

देखी गई। घर० = घर के घेरे मैं। आनि० = (बिपति) आ पड़ी। नही = नाथकर, बाँधकर। सौ० = सौ प्रकार से। [२८०] थारी = आपकी। गैलो = गली, रास्ता। थे = आप। म्हारा = मेरे। रूड़ा = सुंदर। राजिंदा = (राजेंद्र) अति प्रिय। म्हे = मैं। थानै = आपको। आपो = अपनत्व। खारो = कड़वा।

साँवली सुरति भँवी भँवी श्रंखी डाढा चेटक दीता नी ।
आनँदघन वल होया पपीहाँ इस्क-पियाला पीता नी ॥

याचना]   (२८२)   [सोरठ, चौताल

राधे दै वृंदावन-वास ।
तेरो ह्वै मन पनहिं परि रहै तन हूँ ताही पास ।
महामधुर रसकेलि-माधुरी फुरै हियैं अनयास ।
हरी खरी सुख-भरी निकुंजैं नवनव रंग-विलास ।
जमुना-तीर ललित बंसी-धुनि अद्भुत अमी-निवास ।
कृपा रमड़ि घमड़नि आनँदघन वेगि पुरैयै आस ॥

याचना]   (२८३)

मेरी बानी मैं बनवारी बसौ, एकै मुख करि गुननि गसौ ।
असद-अलाप अलाप न होई सिथिलाई तजि नीकैं कसौ ।
मुरली-सुर सौं समोय लीजियै, ज्यौं गावै राधिका-सरस-जसौ ।
आनँदघन हित सरसौ बरसौ रोय कहत हौं कहा धौं हँसौ ॥

पूर्वराग]   (२८४)   [मूलताल

लगन लगी है स्याम पियारे ।
अब कैसैं यह दुरी रहति है ब्रजमोहन उजियारे ।
इत हौं बकति तिहारेई गुन तुम मँडरात चोप-मतवारे ।
आनँदघन इत मुरलि तिहारी ये सब भेद उघारे ॥

मीठा पेय । नीका = अच्छी तरह । [२८१] असाडा = हमारा । लीता = लेता है । नी = नु, निश्चय । रत्त-दिहाड़े = रातदिन । किथाँई० = कहीं नहीं लगता । की० = क्या जाने क्या कर दिया । भँवी० = घूम घूमकर । अंखी = आँख मैं । डाढा = गहरा । चेटक० = जादू कर दिया । वल० = ओर होकर । [२८२] फुरै = होए, जगे । खरी = अत्यंत । अमी = अमृत । रमड़ि = युक्त होकर । [२८३] एकै० = केवल मुख के द्वारा । असद० = असत् बातें । ज्यौ = जी ।

(२८५) [इकताल

राज म्हानै ओलू आवै ।
ऊभी ऊभी थारी वाट उडीकाँ थाँ विन विरहा अधिक सतावै ।
म्हाँ सी थाँकै घणी टहलणी भँवर कमल री वास लुभावै ।
प्राण-पपीहा रा आनँदघन थे निरमोही स्यौँ न वसावै ॥

(२८६) [ईमन काफी

मन लाग्यौ री, वंसीवारे सौँ, ब्रजमोहन छवि-गतिवारे सौँ ।
दृग चकोर भए प्रान पपीहा आनँदघन उजियारे सौँ ॥

बलदेवजू की स्तुति

(२८७) [हिंडोल, झपताल

जयति रोहिनीनंदन उदार विक्रम-विपुल
अतुल-बलधाम अच्युत कृपानिधि ।
जयति गौर सुंदर वरन नील-अंबर-धरन
एक-कुंडल-करन आभा-विधि ।
जयति ब्रह्म-अग्रज ब्रज-विलास मंगलसदन
कामपालक सदा मत्त-रसरंग-रिधि ।
करुना-सुदृस्टि आनँदघन वृस्टि करि
तापमोचन, देत परम सुखसिधि ॥

---

[२८५] राज = प्रिय । ओलू = विरह की स्मृति । ऊभी० = खड़ी खड़ी । उडीकाँ= प्रतीक्षा करती हूँ । थाँ० = आपके बिना । म्हाँ सी० = मेरे ऐसी आपके बहुत सी दासियाँ हैं । री = की । रा = का । स्यौँ = से । न० = वश नहीं चलता ।
[२८७] एक० = बलरामजी के एक ही कान में कुंडल रहता है । करन = कर्ण, कान । आभा० = प्रकाश का विधान । ब्रह्म = श्रीकृष्ण । रिधि = ऋद्धि,

(२८८) [सारंग, चौताल

जय जय जय बलभद्र बीर धीर गंभीर अविलंब प्रलंबहारी।
निज ब्रजकेलि-रस-माते मुसली कुसली
सब ठौर सब भाँति छिन छिन मंगलकारी।
याही तैं नीलांबर धारत परम प्रीति रीति रुचि बिस्तारी।
बन आनँदघन बरसत स्यामै सरसति हित-गति न्यारी॥

(२८९) [भैरव, तालजात्रा

बलदेव बलदेव बलदेव भाखौं, बलदेव को एक आसरो राखौं।
बलदेव बलदेव बलदेव जाचौं, बलदेव-कृपा तैं ब्रजरंग राचौं।
बलदेव-दया-बल रसमत्त डोलौं, बलदेव-अनुज के नाम-गुन बोलौं।
बलदेव सो एक बलदेव देख्यौं, बलदेव-कृपा को पुंज उर लेख्यौं।
बलदेव सब काज मेरे सुधारे, आनँदघन बरसि दुःख-ताप टारे॥

(२९०) [ललित, मूलताल

मद-बिघूर्नित लोचन गोरोचन-बरन रोहिनीनंदन बल हलधर राजैं।
गोपाल-मोह-गह्वरित-हृदै ब्रजवन लीला साजैं निज सुख-काजैं।
मंगलनिधि अच्युत अनंत प्रभु सदा मगन अपनी रुचि छाजैं।
आनँदघन लीलांबर-धरन उदार दीनहित जस-निसान जग बाजैं,
सुमिरत ही सब दुख भाजैं॥

श्रीरामजन्म-बधाई

(२९१) [रामकला, चौताल

दसरथ-नंदन को जनम-उछाहु, जनम-उछाहु।
निरवधि करुना-अवधि अवधि-मंडन प्रगटे महाबाहु।

समृद्धि। [२८८] प्रलंब = एक दानव। मुसली = मुसल धारण करनेवाले। [२८९] राचौ = लीन होओ, डूबो। अनुज = श्रीकृष्ण। [२९०] बिघूर्नित = चंचल। बरन = रंग। मोह = प्रेम। गह्वरित = भरित। लीलांबर = नील वस्त्र। निसान = बाजा। [२९१] निरवधि = सीमारहित। अवधि-मंडन =

कौसिल्या की कोखि सिराना लह्यौ अपूरब पुन्यनि लाहु।
फूले संत सुर-हित अनुकूले असहिन के उर दाहु।
आनँदघन अवधेस-दान-झर बाढ्यौ जग मैं सुजस-प्रवाहु।
निज दासनि को सुख कहा कहियै दिन दिन अधिक उमाहु॥

(२६२) [टोडी, इकताल

जनमे राम जगत के जीवन, धनि कौसिल्या धनि दसस्यंदन।
अवधपुरी मधि महामोद छबि नरनारी फूले आनंदन।
आनँदघन बरसत सुख सरसत करुनाकर उदार रघुनंदन॥

(२६३) [केदारो, झपताल

राम जगधाम अभिराम प्रगटे अवधि मधुर मधुमास नौमी उज्यारी।
दसरथ-निकेत जस-मंगल-उपेत, बपु अतुल-बल विक्रम विनोदकारी।
सानुज सुछंद निज जनवृंद-सुखकंद रविकुल-प्रकासक प्रतापधारी।
करुनानिधान कीरति विमल गंभीर धीर बरबीर भूभार-हारी।
मंडित अखंड धुनि मंगल सकल पुरी औसर अभूत सुषमा निहारी।
जयति कौसल्याकुमार आनंदघन अवधि-मंडन सनातन बिहारी॥

(२६४) [इकताल

आजु मंदिलरा दसरथराय के बाजै रंग-बधाई है।
कौसिल्या की कोखि सिरानी जगबंदन रघुनंदन प्रगटे, सब मन भाई है।
अवधिपुरी आनँद-झर लाग्यौ उघरी भाग-निकाई है।
चहूँ ओर मंगल-धुनि सुनियत राम दुहाई है॥

(२६५) [कान्हरो, चौताल

रवि-कुलमंडन खलखंडन राम परम बलधाम प्रगट भए।
हित-चातकनि महा मन-वांछित के फल विविधनि आजु दए।

अयोध्या की शोभा करनेवाले। कोखि = कोख ठंडी हुई (पुत्रोत्पत्ति से)। सुर-हित = देवों का हित (भलाई)। असही = न सहनेवाले, शत्रु। निज = खास। [२६२] दसस्यदंन = दशरथ। [२६३] मधु = चैत्र। उपेत = युक्त। अवधि-मंडन = अयोध्या के आभूषण। सनातन = अनादिकाल से, नित्य, सदैव। [२६४]

जननी-जनक-सुकृत कहा वरनौं सुखनि धरे दुख दूरि गए।
अवधपुरी आनँदघन घमड़ौ रमड़ौ रस-झर मोद छए।
सुर-समूह दुंदुभी वजावत हरखत वरखत पुहुप नए॥

(२९६) [कान्हरो बागेश्वरी, इकताल

राम जगजीवन जनम लियौ, जुड़ायौ जननी जनक-हियौ।
निरवधि आनँद-उदधि अवधपुरी मधि घर घर
वाजति रंग-वधाई फूले फिरत नर तियौ।
सिव विधि सुक सनकादिक सुर-समूह आनंदित
भूप-भवन भीर भई सबको जीउ जियौ।
आनँदघन झर लाग्यौ दुखदारिद दूर भाग्यौ, दसरथ
दातार जिन जो माँग्यौ सु तेहि दियौ॥

(२९७) [आसावरी, इकताल

कौसिल्या की कोखि ककुभ सुभ पूरन रामचंद्र उदयौ।
रविकुल सकल प्रकासित कीन्हौ अदभुत कला-विलास ठयौ।
दुख-तम दूरि गयौ दबि कितहूँ बाढ्यौ मन मैं मोद नयौ।
सुजन-बंधु कुमुदावलि फूली अरि-समूह दुख-ताप तयौ।
निरवधि सुख को सिंधु अवधि मधि घर घर उमँग-तरंग छयौ।
मंगल-धुनि की गरज सुधा करि सुहृद-चकोरनि चैन दयौ।
दसरथ-भाग कहा कहि वरनौं सकल देखियत सुकृतन यौं।
अमीदृस्टि रसवृस्टि चहूँ दिसि करुना आनँदघन उनयौ॥

(२९८) [टोड़ी, मूलताल

मंदिलरा री बाजै अति ही गहगहे, प्रगट भए
या अवध-नगर मैं रामचंद्र वर आजै।

मंदिलरा = मंदीर, बधावा। [२९६] तियौ = स्त्रियाँ भी। दातार = दानी।
[२९७] ककुभ = दिशा। सुधा० = सुधा से। [२९८] मंदिलरा = (मंदीर) बाजा।

गावति मंगल मिलि वनिता-गन कहि न परत सुख
आनँद की निधि निरखि दुख भाजै।
करत वेद-धुनि विप्र बंदीजन घर घर तोरन-ध्वजा विराजै।
मनवांछित फल भए परमानँद बोलि द्विजनि कौं
दान देत मन हरखित दसरथ राजै॥

बावनजू को पद

(२९९) [गौंड़ सारंग, मूलताल

जै जै जै श्री बावन बिसाल।
कृपासील महा लील नरोतम नित हीं नित दीननि दयाल।
सत्यं वद सत्यं सरूप सत्यं प्रतिज्ञ पूरन कृपाल।
सतचिदानंदघन अनघ त्रिबिक्रमपद-नखजल जग सुजस-जाल॥

मेघागम] (३००) [मलार, मूलताल

आए आए री बादर अति ही सुहाए घर बरन बरन।
स्यामसुंदर मुरली मैं मलार जमाय रहे सुर धुरवा से लगे हैं ढरन।
जमुना-तीर कदम तर ठाढ़े बनक ठनक उर अभिलाषन भरन।
आनँदघन रस-रंग झरत काम-ताप-हरन॥

गोपी-प्रेम] (३०१) [इकताल

चुनरिया भीजन लागी परे कौन रस-बाद।
रंग रहै सो करियै लालन भलो न अति अनवाद।
ब्रजमोहन जू गोहन छाँड़ौ गीधे बीधे सरस सवाद।
आनँदघन हठ घमड़नि घुरि दुरि घेरी हौं वन बाद॥

भाजै = भाज ही। तोरन = फाटक। राजै = स्वयं राजा ही। [२९९] लील = नील। अनघ = निष्पाप। त्रिबिक्रम = वामन का विराट् रूप। नखजल = गंगा। [३०१] अनबाद = फाल्तू बात। बाद = वायु। [३०२] दुहूनो = दोनों का।

(३०२)

आज तेरी चूनरी को रँग दूनो पहिरी चटक-चोप सौं।
पिय अपवस करि भले वसायौ कुंज-सदन हो सूनो।
तू नागरि गुन-रूप-आगरी वै नागर वर बनक दुहूनो।
आनँदघनहिं भिजै रस राख्यौ दै सौतिन मुख चूनो॥

प्रेमघन] (३०३) [रूपताल

तिहारो नेह चौवाई को सो मेह कान्ह झूमि झूमि ब्रज बरसै।
निकसत काहु न देत घरिक हू कों लौं घिरे घरहि रहियै
अति नकवानी करि सरसै।
अरु अचिरज कछु कहत न आवै जाहि भिजावै सो सूखि सूखि तरसै।
आनँदघन पिय उघरि अँध्यारी दै नए नए रंगनि दरसै॥

पावस-वर्णन] (३०४) [इकताल

आई रितु सुखदाई पावस की सुहाई
बोलत मधुर पिक चातक अरु माते मुरवा।
स्याम घन मैं चपला की चमक चहुँ ओर सु बन्यौ है मनोरथ पुरवा।
आनँदघन पिय बैन बजावत अति आरति सौं तोहि बुलावत
लै रीझनि भीजे सुरवा॥

(३०५)

तार-सुरतान सौं बजाई है मोहन मुरली मैं मलार।
प्यारी के गावत जोति-रंग उपजत भेदनि तरंग बाढ़त
अंग अंग अनंग सुख-समुद्र अपार।

दै० = सौतों के मुख में चूना लगाकर, सौतों को कष्ट पहुँचाकर। [३०३] चौबाई = चारों दिशाओं से वायु का चलना। नकबानी = परेशानी। [३०४] मुरवा = मोर। पुरवा = पुरवैया, पूरबी वायु। बैन = वेणु। सुरवा = स्वर। [३०५] तार० = ऊँचे स्वर की तान। भास = भासित होता है। आसार =

दृग-विलास मुख-विकास भौंहनि मधुर हास भास,
पाननि रंजित अधर-दसन बिथुरे बार सिंगार-सार।
आनँदघन रस-आसार भीजत रीझत उदार
आपस में होत मालती-माल मरकत-हार॥

(३०६) [मूलताल

एहो कामरि की खोहा, रँग राख्यौ चूनरि को।
वन में बन्यौ दावँ काहू मिस को न भावती जोही।
जमुना-तीर बर-तरे ठाढ़े भीजत रीझत मति-गति मोहा।
आनँदघन अद्भुत दामिनि मिलि अचिरज-रस-बरसा सोही॥

(३०७)

सघन वृंदावन सुहायौ राधामोहन-मन-भायौ
सहज ही ये पावस आय विराज्यौ।
केकी कोकिलान की किलक जित तित चित चोरि लेति
तैसो मेघ मधुर धुनि गाज्यौ।
तरनि-तनया की तरंगनि बढ़नि देखि बाढ़त विनोद मोद तन-ताप भाज्यौ।
यहि विधि बैठे कुंज-भवन दंपति आनँदघन
बरसत सुगति समागम साज्यौ॥

(३०८) [चौताल

कान्ह की मुरलिया रंगनि बरसै, रंगनि बरसै।
नाद-अमृत की नवल घटा घमड़ी अनुरागहि सरसै।
संकीरन-तान तेई चपला की चमकनि धुनि अलापनि धुरवा घूमि दरसै।
मोहन-मादक मधुर महा रसमय आनँदघन पिय के अधरनि परसै,
याहि सुनि सुनि क्यौं न जियरा तरसै॥

वृष्टि। मालती = अर्थात् राधा। मरकत = पन्ना अर्थात् श्रीकृष्ण। [३०६] खोही = घोघी, कंबल को दो परत में लपेटकर ऐसे कर लेना जिससे शरीर ढका जा सके। बर = बट। [३०८] संकीरन = संकीर्ण, दो रागों का मिश्रण।

पूर्वराग] (३०६)

मोहन-मूरति मेरी आँखिन आगे ही रहै।
जौ खोलौं मूँदौं तौ त्यौं ही, त्यौं ही दृस्टि गहै, बातौ न कहै।
अरु अंकौ भरि भरि भैंटन की अभिलाषनि बावरो हियो उमहै।
आनँदघन के सँजोग-वियोगनि पापी हियरा ये दुखसूल सहै॥

घनश्याम] (३१०) [इकताल

आवत है हो हरि मातो मेह।
बन के नितहिं जाउँ जौ घर लौं, तौ निवहै नित नित को नेह।
हठ की बात भला न भावतो तुमहिं बढ्यौ मनमथ को तेह॥

वृंदावन-महत्ता] (३११) [चौताल

सब रितु वृंदावन सुखदाई।
दंपति की हित संपति नित इत जित तित ही अधिकाई।
धनि जमुना धनि पुलिन मनोहर धनि धनि लीला ललित निकाई।
आनँदघन की घमड़ निरंतर मुरली-गरज सुहाई॥

गोपी-प्रेम] (३१२) [इकताल

कामरियावारे की घात न क्यौं हूँ जानि परै।
राति-बिराति अँध्यारे मैं मिलि औचक आनि परै।
ऐसो छली बली अति चौकस, नेकु न कानि परै।
आनँदघन रस-बस करि राखै जौ उहि पानि परै॥

(३१३) [मूलताल

कैसैं रहौं री अब मैं ऐसे स्याम उज्यारे बिना।
ब्रजमोहन आनँदघन कितहूँ छाय रहे आली, कठिन
कठिन बीतत है मोकौं रैन-दिना॥

---

[३१०] नितहिं = (निमित्त) लिए, वास्ते। तेह = तीखापन, वेग।
[३१२] न कानि परै = मर्यादा का विचार नहीं करता। पानि = हाथ।

मेघागम] (३१४)

आए री बदरवा आए आए, स्याम बरन
मनहरन छबीले रस-बरसीले।
उठि चलि ब्रजमोहन आनँदघन पिय पै स्यामा
करि लै अपने मन के भाए॥

गोपी-प्रेम] (३१५)

हरवा मोरा टुटलों अबही ननदिया गवाही दीनी उतर कहा देहों।
आनँदघन सुजान सुनौ बिनती जिन अनवाद
करौ तिहारी सौं जान देहु जू जोवन है तौ बहुत्यौ पैहौं॥

हिंडोरा के पद

(३१६) [मलार, झपताल

देखि सखी झूलनि हिंडोरे दुहुन की, ए दुहुन की।
चोप सौं लचकि मचकत खरे रंग-भरे कचनि तें बरसनि प्रसून की।
मृदुल कलकंठ गावत महा मगन मन मधुर सुरतान लै दून की।
यह छबि निहारि न सँभारि आनंदघन सुधि बुधि टरी सुर-बधून की॥

(३१७) [इकताल

लहरिया झूलत लहरैं लेत, गौर स्याम धारन कौं।
पहिल्यौ सरस चौप सौं स्यामा उघरि पर्यौ हिय-हेत।
उफनि उठ्यौ संगम-सुखसागर लोने अंग दिखाई देत।
पिय-मन मगन होत अभिलाषनि बँधत न धीरज-सेत।
मधुर मधुर गावनि मलार-धुनि सुनि रीझत भीजत चित-चेत।
छूटे चिहुर आनँदघन बरसे फरत मनोरथ खेत॥

अनवाद = फालतू बखेड़ा। [३१६] कच = केश। दून = साधारण से दूना तीव्र गाना। [३१७] लहरिया = एक प्रकार का कपड़ा, उस कपड़े की

(३१८) [सोरठ, चौताल

झूलिबो करति हरि-हिय के हिँडोरेँ हौँसनि राधे लाड़-गहेली।
तूँ ही रस लै जान्यौ री या प्रीति-पावस को भाग-सुहाग नवेली।
हुलसि झुलावति बिजन डुलावति रीझनि भीजी चाह सहेली।
सावन मनभावन आनँदघन रस-बरसावन मिलि झूलिय अलबेली॥

(३१९) [धनाश्री, मूलताल

राधा के हिँडोरेँ हाहा तनक झुलाय कब की कहत यो ही अब न डुलाय।
अँग-सँग रँग की उमँग उर बढ़ी अब कहँ लौँ धीरज धरौँ मन अकुलाय।
रँगीले रिझवार, सजहु बधु-सिँगार सोभा सुख हेरेँ रहेँ सुरति भुलाय।
अतन-जतन लागि रहौ जू आनँदघन गाँव की
पाहुनी कब लगि लेहुगे बुलाय॥

(३२०) [केदारो, चौताल

बूँद थोरी थोरी थोरी बहुत नीकी लागैँ।
नवजोवन मदमाते दंपति मधुर मधुर सुर रागैँ।
गरबाहीँ दियेँ झूलत फूलत मुकताभरननि लोनिया बागैँ।
आनँदघन अभिलाषनि घमड़े अरसि-परसि पागैँ।

(३२१) [टोड़ी, मूलताल

सुमन हिँडोरना हुलसि झुलावत रसिक छैल अपनी प्यारी को।
अतुल रूप की उझिल झेल मैँ घनै मन फूलत झूलत
झूलनि लाड़नि-मतिवारी को।

साड़ी। सेत = सेतु, पुल। चेत = चेतना। चिहुर = चिकुर, केश। [३१८] लाड़० = प्यारभरी। हुलसि = उल्लास के साथ। बिजन = व्यजन, पंखा। [३१९] ही = हृदय। अतन-जतन = यत्न-उपाय। [३२०] मुकताभरननि = मोतियाँ के गहनोँ से। लोनिया = (लावण्य) सुंदर। बागैँ = बागा (जामा) से। अरसि० = स्पर्श करके। पागैँ = प्रेममग्न होते हैँ। [३२१] उझिल =

जमुना-तीर सघन वृंदावन सेवत सुख-हित हरियारी को।
आनँदघन रीझनि भरि भिजवत वेली सुकुवारी को॥

(३२२)

लाड़-गहेली की तीज मनावन की राति मैया भागभरी सब भाँतिन।
उवटि न्हवाय सिँगारि कुँवरि कौं सुखनि सिहाय
बहुत कछु वारति फूली अंग समाति न।
रतन-हिँडोरैं हुलसि झुलावति सँग सोहति साथिनि
दाई की बनी ठनी अप-अपनी भाँतिन।
बरसाने बरसत आनँदघन भानु-भवन में मंगल-मनि की काँतिन॥

(३२३) [ईमन

रसिकविहारी अपनी प्यारी कौं झूलि झुलावै ए।
अंक-भरे पटुली पर बैठ मुख लखि जीय जिवावै ए।
छूटे बार मुकतन हार मिलि उरझि उरझि सुरझावै ए।
सरस परस पर बीरी खवाय आनँदघन रस बरसावै ए॥

(३२४) [रूपताल

अंग-संग सुख लेत, हिँडोरैं झूलनि को रस पायौ।
गौर स्याम जोवन-मदमाते सहि न सकत छिन छेत।
रूप-निकाई अनूप कहा कहौं फूलनि के भूषननि समेत।
रीझि रीझि बरसत आनँदघन सरसत है हिय-हेत॥

लालजू की बधाई

(३२५) [भैरव, इकताल

या अति लाड़ के चावन है घर नित ही बधावनो।
स्यामसुँदर दिन दिन लोनो मंगल-मोद-बढ़ावनो है नैन-सिरावनो।

उड़ेल। झेंझ = हिलोरा। सुकुवारी = सुकुमारी। अप० = अपने ढंग से। भानु = वृषभानु। काँतिन = चमक। [३२४] छेत = वियोग, पार्थक्य। [३३०]

जसुमति वारो कुल-उजियारो सब विधि हिय-जिय-भावनो।
ब्रजजन-जीवनधन आनँदघन रस-बरसावनो ॥

(३२६) [तालजात्रा

आजु हमारें काजु है हो जन्यौ है जसोमति मोहन स्याम उजियारो।
आनँदघन ब्रज साचन तारौ चिरजियौ नंदराय-
डुलारो प्रान को प्यारो ब्रज-रखवारो।
मंगल गावौ मोद बढ़ावौ भागनि के फल नैन निहारो।
दिन दिन यह दिन रहौ या घर असीस उच्चारो ॥

(३२७) [मूलताल

चलौ री बधाए नंद के अति आनंद।
मंगल गावँ नैन सिरावँ भाग सकल करि लेखँ देखँ मोहन-पूरनचंद ॥

(३२८) [रामकली, रूपकताल

हो नंद को आनंद कह्यौ न परै।
कान्ह कुँवर कुल-मंडन प्रगटे को यह सुकृत करै।
हो गोकुल-गाँव तीर जमुना के सोभित सुभग थरै।
जसुमति जाकी घरनि सपूती दीपति भवन भरै।
भई बधाई भीर सुहाई हेरति हियो हरै ॥
बहुत भाँति चातक-जन गाव आनँद-मेघ झरै ॥

(३२९) [रूपकताल

नंद-भवन की सोभा आजु देखेई बनि आवै।
कमल-नैन सुखदैन प्रगट भए भाव-भेद को पावै।
जो कछु ब्रज को भाग प्रगट भयौ सो कहि कौन बतावै।
आनँदघन अनेक रस बरसत सब जग मंगल गावै ॥

(३३०) [चौताल

ब्रजपति मंदिर मैं रंग-बधाई, प्रगटे हैं कुँवर कन्हाई।
भाग-बली जगमनि कुल-मंडन मन नैननि सुखदाई।

स्यामसुँदर दिन होनो लोनो जनमत मैया-कूख सिराई ।
आनँदघन अनेक रस बरसत जस-सरिता सरसाई ॥

(३३१) [चर्चरीताल

बधाई नंद के भई हो मोद-बिनोदमई ।
स्यामसुंदर-आगमहि गोकुल-ओप नई ।
फैलि परी हित की फलि, अंतर-सूल गई ।
भागनि बल यह सुभ घरी बिधि बनाय दई ।
आनँदघन मंगल-धुनि ठौर ठौर रई ।
थिर-चर रस-रंग भीजे कीरति उनई ॥

(३३२) [मूलताल

आछी गति बाजै मंदिलरा, स्यामसुँदर के जनम-समै ब्रजपति-घर ।
आनँदघन की घमड़ घोर चहुँ दिसि लाग्यौ मंगल-झर ॥

(३३३) [तालजात्रा

लला को सोहिलो गाऊँ ।
नाँदौ बाढ़ौ चिर जीवौ दिन-दिन उदौ मनाऊँ ।
नित मोहन-मुखचंद निहारौं नैननि हियौ सिराऊँ ।
आनँदघन जसुदा के आँगन दौरि-दौरि आछेई आऊँ रंगनि बरसाऊँ ॥

(३३४) [आसावरी, चौताल

स्यामसुंदर को जनम-द्यौस नंद-सदन आजु आनंद में निपट ।
गावत मंगल गीत गुनीजन प्रेममगन वर बाजे बजावत
नाचत मुदित मैन से बहु नट ।
कुँवर कन्हाई दृगनि सुखदाई नखसिख मनिगननि अलंकृत
राजत श्रीब्रजराज के निकट ।

कूख = कोख । [३३१] फलि = फली । रई = रमी । [३३२] मंदिलरा = (मर्दल) मृदंग । [३३३] सोहिलो = सोहर । नाँदौ = आनंदित होए । [३३४]

अनगन ससि मुख-छवि पै करौं बलि, रंगनि भरे अंगनि की
मयूखनि झलकनि छलकति अति झीने पट।
बनि ठनि बैठे गोप ओप सौं रँगीली रीतिन सुभग सभा सजि
ठौर ठौर सोभा को संघट।
कोटि-कुबेर-संपदादायक इक इक बोल अमोल महा सोई
पल-पल सबकी रसना रट।
द्वार-द्वार नूतन किसलय झलरनजुत वंदन-माला अरुन
खचित दीपत मंगल-घट।
आनँदघन अद्भुत औसर लखि पुहुपनि बरखत रतननि
वारत उमहि उमहि अंबर तैं अमर-ठट ॥

(३३५) [बिलावल, मूलताल

नंद तिहारो कान्ह जियौ।
होवै बड़ी बैस बड़भागन विधिना ऐसो पूत दियौ।
ब्रजरानी की कूख सिरानी ब्रज सब सफल कियौ।
भयो हमारे मन को चीत्यौ हुलस्यौ सजन हियौं।
बहुत भाँति के सुख देख्यौ तुम सो कौन बियौ।
उनै उनै आनँदघन बरसौ खेलौ खाँड़ पियौ॥

(३३६) [धनाश्री

सखी री सुभ दिन आज को, जनमे मोहन स्याम।
घर-घर ब्रज मैं महामोद छबि पूजे मन के काम।
नंद जसोदा अति बड़भागी सब ही विधि रस जस के धाम।
आनँदघन बरसौ सरसौ हित जग-जीवन अभिराम॥

(३३७) [आसावरी, चौताल

चोपनि घुरि बरसै महादानी नँदराय।
सरस बरस-गाँठि ब्रजमोहन की फूल्यौ अँग न समाय।

ब्रजराज = नंद। झीने = पतले, महीन। अमर० = देवौं का समूह। [३३५]

सबको सब कछु भरि देत × × × × × ×अघाय।
मैया को उछाह कहा कहियै ललहि सिँगारत लेति बलाय।
हाँसनि हुलसि चौक-चंदन रचि लै बरखति बहु धन वारति
मंगल-घोष गंवाय।
जीवौ कोटि बरीस असीसत द्विज बंदी बोलत विरुदाय।
गोकुल मैं कोलाहल की धुनि जित तित सुनियत
आनँदघन रह्यौ छाय॥

(३३८) [विभास, इकताल

आजु कान्ह की बरस-गाँठ है, आवौ री मिलि मंगल गावौ सब बर नारि।
ब्रजमोहन-मुख सुख-सोभा-निधि भागनि को फल लेहु निहारि।
जसुमति-बारो अँखियन तारो जापै सरबस दीजै वारि।
आनँदघन चिर जियौ लड़तो विधि पै माँगत गोद पसारि॥

(३३९) [भैरव, आड़ो चौताल

झुलावति नंदरानी कनक-पलन मैं पौढ़े ललन तनक।
देखि देखि सुख-सदन बदन अति फूल भरी विधिना बनाई मन भाई बनक।
मोहन पूत लह्यौ बड़भागिन जस गावत सुक सेस सनक।
गोकुल-जीवनधन आनँदघन जसोदा जननी नंदराय जनक॥

(३४०) [सारंग, मूलताल

गोकुल बधाई भाई बगर-बगर, प्रेम-चुहल माची डगर-डगर।
ब्रज को चंद नंद-घर प्रगट्यौ चहुँ दिसि होति जगर-जगर।
सोभा-सदन बदन मोहन को देखि जी जियै ढगर-ढगर।
जसुमति-भाग धन्य आनँदघन जस-बितान छायौ नगर-नगर॥

बैस = वयस्, उम्र। बियौ = दूसरा। [३३७] घुरि = घोर (शब्द) करके। बरीस = वर्ष। [३३८] बारो = पुत्र। गोद० = आँचल फैलाकर। [३३९] तनक = छोटे। [३४०] बगर = घर। ढगर० = ध्यान देकर निहारना।

(३४१) [पूरबी, तालजात्रा

तैँडा रंग, लाड़ला कान्ह जसोधे ! होवे जीउणा जागणा ।
इसदी वलैया मैंनूँ लगौ अँखड़ियाँ दा लागणा ।
उमरदराज करौ रव सैयाँ तुझ जेही केही वड़भागणा ।
आनँदघन व्रजजीवन प्यारिया सभ सानूँ रस-पागणा ॥

(३४२) [कान्हरो, इकताल

कहा कहौं जसोदा-मन को मोद ।
मोहन-मुख निहारि जी बाढ्यौ लै बैठी भरि गोद ।
अँगुरी अधर परसि हलरावति गावति बाल-विनोद ।
आनँदघन रस बरसि वहायौ जनम-जनम को तोद ॥

(३४३) [शंकराभरण, मूलताल

सब व्रज सुख समुद्र कै बाढ्यौ प्रगटे गोकुलचंद ।
सुछंद गरजि उठ्यौ सुनि अमोघ मंगल-धुनि दूरि गए दुख-बंद ।
हरखे द्रुम-बेली नर-नारी प्रेम-पियूख-मयूख अमंद ।
आनँदघन अनेक रस बरसत धन्य जसोदा नंद ॥

(३४४) [अड़ानो, तालजात्रा

सुहेलड़्याँ आजु नंद के आनंद, नंद के आनंद ।
घर बाहिर गहमह महा कहा कहौं देखेई बनै
व्रज बाढ़ी ओप अमंद ।

---

[३४१] रंग = धन्य है । जसोधे = हे यशोदा । इसदी० = इसकी बला मुझे लगे । अँखड़ियाँ० = आँखों में बस जानेवाला । रव = ईश्वर । सैयाँ = स्वामी । जेही० = जिस किसके लिए । प्यारिया = प्यारा । सभ = सब । सानूँ = हमको । रस० = रस में डुबानेवाला । [३४२] तोद = दुःख । [३४३] कै = होकर ।

जसोदा की कूखि सिरानी, भई है सबकी मनमानी
प्रगटे सुखदानी कुलमंडन ब्रजचंद।
आनँदघन-घमड़ जहाँ अद्भुत छवि फबी तहाँ दृग-चकोर
चित-चातक-हित नित रसकंद॥

(३४५)

आजु मंदल की कहकै ए सजनी सुनि।
बरस-गाँठि ब्रजमोहन की यातैं मन खोलै बोलै धुनि।
ललहि सिँगारि चौक बैठारनि मैया को सुख कौन सकै गुनि।
आनँदघन ब्रजपति बड़भागी बहु धन वारत पुनि पुनि॥

(३४६)

मंदिलरा बाजै रंग सौं ब्रजपति-मंदिर मैं आनंद।
जसुमति-रानी-कूखि सिरानी प्रगटे हैं ब्रजचंद।
बंदीजन जस-बिरद बखानत बिप्र वेद-विधि छंद।
आनँदघन सबको मनबांछित हरखत बरखत नंद॥

(३४७)

आवौ री मिलि गावौ सुलेहरा, आजु हमारे मंगल माई।
उदौ भयौ ब्रजचंद छबीलो ब्रजरानी को कूखि सिरानी
मुख निरखत आनंद-बधाई।
दुखतम टर्यौ कर्यौ सब विधि सुख गोकुल प्रेमसिंधु अधिकाई।
अद्भुत अमी-कला आनँदघन सुजस-जोन्ह रसबृस्टि सुहाई॥

बंद = बंधन। पियूख० = चन्द्रमा। [३४४] सहेलर्याँ = मंगल-गीत, बधाई का गाना। [३४५] मंदल = मृदंग। कहकै = ध्वनि। ललहि = लाल (पुत्र) को। [३४६] मदिलरा = मृदंग या ढोल। बिप्र = ब्राह्मण वेद की विधि से मंत्र पढ़ रहे हैं। [३४७] सुहलरा = मंगल-गीत। अमी-कला = चंद्रमा। [३४८]

ठकुरानी जू की बधाई

(३४८) [रामकली

सोहिलो बृषभान-भवन पै, प्रगटी है मंगल-मनि राधा।
कीरति-कुल-उजियारी प्यारी पूरन करी सकल विधि साधा।
व्रजदेवी सुर-नर-मुनि-सेवी परम-प्रेम-गुन-रूप-अगाधा।
आनँदघन रस-बरस दरस लखि सुखनिधि बढ्यौ टरी सब बाधा॥

(३४९) [हमीर, चौताल

प्रगटी है मंगल-मनि बृषभान-कुँवरि राधा नामिनी।
व्रजजीवन की प्रान-सजीवनि अद्भुत अभिरामिनी।
रास-विहारिनि गुन-अधिकारिनि परम प्रेमनिधि की स्वामिनी।
आनँदघन-रस-रासि रसीली वृंदाबन-धामिनी॥

(३५०) [टोड़ी, मूलताल

हौं बलिहारी राधा-नावँ की।
याहि लड़ाऊँ गाऊँ दिन-दिन देखि जिऊँ जल पिऊँ वारि
कीरति-कुल-उजियारी प्यारी बरसाने गावँ की।
बृषभान पिता की जीय-जियारी श्रीदामा की पीठि प्रगट भई
सोभा-निधि व्रज-ठावँ की।
बंदौं याहि भीजि आनँदघन हौंसनि होउँ निहाल
छिनहि छिन रज लै पावँ की॥

(३५१) [चौताल

साध पूजी मेरे मन की जू, कीरति कन्या जाई।
जसुमति के व्रजजीवन प्रगटे देखि भयौ सुख भानु-धियाई*।

कीरति = कीर्ति, राधा की माता। साधा = उत्कंठा। [३५०] लड़ाऊँ = प्यार करूँ। जियारी = जिलानेवाली। श्रीदामा = राधा के बड़े भाई। की पीठि० =

* बियाई

इन ही घर की एक लुगाइन जो चित-चीती सुविधि बनाई।
आनँदघन छाऊँ गुन गाऊँ नित ही सोहिले मनाऊँ
न्यौछावरि भरि पाई ॥

(३५२) [ईमन, तालजात्रा

बधावो हौं ही गाऊँ री कीरति-कुँवरि कौं मल्हाऊँ।
मंगल की मनि सोभा की निधि निरखत नैन सिराऊँ सुखनि सिहाऊँ।
याही के सुहेले मनाऊँ हाँसनि दौरि दौरि आऊँ।
आनँदघन रंगनि बरसाऊँ याकी बलैया लै लै ज्यो जियाऊँ
बहु बिधि लाड़ लड़ाऊँ सबै कछु पाऊँ ॥

(३५३) [विभास, इकताल

कीरति भई जगत उजियारी भाग-भरी राधा के जाए।
भाग-उदै वृषभान पिता को जग जान्यौ मंगल-मनि आए।
औरै ओप बढ़ी ब्रजमंडल नर-नारी रगमगे बधाए।
नंद जसोदा अति ही फूले सुत-सनेह अंतर सरसाए।
गोकुल-रावल की हित-संपति कैसैं आवत बरनि बताए।
नित नित सुख सुहेले दुहूँ घर आनँदघन भीजे गुन गाए ॥

(३५४) [हमीर, इकताल

गोकुलचंद-चंद्रिका प्रगटी सब ब्रज लगत रमानौ।
कोटि कोटि पूरन सारद-ससि उदै भए हैं मानौ।
महराने की महिमा बाढ़ी प्रफुलित भयौ ममानौ।
उत ब्रजपति-आँगन गहमह इत गहमहात बरसानौ।
महिमंडन बड़भाग-सिरोमनि नंदराय वृषभानौ।

श्रीदामा के बाद जन्मी। [३५१] जाई = जनी, प्रसव की। भानु० = वृषभानु। धियाई = पुत्री (राधा) को। सोहिले = मंगल, बधावा। [३५२] मल्हाऊँ = दुलार से खेलाऊँ। [३५३] रगमगे = आनंद मैं लीन। रावल = राधा का जन्म-स्थान। [३५४] रमानौ = रमणीय। महराना = श्रीकृष्ण का ममाना। ममानो =

दुहुवनि की इकमती रीति को कौतिक कहा बखानौं।
राधा मोहन नाम रसीले जीवन को फल जानौं।
उनै उनै आनँदघन बरसत जस-सायर सरसानौं॥

(३५५) [भूपाली, रूपकताल

बलैया लेउँ आज के दिन की, राधा प्रगट भई है।
मंगल-मनि महिमा-मनि सोभा की मनि सुहाग-मनि बिधिना दई है।
नीके रहौ लहौ सुख-संपति सुकृत-बेलि की सरस जई है।
कीरति-कूखि धन्य आनँदघन जाकी कीरति बरनत निगम नई है॥

(३५६) [परज, इकताल

हो आजु रावल रंग रह्यौ।
कीरति कन्या जनी सुलच्छन सुनि गोकुल उमह्यौ।
मंगल की मनि प्रगट भई निज प्रकास चह्यौ।
सुर-समूह पुहुप बरखै परम सचु लह्यौ।
बेदनि या रस को जस भेद सौं कह्यौ।
आनँदघन सुभ संजोग अब सब निबह्यौ॥

(३५७) [धनाश्री, मूलताल

मिलि चलौ, बधाए जाहु कीरति कुँवरि जनी।
सुख की रासि बिधाता दीनी आजु भावती बात बनी।
देखौ री देखौ किन सजनी दिसि दिसि बाढ़ी ओप घनी।
गोकुलचंद-चंद्रिका प्रगटी अतुल-प्रेम-रस-रंग-सनी।
बाजति अति गहगही बधाई चैन चुहल चहुँ ओर ठनी।
गैल गख्यारनि गहमह माची रावल-छबि नहिं परति गनी।
आनँदघन बरस्यौ इहि औसर धनि धनि यह दिन धनि रजनी॥

मामा का घर। एकमती = एक मत-वाली। सायर = सागर। [३५५] जई = अंकुर। [३५६] रावल = राधा का ममाना। सचु = सुख। [३५८] कमला =

(३५८) [रामकली, रूपकताल

कीरति-कुल-उजियारी लड़ैती राधा प्रगट भई हो ।
मंगल-बेलि सकल छाई सुकृत-समूह-जई हो ।
परम प्रेम की रासि रसीली बाढ़ी है ब्रज ओप नई हो ।
ब्रजजीवन की प्रान-सजीवनि मोद-विनोदमई हो ।
जाकी चरन-रेनु कमला हू चोपनि सीस चढ़ाय लई हो ।
आनँदघन घमड़नि को बरनै सब विधि ताप गई हो ॥

(३५९) [ईमन, मूलताल

लाड़ली राधा की सरस बधाई गाऊँ ।
कीरति-कुल-उजियारी कौं अति मीठी भास मल्हाऊँ ।
भाग-भरी के चाव, चाव सौं नित सोहिले मनाऊँ ।
आनँदघन रस-बरस दरस-हित याही आँगन छाऊँ,
यह न्यौछावरि हौं ही पाऊँ ॥

(३६०) [जैतश्री, रूपकताल

मंगल की निधि है हो, वृषभान-भवन मैं ।
कीरति-कूखि तूखि प्रगट भई सुख-सोभा-सिधि है हो ।
इनको भाग कहा कहि बरनौं कछुक कह्यौ विधि है हो ।
आनँदघन-हित रावल घमड्यौ बरसत रसनिधि है हो ॥

(३६१) [मूलताल

राधा की जनम बधाई हुलसि हुलसि हौंसनि गाऊँ ।
देखि देखि मुखचंद सिहाऊँ मीठी भास मल्हाऊँ ।
कीरति कुल-उजियारी को बहु भाँतिन लाड़ लड़ाऊँ ।
जसोदा-जीवन ब्रजमोहन-हित जोरी-अभिलाष मनाऊँ ॥

लक्ष्मी । [३६०] तूखि = तुष्ट करके । [३६१] भास = वाणी, वचन । [३६२]

(२६२) [बिहागरो, इकताल

यह कौन बिधाता की रचना है कीरति-कूखि आनि प्रगटी।
याहि निरखि जो सुख बाढ़त सो जीयहि जानै चित चढ़ि
बहुरि नाहिंन हटी।
जसुमति-ललन देखि मति आवति जोरी-जुगति अनूप ठटी।
आनँदघन चिर जियौ हमारी जीवनि की निधि
जनम-जनम की तपति कटी॥

(३६३)

बजै वृषभानु कैं बधाई कीरति कन्या जाई।
भाग-भरी राधिका सुलच्छन ब्रज मंगल-मनि आई।
जसुमति रानी सुनि अति हरसी बिधना बनक बनाई।
सुत को हित विचार मन ही मन फूली अँग न समाई।
मंगल मोद बधाई की धुनि गोकुल रावल छाई।
प्रेम-बिवस डोलत नर-नागरि हित-गति की अधिकाई।
यह जोरी चिर जियौ छबीली मन नैननि सुखदाई।
उनै उनै बरसौ आनँदघन सरसौ हरष-हरबाई॥

श्रीकृष्ण-जन्म] (३६४) [टोड़ी, चौताल

आजु बधावनो नंद-भवन मैं भावनो, प्रगट्यौ है स्याम सुहावनो।
होत कुलाहल ठौर ठौर मन नैननि सुख-उपजावनो।
द्विज मागध बंदीजन गन पै मनि मानिक धन घन बरसावनो।
ब्रजपति की उदारता सो कैसैं करि सकत सराहनो।
रस-जस मंगल-सिंधु सबै ब्रज-रंग तरंग-उमंग बढ़ावनो।
आनँदघन ब्रजचंद अखंड अमल अपूरब दरसावनो॥

(३६५) [बिहागरो, इकताल

ब्रज मंगल आजु है हो।
ब्रजरानी सुंदर सुत जायौ पूरब-भाग-उदै हो।

तपति = ताप। [३६३]रावल = राधा का ननिहाल जहाँ वे जन्मी थीं। नागरि =

मन भायौ सब ही के आयौ धन्य सुदेस समै हो।
आजु हमारो झगरो है जसुमति मैया सौं लै हो।
कहियै कहा महासुख सरस्यौ चिरजीज्यौ रसमै हो।
आनँदघन ब्रजजन-जीवनधन बरसौ उनै उनै हो॥

साँझी के पद

(३६६) [हमीर, इकताल

पुजावति साँझी कीरति माय, कुँवरि राधा को लाड़ लड़ाय।
अरचि चरचि चंदन बंदन सौं फूलमाल पहिराय,
विविध मधु मेवा भोग रचाय।
बोली बहिनोला घर-घर तें भरि भरि ओली देत सिहाय।
कंचन थार उतारि आरत्यौ हाँसनि लागति पाय,
लली को भाग सुहाग मनाय।
यह सुख-सोभा दिन-दिन या घर सरस बधाए गीतनि गाय।
आनँदघन ब्रजजीवन जोरी रसिकन सदा सहाय॥

रास के पद

(३६७) [रामकली, मूलताल

रास करि करि सब घरि आई,
भाईं साँवरे प्रीतम बहु लाड़ लड़ाई, अनेक भाँतिन अभिलाष पुजाई।
मनहीं मन में करत बधाई, लीला ललित जहाँ की तहाँ पाई।
कौन सकै कहि भाग बड़ाई, सुक सनकादिक वेदनि गाई।
अतुल प्रेम को रास रचाई, त्रिभुवन मैं कीरति अधिकाई।
रसिक-मुकुटमनि सीस चढ़ाई, आनँदघन रस-रंगनि छाई॥

नारी। हरयाई = हरियाली। [३६६] साँझी = शरद् ऋतु में फूल-पत्तों, अनेक रंगों आदि की सहायता से की गई चौकी या दीवाल पर की चित्रकारी। पुजावति = राधा से पुजवाती है। चरचि = युक्त करके। बंदन = सिंदूर। बोली = बुलवाई, निमंत्रित की। बहिनोली = सजातीय स्त्रियाँ। ओली = कौंछ। सिहाय = प्रशंसा

(३६८) [ईमन, इकताल

रास-मंडल बनि नाचत राधा-मोहन रस-मगन ।
अंग अंग अति गति मटक देखियत झनकत नूपुर पगन ।
छिति पर सखी नछतजुत बिबिध सगन गगन ससि भरत लखि डगन ।
आनँदघन कल गान तान सुनि को न लग्यौ डगमगन ॥

(३६९) [तालजात्रा

नाचै नाचै नवरंगी स्याम सरस साँच सौ गति लै ।
मुँह की फबनि भौंह-दबनि सबनि के चित चूरैं
मुरली मैं रँगरली जति लै ।
राधा रीझि रिझावनि भावनि तान-तरंगनि कीजति लै ।
आनँदघन रस रास रचायौ पाग दई सबकी मति लै ॥

(३७०) [केदारो, मूलताल

लालन लीजै जू फिरि लीजै वहै तान केदारो की मुरली मैं हा हा ।
ललिता लेत बीन मैं चोपनि हौं हू कछू मुख दिखरावौ कौन
सरवरै आ हा ।
या करि यौं गुन गाय लेत हौ छकनि छबीली धुनि को लाहा ।
रीझि लाज आनँदघन घमड़नि कियौ रास तें रस-चौमासो लियौ
हियौ भरि नाहा ॥

(३७१)

रास मैं राधा सब रस राख्यौ ।
बृंदावन स्वामिनि अभिरामिनि भामिनि मन जस राख्यौ ।
आनँदघनहिं भिजाय रिझायौ केलि-कला कस राख्यौ ॥

(३७२)

फूली जोन्ह सुहाई मधुरितु की, वनमाली विहरत रास ।
मधुर मालनी के सिंगार सजि पहिरे बिबिध बर बास ।

करके। [३६९] जति = यति, ठहराव । पाग० = भली भाँति मिला दी । [३७०] ललिता = एक रागिनी । बीन = बाँसुरी । सरवरै = उपमा । [३७१] जस =

साँवल गौर अनूप रूप गुन मोहन हास मोहन विलास।
आनँदघन मुरली-धुनि-घमड़निताननि झर अनयास ॥

(३७३) [इकताल

रास रचायौ राधा नागरि मोहन स्याम नचायौ नीके।
सोही लै गति चोख चटक सौं अनुपम रूप दिखाय सिखावति
त्यौं ही त्यौं जिय भावै पी के।
इनकी सीखनि सिखवनि इन पैं बनि आवै हां
ये पटतर हैं आप सही के।
आनँदघन बृंदावन जमुना-तीर घमड़ि रह्यौ भाग
सरद-राका-रजनी के ॥

(३७४)

सरद-रितु जामिनि फूली है।
जगमगी जोन्ह छबीली छाई सरस पुलिन रस-रास रुचि रची
जमुन-कूल अति ही अनुकूली है।
राधा मोहन नाचत गावत रूप-गुन-कला रसमूली है।
आनँदघन अदभुत विलास-झर बृंदावन मैं देखत भूली है ॥

(३७५) [शंकराभरण, तालजात्रा

रास मैं रसीलो मोहन सरस रंग राखै।
मुरली-धुनि मोहनी कर पदन वंग राखै।
मुकुट-लटक गति की मटक अंग सुढंग राखै।
पुलिन-मंडल जमुना-रुचिकर-तरंग राखै।
सरद-निसा पूरन-ससि-मुख अभंग राखै।
राधा के हित नटवा निपुन अति उमंग राखै।
आनँदघन चातक-व्रत एक संग राखै ॥

जैसा। कस = कैसा। [३७२] बास = वस्त्र। [३७३] सोही = शोभित। चोख = तीव्र। पटतर = समानता। सही = ठीक। राका = पूर्णिमा। [३७५]

(३७६)

अगनित वनिता बनि बनि नाचत वनमाली-सँग बन्यौ है रास
बर बानिक जमुना-पुलिन मैं।
साँवरो सोहन रसिक मोहन चपल चुहुल चतुर जोहनि
सबनि सौं हिलि मिलि विलसत अति आनँद बन मैं।
सरद-राका-रजनी अमल रुचि राचिनी रंजित
सकल जुवति मिलि घोष व्यापक कै पुरयौ त्रिभुवन मैं।
आनँदघन रस-संपति अचरज-मूरति दंपति
नित बिहार दीसत पागे हित-पन मैं॥

(३१७) [शुद्ध चौताल

चटक कतारन की अति नीकी कल सौं नाचै मटक-भर्यौ मोहन।
कर-चरन-न्यास अभिनय-प्रकास मुख
सुख बिलास मन उरझै घुघुरारी सोहन।
प्यारी उघटति कंठ-किलक आछी, दसन-चिलक
आछी, नयन चिलकै जोहन।
आनँदघन रस-रंग-घमड़ सौं ललिता मृदंग बजावति
परनि भरनि सी परति उठि गोहन॥

(३७८) [केदारो, चौताल

सकल कला-प्रवीन वृषभानुनंदिनी रास नचै।
उघटत मोहन नटनागर बर तरल ततकारनि चोपनि चुहल मचै।
ललिता ललित मृदंग मैं रंग राखति विविध भेद सौं सुगंध सचै।
आनँदघन प्यारी के पाइन लागत नाच को साँच रचै॥

बंग = वक्र। [३७६] चुहुल = विनोदी। [३७७] चटक = छटा। न्यास = रखना। अभिनय = नाट्य। चिलक = चमक। परनि० = पानी का पड़ना और भरना। [३७८] तरल = चंचल। ततकारनि = नाच के बोल। नाच० = नृत्य

(३७६)

रास-मंडल में नाचत दोऊ तकटधि कटधि
धिक धिलाग थेई थेई ततथेई।
होड़ाहोड़ी भेद भजावत कुक भुक कत कथु
गावैं तक धुगा धिधिल कटथेई।
हाव-भाव लावन्य कटाछनि प्यारी पिय-हिय रमि सुख देई।
आनँदघन रसरंग पपीहा रीझि रीझि आँकौ भरि लेई॥

(३८१)

साधि कै सुर मुरलिका में केदारो ठान्यो है मोहन रसरंगी रसरंगी।
जैसें जैसें जिय भावै तैसें तैसें राधे रिझावैं तान त्यौनार तरंगी।
कहा कहियै देखि देखि रहियै जिनि जिनि गासनि की ब्यौरनि मैं रंगी।
आनँदघन पिय अरु प्यारी के सुर मैं रहत अभंगी॥

(३८१)

तेरे री मुख की जोति आखैं कोटिक सरद-चंद मंद लागै।
ललित हसनि दसननि की मयूखनि दमकि किसोर
चकोर-नैना नव चैन-पियूषनि सौं पागै।
अति रसभरे खरे कोमल कपोलन मैं मुसकि लाड़िवो
गालनि मैं गाड़ परत आछी छवि जागै।
आनँदघन पिय जिय की जीवनि तोहि सौं अनुरागै
सु तेरेई गुन निसि-दिन रागै॥

वसंत-विलास] (३८२) [हिंडोल, इकताल

वारियै या छवि पै बहुतक वसंत तू मदनगुपाल लाल
के री आली उर-माल भई है।

की सत्यता सिद्ध हो जाती है। [३७६] तकटधि० = नाच के बोल। कुक० = बोल। आँकौ० = अंक, गोद। [३८०] त्यौनार = ढंग। गास = गाँठ। ब्यौ-नरि = खोलना। [३८१] आखैं = देखने पर। गाड़ = गड्ढा। [३८२] फूल =

अंग अंग रति-रंग प्रगट भए, भरी फूल हिय की नखसिख लौं
तेरी रति विधिना तोहि दई है।
मो नैननि को सुख हौं ही समुझति नीकी बसंत-पंचमी नई है।
आनँदघन पिय रीझनि भीजी घमड़-रस राख्यौ अति रस-रासि लई है॥

(३८३)

आवौ री बन देखन जैयै, प्रगटी है बसंत-गुन-गोभा।
बरन-बरन फूलन के आभूषन रचि रचि लै राधा को सिँगार बनैयै।
गूथि मालती-माल मनोहर व्रजमोहन कौं लै पहिरैयै।
आज मनोज-पंचमी सुभ दिन रंग बढ़ैयै हिलि आनँदघन बरसैयै।

(३८४) [चौताल

बसंत फूलौ री बृंदावन आय।
नित ही बसंत-मूरति व्रजमोहन के देखन के चाय।
ताहि सफल करि राधे माधव है मिलि खिलिबे को दाय।
आनँदघन पिय तो हित झूमि झूमि मुरली रहे हैं बजाय
अब तू दामिनि लौं धरि पाय॥

आदिनाथ-स्तवन] (३८५)

आदि हिंडोल गायौं आदिनाथ हौं हू गावत पाछै।
भक्तराज गुन-हित गुनी सुरगंगा-मौलि महास्तव-मूरति काछै।
गिरिजापती गिरीस-निवासी चंद्रचूड़ चिंतामनि नित निगमनि साछै।
आनँदघन को व्रजजीवन गुनगान-गरज दै राखौ निरंतर आछै॥

(३८६) [बसंत, तालजात्रा

री कुसुमित बनराज आजु देखेई बनि आवै री।
जमुना-तट सघन स्याम कैसी छबि पावै री।

प्रसन्नता। [३८३] गोभा = अंकुर। मनोज० = काम-पंचमी, वसंत-पंचमी के दिन कामदेव की भी पूजा होती है। [३८५] आदिनाथ = शिव। काछै = धारण किए हुए। साछै = साक्षी। [३८६] नूत० = नवीन कली। गह्वर =

पवन-वस पराग-पुंज कुंजन पर छावै री।
मधुप-पुंज मंजु घोष आनँद उपजावै री।
तरु बेली-वलित ललित उमंग उर बढ़ावै री।
नूत-मुकुल-कलित मुदित कोकिल कल गावै री।
मुरली-रव-पूरित धुनि सुनियै अति भावै री।
तेरे गुन गाय गाय तोहि यौं बुलावै री।
चलि वलि अब न करि गहर समझि चोप चावै री।
सरस दरस परस साधि औसर के दावै री।
आनँदघन तोसौं मिलि अति रस बरसावै री॥

(२८७) [हिंडोल

स्याम सौं रसीली राधा खेलै बसंत बरसि सरसि परसि राग-रंग।
गावति तान-तरंग उमंगनि आनँद-सदन बदन-लसनि
भृकुटी-नचनि मान-संग॥

(२८८) [चौताल

आजु बन्यौ री सुखदैन स्याम लाल पहिरैं बागे बसंती।
चोवा चित्रन फबी है छैल-छवि उर हार राजत
बरन बरन फूलन की बैजंती।
रूप-निकाई अनूप कहा कहौं जोवन-उलहनि निपट लहलहंती।
तेरे हित आनँदघन घुमड्यौ ढुरि घुरि रस
राखियै सुनि राधे सुहागवंती॥

(२८९) [वसंत, इकताल

विहरत वृंदावन रितु वसंत, राधा रमनीमनि कांत कंत।
प्रफुलित जमुना-तट विविध कुंज-घुंघुरि पराग अलि-पुंज गुंज।
गावत हिंडोल नव तान तार, गुन-रूप-रासि दंपति उदार।
यह सुख सोभा बरनी न जाय, तन मन आनँदघन रह्यौ छाय॥

देर। चावै = उमंग को।

(३९०) [हिंडोल, कपोतताल

आवौ री मिलि गावौ गावौ बजावौ वसंत-पंचमी है आई।
राधा लै वृंदावन चलियै देखन सोभा सुनियत मोहन मुरली सुर गाई।
कोकिला-कुहकनि और खग-चुहकनि लागति स्रवननि अति सुखदाई।
आनँदघन की गरज सुनाई माची है मदन-बधाई ॥

(३९१) [मूलताल

तुम न मानी हौ, उनके तौ मन मान्यौ है मान।
मो मन भायौ करत क्यौं न मिलि पिक पुकारि सुनि कान,
रितुपति आयौ देत निसान।
मदन-सहायक सज्यौ संग ही लै करि कर तीखे बान।
सैन रैन पराग धुंधुरि लखि चलियै वेग सुजान अकिले
आनँदघन प्रिय प्रान ॥

(३९२) [इकताल

स्याम नवरंगी प्यारे खेलत अपनी गोरी सौं।
चोप चाव चरचाय नैन मन प्रेम-रंग-बोरी सौं।
हित-चाँचरि नित मची रहति है नइ नइ उमँग दुहूँ ओरी सौं।
आनँदघन रस रीझे भीजे हिलगनि झकझोरी सौं ॥

(३९३)

जोबन मौर्‌यौ बसंत फूल्यौ सरस गुराई गोभा निकसी।
अंग अंग नवरंग जगमगे मुख सुखसदन चंद्रिका विकसी।
रसिया मधुप लट्टू भयौ डोलै बन बोलै सो लै सुनि पिक सी।
बलि बलि चलि हिलि मिलि खिलि स्यामा ब्रजमोहन सौं
कहा कुलकानि दै रही बिक सी ॥

---

[३९१] मदन० = वसंत।

(३९४) [वसंत

बनि बनि आईं ब्रज-बनिता बर बसंत बृंदावन
बनमाली के हित हिलि मिलि।
कोटि काम अभिराम स्याम-छवि-हेत हुलसि लसे हैं बदन सुख-
सदन सबनि के परम प्रेम-फुलवारी खिलि।
नागर नैन-मधुप मधु-लंपट बिहरत अंग अनंग-रंग झिलि।
बहु बिधि खेल मच्यौ आनँदघन चोवा चंदन बंदन भरत परसपर
जोबन के जोरनि पिलि॥

(३९५) [हिंडोल, चौताल

मेरी राधा को साँचो बसंत यह केलि-कलपलता
मोहन काम-कलपतर।
प्रफुलित फलित ललित हित-बलित सदाई बिराजत
लाग्यौ रहत आनंद-मकरंद-झर।
भौंरी अँखिया पीवति जीवति नित रस सींचे
जमुना-तट हो बृंदावन सुदेस थर।
बिलसत लसत घुमड़ि आनँदघन ऐसे बड़भागी जु
बन ही में करि पायौ घर॥

(३९६) [मूलताल

देखौ राधा को सुहाग, याके बस वा पर-अनुराग।
कान्ह कंत बसंत-मूरति नित याके बस बड़भाग
बिहारन कौं बृंदावन-बाग।
याकी रूप-निकाई बिधना याहि बनाइ बनाई याके गुन
मुरली में गावत पूरत बिबिध रागिनी राग।
याहि परसि सरसत आनँदघन पगे परम पन-पाग॥

---

[३९६] वा = वह। पर = परम।

(३६७) [वसंत, इकताल

वन वसंत फूल्यौ है, जब तें हरि राधा फूले अति मन मैं
उघरि उघरि होरी खेलन कौं हित चित चौपनि।
छाके प्रेम नेम सब थाके वे दिन भरि अभिलाषनि चितवनि
ही मैं भई जु बहुत बिधि हिय जिय सौंपनि।
चाव गहगहे उमगि डहडहे बैस लहलहे जोवन कौंपनि।
दुर्लभ सुलभ अब भई भाग-बल आनँदघन रस पियत जियत
मिलि सियत फागुन-गुन अंतर-खौंपनि॥

(३६८) [हिंडोल, चौताल

वसंत नट्टुवा बनि आयौ री नव नव बरन पुहुप-वसन
पहिरि रिझावन कौं ब्रजमोहन स्याम।
नटनागर गुन-आगर को मुख देखि बिबस भयौ
जाके रोम पर वारि डारियै कोटिक काम।
ब्रज-जुवराज उदार सिरोमनि रीझि दयौ बृंदावन मैं
नित को बिसराम।
आनँदघन पिय तेरे रसरंगनि भीजि रीझि बैन बजावत
लै लै नाम चलि बलि बिहरन कौं सब धाम॥

(३६९) [वसंत, इकताल

होरी खेलैं रस-भीजे रीझे नंदलाल वृषभानु-कुँवरि
भरि रंग-भाय अनुराग-चाय।
आछी मीठी भासनि सौं हित टारौ गारी गाय गाय
मुख-सुषमा कछु बरनि न जाय।

---

[३६७] कौपनि = कौंपल । खौपनि = खौंच, वस्त्र का फटा अंश।
[३६९] भासनि = भाषण, बातचीत । समूहति = सामने आती है।

दुहुँ दिसि सहचरि भरित रंग सौं उमहति समूहति धाय धाय।
मच्यौ खेल बृंदावन जमुना-तट आनंद-अंबुद रह्यौ छाय
यह छवि हेरत मति-गति हिराय॥

(४००)

नवल बृंदावन नव मनि-मंदिर नव कंचन बरनत सिंहासन।
नवल कुँवरि गोपीनाथ बिराजत सोभा-निधि भरे नवल हुलासन।
नव भूषन नव बसन नवल तन महकन भीने नवल सुबासन।
नवल रूप नव नेह-भरे दृग नवल भृकुटि वारौं समर-सरासन।
नव गुन-रूप-अगाधा श्रीराधा जगमगात ढिग नवल प्रकासन।
नव सहचरी सजे नवसत निरखत छवि हरखत चहुँ पासन।
नवल गान नव ताल तान नव नवल जंत्र नव नृत्य-बिलासन।
नवल रीझि नवरँग रस-भीजनि आनँदघन बरसत मृदुहासन॥

होरी जात्रा के पद

(४०१) [देवगंधार

होरी खेलै अलबेलो नंद महर को।
चंदमुखी लखि बढ्यौ रूपनिधि रंग अनंग-लहर को।
चोरत लै मन-नैन सबनि के पूरन प्रेम-गहर को।
गुपत प्रगट भिजवै आनँदघन रसिया आठ पहर को॥

(४०२) [आसावरी, इकताल

हो हो हो होरी खेल मचायौ गोकुल गैल-गखारैं।
ब्रज-गोरिन भोरिन की घातनि डोलत साँझ सवारैं।
चौकस चपल चिकनियाँ मोहन गोहन पर्‌यौ है हमारैं।
आवौ घेरि कनौड़ो करियै कौ लौं धूम सहारैं।
आनँदघनहिं भिजै रिझवैं सब दिन की कसरि निकारैं॥

---

[४००] भीने = मंद मद। सुबास = सुगंध। समर = स्मर, कामदेव। नवसत = सोलहो शृंगार। पास = पार्श्व, ओर। [४०२] चौकस = सावधान।

(४०३) [धनाश्री, मूलताल

री ननदिया होरी खेलन दै।
कान्ह गरबारे उधम पाखौ सह्यौ न परत मो पै।
जो कछु कहैगी सोई करौंगी फागुन मैं जस लै।
आनँदघनहिँ भिजाय रिझाऊँ आजु यहै पन है॥

(४०४) [इकताल

कहु किनि होरी खेलौं रंग रहै मो संग।
तिहारे गुलाल खरकत मो आँखिन व्रजमोहन नवरंग।
जोबन-फागु-सवादै तुम आए, मैं पाए अभिलाष अभंग।
सुघरि उघरि आनँदघन बरसे ढकत नहीँ ये ढंग॥

(४०५) [तालजात्रा

हेली होरी खेलेई बनै, स्याम सुजान पिया सौं।
औसर है मन-भावतो कुल-कानि को गनै।
जीवन-फल लीजियै यह कीजियै पनै।
जीजियै रस पीजियै बरसाय आनँदघनै॥

(४०६) [इकताल

रसिक छैल नँदलाल खिलारी ओर के हम जाने।
अब करि भए निपट ही ढीठक आनत नाहिँ आँखि-तर
काहू फागुन-मद-उमदाने।
भँवर-भाव रस लेत फिरत हौ वीथिन बगर रहत मँडराने।
मसि मँजीठ-रँग-रँगे अधर दृग आनँदघन बरसाने
तिहारे गुन नहीँ परत बखाने॥

(४०७)

क्यौं नकबानी करत हौ अनमिले होरी खेलौ।
बेसँभार इत करत मोँहि कित उत भावति भरि भुजनि सकेलौ।

धूम०=ऊधम कब तक सहूँ। [४०४] किनि = किसके साथ। खरकत = खटकता है। सुघरि = अच्छी घड़ी। [४०६] ढीठक = धृष्ट । उमदाने = उन्मत्त।

रजनी रँग-भीजे तुम आए हरद-रंग मो अंग मो रंगनि रेलौ।
सौंहैं न होन गुलाल-भरे दृग खरकन मो पुतरिन गहि मेलौ।
नखछत खुलि न पीर मनियतु है, अचरज-भकभोरनि रस भेलौ।
आनँदघन पिय नए खिलारी भूमि भूमि छल-बलनि भमेलौ॥

(४०८)

ऐसो छैल नंद को घाती, मेरी छुवत छबीली छाती।
पट की ओट पवन नहिं लागत नवजोबन की थाती।
कछुक अनूठी मिस बनाय ढिग आय करत बतबाती।
मुख सौं मुख लगाय सुख पाय हँसत करि आप-सुहाती।
आटपाय के दाय भस्यौ डोलत है साँझ प्रभाती।
छल-बल करि छाँड़त नहिं काहू पकरत दौरि दगाती।
न्यौज लगौ री हारी, बरजोरी की जहाँ बसाती।
नातर इन अनवादन आनँदघन तब ही विष खाती॥

(४०९)

उमग्यौ है मो चित चाव।
होरी खेलिहौं लाज सौति कहा करिहै अब खुलि खेलन को दाव।
अपने मन की कसरि काढ़िहौं कौ लौं करौं दुराव।
इन फागुन हौं आनि जिवाई, मारत हुते चवाव।
तरसत हुती दरस कौं परस कौं विधिना रच्यौ बनाव।
आनँदघन गुलाल-घमड़नि मैं करिहौं कौंध-मिलाव॥

बगर = घर। मसि = स्याही, काला रंग। मजीठ० = लाल रंग। [४०७] भावति = प्रेयसी। [४०८] बतबाती = बेबात की बात, छेड़छाड़। ओट-पाय = नटखटपन। दगाती = दगाबाज। न्यौज० = देवता को अर्पित हो जाय (गाली) अर्थात् किसी काम की नहीं। बरजोरी० = जहाँ जबर्दस्ती का ही वश चलता हो। नातर = नहीं तो। अनवादन = फालतू बातों से। [४०९]

(४१०)

अचगरे तुमहीँ देखे सब डर डारेंई डोलौ।
खेल किधौं सतभाव लाडिले कंचुकि के रस खोलौ।
जो कोऊ लखि पावै तौ उतर देहुँ कहा कहि बोलौं।
आनँदघन रसवादनि झूमे तुम सौं भलो अबोलौं॥

(४११) [इकताल

होरी खेलियै, आँखिन सौं आँखि मिलाय।
मन की मरक काढ़ि सब दिन की निधरक कै रस झेलियै।
अंजन आँजि मीड़ि रोरी मुख हँसि गरबाँही मेलियै।
गहिर कान्ह को दावँ न राधे जू धुर की अलबेलियै।
मोहनलाल तमाल, बालबर तू सुहाग नवेलियै।
रिझै भिजै आनँदघन पिय कौं रस लै आजु अकेलियै॥

(४१२)

राधे अब की चाँचरि बहुखौ दै तैं री हो चाँचरि-रंग।
फागुन मास फब्यौ भलैं मिलि खेलै ब्रजमोहन-संग।
हौं रीझी तैं रीझत ये तेरो लहलहो सुहाग।
रोम रोम आनँद भरि पिय राच्यौ तेरे अनुराग।
तेरी चाँचरि-राचनी तेरो होरी-त्योहार।
तोतैं रंग रहै सबै रस भीज्यौ रसिया रिझवार।
तेरी भाँवरि-भरनि मैं थकि घूमै ब्रजनायक छैल।
बदन-चंद लटकि लटकि सो रोकै मन-लोचन-गैल।
ब्रज-गोरी गावैं सबै तेरी चाँचरि के गीत।
भिजयौ रीझनि चोप सौं अपनो आनँदघन मीत॥

कौंध = बिजली की चमक। [४१०] अचगरे = नटखट, शरारती। [४११] मरक = हौसला। झेलियै = क्रीड़ा कीजिए। मेलियै = डालिए। धुर की =

(४१३)

ब्रज माची सरस धमारि होरी-रंग रह्यौ। टेक।
घोष-नागरी फगुवा माँगन आई जसुमति-धाम।
प्रेमपगे रगमगे जगमगे निरखे मोहन स्याम।
गावत गारी दै दै तारी, गनि सौं डफहि बजाय।
आँगन मैं औसर की चाचरि चोखन रही मचाय।
फैल फबी छवि छकी खिलारैं चंदमुखी चहुँ ओर।
घेरि लिये गहि किये आपबस कान्हकिसोर चकोर।
काजर दै मुख मीड़ि गुलालहि डगरति फगुवा-हेत।
सैननि ही मैं सुघर साँवरे हा हा करि हँसि देत।
पून्यौ सुदिन समदि सब सुखनिधि बढ्यौ महा समुदाय।
गोद भरति रोहनी जसोदा-मोद कह्यौ क्यौं जाय।
या घर या सुख सदा विराजौ देति असीस बखानि।
आनँदघन रस हौं लहौं जस नित ब्यौंहारहिं मानि॥

(४१४) [ललित, तालजात्रा

उन्हें तुम्हें आछी फाग मची है।
निकट नवेली चटक चोप सौं प्रीति की रीति रची है।
नैन गुलाल भरे अरसौंहे यातें दीठि लची है।
सब ही अँग रँग बोरि पटावै काहू विधि न बची है।
झकझोरनि बँद टूटे छूटे उर नख-रेख खची है।
कौन खेल अब खेलियै तुम सौं बुद्धि बिचारि पची है।
मन भायौ फगुवा दै आयौ सो गति उघरि नची है।
आनँदघन इतहू हित छाए पन परतीति जची है॥

अत्यंत, बहुत। [४१३] चोखन = उमंग की तेजी। खिलारैं = खिलाड़ी गोपियाँ। डगरति = आगे बढ़ती है। हेत = लिए। समदि = भैंट करके।

(४१५)

भले बनि आए हौ मोहन लाल रँगीले नैन भराए गुलाल।
फागु मैं भावते भाग जगे लगे नीके करी हौं निहाल।
अंग अनूठी सुगँध के डोरे गुही अलिमाल रसाल।
रीझनि प्रान अरगजा ढोरि करैगी आनँदघन ख्याल॥

(४१६) [इकताल

आजु निपट ढिठौं हैं दै रहे साँवरे काढ़ि कै मन की।
भौंह नचाय कहा ऐंड़त हौ निडर अमेड़ भए व्रजमोहन
घात बनि गई बन की।
व्रज-राजा की कानि न मानत गोधन-ओट टोह पर-धन की।
फागु देखि अति ही इतराने आनँदघन करि नाक नचैहौं
तौ हौं राधा तन की, सौंह करति हौं अपने पन की॥

(४१७) [टोड़ी, चौताल

उमड़ि उमड़ि घुमड़ि घुमड़ि घुरि घुरि ढुरि ढुरि
खेलत राधा-मोहन रस-फागु-रवानी।
बिकसि बिकसि निकसि निकसि अपने अपने झुंडन तैं झूमत
झुकत झपटि लपटि बातनि घातनि कहत गहत बनक बनी मनमानी।
मचत रचत पचत बचत रचत लचत घिरत भरत
मोरत झकझोरत करि ऐंचातानी।
आनँदघन भिजवत रिझवत भीजत रीझत
रस लेत देत मन नैननि सुखदानी॥

---

[४१४] लची = नीची हुई। पची = परेशान हुई। [४१५] डोरे = सहारे। ढोरि = लेकर। ख्याल = खेल। [४१६] अमैड़ = मनमानी करनेवाला। गोधन० = गाय चराने के बहाने। धन = द्रव्य; धन्या (स्त्री)। तन =

(४१८) [तालजात्रा

हौरी खेल रंगनि रँगीलौ छैल छबीलौ नागर गोरी-संग।
उरजनि तकि तकि छाँड़त छवि सौं कंचन की पिचकारी
भरि भरि नवल केसर-रंग।
प्यारी घात बनावत आवत मूठि-गुलाल चलावत सुंदर साँवरे अंग।
आनँदघन-रस दोउ वरसीले झूमि झूमि झपटि लपटि
जात भीने अनँग-उमंग॥

(४१९)

पकरि बस कीने री नँदलाल. झुरमुट करि चहुँघा तैं बहुत ब्रजबाल।
काजर दियौ खिलार राधिका मुख सौं मसरि गुलाल।
देखत बनै स्याम की सोभा, सहनसील कै भए निहाल।
धन्य फाग धनि भाग की जागनि जामैं ऐसे हाल।
चपरि चलन कौं बहुत अरबरत छूटत क्यों ऽब परि प्रेम के जाल।
सूधे किए बंक ब्रजमोहन आनँदघन रस-ख्याल॥

(४२०)

होरी के खिलवार।
देखे मोहीं सौं रसवाद चलायौ नए छैल रिझवार।
गावत फिरत उघारी गारी अगवारैं पिछवार।
आनँदघन उनएई दीसत गिनत न साँझ सवार॥

(४२१)

डोल की झूलनि मैं बिराजै झूलनि हार वारनि की मोतिन सिंगार
अपार ओप लसै साँवरे गोरे अंग।
अतुल रूप जोवन की तुलनि मैं दरसत नए नए रंग।

ओर, पच्छ। [४१७] रवानी = प्रवाह। [४१९] झुरमुट = झुंड। मसरि =

सरस फागु खेलि झेलि सकल सुख भीजे रीझे रुचि-तरंग।
जमुना-तीर कुसुमित वृंदावन नित नित ही आनँदघन वरसत
सखि-समाज लिये संग ॥

(४२२)

आजु मेरे आए मया करि होरी खेलन स्याम रसीले।
सब रँग भीजि रहे पहिले ही ब्रजमोहन आनँदघन प्यारे
कौन रंग भिजऊँ तुम्हैं रस-बरसीले ॥

(४२३) [केदारो

सलोनो स्याम उज्यारौ, ब्रजलोचन को तारौ।
ताक लगाय फिरत फागुन मैं जोवन को मतवारौ।
आँखिन पैठै हियरा बैठै, खोरि खगै पथ ढारौ।
रँगनि भिजै रिझवै ब्रजमोहन गनत न साँझ सवारौ।
मसरि गुलाल कसरि सब काढ़ै चेटक रूप ढरारौ।
नकबानी करि लेत इतै पै लागत है अति प्यारौ।
जित जैयै तित सनमुख पैयै क्यौंहूँ टरत न टारौ।
आनँदघन रसबादनि छायौ कान्हर गोकुलवारौ ॥

(४२४) [मूलताल

होरी खेलि मदनमोहन प्रीतम-संग।
सुंदर वदन गुलाल लगैयै चोवा चंदन बंदन स्याम सलोने अंग।
गैयै बजैयै चाँचरि मचैयै तचैयै री वाहि गति अति ही सुढंग।
आनँदघन वरसैयै वढ़ैयै सरसैयै सुख उपजैयै अद्भुत रंग ॥

(४२५) [अड़ानो, इकताल

कन्हैया रंगनि भीजै मोहूँ रंगनि भिजावै।
दीठि-पिचक भरि भेदभाव सौं मो तन ताकि चलावै।

मलकर। [४२०] उवारी = खुली, बेपरद। [४२३] खोरि० = गली मैं डटता है।

नैननि सैननि होरी खेलै करत सबै कछु जो जिय भावै।
रीझनि रमड़ि घमड़ि आनँदघन उघरि उघरि झर लावै॥

(४२६) [रूपकताल

निपट लाड़िली एरी तेरी मुसक्यान प्रानप्रिय-जिय सौं खेलि खगी है।
अधर पाय धरि धाय रंग बरसाय जाय दुरि भिजवति
लुखवति हाय, कौन होरी दाय के चाय पगी है।
फूलि फूलि फैलति रस-भीनी उमँग-भरी खरी ढोरी लगी है।
आनँदघन रिझवार छैल तिहि आयन,
गैल अरैल भयौ टारत नहिँ नेकु टगी है॥

(४२७) [ईमन, तालजात्रा

सुघर खिलार याकी बहियाँ क्यौं मरोरी रे।
नीठि निहोरैं खेलन निकसी आनँदघन उनए बरजोरी रे।
ए रहौ दैया कौन भाँति सौं खेलत होरी रे॥

(४२८) [इकताल

गुजरिया तू रँग-राची मोहन के अनुराग।
होरी मैं उनहूँ की तोसौं नीकी लागी लाग।
छुटे बार मुख ओप डहडही जगमग रह्यौ सुहाग।
आनँदघन हित चतुर चातकी पगी प्रीति-पन-पाग॥

(४२९) [तालजात्रा

होरी के खिलार भए नए छैल अजू तुम बरबट बहियाँ मरोरौ।
आवत मूड़ चढ़े अति ज्यौंज्यौं करौ कछु कानिकनौड़ जनावत जोवनजोरौ।
बातनि घातनि की चतुराई चलैगी न ह्याँ ऐसैं औरन भोरौ।
बहबहे कहँ रहे, धोखे काहु के आनँदघन
भूले से फूले फिरौ तकि ताही त्यौं टकटोरौ॥

पय = दूध। [४२६] टगी = टकटकी। [४२७] निहोरे = मनाने पर, बिनती करने पर। [४२९] बरबट = बरबस, जबर्दस्ती। कानि० = मर्यादा का ध्यान,

(४३०) [इकताल

मन न रहै मेरो ब्रजमोहन पिय सौं निधरक होरी खेले विन।
दुरि दुरि झुरि झुरि कौ लौं रहौं री विधना दियौ है ऐसो दिन।
अपने रँगनि भलैं भिजवौंगी जैसें हौं घर में भिजई इन।
आनँदघन सनेह की घुमड़नि जानी है सब ये रसबादिन ॥

(४३१) [मूलताल

ऐसैंऐसैं होरी खेलौ उघरिउघरि ब्रजमोहनसौं ब्रजमोहनसौं मनमानी।
परु की कसरि काढ़ि सब नीकैं लैहौं भावतो
दाव भयौ सो अब मैं यह जिय ठानी।
कानि-कनौड़ कौन की सजनी भई बहुत दिन यौं नकबानी।
आनँदघनहिं भिजाऊँ तौ वृषभानुजा साँची
रस दामिनी उनहूँ परिहै जानी ॥

(४३२) [इकताल

नंदलला वृषभानुकिसोरी होरी खेलत चायन सौं।
सुंदर बदन धमारिन गावत उपजावत रस-भीनी
तान धावत गुलाल लै ल दायन सौं।
दुहुँ दिसि अली भली सब बातनि घातनि रचि
आवत खेलन कौं जोबन-भरी तमक तायन सौं।
आनँदघन पिय प्रिया नागरी दुरि मुरि दृस्टि बचाइ
जाइ ढिग रंगनि भरी बिविध भायन सौं ॥

(४३३)

लाल हिये लखि भरत लालसा बाल-बदन मंडित-गुलाल।
मोहि लेत लगि चोवा बैंदी भाग-राग-जगमगे भाल।

लिहाज। बहबहे = बहेतू। टकटोरौ = टकटकी लगाकर देखते हो। [४३१] परु = गत वर्ष। [४३३] बैंदी = बिंदी। हाल = तुरंत। बीर = हे सखी। [४३४]

बीर तीर छुटि अलक छबीली छलनि सहित चित छलति हाल।
नीलमनी मिलि बनी दुलरी गर मोतिन खिलि जोति-जाल।
अंग अंग अनुराग-रँग-भरी खरी ओट दीने तमाल।
चोटनि लोटपोट करि डारत आनँदघन त्रितवत रसाल॥

(४३४)

लै गुलाल मुख डार्यौ पी कौं, देखौ होसाहोसी या ती कौं।
इतने पै गुलचा दै आई, चकित रहि गए कुँवर कन्हाई।
याको धीर कहत नहिं आवै, याकी गति दामिनि कह पावै।
लियौ दावँ हरि चकाचौंध भरि, आई अलग छराए लौं छरि।
मीड़ति करनिमौन हरि ठाढ़े, रूप-विमोहित जनु लिखि काढ़े।
होरी खेलि रंग इन राख्यौ, बहुत दिनन तें जो अभिलाख्यौ।
आनँदघन रस भिजै रिझायौ, परसि आँच हिय सूखि सिझायौ॥

(४३५) [विभास, मूलताल

निपट निडर खिलार हौ देखे, होरी को खेल यह कौन।
आनँदघन पिय झूमेई आवत बहियाँ पकरि
हठि गरें लगावत कहाँ लौं गहै कोऊ मौन।
कितहुँ भोर ही आई जमुना-जल तुम घर तैं लै निकसे सौन।
चतुर छैल कै देत गवाख्यौ देह-दसा लखि लैगी
ननदिया भूलि आई हौं हौन॥

(४३६) [तालजात्रा

तुम उन ही सौं हो खेलौ जिन सौं खेलि रहे हौ लाल लगौं हैं।
नैन गुलाल-भराए आए रस की रैन जगौं हैं।

होसाहोसी = लाग-डाँट। गुलचा = गाल पर हाथ की मुट्ठी से हलकी चोट करना। छराए० = मायादृश्य या जादू की भाँति। सिझायौ = रससिक्त हुआ। [४३५] सौन = गुलाल, लाल रंग। हौन = अपनापन। [४३६] धुर के =

इतने पै मो त्यौं मुसकत हौ धुर के निपट लजौं हैं।
घर आए को बरजै बैठियै कै धरौ पायँ अगौं हैं।
आनँदघन देखेऊ देखे अपनी गौं भरमौं हैं॥

(४३७) [इकताल

गोकुल मैं होरी यह कैसी, अहो दैया देखी सुनी न आजु लौं।
निधरक पकरि पराई नारि कौं झकोरत झटपत करत है निपट अनैसी।
दिन चारिक हौं अपनेई पीहर औरौ रहती जौ पै जानती होति ह्याँ ऐसी।
आनँदघन ब्रजमोहन अति उफनाय चल्यौ अब जानि परैगी जैसी॥

(४३८)

परख्यौ करत गहर लौं हमैं यह धोटो खरो महर को कन्हैया।
बाहू मैं फिरि होरी माची अब कैसे बचियैगो दैया।
चौचँद की चाँचरी मचावत आठ पहर को छैल खिलैया।
आनँदघन हित कहुँ जौ भिजवै बजै फाग मैं बीध बधैया॥

(४३९) [कालिंगरो

स्याम प्यारे हमसौं होरी खेलन आए मेरे कित के।
ब्रजमोहन सोहन सुखदायक सब बिधि लायक नायक नित के।
निपट रगमगे सौंधे सगबगे जावक खौरि कनौड़े हित के।
आनँदघन हित चोपनि उनए उघरे भाग भुरहरे इत के॥

(४४०) [पूरबी, तालजात्रा

गोरी गोरी दिनन की थोरी, बोरी रँग स्याम सलोने सौं खेलै होरी।
गावै गारी रस-ढारी प्यारी तारी दै दै करै चित चोरी।
हँसि जोहै सोहै उमेठियै पैठियै जाति हिये बरजोरी।
आनँदघन मुरकि डारै भोरी सो झोरी मैं रोरी और जानै को री।

सिरे के, बहुत अधिक। अगौं हैं = पहले, आगे। भरमौं हैं = घूमनेवाले। [४३७] पीहर = मायका, नैहर। [४३८] गहर० = देर तक। धोटो = पुत्र। बीध० = (मुहावरा) अच्छी बधाई बजेगी, (खूब बदनामी होगी)। [४३९]

(४४१) [बिहागरो, इकताल

छैल साँवरिया खेलै रस-होरी।
अपनी गोरी राधा के साथ सहचरी-भीर
तीर जमुना के पहिरे नव-नव रँग-चीर।
केसू-केसरि-रंग कमोरी झोरी गुलाब-अबीर।
दाव चाव बहु भेद-भाव सौं चाँचरि-चहल मचाय।
चलित कटाछ-सहित पिचकारी तन मन लागत जाय।
चित-चकोर चोपनि चितवत मुखचंदहि पलक बिसारि।
भीजि रह्यौ अनुराग-रंग मैं रीझनि सरबस वारि।
कुंज केलि-कौतिक नित नित ही रची रहति यह फाग।
गावत सरस कंठ रस-गारी झर लाग्यौ अनुराग।
फगुवा लैन दैन को जो सुख सो कहि सकत न बैन।
आनँदघन रस घुमड़ि घुमड़ि सुख लेत पपीहा-नैन॥

(४४२) [मूलताल

तुम ऐसैं कैसैं खेलौ होरी।
मानि सहैं किये नाहिं तुम आए, जाहु क्यौं न अब भई न थोरी।
औरौ बसति लुगाई ब्रज मैं मोहिं लगी कछु चोरी।
नए छैल निबटे आनँदघन करत फिरत अति ही बरजोरी॥

(४४३) [इकताल

कैसैं डफ ढार ही ढार बजावै, नवेली नागरि गारी गावै।
मुख-बिलास मोहन-बिलास जोबन-उजास
ताननि मिठास मोहन के मनहिं घुमावै।
फाग भाग-अनुराग-भरी सुहाग की ओप बढ़ावै।
रसमूरति आनँदघन पिय कौं नव नव रँगनि भिजावै॥

भुरहरे = तड़के, सबेरे। [४४२] निबटे = निपट, अत्यंत। [४४३] ढार०

(४४४)

रसिक छैल नंद को नैनन मैं होरी खेलै।
भरि अनुराग दीठि-पिचकारी अचानक मेलै पलकनि ओकै झेलै।
और कहा गति कहौं सखी री सब बिधि करत भावती केलै।
झूमि झूमि रसिया आनँदघन रिझै भिजै रस रेलै॥

(४४५) [मूलताल

होरी खेलि खेलि ब्रजनागरि छैल सौं
छबीली कुँवरि राधे राखी न कसरि।
लियौ दाव अति चोप-चाव सौं रँगीले ललन-मुख
आई है गुलालहि अलग मसरि।
हाथ लगाय हाथ किये मोहन कौंध-चौंध मैं रह्यौ थसरि।
आनँदघनहिं भिजै रस राख्यौ दामिनि कहा बिचारी,
कछु उपमा कहिबे कौं न सरि॥

(४४६) [सारंग, इकताल

केसरि की खौरि किये जोबन-मद पिये निडर
छैल डोलत है नंद को मोहन स्याम।
हाथ मैं गुलाल लिये और कछू छल छिये
काहू पै दिये से हिये याही बिच मड़रात कौन धौं काम।
जमुना जान कौं कब की अरबरति कौ लौं घुसेई रहियै धाम।
आनँदघन झूमेई देखियै यह धूम गोकुल ही हा आठौ जाम॥

(४४७)

नई पाहुनी आई है तू, अरु आई फागौ उफनाय।
काल्हि कान्ह की दीठि परी कहु आजु भोर तैं इतै मड़राय।

ढंग से, ठीक ताल पर ताल देकर। [४४४] ओक = अंजली। केलै = केलि।
[४४५] थसरि = शिथिल होकर। [४४७] लाय = आग। न्याय = ठीक ही।

बरजि कही जिन जैयो पनघट मेरो कह्यौ न मान्यौ हाय।
वा रसलोभी को हियरा हठि ल आई लायहि लगाय।
अजहूँ बैठि रहौ किन घर मैं कित डोलत बिछियानि बजाय।
मेरो ज्यौ सुनि चलत ठौर तैं रसिक छैल घूमै छकि न्याय।
आनि बन्यौ भागनि इन औसर जो कछु तेरे उचित चाय।
दै चुकि होरी के सिर यह सब नीकैं आनँदघनहिं भिजाय॥

(४४८) [मूलताल

अटपटे होरी के खिलार, देखे।
बिना जान-पहचान रावरे होत फिरत गरहार।
नए छैल गहि बाँहिं रहत नित करत न नेकु बिचार।
आनँदघन कैसैं कै परसै फल अति ऊँची डार॥

(४४९)

गोकुल-गलीनि मच्यौ है खेल, बाढ़ी अति रस-झुरमुट-झेल।
खेलत छैल खिलारी मोहन जोबन छकि अलबेल।
चौकस चपल चतुर ब्रजगोरी आई सजि अप-अपनी मेल।
गारी चाय ठठोली बोली रस की ठेलाठेल।
चौकनि चलनि भरनि अरु भाजनि उठनि उमगि अँगपेल।
आनँदघन रस बरसत रुचि सरसत फैलि परी रसरेल॥

(४५०) [सावंत सारंग, इकताल

होरी को खेल तोही पै बनि आवै यहि छुरबर को धरई।
दामिनि तैं सौगुनी चपल चोपनि मनभावन भरई नेकु न डरई।
पहिलैं कौंधन भरत चखन मैं बहुन्यौ मन भायौ सो करई।
आनँदघनहिं पपीहा करि राख्यौ राधे ऐसैं सौतिनि दरई॥

---

[४४९] रेल = रेला, प्रवाह। [४५२] धौताल = शरारती। मानसै = मन

(४५१) [विभास, चौताल

निपट अरसानी सरसानी मैं जानी मानी है
सुखदानी साँवरे सौं सब निसि रंगरली।
मची है चोप-चाँचरि भाँति भाँतिन मिलि
दावनि चावनि भावनि भाँति भली।
भई है दलमि दलमलनि छल-बलनि
सुबस कियौ गिरिधरन बली।
आनँदघन रस-फाग फबी तोहि
राधे रँगीली मेरी तू प्रान अली॥

(४५२) [काफी, इकताल

होरी के दिन चारिक तैं तुम भए हौ निपट धौताल हौ।
दबे पावँ पाछे तैं आवत पकरि करत बनमाल हौ।
काढ़त मनौं बैर कितहू को उर दलमलत गुलाल हौ।
नन्दबानी करि लेत मानसै निपटै रसिक रसाल हौ।
दैया दौरि दौरि खौरत मोही सौं यौं गिधए किहि बाल हौ।
आनँदघन देखे जू देखे नए छैल नँदलाल हौ॥

(४५३) [मूलताल

रस राख्यौ राधा होरी खेलि।
रंगनि भर्यौ खिलार साँवरो हँसि चितवनि-पिचकारी मेलि।
व्रजमोहन की महामोहनी रची बिधाता सब गुननि सकेलि।
आनँदघन पिय भिजै रिझायौ उमगि उमगि अनुरागनि ठेलि॥

(४५४) [मारू

लाल खिलार हौ भए, होरी के तौ खेलि खेलियै।
निपट लगि परे, जाने छैल छबीले रावरे ढंग नए।

को। गिधये = परचे। [४५४] बगर = घर। अए = अये, आश्चर्यबोधक अव्यय।

नकबानी हौ करत अचगरैं याही बगर मैं रहत छुए।
ब्रजमोहन आनँदघन प्यारे भिजवत सिझवत रिझवत कैसें हौ अए॥

(४५५) [परज, तालजात्रा

ऐसें खेलियै जिन, जिन सौं खेलि रहे।
चतुर कहावत आवत घातन मैं तुम बातन ही मैं लहे।
इन भाँतिनि किये बहबहे कै घर ढंग सीखि गाढ़े गहे।
होरी की हौंस पुजायोई चाहत आनँदघन नए छैल चहे॥

(४५६) [मूलताल

हो छबीले मोहन सौं खेलै हित होरी
राधिका नवेली रस-रंगनि झकोरी हो।
गावत रसीली गारी हिलि मिलि ब्रजनारी
रूप-गुन-फूलवारी फूली चहुँ ओरी हो।
दरस-परस-खेल रंग की उझिल-झेल
जोबन की रेल-ठेल चोपनि सौं बोरी हो।
मोद-घन झर लायौ केलि-सिंधु सरसायौ
प्रेम की उरैड़ कुलकानि-मैड़ तोरी हो॥

(४५७) [इकताल

निसि नींद न आवै होरी के खेलन की चोप।
स्याम सलोनो रूप रिझोनो उलही है जोबन-कोप।
मुरली टेर सुनाय जगावै याही बगर मड़राय।
हौंहुँ ठानि रही अपने जिय खेलौंगी उघरि बनाय।
कहा करैंगी सास ननदिया यह सबको त्यौहार।
आनँदघन गुलाल घमड़नि मैं करि लैहौं हियहार॥

---

[४५५] बहबहे = नटखटपने, शरारतें। हौंस = लालसा। पुजायोई = पूर्ण कर लेना चाहते हो। चहे = देखे। [४५६] मोद-घन = आनंद का बादल ; आनंद-

(४५८) [सोरठ, मूलताल

मनमोहन छैल खिलार।
होरी-रँग भख्यौ चितै चितै रँगि लेत रँगीलो रस भिजवै इकसार।
अंग अंग छबि-संग उमगि दृग मग रोकत सिंगार।
प्राननि गरैं हरैं गहि डारत हँसनि ठगौरी-हार।
मैननि सैन जगावत गावत आवत छावत प्यार।
आनँदघन फागुन वा गुन गसि लाज भई उपहार॥

(४५९) [गौरी, इकताल

नंद महर के अचगरे कान्ह होरी करि पाई।
ऐसो लंगर ढीठ बधुनि सौं करत फिरत है बरिआई।
आवौ सखी घेरि गहि लीजै कीजै अपनी मनभाई।
गुलचि बनाय नचाय चुहुटियत छाँड़ि देहिँ करि अधिकाई।
आँखिन आँजि भाल टिकुली दै निरखैं छबि दृग-सुखदाई।
आनँदघन यह मतौ ठानि दृढ़ करौ न तनक सिथिलताई॥

(४६०) [भूपाली

खेलत होरी स्याम लाल सौं गोरी गोरी गोपबधूटी।
रसिक छैल रिझवारहिँ रिझवति रस मैं रूप-गुन-भरी बे-संधि छूटी।
कहा कहौं जोवन की जागनि तनदुति कोटि दामिनी लूटी।
आनँदघन पिय रचि गुलाल मैं करि राखी सब बीरबधूटी॥

(४६१) [गूजरी, आड़ो चौताल

सुनि तू मेरी हितू हित की बात।
तेरे हित होरी रची ब्रजमोहन हो पठई लैन सैननि ही हाहा खात।

घन। उरैद = प्रवाह। [४५८] हरैं = धीरे से। [४५९] गुलचि = गुलचे लगाकर। बनाय = स्वाँग बनाकर। चुहुटियत = परेशान करके, खूब गत बनाकर।

उठि चलि बलि राधे रँग राखि लै बरख्यौ सुफागुन कुसरात।
आनँदघन पिय जिय की जीवनि रस पीजै,जीजै,कीजै सफल गुन गात॥

(४६२) [रामकली, तालजात्रा

इन बिरहा फाग मचाय दई, आए नए निरदई सुध्यौ न लई।
रंग लियौ सब अंगनि तैं हौं भिजै भिजै यौं सुखई।
याकी हाय चलियै कहा कहियै पल-पल हियरा होत हई।
आनँदघन व्रजमोहन सोहन ऐसें औसर कैसें करत गई॥

(४६३) [मूलताल

होरी को खेल हम ही त्यौं गन्यौ जान्यौ, लाल तिहारो ढंग जान्यौ।
औरौ बसति बहुत व्रजसुंदरि याही बगर कहा मन मान्यौ।
निपट निलज के गौहन लागे नयो नेह कितहू तैं आन्यौ।
खेल किधौं सतिभाव लाड़िले काहे कौं प्रान करत हौ छान्यौ।
आनँदघन अठपहरा घुमड़े इन बातन हियरा अरसान्यौ।
रंग राखि रस राखि खेलियै जोबन सिखई सौं चित सान्यौ॥

(४६४) [भैरव, इकताल

होरी के मदमाते आए, लागे हौ मोहन मोहिं सुहाए।
चतुर खिलारनि बस करि पाए, अंग अंग बहु रंग रचाए।
दृग अनुराग-गुलाल भराए, खेलि खेलि सब रैनि जगाए।
ज्यौं नाचै त्यौं पकरि नचाए, सरबस फगुवा लै मुरकाए।
आनँदघन रस बरस सिराए, भली करी हमहूँ पर छाए॥

(४६५) [तालजात्रा

जहाँ तुम होरी खेलन गए तहाँ नए नए रस-रंग।
आनँदघन व्रजमोहन प्यारे कहा दुरावत डोरत हौ मोसौं
भीजे अनँग-उमंग उघरि आए ढंग।

---

[४६०] बै-संधि = वयःसंधि। बै संधि० = पूर्ण युवती। [४६२] करत० = आनाकानी करते हो। [४६४] मुरकाए = लौटे। [४६६] खौंखोरि = परेशान

सरबस फगुवा दै करि छूटे सरल किए गहि स्याम त्रिभंग।
कौन-खेल अलबेलियै तुम सौं छैल छबीले गुननि भरे सब अंग ॥

(४६६) [नायकी, इकताल

हौं मोहन अब तो रँगनि भरौंगी।
मो खौंखोरि दौरि कित जैहो मन भायौ सो करौंगी।
आजु रँगीलो दावँ बन्यौ है काहू सौं न डरौंगी।
आनँदघन रस भिजै रिझैहौ या रारि तैं न टरौंगी ॥

(४६७) [तालजात्रा

होरी खेलियै सँभारि, सुनियै हो खिलारि।
कौन खेल यह भिजै भजि जैबो आँखिन मैं गुलालहि डारि।
अति ही ढीठ भयौ कहा डोलै नेकु धौं काहू की ओर निहारि।
आनँदघन अब कौन बचैगो बबा की सौंह दै हौं गारि।

(४६८) [सूहो, इकताल

आवौ आवौ रंग बढ़ावौ मोहन स्याम उजारे सौं खेल रचावौ।
निपट नवेली जोबन-गहेली चाँचरि मचावौ
गहि गुलचायन चाय चलावौ।
भागनि बन्यौ फागु कौ औसर गोकुल के खेलवार कहावौ।
आजु तिहारी पैज यही जू आनँदघन पिय को
भली भाँतिनि सौं भिजै रिझावौ ॥

(४६९)

हो हो करि चाँचरि माची खेलत गोपी कान्ह धमारि।
हिय की हिलग चिलग बिन उघरी फागुन औसर रहे बिचारि।

करके। [४६८] गुलचायन० = गाल पर मुट्ठी बाँधकर हलका आघात करना। पैज़ = प्रतिज्ञा। [४६९] हिलग = प्यार। चिलिग = चिलक, पीड़ा।

खेलत खेल महा मन भाए गावत निपट रसीली गारि।
चहुघाँ ब्रज आनँदघन घमड्यौ रस भीजे गोकुल-नरनारि॥

(४७०) [सोहनी

चलि री वलि राधे गोरी साँवरे सौं खेलै होरी।
तोहि बुलावन काज भावते सैननि हौं बहु भाँति निहोरी।
आईं निकसि सकल ब्रजबनिता खेलन कौं चित चाहत थोरी।
रचत न रँग पिय के हिय तो बिन दुरति कहाँ लौं हित की चोरी।
तोसौं हार जीत जिय मानत औरनि सौं जीतेऊ सो री।
ये आनँदघन तू छबि-दामिनि, है अति रस-बरसीली जोरी॥

(४७१) [सुघराई, मूलताल

नंदलला रे होरी बीति गए बसिबो है एक ही बास।
अधिकौ ओटपाव करि बैर कत भूलत
कौन भरोसैं फूलत है तजि त्रास।
ओछी बातनि कहा बड़ाई गहत क्यौं न बोलन मिठास।
टोडिस नयौ भयौ डोलत आनँदघन
तिनही सौं पगि खगि जिनसौं पूजी जिय-आस॥

(४७२) [जयतिश्री, इकताल

ए अति रस बाढ़ौ री रस बाढ़े पिय-प्यारी के होरी ठानत।
भरत, भजत, झपटत, लपटत सनेह सौं तन-मन सानत।
राधा मोहन की रंग-राचनि कैसैं बरनि बखानत।
आनँदघन बिनोद-घमड़नि-सुख सखी-नैनई जानत॥

(४७३) [सोहनी, मूलताल

आव रे आव रे मिलि खेलैं होरी।
बहुत दिननि की लाजन भीजी भागनि फागुन है आयौ।

---

[४७१] टोडिस = शरारती।

ब्रजमोहन आनँदघन प्यारे कानिकनौड़ कौन की करिहौं
• करिहौं रे अब तौ मन भायौ बिधना बनिक बनायौ ॥

(४७४) [बिलावल

मची चुहल चाँचरि की नंद महर के द्वारै।
आई उमहि ब्रज-बधू चोपनि चतुर खिलारै।
सुमिलि सुगीतनि गावै निपट रसीली भासनि।
मोहन-मनहिं घुमावै प्रेम-लपेटी गासनि।
अद्भुत उकति अनूठी प्यारी परम सुगारी।
जसुमति-लालहिं तन मुख लाजन ढकी उघारी।
रूप-गहगही गोरी बैस डहडहे गातनि।
गोकुल की दौरि आई बनी-ठनी सब बातनि।
मिँहदी रचे करनि डफ बिबिध बिचित्र बिराजै।
महा मनहरन हाथनि परसति सरसति बाजै।
झूमरि झूमि कबरि सौं भाँवरि भरन लगी है।
डुलनि झुलनि अलकनि की मिलि मुख-जोति जगी है।
कान्हहि करखि हरख सौं चाहति नाच नचावन।
चौकस चपल चिकनिया चपस्यौ चहति चवावन।
गुलचनि रुचिर कपोलनि उलचति धीरज हिय को।
प्रगट परस होरी मैं ज्यौं ज्यौं चाहति है पिय को।
बंक बिहारी मोहन सरल किये ब्रज-बालनि।
गौंसनि हौं सनि सौं सनि समझि सहत सब हालनि।
बिच बिच रचत चपलई मोहन चतुर खिलारी।
मरम-परस की घातनि तकि बृषभान-दुलारी।
नई लगनि के लाले फागुन भरि पुरए हैं।
छाँह छिवन ही दूभर, उररि उरसि सु रए है।

[४७४] भासनि = बोली से। कबरि = चोटी, जूड़ा। चपस्यौ० = धोखा देना चाहती है। उलचति = निकालती है। गौंसनि = घात से। लाले = उत्कंठा।

लागत निपटहि नीके मोहन रूप-उजागर।
दरस, परस, सरस परबस नायक नगधर नागर।
बदन गुलाल-रगमगे दिखत अबीर अँध्यारै।
मदन-कुलाहल कौतिक गनत न बनत बिचारै।
ग्वार गम्वारनि ढूके सैननि स्यामहि बोलैं।
बुधि-बल बरनि न पावत घिरि नवबधू कलोलैं।
इचनि खिचनि कर पट की लपट-झपट रँग-रपटनि।
भरनि भिजनि फिरि उलटनि दलनि दबोचनि दपटनि।
छलन छुटे मोहन की गोहन लागति बाला।
नैन भौंह कर नचनि लचनि लड़ि डोलनि माला।
दाबि लेन के चावनि चौगुन चोप चढ़े हैं।
ग्वार ग्वारनी मिले टोल अप-अपनी पैज बढ़े हैं।
फागुन फबी सु बिलसनि झुलसनि हौंस नई है।
यह सुख, सोभा, संपति दंपति भाग भई है।
घोष घुमड़ि आनँदघन अति रस-रमड़ मची है।
भीज रीझि सनसनी समय-छबि दृगनि खची है।
सगुन साथ त्यौहार सदा निहरैं हरि भामिनि।
महामोद बढ़वार कौन कौं रे दिन-जामिनि।
नित बसंत रसवंत कंत-कामिनि सुख-भोए।
बसौ लसौ मन नैन चैन के ऐन अहो ए।
भाग-भरी ब्रजबधू स्नेह को स्याम सभागो।
हौं इनही के अनुराग-पाग रसना गुन रागो।
ऐसें देखत रहौं रहस आनंदकंद के।
महारसवती राधा कौतुक ब्रह्म चंद के॥

दूभर = कठिन। उररि० = विशेष उमंग से। रए = अनुरक्त हुए। नगधर = गोवर्धनधारी। अबीर = बुक्का। अँध्यारैं = धुंध। [४७५]

(४७५) [बरवा

या गोकुल को लोग बुरौ री बीर क्यौं भरियै ।
एक चवाव भरे पहिले ही बहुरयौ फागुन मास ।
आई उघरि सबनि के मन की निपट अटपटी गास ।
सपने स्याम न देख्यौ कबहूँ कैसौ रूप सुभाय ।
तासौं मोहिं लगाय लज्यावत निलजी गारी गाय ।
छाँह बचाय चलौं मारग मैं धरौं न ऊबट पाय ।
तऊ न रहै अपलोक दिये बिन कहि सजनी कित जाय ।
साँची कहौं तऊ झूठहि मानै सौंह पत्याय न कोय ।
अब तिनही जस दैहौं आनँदघन होनी होय सु होय ॥

(४७६) [ललित

मेरी ननँदी री कहि कहा करौं ।
तेरे बीरन परदेस बिरमि रहे फागुन के दिन कैसैं भरौं ।
इत ब्रजमोहन होरी गावै मुरली-धुनि सुनि सिथिल परौं ।
आनँदघन मोहीं पै घमड्यौ रीझि लाज सौं कौ लौं अरौं ॥

(४७७) [इकताल

छतियाँ दलमलै गुलाल, अनोखो खेल सीख्यौ नँदलाल ।
निकसि न सकियै गैल-गखारैं अचकाँ उचकि करै बनमाल ।
घात लगाए फिरै रैनि-दिन फागुन लग्यौ किधौं जंजाल ।
मोही सौं कहि कहा बैर है औरौ बसत बहुत ब्रजबाल ।
मेरेइ बगर मचावै चौचँद गावै निपट उघारे ख्याल ।
आनँदघन लाजनि घुरि भिजवै कासौं कहौं भटू ये हाल ॥

(४७८) [धनाश्री

हाँ हाँ रे मोरे मीत पियरवा तुम सन खेलौं होरी रे ।
तिहारे काज सुजान सुंदर बर लाज करन सब तोरी रे ।

ऊबट = अमार्ग । [४७६] बीरन = भाई । [४७६] थे = आप । कैयाँ =

घरि पल इत उत जान न देहौं गहि बाँधौं हित-डोरी रे।
आनँदघन बरसैहौ निसिदिन एहो जोबन जोरी रे॥

(४७६) [मूलताल

भोला कान्हजी थे कैयाँ होली खेलो।
औराँ का धोखा स्यौं म्हारी आख्याँ बुका मेलो।
पराई रहो जी इस्यो कौण छै थाँसूँ होसी भेलो।
आठ पहर अमलारा माता देता डोलो हेलो।
आनँदघन झूम्याई आवौ, कोई गाली देलो॥

कैसे। औराँ = औराँ की। आख्याँ = आँखों में। पराई = परे ही, दूर। इस्यो = ऐसा कौन है। थाँसूँ = आपसे। होसी० = साथ होगा। भेलो = साथ। अमलारा = नशे में मत्त। देता० = पुकार लगाते फिरते हैं। कोई० = इन लत्तणों से कोई तुम्हें गाली देगा।

प्रीति-पावस

चौपाई

बन बिहरत मोहन घनस्याम । गिरि-गोधन-समीप सुखधाम ।
रितु बरषा हरषी ब्रज बसिकै । जित नित बसत स्यामघन लसिकै ॥१॥
उमह असाढ़ बाढ़ियै रहै । चोप-चटक आगम ही चहै ।
भयौ करति कौंधनि सी हियैं । देखैं जियैं चटपटी लियैं ॥२॥
सावन-रूप महारस-प्यावन । ब्रजलोचन हरियारो सावन ।
मनभावन हित भूमि*रिझावन । ब्रजमोहन है ब्रजसुख-सावन ॥३॥
नित ही हित-झलानि झुकि बरसै । नित ब्रजमोहन-सावन सरसै ।
सो बिलसत बरषा-सुख बन मैं । उनए नए नेह के पन मैं ॥४॥
घिरि घटानि जब झुकति अँध्यारी। बन भीजत डोलत बनवारी ।
सुमिल सखा-समाज-सँग सोहै । मन लोचन अभिलाषनि दोहै ॥५॥
बरन बरन सिर ललित लपेटा । कोटि कोटि मन-मनमथ मेटा ।
रचे रुचिर पातनि के छतना । मुख-छबि सम सारद-ससि सत ना॥६॥
मधुर उर-अली गुंजा धरै । काहु मुरलिया सुर-सँग ररै ।
मित्र अनेक एक मन मतै । सदा स्याम सुंदर रुचि रतै ॥७॥
बहुत भाँति बन लीला करैं। प्रेम-चरित्र कहे क्यौं परैं ।
गिरि कंदरनि कहा छबि कहियै । सब रितु सुख समूह सुख लहियै॥८॥
तहाँ बैठि बन ब्रज छबि हेरत । फैलि फैलि सुखरासि सकेलत ।
बिहरत कहूँ कलिंदी-तीर । कही परति क्यौं सोभा-भीर ॥९॥
मेघ-माधुरी जमुना-नीर । तैसो सुंदर स्याम सरीर ।
बृंदाबन घनस्याम-सुरूप । ताल तमाल कदंब अनूप ॥१०॥

---

[४] झला = वृष्टि । [६] छतना = छाता । [७] मतै = मत करते हैं ।

* बरसि ।

कुंज-पुंज बानक बहु भाँतिनि। लसत लतागन अपनी पाँतिनि।
मोहन-ठावँ मोहनै मोहै। को है बरनि सकत छबि जो है॥११॥
ताल बिसालनि झूला मेलत। फूलनि झूलि झूलि रस केलत।
सुख-सहेट ब्रज-गोरिनि घात। दिनहीँ कियेँ रहत अधरात॥१२॥
पावस-दिन मावस-निसि मनौं। निसि-बिलास कैसें धौं गनौं।
भीजे रहत प्रेम-पावस मैं। संगम प्रबल होत मावस मैं॥१३॥
जमुना-पूर परम सुखदायक। दरसि परसि सरसत ब्रजनायक।
घमड्यौ रहत सदा आनँदघन। यह जमुना यह बरषा यह बन॥१४॥
हित-पावस नित ही हित रहै। चातक-चोप सदा निरबहै।
फिरि पावस रितु जब इत आवै। रीझि भीजि रस या रस पावै॥१५॥
रितु अनरितु इत की रति औरै। सेवति रसिक स्याम सिरमौरै।
मुरली मैं मलार धुनि पूरत। या बिधि जड़-जंगम-चित चूरत॥१६॥
बन-ब्रज नेह-मेह बरसावै। यह पावस-सुख कहत न आवै।
सजल नैन देखै अनदेखै। उघरति नहीँ लगति न निमेखै॥१७॥
चटक-चोप चपला हिय लवै। सबही दिसि रस-प्यासनि तवै।
बरन बरन अभिलाषनि धुरवा। मुदित मनोज-मनोरथ मुरवा॥१८॥
भीजत भिजवत बाहिर घर मैं। कछु सुधि नाहिँ परति हित-झर मैं।
सब ब्रज रस-धाराधर धूम। सदा एकरस आरति-झूम॥१९॥
बढ़त प्यास ज्यौँज्यौँ झर सरसै। आनँदघन ब्रज अचरज बरसै।
दामिनि-प्यास भर्‌यौ घन डोलै। सदा मिलन मैं मानत ओलै॥२०॥
नित ही इतहि कोकिला कूजैं। केलि-कलाधर आसनि पूजैं।
रस की फैल सदा ब्रज दरसै। जहाँ अपूरब अंबुद बरसै॥२१॥
सब बिधि भरत मनोरथ-ब्यार। ब्रज पावस नित दरसत प्यार।
यह पावस या ब्रज नित बसै। सदा स्यामघन इत रसमसै॥२२॥

---

[१२] सहेट = संकेतस्थल। [१३] मावस = अमावास्या। [१४] पूर = प्रवाह। [१८] लवै = चमकती है। धुरवा = बादल के स्तंभ। मुरवा = मोर। [१९] धाराधर = बादल। [२०] ओलै = विरह ही। [२२] ब्यार = बयार, वायु।

अद्भुत घनदामिनि सुख सरसै। रस पीवतहू प्यासनि बरसै।
चढ़े रहत नित हियनि-हिँडोरनि। बिहवल प्रेम-झूल झकझोरनि॥२३॥
मधुर प्रेम-पावस के गीत। रसनिधि-धारा मोहन-मीत।
सूहे बरन बसन अनुराग। धारे रहत सदा बड़भाग॥२४॥
भीजे सहज भिजावत सदा। नव घन दामिनि रस-संपदा।
ब्रजबन भीजि रह्यौ हित-रस मैं। ये गुन प्रगट प्रीति-पावस मैं॥२५॥
यह पावस नित ही इत रहै। बरसनि सुख-सरसनि को कहै।
अचरज-झर लाग्यौई दरसै। घन तरसै चातक रुचि परसै॥२६॥
दामिनि घनहिँ भिजै रस पीवै। घन दामिनिहिँ देखि ही जीवै।
अद्भुत घन दामिनि को धर्म। लह्यौ न परत अनोखो मर्म॥२७॥
प्यासनि बरसत अति रस भरै। अचरज घन दामिनि संचरै।
बरन-बरन लीला-रस-रंगनि। नित नवीन पूरन सब अंगनि॥२८॥
ब्रजबन रस सींचत घुरि ढुरिकै। उघरि घमड़ि अरु घमड़नि दुरिकै।
बिसद केलि रस-रेलि बढ़ी है। प्रबल प्रेम-भर नदी चढ़ी है॥२९॥
उमग असाढ़ चटक झर-सावन। भरि भैंटनि भादौं मनभावन।
बारहमास छ रितु यह पावस। पून्यौ को सुख देत अमावस॥३०॥
या ब्रज सब रितु अचरज-रूप। अचरज गोपी कान्ह अनूप।
सुरस प्रीति-पावस ज्यौं बरसै। त्यौं ही सब रितु को सुख सरसै॥३१॥
कहत-कहत कछु बन कहि आवै। लहत लहत मति सुरति भुलावै।
या ब्रज सहज प्रीति-पावस है। सब रितु आइ करत ब्रज रस है॥३२॥
जिनके दृग चातक या मोर। तेई तकत सु पावस-ओर।
रसकदंब-कादंबिनि दरसै। भीजि भीजि आनँदघन बरसै॥३३॥
सब रितु मच्यौ रहत चौमासौ। बरसि बहायौ सब ही साँसौ।
तोष पोष जैसो जब चहियै। हित-पावस मैं नित ही लहियै॥३४॥

रसमसै = रस बरसाता है। [२४] सूहे = लाल। [२९] बिसद = स्वच्छ। रेलि = प्रवाह। [३३] कदंब = समूह। कादंबिनि = मेघमाला। [३४]

इहाँ आय पावस ह्व भीजै। नित त्यौहार मनावत जीजै।
सो पावस ब्रज बसि यौँ सोहै। सोहै मोहै पटतर को है॥३५॥
फूले सरस कदंबनि पुंज। महा मनोहर मधुकर-गुंज।
अमित लतागन फूलनि छाए। सोभित बन के सदन सुहाए॥३६॥
बनवारी को सुख बरसावत। पैठत बैठत बूँद बरावत।
गायनि को सुख देखत ठाढ़े। लिये लकुट आनंदनि बाढ़े॥३७॥
सावन-बरन सहज ब्रजमोहन। मन दृगनि के मनोरथ-दोहन।
सुहृद-संग बिहरत बन फिरै। अँखियाँ निरखि न क्यौँ हूँ फिरै॥३८॥
मुरली माँझ मलार जमावत। पावस को सौभाग्य बढ़ावत।
सुरहि परसि पखान जल होय। ब्रज पावस-गुन धर्‍यौ समोय॥३९॥
सोई प्रगट ठौर ही ठौर। पावस बिहरत ब्रज-सिरमौर।
गावति गोपी रितु के गीत। भीजत रीझत मोहन-मीत॥४०॥
झुरमट झूला बगर बगर है। पावस को सुख डगर डगर है।
सरिवर तीर समाजहि सजै। झूलै, गावै, निरखै, लजै॥४१॥
मिलि भीजन के सुख बहु भाँति। पीवत नैन न मानत साँति।
पावस को सुख बहुत प्रकार। ब्रज-बन बिहरत रसिक उदार॥४२॥
गोप-कुँवर सबके मन मोहत। सब ही हित सब ही बिधि सोहत।
सोभित खोही लकुट सुदेस। पावस ग्वार मनोहर बेस॥४३॥
ब्रज-बन गैल-गर्‍वारनि गाहत। लहत फिरत ज्यौँ ज्यौँ सुख चाहत।
बहु बिधि पावस के सुख बिलसै। नित गोपी गुपाल मिलि हुलसै॥४४॥
चोप-हर्‍यारी हिलमिल बाढ़ी। पावस निज संपति है काढ़ी।
राधा - मोहन - चरन - बिहार। उर धरि पावस कियौ बिचार॥४५॥

साँसौं = संशय। [३५] पटतर = समानता। [३७] बरावत = बचाते हुए। [३९] सुर = स्वर, मुरली की ध्वनि। पखान = पाषाण। समोय = भिगाकर। [४१] झुरमट = समूह, भीड़। बगर = घर। डगर = गली। [४२] साँति = शांति। [४३] खोही = पत्तों का छोटा छाता। सुदेस = सुंदर। [४४] गर्‍वारा =

श्री ब्रजभूमि बास करि छावस । कृस्न-ब्रजबधू रस को पावस ।
पाय तुस्ट है, अति छबि छावै । हित हरियारी रची बिछावै ॥४६॥
तापरि ते पद धरि धरि सरसैं । अति कोमल तृन-अंकुर परसैं ।
बन बेलिन बहु भाँति फूल फल । सरनि समाज भरे निरमल जल ॥४७॥
बिलसत सब सुख मोहन स्याम । उर पर पीन जुही की दाम ।
कौतुक-रूप सदा बनवारी । आनँद-मूरति रसिकबिहारी ॥४८॥
सहज सिँगार कहर कछु कहौं । रूप-गहर की थाह न लहौं ।
बरन मनोहर जगत उज्यारो । कारो ब्रजलोचन को तारो ॥४६॥
पावस बन बन घूमत डोलै । जोबन-छक्यौ छैल-गति बोलै ।
ब्रजरस भिजै रिझै इन राख्यौ । ब्रजरस-सार सोधि इन चाख्यौ ॥५०॥
चातक अतुल प्रीति-पावस को । जस-रसियै चसको ब्रजरस को ।
भीजे रहत प्रीति-पावस-रस । पावस-सुख बिलसत भीजनि बस ॥५१॥
यौँ ही भीजत भिजवत रहौ । ब्रजरस सुख-सवाद नित लहौ ।
गोप-दुलारे जसुदा-जीवन । अति-रस-प्यावन अति-रस-पीवन ॥५२॥
पावस-प्रीति पपीहा दरसै । तोषै पोषै पीवन तरसै ।
घन चातक को मरम न परसै । ब्रज प्यालनि 'आनँदघन' बरसै ॥५३॥

छोटी गली । गाहत = घूमते हैं । [४५] हस्यारी = हरियाली । [४६] छावस = छाना । [४८] दाम = माला । [४६] कहर = अपार । गहर = गहराई ।

स्फुट

खंडिता] (१)

लाल तुम कहाँ तेँ आए जगे।
अंजन अधरन भाल महाउर चरन धरत डगमगे।
अलसी अँखियाँ नैन घुमावत बोलत बोल न लगे।
आनँदघन पिय उहईं जाउ तुम जहाँ तुम्हारे सगे॥

पूर्वराग] (२)

स्याम सुजान के बिन देखेँ अटपटाय कहुँ ना लागै मन।
नेकहुँ कै न्यारे भएँ नीर भरि आवैँ मेरे नैननि लीने हैँ री पन।
कहा करौँ मन परबस परि गयो इनहिँ न दुख छिन छिन छीजत तन।
आनँदघन पिय सौँ कहा कहियै उनकी हाँसी और को मरन॥

होली] (३) [कान्हरो

मोसौँ होरी खेलन आयौ।
लटपटी पाग अटपटे पेचन नैनन बीच सुहायौ।
डगर डगर मैँ, बगर बगर मैँ सबहिन के मन भायौ।
आनँदघन प्रभु कर दग मीड़त हँसि हँसि कंठ लगायौ॥

(४) [सारंग

सो बाँके डफ बाजे हैँ री, नँदनंदन रसिया के।
अब की होरी धूम मचैगी, गलिन गलिन अरु नाके नाके।
कोउ काहू की कानि न मानत, ग्वाल फिरैँ मद छाके छाके।
आनँदघन सौँ उघरि मिलौंगी, अब न बनै मुँह ढाँके ढाँके॥

---

[१] बोलत० = बोलते समय ठीक ठीक बोल नहीँ निकलते। [४] नाका=

(५) [काफी

प्यारे जिन मेरी बहियाँ गहौ।
मारग मैं सब लोग लखत हैं दूरहि क्यौं न रहौ।
मन मैं तुम्हरे कौन बात है सोई क्यौं न कहौ।
कहिहौं जाय आजु जसुमति सौं नाहक मग न गहौ।
आनँदघन तापै नहिं मानत लरिका है निबहौ॥

(६)

भाजि न जाय आजु यह मोहन सब मिलि घेरौ री।
अंजन आँजि माँडि मुख मरवट, फिरि मुख हेरौ री।
गारी गाय गवाय लाल कौं करि ल्यौ चेरौ री।
आनँदघन बदला जिन चूकौ, भँडुवा टेरौ री॥

['रसखान और घनानंद' से]

खंडिता] (७) [भैरव, इकताला

आए जू आए भोर, भलई।
सब निसि जागे, दृग अनुरागे, पागे रंग-तबोर।
आवौ बैठो बिजन डुराऊँ चकित भए नव कुसुम-किसोर।
आनँदघन रस-बस की छबि है वाहि ओर तें आए जोर॥

पूर्वराग] (८) [तिताला

सोवत नगर मैं, बोल्यौ को है बगर मैं।
इक डर है मोहिं सासु ननद को अलियाँ गलियाँ डगर मैं।
प्रात-समै उठे नंदनँदनजू बिरहा भीजत झर मैं।
आनँदघन ब्रज उठहिं सबेरे सासु ननद के डर मैं॥

(९) [टोड़ी, इकताला

न जानूँ कौन भाँति मिलौगे तिहारी भँवर की सी रीत।
जित सुगंध पावत तित धावत :हौ तुम गरज परे के मीत।
आनँदघन ब्रजमोहन प्यारे ठौर ठौर के रस चाखत हौ कैसैं करैं प्रतीत॥

सुहाना, जहाँ से गली मुड़ती है। [६] मरवट = मुँह पर रेखाएँ बनाना।

शिव-विनय]

(१०)

करो सिव ! महर की नजर निसिदिन घरी घरी पल-छिनन।
कासीनाथ बिसेस्वरदाता, तुम सब जग के बिधाता,
तुम ही देवौ दूध पूत लच्छमी आनँदघन ॥

पूर्वराग]

(११)

[बिहाग, चौताल

ए नैना तोहि बरजौं तू नहिँ मानत मेरी सीख।
बरजि रही, बरजी नहिँ मानत घर घर माँगत रूप-भीख।
चित चाहत है प्यारे के सरूप को अब कैसैं मिलनो होय देख।
आनँदघन प्रभु मोहन प्यारे टारे न टरत कहीँ करम-रेख ॥

(१२)

[तिताला

प्रीति करी सो मैं जानी रे मोहन।
दै बिस्वास गयौ तजि मथुरा रति कुबजा सौं मानी रे।
कपट-भरौ कारो तन तेरो कपट-भरी सब बानी रे।
आनँदघन हित चित री बाताँ जानत राधा रानी रे ॥

(१३)

[झिंझोटी

स्याम नैनाँ दी चोट वो, लागी मैंड़े वो।
जब तैं कृपा करी नँदनंदन मिट गई कर्म की खोट वो।
लख चौरासी भटकत भटकत स्यामसरन आई ओट वो।
आनँदघन घनस्याम मोहें मिल गए मन मैं रही कहुँ टोट वो ॥

(१४)

[जंगला, तिताला

तेरे नैनाँ ने जुलम किया बे, स्याम तेरे।
भौंहैं कमान बान कटाछन बेधा गरीबाँ दा हिया बे।

---

[७] तबोर = तमोल, तांबूल। बिजन = व्यजन, पंखा। [१०] महर = कृपा।
[१३] मैंड़े = मेरे, मुझे। खोट = खोटापन। ओट = शरण। टोट = कमी। [१४]

रहदे मस्त महा मतवारे खंजन मध जो पिया बे।
आनँदघन ब्रजमोहन जानी मन मोह असाडा लिया बे॥

चतावनी] (१५) [कलिंगरो

बिलम न करियै हरि के भजन को।
करत पलक मैं और और तैं नाहिं भरोसो तन को।
आय बन्यौ है औसर नीको करि लै मनोरथ मन को।
बार बार सुमिरै गुन-पूरन सुनि जस आनँदघन को॥
['राग-कल्पद्रुम' से]

वृंदावन-महिमा] (१६)

बृंदाबन आनंदघन, कछु छबि बरनि न जाय।
कृस्न-ललित-लीला-करन, धारि रह्यौ जड़ताय॥
['राग-रत्नाकर' से]

(१७) [पूरबी ख्याल, इकताला

नैनन देखिबे की बानि।
बरजि रही बरज्यौ नहिं मानैं छूटि गई कुल-कानि।
आनँदघन ब्रजमोहन जानी अंतर की पहचानि॥

(१८)

ननदिया होरी खेलन दै।
कान्ह गम्यारँ ऊधम पारै अब मो पै रह्यौ न परै।
जो कछु कहै सो करिहौं ननदिया फागुन मैं जस लै।
आनँदघन रस भीजि भिजैहौं आजु यहै पन है॥

(१९) [कामोद

मेरो अब कैसे निकसन हो दैया, होरी खेलै कान्हैया।
या मारग ह्वैकै हौं निकसी, मेरो छीनि लियौ दहिया दैया।

खंजन० = खंजनों ने शराब पी है। असाडा = हमारा। [१६] जड़ताय = जड़त्व।

सासरै जाऊँ तो सास रिसैहै, पीहर जाऊँ खिजै भैया।
इत डर उत डर भूलि गिरी, सँग मोहन नाचौंगी ताथैया।
ब्रजमोहन पिय सौंह तिहारी, भीजि गई मेरी पाँवरिया।
आनँदघन कैसैं कै भीजैं, ओढ़ि रहे कारी कामरिया॥

['ब्रजनिधि-ग्रंथावली' से]

(२०) [खंभाती

होरी खेलौंगी स्याम-सँग जाय हो सजनी भागनि तैं फागुन आयौ।
वो भिजवै मेरी सुरँग चुनरिया मैं भीजवौं वाकी पाग।
चोवा चंदन और अरगजा रंग की परत फुवाग।
लाज निगोड़ी रहै चाहे जावै मेरो हियरा भरो अनुराग।
आनँदघन खेलौं सुघर बालम सौं मेरो रहियौ हे भाग सुहाग॥

(२१) [रामकली

होरी के दिनन मैं तू जो नवेली मति निकसै बाहर घर ते री।
तू जो नई दुलही नव जोबन, रहि घर बैठि मानि सिख मेरी।
डगर-बगर औ घाट-बाट मैं कान्ह करत नित चरचा तेरी।
जा दिन तोहि लखै घनआनँद ता दिन होय कौन गति ए री॥

(२२) [सोरठ

लागी रट राधा,राधा नाम।
नवल निकुंज-पुंज बन हेरत नंद-ढुटौना स्याम।
कबहूँ मोहन खोरि साँकरी टेरत बोलत बाम।
आनँदघन बरसौ मन-भावन घन बरसानो गाम॥

(२३) [धनाश्री

ए रे निरमोहिया जानी तोरी प्रीत।
जब लागी तब किनहुँ न जानी अब कछु औरै रीत।

---

[१८] पारै = करता है। [१९] पीहर = मायका। पाँवरिया = जूतियाँ।
[२०] वो० = वह भिजाएगा। पाग = पगड़ी। सुघर = चतुर। बालम = पति।

चरचत हैं सब लोग बटाऊ और कुटुम सब कुल की रीत।
निसि-दिन ध्यावत वा मूरत कौं आनँदघन सो मीत॥

(२४) [मलार

गरजि गगन छाई री, माई गरजि गगन छाई।
घटा उमड़ि घुमड़ि झूमि झूमि भूमि पर आई।
दादुर मोर करत सोर, गनत नाहीँ साँझ भोर, झींगुर-झिंगार सुहाई।
तैसिय अँधियारी लगत डरारी भारी, पिय बिन जिय अति अकुलाई।
आनँदघन लखि घनस्याम रूप नैनन रह्यौ है समाई॥

(२५) [भैरव

सब मिलि आवौ गावौ, बजावौ मृदंग,
आजु हमारे लाल जू की बरस-गाँठ।
कनक थार भरि भरि मुक्ताफल लै न्यौछावर करवावौ।
नव नव बालक बंदन-माला द्वार द्वार बँधवावौ।
आनँदघन प्रभु को जनम सुनत ही लाग्यौ सुजस सुहावौ॥

(२६) [मालव

ए री हौं तौ चहूँगी री।
अपने प्रीतम को अति सुख दूँगी कर जोरे पाय गहूँगी।
सासु ननद की कानि न मानूँ देवर गारि सहूँगी।
आनँदघन ब्रजजीवन प्यारे चरनन लिपटि रहूँगी॥

['घन-आनंद' से]

---

[२२] ढुटौना = पुत्र। खोरि = गली। [२३] चरचत० = बदनामी करते हैं। बटाऊ = पथिक। [२६] चहूँगी = देखूँगी।

आनंदघन

(जैन कवि)

प्रशस्ति

(१) [कानड़ो

मारग चलत चलत जात, आनँदघन प्यारे, रहत आनँद भरपूर।
ताको सरूप भूप, तिहुँ लोक थैं न्यारो, बरषत मुख पर नूर।
सुमति-सखी के संग, नित नित दौरत कबहुँ न होत है दूर।
जस-बिजय कहै सुनो हो आनँदघन ! हम तुम मिले हजूर॥

(२)

आनँदघन को आनँद सुजस ही गावत, रहत आनँद सुमति-संग।
सुमति-सखी और नवल आनँदघन, मिल रहे गंग-तरंग।
मन मंजन करिके निर्मल कियो है चित,ता पर लगायो है अबिहड़ रंग।
जस-बिजय कहै सुनत ही देखो, सुख पायो बोत अभंग॥

(३) [नायकी, चंपकताल

आनँद कोउ नहिं पावै, जोइ पावै सोइ आनँदघन ध्यावै।
आनँद कौंन रूप ? कौंन आनँदघन ? आनँद गुण कौंन लखावै ?
सहज सँतोष आनंद गुण प्रगटत, सब दुबिधा मिट जावै।
जस कहै सो ही आनँदघन पावत, अंतर-ज्योति जगावै।

(४)

आनँद ठोर ठोर नहिँ पाया, आनँद मैँ आनंद समाया।
रती अरति दोउ सँग लिये बरजित अरथ ने हाथ तपाया।
कोउ आनँदघन छिद्रहि पेखत, जसराय संग चढ़ि आया।
आनँदघन आनँद-रस झीलत, देखत ही जस गुण गाया॥

(५)

आनँद कोऊ हम दिखलावो।
कहँ ढूँढ़त तूँ मूरख पंथी, आनँद हाट न बिकावो।
ऐसि दसा आनँद सम प्रगटत, ता सुख अलख लखावो।
जोइ पावै सोइ कछु न कहावत, गावत ताको सुजस बधावो॥

(६) [कानड़ो, रूपकताल

आनँद की गत आनँद जाने।
वाई सुख सहज अचल अलख पद, वा सुख सुजस बखानै।
सुजस बिलास जब प्रगटे आनँद-रस, आनँद अछ्म खजाने।
ऐसि दसा जब प्रगटे चित-अंतर, सोहि आनँदघन पिछाने॥

(७)

एरी आज आनँद भयो, मेरे तेरो मुख निरख निरख
रोम-रोम सीतल भयो अँग-अंग।
सुध समजण समता-रस झीलत, आनँदघन भयो अनँत रंग।
ऐसि आनँद-दसा प्रगटी चित-अंतर,ताको प्रभाव चलत निरमल गंग।
बारि-गंग-समता दोउ मिल रहे, जस-बिजय झीलत ताके संग॥

(८)

आनँदघन के सँग सुजस ही मिले जब, तब आनंद-सम भयो सुजस।
पारस-सँग लोहा जो फरसत, कंचन होत है ताके कस।
खीर-नीर जो मिल रहे आनँद, जस सुमति सखि के संग तस।
भयो है एक रस, भव खपाइ सुजस बिलास
भए सिध-सरूप लिये धसमस॥

[यशोविजय-कृत 'आनंदघन-अष्टपदी' से उद्धृत]

आनंदघन-चौबीसी

श्रीऋषभदेव-जिन-स्वतन] (१) [मारू

रुषभ जिनेश्वर प्रीतम माहरो रे ओर न चाहूँ रे कंत।
रीझ्यो साहिब संग न परिहरे रे भाँगे सादि अनंत।
प्रीत-सगाइ रे जग माँ सहु करे रे प्रीत-सगाइ न कोय।
प्रीत सगाइ रे निरुपाधिक कही रे सोपाधिक धन खोय।
कोइ कंत-कारण काष्ट-भक्षण करे रे मिलसूँ कंत ने ध्याय।
ए मेलो नवि कहियेँ संभवे रे मेलो-ठाम न ठाय।
कोइ पति-रंजन अति घणो तप करे रे पति-रंजन तन-ताप।
ए पति-रंजन मैँ नवि चित धर्युँ रे रंजन धातु-मेलाप।
कोइ कहे लीला रे अलख अलख तणी रे लख पूरे मन-आस।
दोष रहित ने लीला नवि घटे रे लीला दोष विलास।
चित्त प्रसन्ने रे पूजनफल कह्यूँ रे पूज अखंडित एह।
कपटरहित थइ आतम अरपण रे आनँदघन पद-रेह॥

---

[१] माहरो = मेरा। ओर = और, अन्य। भाँगे० = ऐसा संग जिसका आदि तो है पर अंत नहीँ। सहु = सब। प्रीत० = लौकिक और वैवाहिक प्रेम सब करते हैँ, पर वास्तविक प्रेम-संबंध कोई नहीँ। निरुपाधिक = अलौकिक। काष्ठ० = चिता की अग्नि मैँ प्रवेश। मिलसूँ = मिलूँगी। ने = को, से। मेलो = मिलाप। नवि = नहीँ। कहियेँ = कभी। ठाम० = मिलने का स्थान नहीँ है। मैँ = मैँ। धातु = तत्त्व। अलख तणी = अलख (ब्रह्म) की। नवि० = निर्दोष ब्रह्म मैँ ये लीलाएँ घटित नहीँ होतीँ, असंगत ठहरती हैँ। थइ = होकर। आनंद० = मोक्ष का पद। रेह = रेखा, चिह्न, लक्षण।

श्रीअजितनाथ-जिन-स्तवन] (२) [आसावरी

पंथड़ो निहालूँ रे बीजा जिन तणो रे अजित अजित-गुणधाम।
जे तैं जीत्या रे तिणेँ हूँ जीतियो रे पुरुष किसूँ मुज नाम।
चरमनयण करि मारग जोवताँ रे भुलो सयल संसार।
जेण नयण करि मारग जोइये रे नयण ते दिव्य विचार।
पुरुष-परंपर अनुभव जोवताँ रे अंधोअंध पुलाय।
वस्तुविचारे रे जो आगमे करी रे चरण-धरण नहीँ ठाय।
तर्कविचारे रे वादपरंपरा रे पार न पोँहचे कोय।
अभिमत वस्तु रे वस्तुगतेँ कहेँ रे ते बिरला जग जोय।
वस्तुविचारे रे दिव्य नयण तणो रे विरह पड्यो निरधार।
तरतम जोगे रे तरतम वासना रे वासित बोध-आधार।
काल-लबधि लही पंथ निहालसूँ रे ए आसा-अवलंब।
ए जन जीवे रे जिन जी जाणज्यो रे आनँदघन मत अंब॥

श्रीसंभवनाथ-जिन-स्तवन] (३) [रामगिरी

संभवदेव हे धुर सेवो सबे रे लहि प्रभु-सेवन-भेद।
सेवन-कारण पहिली भूमिका रे अभय अद्वेष अखेद।

---

[२] पंथड़ो० = मार्ग देखता हूँ। बीजा = द्वितीय। तैं = तू। हूँ = मैं। जे० = जिन (षड्रिपुओं) को तूने जीता उन्होंने मुझे जीत रखा है। पुरुष० = फिर मेरा नाम 'पुरुष' (पौरुषयुक्त) कैसे उचित है। चरम = चर्म। सयल = सकल। पुरुष-परंपर० = सांसारिक पुरुषों की परंपरा के ज्ञान पर दृष्टि रखना तो अंधों के पीछे अंधे का दौड़ना है। आगमे = शास्त्र में। धरण = रखने का। तर्क० = तर्क का विचार तो वादों की परंपरा मात्र है जिसका अंत नहीं। अभिमत० = वस्तु में इच्छित तत्त्व का बतानेवाला। विरह० = अर्थात् ऐसे विचारक मिलते नहीं। तरतम० = 'तर' और 'तम' की वासना से वासित ज्ञान का आधार भी 'तर' और 'तम' युक्त होता है;। औपाधिक होता है, पारमार्थिक नहीं। लबधि=लब्धि,प्राप्ति;सीमा। अंब=(आम्र) रसाल के समान। [३] सबे = सब

भय चंचलता हो जे परिणामनी रे द्वेष अरोचक भाव।
खेद-प्रवृत्ति हो करताँ थाकिये रे दोष अबोध लखाव।
चरमावर्तन हो चरमकरण तथा रे भवपरिणति-परिपाक।
दोष टले वली दृष्टि खुले भली रे प्राप्ती प्रवचन-वाक।
परिचय पातक-घातक साधु सूँ रे अकुसल-अपचय-चेत।
ग्रंथ अध्यातम श्रवण मनन करी रे परिशीलन नय-हेत।
कारण जोगे हो कारज निपजे रे एह माँ कोइ न वाद।
पिण कारण विण कारज साधिये रे ते निज मत-उनमाद।
मुग्ध सुगम करि सेवन आदरे रे सेवन अगम अनूप।
देयो कदाचित सेवक याचना रे आनँदघन रस-रूप॥

श्रीअभिनंदन-जिन-स्तवन] (४) [धनाश्री

अभिनंदन जिन दरसण तरसिये दरसण दुरलभ देव।
मतमत भेदे रे जो जइ पुछिये सहु थापे अहमेव।
सामान्ये करि दरिसण दोहिलूँ निरणय सकल विशेष।
मद मैं घेर्यो रे अंधा किम करे रविससि-रूप-विलेख।
हेतु-विवादे हो चित धरि जोइये अति दुर्गम नयवाद।
आगमवादे हो गुरुगम को नहिँ ए सबलो विषवाद।
घाती डुंगर आडा अति घणा तुज दरसण जगनाथ।
धीठाइ करि मारग संचरूँ सेँगू कोइ न साथ।
दरसण दरसण रटतो जो फिरूँ तो रणरोझ समान।
जेह ने पिपासा हो अमृत पाननी किम भाँजे विषपान॥

लोग। परिणामनी = परिणाम के संबंध की। चरमावर्तन = अंतिम फेरा। चरमकरण = उत्तम कृत्य। भव० = संसार का आवागमन समाप्त हो जाता है। वली = फिर। प्रवचन० = सिद्धांत का रहस्य। अकुसल० = चित्त के अकल्याण का नाश हो जाता है। नय० = नीति के लिए। निपजे = उत्पन्न होता है। वाद = विवाद, झगड़ा। पिण = पर। मुग्ध = भोले-भाले।

[४] सहु = सब। दोहिलूँ = कठिन। विलेख = निश्चय। गुरुगम = गुरु द्वारा बताया रहस्य। को० = कोई नहीं है। सबलो० = भारी विषैली वस्तु है। डुंगर = (कर्म के) पर्वत। आडा = बीच मैं बाधक। धीठाइ =

तरस न आवे हो मरण-जीवण तणो सीझे जो दरिसण-काज।
दरिसण दुरलभ सुलभ कृपा थकी आनँदघन महाराज॥

श्रीसुमतिनाथ-जिन-स्तवन] (५) [वसंत केदारो

सुमति-चरणकँज आतम-अरपण दरपण जिम अविकार। सुज्ञानी।
मति-तरपण बहुसंमत जाणिये परिसरपण सुविचार।
त्रिबिध सकल तनुधरगत आतमा, बहिरातम धुरि भेद।
बीजो अंतर-आतम तिसरो परमातम अविछेद।
आतम बुद्धे कायादिक ग्रह्यो, बहिरातम अघरूप।
कायादिक नो साखीधर रह्यो, अंतर-आतम-रूप।
ज्ञानानंद हो पूरण पावनो बरजित सकल उपाध।
अतिंद्रिय गुणगणमणि आगरु इम परमातम साध।
बहिरातम तजि अंतर-आतमा-रूप थई थिर भाव।
परमातम नूँ हो आतम भाववूँ आतम-अरपण दाव।
आतम अरपण वस्तु विचारताँ भरम टले मति-दोष।
परम पदारथ संपति संपजे आनँदघन रस-पोष॥

श्रीपद्मप्रभ-जिन-स्तवन] (६) [मारू; सिंधु

पदमप्रभ जिन तुझ मुझ आँतरु रे किय भाजे भगवंत।
करम-विपाकेँ कारण जोयने रे कोय कहे मतिमंत।
पयइ ठिई अणुभाग प्रदेसथी रे मूल उत्तर बिंदु-भेद।
घाति अघाती बंधोदय उदीरणा रे सत्ता करम-विछेद।

धृष्टता। सँगू = साथी। रणरोझ = अरण्यरोदन। तरस = (त्रास) दुःख। सीझे = सिद्ध हो जाए। थकी = से। [५] कँज = कंज,कमल। तरपण = तृप्ति। परिसरपण = अनुगमन। धुरि = प्रथम। थई = होकर। भाववूँ = बिचारना। संपजे = प्रकटे। [६] आँतरु = अंतर, भेद। विपाक = फल। पयइ = प्रकृति। ठई = स्थिति। अणुभाग = रस; कर्म का बल। प्रदेश = विभाग। मूल = मुख्य। उत्तर = गौण। अघाती = अनाशक। बंध = कर्म, बंधन। बंधोदय =

कनकोपलवत् पयडि पुरुष तणी रे जोड़ी अनादि स्वभाव।
अन्य संजोगी जिहाँ लगे आतमा रे संसारी कहिवाय।
कारण जोगे हो बाँधे बंधने रे कारण मुगति मुकाय।
आश्रव संवर नाम अनुक्रमे रे हेयोपादेय सुणाय।
युंजन करणे हो अंतर तुझ पड्यो रे गुण करणे करि भंग।
ग्रंथ-उक्ति करि पंडितजन कह्यो रे अंतर-भंग सुअंग।
तुझ मुझ अंतर अंतर भाजसे रे बाजसे मंगल-तूर।
जीव-सरोवर अतिसय बाधस्ये रे आनँदघन रसपूर॥

श्री सुपार्श्व-जिन-स्तवन] (७) [सारंग; मलार

श्रीसुपास जिन वंदिये सुख-संपति ने हेतु, ललना।
शांत सुधारस-जलनिधी भवसागर माँ सेतु, ललना।
सात महाभय टालतो सप्तम जिन वर देव, ललना।
सावधान मनसा करी धारो जिन-पद सेव, ललना।
शिवशंकर जगदीश्वरू चिदानंद भगवान, ललना।
जिन अरिहा तीर्थंकरू ज्योति सरूप असमान, ललना।
अलख निरंजन बच्छलु सकल-जंतु-बिसराम, ललना।
अभयदानदाता सदा, पूरण आतमराम, ललना।

कर्मफल-प्राप्ति का प्रवृत्तिकाल। उदीरणा = प्रेरणा। सत्ता = स्थिति (बंध, उदय, उदीरणा, सत्ता ये जैनागम के पारिभाषिक शब्द हैं)। बिछेद = नाश। पयडि = प्रकृति। पुरुष० = आत्मा की। जोड़ी = जीव और कर्म की। अन्य = पुद्गल, कर्म-समूह। कारण = जिसके कारण कोई वस्तु मिले या उत्पन्न हो। मुकाय = छूट जाता है। आश्रव = बंधन का कारण। संवर = मुक्ति का हेतु। हेयोपादेय = क्रमशः त्याज्य और ग्राह्य। युंजन = कर्मों से जुड़ना। अंतर = ब्रह्म से भेद। सुअंग = उत्तम उपाय। अंतर = भेद। अंतर = अंतःकरण से। भाजसे = भाग जाएगा। तूर = तुरही, बाजा। बाधस्ये = प्रसन्न होगा, भरेगा। रसपूर = रस-प्रवाह से। [७] सात० = काम, क्रोध, मद, हर्ष, राग, द्वेष, मिथ्यात्व। अरिहा = कर्म-शत्रु के नाशक, अर्हत्। असमान = अनुपम।

वीतराग, मद कल्पना रति अरति भय सोग, ललना।
निंद्रा·तंद्रा·दुरदसा-रहित अबाधित योग, ललना।
परम पुरुष परमातमा परमेश्वर परधान ललना।
परम पदारथ परमिष्ठी परमदेव परमान ललना।
बिधि विरंचि विश्वंभरू, रुषीकेश जगनाथ, ललना।
अघहर अघमोचन धणी, मुक्ति परमपद साथ, ललना।
एम अनेक अभिधा धरे, अनुभवगम्य विचार, ललना।
जे जाणे तेह ने करे, आनँदघन अवतार, ललना।

श्रीचंद्रप्रभ-जिन-स्तवन] (८) [केदारो; गौड़ी

चंद्रप्रभ-मुखचंद्र सखी मुने देखण दे मुखचंद।
उपसम-रसनो कंद, सखी गत-कलिमल-दुखदंद।
सुहम-निगोदे न देखियो बादर अतिहि बिसेस।
पुढवी आउ न लेखियो, तेउ बाउ न लेस।
बनसपति अति घण दिहा, दीठो नहीं दिदार।
बि ति चउरिंदी जल*लीहा, गतसन्नी पण धार।
सुर तिरि निरय निवास माँ, मनुज अनारज साथ।
अपज्जता प्रतिभास माँ, चतुर न चढ़ियो हाथ।

निरंजन = निर्लेप। बच्छलु = वत्सल। दुरदसा = दुर्दशा। परमान = मानो। रूषीकेश = हृषीकेश, इंद्रियों के स्वामी। धणी = स्वामी। अभिधा = नाम। [८] मुने = मुझे। उप० = शांत रस के फूल। सुहम = सूक्ष्म। निगोदे = बीच। बादर = बादल मेँ, आकाश मेँ। पुढवी = पृथ्वी। आउ = आप, जल। तेउ = तेज, अग्नि। बाउ = वायु। दिहा = दिवस। दिदार = दर्शन। बि० = दो, तीन। चउरिंदी = चार इंद्रियों वाला। जललीहा = जल पर का लेख। गत० = संज्ञाहीन। पण = पाँच इंद्रिय। तिरि = तिर्यक्, पशु पक्षी आदि। निरय = नरक। अपज्जत = अपर्याप्त। चतुर = ब्रह्मतत्व। अवसर = अवसर पर। मोह-

* जब।

इम अनेक थल जाणिये, दरिसण विण जिण देव।
आगम थी मत जाणिये, कीजे निरमल सेव।
निरमल साधु भगति लही, योग अवंचक होय।
क्रिया अवंचक तिम सही, फल अवंचक सोय।
प्रेरक अवसर जिनवरू, मोहनीय-क्षय थाय।
कामित-पूरण सुरतरू, आनँदघन प्रभु-पाय॥

श्रीसुविधिनाथ-जिन-स्तवन] (९) [केदारो

सुविधि जिणेसर-पाय नमीने, शुभ करणी इम कीजे रे।
अति घणो उलट अंग धरीने, प्रह उठी पूजीजे रे।
द्रव्यभाव शुचि भाव धरीने हरखे देहरे जइये रे।
दह तिग पण अहिगम साचवताँ, एकमना धुरि थइये रे।
कुसुम अक्षत वरवास सुगंधो, धूप दीप मन साखी रे।
अँगपूजा पण भेद सुणी इम, गुरुमुख आगम भाखी रे।
एह नूँ फल दोय भेद सुणीजे, अनंतर ने परंपर रे।
आणा-पालण चित्त-प्रसन्नी, मुगति सुगति सुरमंदिर रे।
फूल अक्षत वर धूप पइवो, गंध नैवेद्य फल जल भरी रे।
अंग-अग्रपूजा मिलि अडविध, भावे भविक सुभगति वरी रे।
सत्तर भेद इकबीस प्रकारे, अट्ठोत्तर सत भेदे रे।
भावपूजा बहुविध निरधारी, दोहग दुरगति छेदे रे।

नीय = आकर्षक कर्मों का। कामित = कामना। [९] उलट = उल्लास। प्रह = प्रात। देहरे = मंदिर में। दह = दस। तिग = त्रिक। पण = पाँच। अहिगम = अभिगम। साचवताँ = पूर्ण करके। धुरि = प्रथम। आणा० = आज्ञापालन से। अंग० = अंगपूजा और अग्रपूजा (प्रतिमा के सामने की जाने वाली)। मिलि = मिलकर। अडविध = आठ प्रकार की। भविक = भावुक भक्त। दोहग = दुर्भाग्य। तुरिय = चतुर्थ। पडिवत्ती = प्रतिपत्ति। खीण = क्षीणमोह। सयोगी = चैतन्य संयोगी। चउहा = चतुर्विध। उत्तर० = उत्तराध्ययन सूत्र

तुरिय भेद पडिवत्ती पूजा, उपसम खीण सयोगी रे।
चउहा पूजा इम उत्तर-झयणे, भाखी केवल भोगी रे।
इम पूजा बहु भेद सुणीने, सुखदाइक सुभकरणी रे।
भविक जीव करस्ये ते लहिस्ये, आनँदघन-पद-धरणी रे।

श्रीशीतलनाथ-जिन-स्तवन] (१०) [धनाश्री; गौड़ी

शीतल जिनपति ललित त्रिभंगी, विविध भंगी मन मोहे रे।
करुणा-कोमलता तीक्षणता, उदासीनता सोहे रे।
सर्वजंतु-हितकरणी करुणा, कर्मविदारण तीक्षण रे।
हानादानरहित परिणामी, उदासीनता-वीक्षण रे।
परदुख-छेदन इच्छा करुणा, तीक्षण परदुख रीझे रे।
उदासीनता उभय विलक्षण, एक ठामेँ किम सीझे रे।
अभयदान ते * करुणा मलक्षय, तीक्षणता गुण भावे रे।
प्रेरण विण कृति-उदासीनता, इम विरोध मति नावे रे।
शक्ति-व्यक्ति त्रिभुवन-प्रभुता, निर्ग्रंथता-संयोगी रे।
योगी भोगी वक्ता मौनी, अनुपयोगि उपयोगी रे।
इत्यादिक बहुभंग त्रिभंगी, चमतकार चित देती रे।
अचरिजकारी चित्र विचित्रा, आनँदघन-पद लेती रे।

श्रीश्रेयांस-जिन-स्तवन] (११) [गौड़ी

श्रीश्रेयांस जिन अंतरजामी, आतमरामी नामी रे।
अध्यातम-मत पूरण पामी, सहज मुगति-गति-गामी रे।

में। केवल० = कैवल्य बोध करनेवाले। [१०] भंगी = प्रकार। हानादान० = त्याग और ग्रहण से परिणामवाला। उभय = करुणा और तीक्ष्णता दोनों से। सीझे = सिद्ध हो। गुण० = ज्ञान के विचार से। कृति० = कर्म से तटस्थ वृत्ति। नावे = न आए। निर्ग्रंथता = बंधनरहितत्व। [११] पामी =

* तिम लक्षण।

सयल सँसारी इंद्रियरामी, मुनि गुण आतमरामी रे।
मुख्यपणे जे आतमरामी, ते केवल निःकामी रे।
निज स्वरूप जे किरिया साधैं, ते अध्यातम लहिये रे।
जे किरिया करि चउगति साधैं, ते न अध्यातम कहिये रे।
नाम अध्यातम ठवण अध्यातम, द्रव्य अध्यातम छंडो रे।
भाव अध्यातम निज गुण साधैं, तो तेह थी रढ़ि मंडो रे।
शब्द अध्यातम अरथ सुणीनैं, निरविकलप आदरज्यो रे।
शब्द अध्यातम भजणा जाणी, हान* ग्रहण मति धरज्यो रे।
अध्यातम जे वस्तु विचारी, बीजा जाण लबासी रे।
वस्तुगतैं जे वस्तु प्रकासै, आनँदघन-मत-वासी रे।

श्रीवासुपूज्य-जिन-स्तवन] (१२) [गौड़ी

वासुपूज्य जिण त्रिभुवन-स्वामी, घन नामी परणामी रे।
निराकार साकार सचेतन, करम-करम फल-कामी रे।
निराकार अभेद-संग्राहक, भेद-ग्राहक साकारो रे।
दर्शन ज्ञान दुभेद चेतना, वस्तु-ग्रहण-व्यापारो रे।
कर्ता परिणामी परिणामो, कर्म जे जीवे करियैं रे।
एक अनेक रूप नयवादे, नियतैं नय† अनुसरियैं रे।
दुख सुख रूप करम फल जाणो, निश्चय एक आनंदो रे।
चेतनता परिणाम न चूके, चेतन कहे जिन चंदो रे।
परिणामी चेतन परिणामो, ज्ञान करम फल भावी रे।
ज्ञान करम फल चेतन कहिये, लेजो तेह मनावी रे।

प्राप्त करके। सयल = सकल। इंद्रियरामी = इंद्रिय-सुख में रहनेवाला। चउगति = चार गति (देव, मनुष्य, तिर्यक् और नारकी)। ठवण = स्थापना मात्र का। रढ़ि = रटकर। हान = त्याग। बीजा = दूसरा। लबासी = लबार। [१२] परणामी = परात्पर। दुभेद = दो प्रकार की। परिणामी = परि-

* दान। † नर।

आतमज्ञानी श्रमण कहावै, बीजा तो द्रव्यलिंगी रे।
वस्तुगतैं जे वस्तु प्रकासै, आनँदघन-मत-संगी रे।

श्रीविमलनाथ-जिन-स्तवन] (१३) [मारू

दुख दोहग दूरे टल्या रे, सुख-संपद स्यूँ भेट।
धींगधणी माथे कियो रे, कुण गंजे नरखेट।
विमलजिन दिठा लोयणे आज, मारा सीध्या वंछित काज।
चरण-कमल कमला वसे रे, निरमल थिर पद देख।
समल अथिर पद परिहरी रे, पंकज पामर पेख।
मुज मन तुज पद-पंकजे रे, लीणो गुण-मकरंद।
रंक गिणैं मंदिर धरा रे, इंद चंद नागिंद।
साहिब समरथ तूँ धणी रे, पाम्यो परम उदार।
मन बिसरामी बालहो रे, आतम चो आधार।
दरिसण दीठे जिन तणो रे, संसय न रहे वेध।
दिनकर-करभर पसरतां रे, अंधकार-प्रतिषेध।
अमिय-भरी मूरति रची रे, ओपम न घटै कोय।
शांत सुधारस झीलती रे, निरखत तृपति न होय।
एक अरज सेवक तणी रे, अवधारो जिन देव।
कृपा करी मुज दीजिये रे, आनँदघन-पद-सेव॥

श्रीअनंतनाथ-जिन-स्तवन] (१४) [रामगिरी कड़खो

धार तरवार नी सोहिली, दोहिली चौदमा जिन तणी चरण-सेवा।
धार पर नाचता देख बाजीगरा, सेवना धार पर रहे न देवा।

गामदर्शी। नयवादे० = नयवाद के विचार से आत्मा एक भी है और अनेक भी। श्रमण = साधु। द्रव्य० = केवल साधुवेशधारी। [१३] दोहग = दुर्भाग्य। धींग = मजबूत, प्रबल। धणी = स्वामी। गंजे = जीते। नरखेट = नराधम। सीध्या = सिद्ध हुआ। समल = मलयुक्त। पंकज० = इसी से तो नीच कमल को कमला (लक्ष्मी) ने त्याग दिया। मंदर = मंदराचल की भूमि। बालहो =

एक कहे सेविये विविध किरिया करी,फल अनेकांत लोचन न देखे।
फल अनेकांत किरिया करी बापड़ा, रडबडे च्यार गति माँहि लेखे!
गच्छ ना भेद बहु नयण नीहालताँ, तत्व नी बात करताँ न लाजे।
उदर-भरणादि निजकाज करताँ थका, मोह नडिया कलिकाल राजे।
वचन-निरपेक्ष व्यवहार जूठो कह्यो, वचन-सापेक्ष व्यवहार साचो।
वचन-निरपेक्ष व्यवहार संसार-फल साँभली आदरी काँइ राचो।
देव गुरु धर्म नी शुद्धि कहो किम रहे, किम रहेँ शुद्ध श्रद्धान आणो।
शुद्ध श्रद्धान विण सर्वकिरिया कही, छार परि लीपणो सरस जाणो।
पाप नही कोइ उत्सूत्र भाषण जिसो धर्म नही कोइ जग सूत्र सरिखो।
सूत्र अनुसार जे भविक किरिया करेँ तेह नो शुद्ध चारित्र परिखो।
एह उपदेस नूँ सार संक्षेप थी जे नरा चित्त मेँ नित्त ध्यावेँ।
ते नरा दिव्य बहु काल सुख-अनुभवी नियत आनँदघन राज पावेँ॥

श्रीधर्मनाथ-जिन-स्तवन] (१५) [गौड़ी

धर्म-जिनेसर गाऊँ रंग सूँ भंगम पड़ज्यो हो प्रीत जिणेसर।
बीजो मनमंदिर आणू नही ए अम कुलवट रीत जिणेसर।
धरम धरम करतो जग सहु फिरे धर्म न जाणे हो मर्म जिणेसर।
धर्म-जिणेसर-चरण ग्रह्या पछी कोइ न बाँधे हो कर्म जिणेसर।
प्रवचन अंजन जो सदगुरु करे, देखे परम निधान जिणेसर।
हृदय-नयण निहाले जगधणी महिमा मेरु-समान जिणेसर।

वल्लभ, प्रिय। चो = का। बेध = चुभन। करभर = किरणोँ का समूह। झीलती = झील। [१४] सोहिली = सरल। दोहिली = कठिन। देवा = देव-रूप भी। बापड़ा = बापुरा, बेचारा। रडवडे = भटकता है। च्यार० = मनुष्य, तिर्यक, देवता, नारकी। गच्छ ना = समुदाय का। नीहालताँ = देखते हुए। नडिया = सुभट। जूठो = झूठा, असत्। साँभली = सुनकर। काँइ० = कौन प्रसन्न हुआ। श्रद्धान० = विश्वास की आन, विश्वास का निश्चय। छार० = धूल पर का लीपना है। उत्सूत्र = सूत्र के विपरीत। जिसो = समान। परिखो = समझो। [१५] रंग = सानंद। भंग० = बाधा न पड़े। बीजो० = मन मेँ

दोड़त दोड़त दोड़त दोड़ियो जेती मन ही रे दोड़।
प्रेम प्रतीत, विचारो, ढूकड़ी; गुरुगम लेज्यो रे जोड़।
एक पखी किम प्रीत वरे पड़े* उभय मिल्या होवे संध।
हूँ रागी हूँ मोहे फंदियो, तूँ निरागी निरबंध।
परम निधि प्रगट मुख आगलें जगत ओलंघी हो जाय।
ज्योति बिना जुओ जग दीसनी अंधो अंध पुलाय।
निरमल गुण मणि रोहण भूधरा, मुनिजन-मानस-हंस।
धन्य ते नगरी धन बेला घड़ी, माता पिता कुल बंस।
मन-मधुकर वर कर जोड़ी कहे, पदकज-निकट निवास।
घननामी आनँदघन साँभलो, ए सेवक अरदास॥

श्रीशांतिनाथ-जिन-स्तवन] (१६) [मलार

शांति जिन एक मुझ वीनती सुणो त्रिभुवनराय रे।
शांति सरूप किम जाणिये, कहो मन किम परखाय रे।
धन्य तूँ आतम जेह ने एह वो प्रश्न अवकास रे।
धीरज मन धरी साँभलो कहूँ शांति-प्रतिभास रे।
भाव अविशुद्ध सविशुद्ध जे कह्या जिन वर देव रे।
ते तिम अवितथ† सद्दहे प्रथम ए शांति-पद-सेव रे।
आगमधर गुरु समकिती किरिया संवर सार रे।
संप्रदाई अवंचक सदा सुची अनुभवाधार रे।
शुद्ध आलंबन आदरे तजी अवर जंजाल रे।

किसी दूसरे को नहीं लाता। कुलवट = कुल की परंपरा में। सहु = सब। निधान = गुप्त धन। ढूकड़ी = छिपी। गुरुगम = गुरुप्रदर्शित मार्ग। एक० = एक पक्ष की, एकांगी। वरे० = ठीक उतरे। आगलें = सामने। पुलाय = पीछे पीछे दौड़े। रोहण० = उत्पत्तिस्थान, खान। कज = कंज। अरदास = प्रार्थना। [१६] परखाय = परीक्षा करूँ। अवकास = अवसर मिला। प्रतिभास = स्वरूप।

* परवडे। † अद्दातत्थ्य।

तामसी वृत्ति सवि परिहरी भजे सात्विकी साल रे।
फल विसंवाद जेह माँनहीँ शब्द ते अर्थ-संबंधि रे।
सकल नयवाद व्यापी रह्यो ते सिव साधन संधि रे।
विधि प्रतिषेध करि आतमा पदारथ अविरोध रे।
ग्रहण विधि महाजने परिग्रह्यो, इसो आगमे वोध रे।
दुष्टजन-संगति परिहरी भजे सुगुरु-संतान रे।
जोग सामर्थ्य चित भाव जे धरे मुगति निदान रे।
मान अपमान चित सम गणे सम गणे कनक पाषाण रे।
वंदक निंदक सम गणे, इसो होय तूँ जाण रे।
सर्व जग-जंतु ने सम गणे गणे तृण मणि भाव रे।
मुगति संसार विहु सम गणे, मुणे भव-जलनिधि-नाव रे।
आपणो आतमा भाव जे एक चेतनाधार रे।
अवर सवी साथ संयोग थी एक निज परिकर सार रे।
प्रभु-मुख थी इम साँभली कहे आतमराम रे।
ताहरे दरिसणे निस्तस्यो, मुज्झ सीध्या सवि काम रे।
अहो अहो हूँ मुझने कहूँ 'नमो मुज्झ नमो मुज्झ' रे।
अमित फल दान दातार नी जेह ने भेट थई तुज्झ रे।
शांति सरूप संक्षेप थी कह्यो निज पर रूप रे।
आगम माँहि विस्तर घणो कह्यो शांति जिन-भूप रे।
शांति-सरूप इम भावस्ये धरी शुद्ध प्रणिधान रे।
आनँदघन-पद पामस्ये ते लहिस्ये बहु मान रे॥

अवितथ = सत्य। सद्दहे = (श्रद्धे) मान। आगम० = शास्त्र का धारणकर्ता। समकिती = सम्यक् कृती। संवर = कर्मबंधन से रहितता। अवर = और, अन्य। साल = शालि, धान्य। विसंवाद = अमेल, धोखा। परिग्रह्यो = स्वीकार कर ली है। निदान = अंत में। भाव = एक भाव, समान। विहु = इन दोनों को भी। मुणे = समझे। साथ० = प्रसंगतः होनेवाला संयोग। परिकर = कुटुंबी। सार = मुख्य, तात्त्विका। ताहरे = तेरे। प्रणिधान = समाधि, एकाग्र चित्त से

श्रीकुंथुनाथ-जिन-स्तवन] (१७) [रामकली

कुंथु जिन मनडूँ किमही न बाजे।
जिम जिम जतन करीने राखूँ तिम तिम अलगू भाजे हो।
रजनी वासर बसती उजड़ गयण पायाले जाये।
साप खायने मोहडूँ थोथु एह उखांणो न्याये हो।
मुगति तणा अभिलाषी तपिया ज्ञान ने ध्यान-अभ्यासैं।
वयरीडूँ काँई एहवूँ चिंते नाँखे अलवे पासैं हो।
आगम आगमधर ने हाथे नावे किण बिधि आँकु।
किहाँ किण जो हठ करीने हटकूँ तो व्याल तणी परे बाँकु हो।
जो ठग कहूँ तो ठगतुँ न देखूँ साहुकार पिण नाँही।
सर्व माँहे ने सर्व थी अलगूँ ए अचरिज मन माँही हो।
जे जे कहूँ ते कान न धारे आप मते रहे कालो।
सुर नर पंडित जन समझावे समझे न माहरो सालो हो।
म्हे जाँणूँ ए लिंग नपुंसक सकल मरद ने ठेले।
बीजी बाते समरथ छे नर एहने कोइ न झेले हो।
मन साध्यूँ तिणे सघलूँ साध्यूँ एह बात नहि खोटी।
इम कहे साध्यूँ ते नवि मानूँ एकहि बात छे मोटी हो।

ध्यान। [१७] मनडूँ = ('डूँ' तुच्छताबोधक प्रत्यय) मन (रूपी तंत्री)। उजड = उजाड़ मेँ। गयण = गगन। पायाले = पाताल मेँ। साप० = सर्प किसी को खा (काट) ले तो ऐसा करने से उसकी भूख थोड़े ही मिट जाती है। ओखाणो = (उपाख्यान) कहावत। तपिया = तपस्वी। वयरीडूँ० = यह वैरी मन वैसे ही किसी की भी चिंतना करता है। अलवे = विकट। पासे = पाश मेँ। नावे = नहीँ आता। आँकु = वश मेँ करूँ। किहाँ० = किसी स्थल पर। हटकूँ = मना करूँ, रोकूँ। व्याल० = सर्प की भाँति टेढ़ा हो जाता है। पिण = फिर भी। ने = और। आप० = स्वतः मलिन बना रहता है। माहरो० = मेरा। सालो = दुर्बुद्धिरूपी पत्नी का भाई। लिंग० = 'मन' संस्कृत मेँ नपुंसक लिंग है। न झेले = नहीँ हटाता। सघलूँ = सकल, सब।

मनडूँ दुराराध्य तैं बसि आएयू ते आगम थी मति आणू।
आनँदघन प्रभु माहरूँ आणो तो साचु करि जाणूँ हो ॥

श्रीअरनाथ-जिन-स्तवन] (१८) [मारू

धरम परम अरनाथ नो किय जाणूँ भगवंत रे।
स्व-पर-समय समझाविये महिमावंत महंत रे।
शुद्धातम अनुभव सदा स्व समय एह विलास रे।
परवड़ी छाँहड़ी जिहाँपड़े ते पर समय निवास रे।
तारा नक्षत्र ग्रह चंदनी ज्योति दिनेस मझार रे।
दर्शन ज्ञान चरण थकी शक्ति निजातम धार रे।
भारी पीलो चीकणो कनक अनेक तरंग रे।
पर्याय दृष्टि न दीजिये एकज कनक अभंग रे।
दर्शन ज्ञान चरण थकी अलख सरूप अनेक रे।
निरविकलप रस पीजिये शुद्ध निरंजन एक रे।
परमारथ पंथ जे कहे ते रंजे एक तंत रे।
व्यवहारे लख जे रहे तेहना भेद अनंत रे।
व्यवहारे लखेँ दोहिला काँई न आवे हाथ रे।
शुद्ध नय थापना सेवताँ नवि रहे दुविधा साथ रे।
एक पखी लख प्रीत नी तुम साथे जगनाथ रे।
कृपा करी ने राखज्यो चरण तलेँ ग्रही हाथ रे।
चक्रीधरम तीरथ तणो तीरथ फल ततसार रे।
तीरथ सेवे ते लहेँ आनँदघन निरधार रे॥

एम० = इस मन को साधने की बात कहे तो नहीँ मान सकता। मोटी = बड़ी अर्थात् दुःसाध्य। माहरूँ० = यदि मेरे मन को भी वश मैँ कर दो। [१८] समय = सिद्धांत। परवड़ी० = पर्व के समय की छाया अर्थात् विशेष अवसर पर प्राप्त होनेवाली, सदैव नहीँ। चंदनी = चाँदनी। चरण० = आचरण की। भारी = वजन मैँ गुरु। तरंग = प्रकार। पर्याय० = भेददृष्टि। एकज = एक रूप। एक तंत = एक तत्त्व, अद्वितीय अगम तत्त्व। दोहिलो = दुर्लभ। चरण० = हाथोँ

श्रीमल्लिनाथ-जिन-स्तवन] (१९) [काफी

सेवक किम अब गणिये हो मल्लि जिन ! ए अब सोभा सारी।
अवर जेह ने आदर अति दियेँ तेह ने मूल निवारी हो।
ज्ञान सुरूप अनादि तुम्हारूँ ते लीधूँ तुमे ताणी।
जुओ अज्ञान दशा रीसावी जाताँ काँण न आणी हो।
निंद्रा सुपन जागर उजागरता तुरिय अवस्था आवी।
निंद्रा सुपन दशा रीसाणी जाँणी न नाथ मनावी हो।
समकित साधे सगाई कीधी सपरिवार सूँ गाढ़ी।
मिथ्या मति अपराधण जाणी घर थी बाहिर काढ़ी हो।
हास्य अरति रति सोग दुगंछा भय पामर करसाली।
नो कषाय श्रेणी गज चढ़ताँ श्वान तणी गति झाली हो।
राग द्वेष अविरति नी परिणति ए चरण मोह ना योधा।
वीतराग परिणति परणमताँ ऊठी नाठा बोधा हो।
वेदोदय कामा परिणामाँ करमाकरम* सहु त्यागी।
निःकामी करुणारससागर अनंत चतुष्कपद पागी हो।
दान-विघन वारी सहु जन ने अभय-दान पद-दाता।
लाभ-विघन जग विघननिवारक परम लाभ रसमाता हो।
वीर्य-विघन पंडित वीर्यहणी पूरण पदवी जोगी।
भोगोपभोग दोय विघन निवारी पूरण भोग सुभोगी हो।

से आप के चरण पकड़ता हूँ। चक्री = चक्रवर्ती। [१९] अवर = और, अन्य। ताणी लीधूँ = खींच लूँ। रीसावी = कुपित हो गई। काँण = कानि, मर्यादा। उजागरता = विशेष जागर्ति। तुरिय अवस्था = समाधि की चरम अवस्था। रीसाणी = कुपित हो गई। समकित = सम्यक्त्व। अपराधण = अपराधिनी। दुगंछा = ग्लानि। करसाली = (कर्षण) खेती की। नो कषाय = हास्य, अरति, रति, शोक, ग्लानि, भय, पुरुषवेद, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, ये नव। गज० = आप हाथी पर चढ़े हैं, ये कुत्ताँ की तरह भूँक रहे हैं। अविरति = अवैराग्य, लगाव। चरण = आचरण। ऊठी० = उठकर नष्ट हो

* कामकरम।

इम अढार दूषण वरजित तणु मुनिजन-वृंदे गाया।
अविगत रूपक दोष निरूपण निरदूषण मन भाया हो।
इण विधि परखी मन-बिसरामी जिनवर-गुण जे गावे।
दीनबंधु नी महिर-निजर थी आनँदघन-पद पावे हो॥

श्रीमुनिसुव्रतस्वामी-जिन-स्तवन] (२०) [काफी

मुनि सुव्रत जिनराय एक मुझ वीनती निसुणो।
आतमतत्व क्यूँ जाणूँ जगतगुरु एक विचार मुझ कहियो।
आतमतत्व जाण्या विण निरमल चित समाधि नवि लहियो।
कोई प्रबंध आतम तत माने किरिया करतो दीसे।
क्रिया तणु फल कहो कुण भोगवे इम पूछ्यूँ चित रीसे।
चड़ चेतन ए आतम एकज थावर जंगम सरिखो।
सुख दुख संकर दूषण आवे चित विचार जो परिखो।
एक कहे नित्यज आतम-तत आतम-दरसण-लीणो।
कृत-विनाश अकृतागम दूषण नवि देखे मतिहीणो।
सौगत मत रागी कहे वादी चिणक ए आतम जाणो।
बंध मोष सुख दुःख नवि घटे एह विचार मन आणो।

जाती है। बोधा = यही बोध है,या समझो। अनंत० = अनंत ज्ञान,अनंत दर्शन अनंत चारित्र, अनंत वीर्य ये चार। वारी = निवारण करके। पंडित० = पांडित्य के बल से नष्ट करके। अढार० = अठारह प्रकार के दूषण, आशा, अज्ञान, निद्रादशा, स्वप्नदशा, मिथ्यात्व, हास्य, रति, अरति, शोक, दुगंच्छा (ग्लानि), राग, द्वेष, अविरति, काम्यक रस, दानांतराय, लाभांतराय, भोगांतरात, उपभोगांतराय। महिर = कृपा। [२०] निसुणो = ध्यान से सुनिए। रीसे = रुष्ट। सुख० = सुख-दुःख मेँ सांकर्य दोष है। क्योँकि दोनोँ की सत्ता पारस्परिक अभाव से है। कृत-विनाश = किए कर्म का फल न मिलना। अकृतागम = जो कर्म नहीँ किए गए हैँ उनका फल भोगना। सौगत० = सुगत अर्थात् बुद्ध का मत। मोष = मोच। भूत० = पृथ्वी, अप्, तेज, अग्नि और वायु। स्यूँ० =

भूत चतुष्क वरजित आतम-तत सत्ता अलगी न घटे।
अंध सकट जो नजर न देखे तो स्यूँ कीजे सकटे।
इम अनेकवादी मति विभ्रम संकट पड़ियो न लहे।
चित समाधि ते माटे पूछूँ तुम विण तत कोइ न कहे।
वलतूँ जगगुरु इण परे भाषैं पक्षपात सवि छंडी।
राग द्वेष मोह पख वरजित आतम सूँ रढि मंडी।
आतम ध्यान करे जो कोऊ सो फिरि इण माँ नावे।
वागजाल बीजूँ सहु जाणै, एह तत्व चित चावे।
जिणे विवेक धरिये पख ग्रहिए ते तत्वज्ञानी कहिये।
श्रीमुनि सुव्रत कृपा करो तो आनँदघन-पद लहिये॥

श्रीनामनाथ-जिन-स्तवन] (२१) [आसावरी

षट दरसण जिन अंग भणीजे न्यास खड़ंग जो साधे रे।
नमि जिनवर ना चरण उपासक षट दरसण आराधे रे।
जिन सुरपादप पाय बखाणूँ सांख्य योग दोय भेदे रे।
आतम-सत्ता-विवरण करता लहो दुग अंग अखेदे रे।
भेद अभेद सुगत मीमांसक जिनवर दोय कर भारी रे।
लोकालोक अवलंबन भजिये गुरुगम थी अवधारी रे।
लोकायतिक कूख जिनवर नी अरु विचार जो कीजे रे।
तत्व-विचार सुधारसधारा गुरुगम विण किम पीजे रे।
जैन जिनेश्वर वर उत्तम अंग अंतरंग बहिरंगे रे।
अक्षर-न्यास धरा आराधक आराधैं धरि संगे रे।

क्या किया जाय, उसका दोष क्या। ते माटे = इस कारण। बलतूं = ज्वलत, जाज्वल्यमान। इण० = इस विधि से। पख = पक्ष। रढि = प्रेम। इण = इस प्रपंच मैं नहीं आता। बीजूँ० = और सब। चावे = चाहे। [२१] षट० = सांख्य, योग, मीमांसा, बौद्ध, जैन, चार्वाक। न्यास० = 'जंघे बाहू शिरो मध्य षडंगमित्युच्यते'। सुर० = कल्पवृक्ष। सांख्य० = सांख्य और योग उनके दो पैर हैं। दुग = द्विक, दो। लोकालोक = लोक और लोकोत्तर, अनंत प्रदेश।

जिनवर माँ सघला दरिसण छे दर्शन जिनवर भजना रे।
सागर माँ सघली तटनी सही तटिनी सागर छजना रे।
जिन-सरूप थइ जिन आराधे तेस ही जिनवर होवे रे।
भृंगी इलीका ने चटकावे ते भृंगी जग जोवे रे।
चूरणि भाष्य सूत्र निर्युक्ति वृत्ति परंपर अनुभव रे।
समय पुरुष ना अंग कह्या ए जे छेदे ते दुरभव रे।
मुद्रा बीज धारणा अक्षरन्यास अरथ विनियोगे रे।
जे ध्यावें ते नवि वंचीजें क्रिया अवंचक भोगे रे।
श्रुत अनुसार विचारी बोलूँ सुगुरु तथा विधि न मिले रे।
क्रिया करी नवि साधी सकिये ए विषवाद चित सघले रे।
ते माटे उभा कर जोड़ी जिनवर आगल कहिये रे।
समय चरणसेवा सुचि देज्यो जिम आनँदघन लहिये रे॥

श्रीनेमिनाथ-जिन-स्तवन] (२२) [मारू

अष्ट भवंतर बालही रे तूँ मुझ आतमराम रे मनरावाला।
मुगति नारी सूँ आपणे रे, सगपण कोइ न काम रे।
घरि आवो हो बालम घरि आवो मारी आसा ना बिसराम रे।
रथ फेरो हो साजन रथ फेरो, साजन मारा मनरा मनोरथ साथ।
नारी पखोस्यो नेहलो रे, सच्च कहे जगनाथ।
ईश्वर अरधंगे धरी रे, तूँ मुझ झाले न हाथ।

लोकायतिक० = चार्वाक दर्शन, उनकी कोख (मध्य) है। उत्तम० = शिर। अक्षर० = जिनेश्वर कथित बातों का आराधन अक्षर-न्यास की भाँति करे, एक अक्षर भी इधर उधर न करे। सघला = सब। तटिनी = नदी। इलीका = कीट। चटकावे = डंक मारता है, भनभनाता है। चूरणि = पद्य की गद्य मेँ व्याख्या। निर्युक्ति = महात्माओं के नियुक्तिक वचन जो सूत्र के लिए कहे गए हों। समय = सिद्धांत। दुरभव = भ्रम मेँ भटकती। मुद्रा = योग की। बीज = बीज रूप अक्षर जैसे मंत्र मेँ 'ह्रीँ' आदि होते हैँ। श्रुत = श्रुतज्ञान। [२२] नेमीश्वर प्रभु के संबंध मेँ कहा जाता है कि वे उग्रसेन की कन्या राजमती से परिणय के

पशुजन ने करुणा करी रे आणी रिदय विचार।
माणस नी करुणा नहीं रे ए कुण घर आचार।
प्रेम-कलपतरु छेदियो रे धरियो योग-धतूर।
चतुराई रो कुण कहो रे, गुरु मिलियो जग-सूर।
माहरूँ तो एमाँ काँ नहि रे आप विचारो राज!
राजसभा माँ बेसताँ रे, कीसड़ी बधसी लाज।
प्रेम करे जगजन सहु रे, निरवाहे ते ओर।
प्रीत करीने छोड़ी दे रे ते सूँ न चले जोर।
जो मन माँ एहवूँ हतूँ रे, निसपति करत न जाण।
निसपति करिने छाँड़ताँ रे, माणस हुवे नुकसाण।
देताँ दान संवत्सरी रे, सहु लहे वंछित पोष।
सेवक वंछित नवि लहे रे, ते सेवक नो दोष।
सखी कहे ए साँमलो रे हूँ कहूँ लत्तण स्वेत।
इण लत्तण साची सखी रे, आप विचारे हेत।
रागी सूँ रागी सहु रे, वैरागी स्यो राग।
राग विना किम दाखवो रे मुगति-सुंदरी-माग।
एक गुह्य घटतूँ नही रे सघलोइ जाणे लोग।
अनेकांतिक भोगवो रे ब्रह्मचारी गत सोग।
जिण जोगे तुझ ने जोऊँ रे, तिण जोगे जोवो राज।
एक बार मुझ ने जुवो रे तो सीझे मुझ काज।

लिए रथ पर जा रहे थे, पर पशुओं की करुणा से लौटने लगे उस समय राजमती ने कहा था कि आपका मेरा इस जन्म का नहीं, आठ पूर्व जन्मों का संबंध है। यह स्तवन राजमती की उक्ति है, बड़ी ही मार्मिक। बालही = वल्लभी, प्रिया। सगपण = संबंध। बालिम = प्रिय। मनरा = मन का। नारी = नारी के पक्ष में यह प्रेम फिर किसलिए है? ईश्वर० = महादेव ने तो पार्वती को अर्धांग में धारण किया, आप मेरा हाथ भी नहीं पकड़ते। पशु० = पशुओं की करुणा। रिदय = हृदय में। माणस नी = मनुष्य की। चतुराई को० = आप को

मोह-दसा धरि भावताँ रे चित लहे तत्व-विचार।
वीतरागता आदरी रे प्राणनाथ निरधार।
सेवकपिण ते आदरे रे तो रहे सेवक-माम।
आसय साथे चालिये रे, एहीज रूड़ूँ काम।
त्रिविध योग धरि आदर्यो रे नेमनाथ भरतार।
धारण पोषण तारणो रे नवरस मुगताहार।
कारण-रूपी प्रभु भज्यो रे गण्यो न काज अकाज।
कृपा करी प्रभु दीजिये रे आनँदघन-पद-राज॥

श्रीपार्श्वनाथ-जिन-स्तवन] (२३) [सारंग

ध्रुव-पद-रामी हो स्वामी माहरा निःकामी गुणराय, सुज्ञानी।
निज-गुण-कामी हो पामी तूँ धणी, ध्रुव आरामी हो थाय।
सर्वव्यापी कहो सर्व जाणगपणे, पर-परिणमन-स्वरूप।

संवत्सरी = वर्ष भर। सेवक० = वर्ष भर द्रव्यादि दान देनेवाले तो वांछित पालेते हैं पर मैंने अपना जीवन आप को समर्पित कर दिया फिर भी आप विमुख हुए यह मेरा ही दोष है। सखी० = मेरी सखियाँ कहती थीं कि वे (नेमिनाथजी) साँवले हैं पर मैं तो आप का लक्षण श्वेत समझती थी। पर इस लक्षण से तो सखियाँ ही सच्ची ठहरीं। रागी सूँ० = संसार में लोग रागी से ही अनुराग करते हैं मैंने तो विरागी से भी अनुराग किया है। राग विना० = यदि मुक्ति सुंदरी ही आप को रुची तो बिना राग के उसकी माँग कैसे देखेंगे? माग = माँग का मार्ग। गुह्य = गुप्त, रहस्यपूर्ण। एक० = आप का रहस्य भी छिपा न रह सका, सब जान गए। आप एक क्या अनेक (अनेकांत बुद्धि) के साथ रमण करनेवाले हैं। अच्छे ब्रह्मचारी हैं! रोगरहित = निर्विकार। जिण० = जिस दृष्टि से आप को देखती हूँ उसी से आप मुझे देखें। सीजे = सिद्ध हो। माम = मर्म, धर्म। रूड़ूँ = उत्तम, रूरा। त्रिविध = मन, वचन, कर्म से। तारण = उद्धार। नवरस = नूतन रस; नवम रस (शान्तोऽपि नवमो रसः)। मुगताहार = मोती की माला; मोक्षपद। कारण० = हेतुभूत। [२३] ध्रुव = अटल। जाण० = ज्ञातापन में। पर० = परवस्तु में परिणति।

परूरूपे करी तत्वपणूँ नही स्वसत्ता चिद्‌रूप।
ज्ञेय अनेकें हो ज्ञान अनेकता जल-भाजन रवि जेम।
द्रव्यएकत्वपणे गुणएकता निज-पद-रमताँ हो खेम।
परक्षेत्रैं गत ज्ञेय नें जाणवे परक्षेत्री थयूँ ज्ञान।
अस्तिपणूँ निज क्षेत्रैं तुमैं कह्यो निर्मलता-गुण मान।
ज्ञेय-विनाशैं हो ज्ञान विनश्वरु काल-प्रमाणे रे थाय।
स्वकाले करी स्वसत्ता सदा, ते पर रीते न जाय।
परभावे करी परता पामताँ, स्वसत्ता थिर ठाण।
आत्मचतुष्कमयी परमाँ नहि तो किम सहु नो रे जाण।
अगुरुलघु निज गुण ने देखताँ द्रव्य सकल देखंत।
साधारण गुण नी साधर्म्यता दर्पण-जल ने दृष्टांत।
श्रीपारस जिन पारस-रस समो पिण इहाँ पारस नाहिँ।
पूरण रसियो हो निज गुण-परसनो आनँदघन मुझ माहिँ॥

श्रीमहावीर-जिन-स्तवन] (२४) [धनाश्री

वीर-जिने-चरणे लागूँ वीर-पणूँ ते मागूँ रे।
मिथ्या-मोह-तिमिर-भय भागूँ जीत-नगारूँ बागूँ रे।
छउमथ वीरय लेस्या संगे अभिसंधिज मति अंगे रे।
सूक्षम थूल क्रिया ने रंगे योगी थयो उमंगे रे।
असंख्य प्रदेश वीर्य असंखे योग असंखित कंखे रे।
पुद्गलगण तिणे ल्यैसु विशेषे यथासकति मति लेखे रे।
उत्कृष्टे वीरय ने वेखे योगक्रिया नवि पेसे रे।
योग तणी ध्रुवता ने लेसे आतम-सगति न खेसे रे।

अन्य वस्तु मैं स्थिति। पररूपे० = दूसरी वस्तुओं मैं परिणति आत्मरूप नहीं। आत्मा की सत्ता तो चिद्रूप है, परिणति अचित् है। थिर० = स्थिर स्थानवाली। पारस-रस = पारसमणि रूप। [२४] बागूँ = बजता है। छउमथ = छद्मस्थ। वीरय = वीर्य। अभि० = योगाभिसंधिजनित। कंखे = (कांक्षा) अभिलाष

काम वीर्य वशिँ जिम भोगी तिम आतम थयो भोगी रे।
सूरपणे आतम-उपयोगी थायेँ तेह नैँ अयोगी रे।
वीरपणूँ ते आतम ठाणे जाण्यूँ तुम ची वाणे रे।
ध्यान विनाणे सगति प्रमाणे निज ध्रुवपद पहिचाणे रे।
अक्षय दर्शन ज्ञान विरागे आनँदघन प्रभु जागे रे॥

करे। ल्यैसु = लेश्या, प्रकाश। पेसे = (पैसे = पैठे) प्रवेश करती। खेसे = (स्खलित) डिगती नहीँ। वाणे = वाणी। विनाण = विज्ञान।

आनंदघन-बहोत्तरी

चेतावनी] (१) [बिलावल

क्या सोवै उठ जाग बाउरे।
अंजलि-जल ज्यूँ आयु घटत है, देत पहरिया घरिय घाउ रे।
इंद चंद नागिंद मुनि चले, को राजा पति साह राउ रे।
भमत भमत भव-जलधि पाय कै भगवतभक्ति सुभाउ नाउ रे।
कहा बिलंब करै अब बउरे, तरि भव-जलनिधि पार पाउ रे।
आनँदघन चेतनमय मूरति, सुद्ध निरंजन देव ध्याउ रे॥

(२) [एकताली

रे घरियारी बाउरे, मत घरिय बजावै।
नर सिर बाँधत पाघरी, तूँ क्या घरिय बतावै।
केवल काल कला कलै वै तू अकल न पावै।
अकल-कला घट मैं घरी, मुज सोई घरि भावै।
आतम-अनुभव-रस भरी, यामैं और न मावै।
आनँदघन अविचल कला, विरला कोई पावै॥

(३) [जाती ताल

जिय जानै मेरी सफल घरी री।
सुत बनिता यौवन धन मातो, गर्भ तणी बेदन बिसरी री।

---

[१] पहरिया = घड़ियाल बजानेवाला। नागिंद = नागेंद्र। सुभाउ = स्वाभाविक। [२] पाघरी = पगड़ी। काल० = समय के विभाग की सूचना देकर। अकल = सब कलाओं से परे (ब्रह्म)। घट = शरीर; घड़ा। घरी = घटी। मुज = मुझे। रस = आनंद ; जल। न मावै = नहीं समाता। [३] गर्भ० = गर्भवास की। राचत = रचता है। बाहर = शेर। हारिल = वह पक्षी

सुपन को राज साच करि माचत, राचत छाँह गगन-बदरी री।
आइ अचानक काल तोपची, गहैगो ज्यूँ नाहर बकरी री।
अजहुँ चेत कछु चेतत नाहीँ, पकरि टेक हारिल लकरी री।
आनँदघन हीरो जन छाँरत, नर मोह्यो माया-कँकरी री॥

(४)

सुहागण! जागी अनुभव-प्रीत।
निंद अनादि अज्ञान की मेटि गही निज रीत।
घट मंदिर दीपक कियो, सहज सुज्योति सरूप।
आप पराइ आपु ही ठानत वस्तु अनूप।
कहा दिखाऊँ और कूँ, कह समजाऊँ भोर।
तीर न चूकै प्रेम का, लागै सो रहै ठोर।
नादबिलुद्धो प्राण कूँ, गिनै न तृण मृग-लोय।
आनँदघन प्रभु प्रेम की अकथ कहानी कोय॥

(५)

अवधू नटनागर की बाजी, जाणैं न बाँभण काजी।
थिरता एक समय मैं ठानैं, उपजैं बिणसैं तब ही।
उलट पलट ध्रुव सत्ता राखैं, या हम सुनी न कब ही।
एक अनेक अनेक एक फुनि, कुंडल कनक सुभावै।
जल-तरंग घट माँही रविकर, अगनित नाहि समावै।
है नाँहीं है वचन अगोचर, नय-प्रमाण सतभंगी।
निरपख होय लखै कोइ बिरला, क्या देखै मतजंगी।

जो चंगुल मैं बराबर लकड़ी लिए रहता है। कँकरी = कंकड़ी। [४] आप० = अपना पराया स्वयं मान बैठता है। ठोर = जहाँ का तहाँ। नाद० = नाद से मुग्ध। लोय = लोग, समूह। कोय = कोई (और ही)। [५] फुनि = पुनि। कुंडल० = प्रसिद्ध कनक-कुंडल न्याय। नय० = शास्त्रप्रमाण से सैकड़ों मुद्राओं वाला। निरपख = निष्पक्ष। मत० = सांप्रदायिक विवाद के युद्ध की रुचिवाला।

सवमयी सरवंगी मानै, न्यारी सत्ता भावै।
आनँदघन प्रभु-वचन-सुधारस, परमारथ सो पावै॥

साखी] (६) [रामगिरी

आतम-अनुभव-रसिक को, अजब सुन्यो बिरतंत।
निर्वेदी वेदन करै, वेदन करै अनंत।
माहारो बालुड़ो संन्यासी, देह-देवल-मठवासी।
इड़ा-पिँगला-मारग तजि जोगी, सूषमना-घर-वासी।
ब्रह्मरंध्र मधि साँसन पूरी, बाऊ, अनहद नाद*बजासी।
यम नीयम आसन जयकारी, प्राणायाम-अभ्यासी।
प्रत्याहार धारणा धारी, ध्यान समाधि समासी।
मुल उत्तर गुण मुद्राधारी, पर्यंकासन-वासी†।
रेचक पूरक कुंभक सारी, मन इंद्री जय कासी‡।
थिरता जोग जुगति अनुकारी, आपो आप विमासी।
आतम परमातम अनुसारी, सीझे काज समासी॥

(७) [आसावरी

जग आसा जंजीर की, गति उलटी कुल मोर।
झकखो धावत जगत में रह छूटो इक ठोर।
अवधू क्या सोवे तन-मठ में, जाग बिलोक न घट में।
तन मन की परतीत न कीजें, ढहि परै एकै पल में।

---

[६] निर्वेदी = वेद से परे, ब्रह्म। बेदन० = जाने। माहारो० = मेरा भोला-भाला। देह० = शरीर-रूप मंदिर का निवासी। बाऊ = वायु। समासी = समा जाता है। मुल = मूल गुण (यम)। उत्तर = उत्तर गुण (नियम)। कासी = भाल में दोनों भौहों के बीच का स्थान। विमासी = विचार करता है। सीझे = सिद्ध हो जाता है। समासी = समास में, थोड़े में। [७] जाग० = जगकर शरीर के भीतर क्यों नहीं देखता। चीन्हे० = घट के जल में

* तान। † वारी, चारी। ‡ कारी।

मठ मैं पंचभूत का वासा, सासा धूत खवीसा।
छिन छिन तोहि छलन कूँ चाहैं, समजे न बौरा सीसा।
सिर पर पंच बसे परमेसर, घट मैं सूछम बारी।
आप अभ्यास लखे कोइ बिरला, निरखे ध्रू की तारी।
आसा मारि आसन धरि घट मैं, अजपा जाप जगावै।
आनँदघन चेतनमय सूरति, नाथ निरंजन पावै॥

(८) [धनाश्री, सारं

आतम-अनुभव-फूल की नवली कोऊ रीत।
नाक न पकरै वासना, कान गहै परतीत।
अनुभव नाथ कुँ क्यौं न जगावै।
ममता-संग सो पाय अजागल-थन तैं दूध दुहावै।
मेरे कहे तैं खीज न कीजे, तूँ ऐसि ही सिखावै।
बहोत कहे तैं लागत ऐसी, अँगुली सरप* दिखावै।
औरन के सँग राते चेत न, चेतन आप बतावैं†।
आनँदघन की सुमति अनंदा, सिद्ध सरूप कहावै॥

विनय] (९)

नाथ निहारो आप मतासी।
वंचक सठ संचक सी रीतैं, खोटो खातो खतासी।

रमनेवाले की पहचान। सासा० = श्वास। धूत० = धूर्त और दुष्ट। समजे० = पागल अपने सिर पर आए इनको समझता नहीं। पंच० = पंचपरमेष्ठी (अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु)। बारी = जल। तारी = तारा। [८] वासना = गंध। कान० = अनाहत नाद सुनकर। अजागल० = बकरी के गले में लटकनेवाली स्तनाकार छीमियाँ। अँगुली० = सर्प जैसे उँगली दिखाने से फुफकारता है। औरन० = औरों (सांसारिक विषयों) से अनुरक्त होकर अचेत हो गया है पर अपने को ब्रह्म कहता है। [९] आप० = आप का मतानुयायी। संचक =

* सरग। † माते आप बतावे।

आप बिगूँवण जग की हाँसी, स्यानप कोण बतासी।
निज जन सुरिजन मेला ऐसा, जैसा दूध पतासी।
ममता दासी अहितकरी हरविधि विविध भाँति सँतासी।
आनँदघन प्रभु विनती मानो, और न हितु समता सी॥

(१०) [टोड़ी

परम नरम मति और न आवै।
मोहन गुन-रोहन गति सोहन, मेरी बेर ऐसे निठुर लखावै।
चेतन गात मनात न एते, मूल बसात जगात बढ़ावै।
कोइ न दूति दलाल बसीठी, पारखि प्रेम-खरीद बनावै।
जाँघ उघारि अपनी कहा एते, बिरह जार निस मोहि सतावै।
एतो सुनि आनँदघन बिनती और कहा कोउ डुंड बजावै॥

आत्मानुभव] (११) [मालकोश, बिलावल

आतम-अनुभव-रीति वरी री।
मौर बनाय निजरूप निरूपम तिच्छन रुचि कर तेग धरी री।
टोप सनाह सूर को बानो, एकतारी चोरी पहिरी री।
सत्ता थल मैं मोह विदारत, ए ए सुरजन मुह* निसरी री।

संचय करने मैं लीन। खोटो० = मेरा खोटा खाता खतियाया जायगा। आप० = अपने को खोना। स्यानप = चतुराई। बतासी = बताएगा। सुरजन = सज्जन। मेला = मिलाप। पतासी = बताशा। सँतासी = सताएगी। हितु = हितकारी। समता० = समता के समान कोई दूसरा नहीं। [१०] परम० = दूसरों के लिए आप कोमल हैं। रोहन = रोहण। गुन-रोहन = गुणी। सोहन = शोभन। चेतन० = चेतन मेरे गान से अनुकूल नहीं होता। बसात = वस्तु। जगात = कर, टैक्स। बसीठी = (विसृष्ट) संदेश ले जानेवाली। कहा = क्या। एते = इससे। ज्वार = ज्वाला। डुंड = डंका। [११] वरी = वरण की। मौर =

केवल कमला अपछर सुंदर, गान करे रसरंग-भरी री।
जीत-निसान बजाइ बिराजै, आनँदघन सर्वंग धरी री॥

साखी] (१२) [रामगिरी

कुबुधि-कुबजा कुटिल गति, सुबुधि राधिका नारी।
चौपर खेलै राधिका [रानी] जीतै, कुबजा हारी।
खेलै चतुर्गति चौपर प्रानी मेरो खेलै।
नरद गँजीफा कौन गिनत है, मानै न लेखे बुधिवर।
राग दोष [अरु] मोह के पासे, आप बनाए हित कर।
जैसा दाव परै पासे का, सारो चलावै खिलकर।
पाँच तलैं है दूआ भाई, छका तलैं है एका।
सब मिल होत बराबर लेखा, यह विवेक गिनबे का।
चउरासी माँहे फिरै नीली, स्याह न तोरी जोरी।
लाल जरद फिर आवै घर मैं, कबहुक जोरी बिछोरी।
भाव विवेक के पाव न आवत, तब लग काची बाजी।
आनँदघन प्रभु दाव देखावत, तो जीते जिय गाजी॥

मुकुट। तिच्छन = तीक्ष्ण। रुचि = इच्छा। तिच्छन रुचि० = तीक्ष्ण रुचि रूप तलवार हाथ मैं ले ली है। टोप = लोहे की टोपी, कूँड़ी। सनाह = कवच। बानो = वेश। एकतारी० = छाती पर पहनी जानेवाली एक तार की जाली। चोरी = चोली। सत्ता० = सत्ता के सभास्थल मैं। सुरिजन० = देवता स्वागत करते हैं। कमला = लक्ष्मी। अपछर = अप्सरा। [१२] चतुर्गति = चार प्रकार का। नरद = गोट। गँजीफा = ताश के पत्तों का एक खेल। सारी = गोटी। हित कर = प्रसन्न होकर। तलैं = नीचे। पाँच = पंचेंद्रिय। दूआ = द्वैतबुद्धि अथवा जैनधर्म की सात गतियाँ। छका = षड्दर्शन। एका = ब्रह्म। चउरासी = चौरासी लक्ष योनियाँ। नीली = नीली गोटी (जीव)। स्याह = काली गोटी तामसिक माया। जोरी = जोड़ी। जरद = पीली। पाव = पासे का वह दाँव जिसे पौ बारह कहते हैं। पाव = पैर। गाजी = गरजकर।

(१३)

अनुभव हम तो रावरी दासी।
आई कहाँ तैं माया ममता, जानूँ न कहाँ की वासी।
रीज परे वाके सँग चेतन, तुम क्यूँ रहत उदासी।
वरज्यो न जाय एकंत कंत को लोक मैं होवत हाँसी।
समजत नाहि निठुर पति एती, पल एक जात छमासी।
आनँदघन प्रभु घर की समता, अटकलि और लबासी॥

(१४)

अनुभव तूँ है हितू हमारो।
आय उपाय करो चतुराई और को संग निवारो।
तिसना राँड़ भाँड़ की जाई, कहा घर करै सँवारो।
सठ ठग कपट-कुटुँब ही पोखै, मन मैं क्यूँ न विचारो*।
कुलटा कुटिल कुबुधि सँग खेलि कै अपनी पत क्यूँ† हारो।
आनँदघन समता घर आवै, बाजै जीत नगारो॥

ज्ञानोदय] (१५)

मेरे घट ज्ञान-भानु भयो भोर।
चेतन चकवा चेतना चकवी, भागो बिरह को सोर।
फैली चहुँ दिस चतुर-भाव-रुचि, मिट्यो भरम-तम जोर।
आप की चोरी आप ही जानत, और कहत ना चोर।

---

[१३] रीज० = रीझ गए। पति = अर्थात् मन। घर० = आप की वास्तविक वस्तु समता है। अटकलि = आनुमानिक, काल्पनिक। लबासी = साज-सामान।
[१४] तिसना = तृष्णा। जाई = पुत्री। सठ = यह दुष्टा तृष्णा। पत = प्रतिष्ठा।
[१५] चतुर० = चातुर्यभाव का प्रकाश, ज्ञान की ज्योति। आप की = अपनी।

* उनकी संगति वारो। † पति ज्यूँ।

अमल कमल विकच* भये भूतल, मंद विषय-ससि कोर ।
आनँदघन एक वल्लभ लागत, और न लाख किरोर ॥

प्रतीक्षा] (१६) [मारू

निसदिन जोऊँ (तारी) बाटड़ी घरे आवो न ढोला ।
मुज सरिखी तुज लाख है मेरे तू ही ममोला ।
जवहरी मोल करै लाल का, मेरा लाल अमोला ।
जिसके पटतर को नहीं, उसका क्या मोला ।
पंथ निहारत लोयणे, द्रग लागी अडोला ।
जोगी सुरत-समाधि मैं, मुनि ध्यान झकोला ।
कौन सुनै किनकूँ कहूँ किम माँडूँ मैं खोला ।
तेरे मुख दीठे टल, मेरे मन का झोला ।
मित्त विवेक बातैं कहै सुमता सुनि बोला ।
आनँदघन प्रभु आवसे सेजड़ी रँग रोला ॥

जिज्ञासा] (१७) [सोरठ गिरनारी

छोटा ने क्यूँ मारे छे रे, जाये काट्या डेण ।
छोरो छे मारो बालो भोलो, बोले छे अंमृत वेण ।

बिकच० = खिले । कोर = किरण । वल्लभ = प्रिय । किरोर = करोड़ । [१६] जोऊँ = देखूँ । बाटड़ी = मार्ग । आवो० = आते क्यों नहीं । ढोला = पति । ममोला = ममत्व के अधिष्ठान, प्रिय । पटतर = बराबरी का । लोयणे = नेत्र । द्रग = दृष्टि । अडोला = अचंचल, निर्निमेष । सुरत = ब्रह्मप्रेम । झकोला = झकोर अर्थात् ध्यान की मस्ती । माँडूँ० = आँचल पसारूँ । दीठे = देखने पर । झोला = चंचलता । मित्र० = सुमति की ये बातें सुनकर उसका साथी विवेक कहने लगा कि । आवसे = आएँगे । सेजड़ी० = सेज पर रंगरेलियाँ होंगी । [१७] छोरा० = हे चेतन, इस बच्चे को क्यों मारते हो । जाए० = पुत्र से ही

* विकच नभतल ।

लेय लकुटिया चालण लाग्यो, अब काँइ फुटा छे नेण।
तूँ तो मरण सिराणे सूतो, रोटी देसी कोण।
पाँच पचीस पचासा ऊपर, बोले छे सूधा वेण।
आनँदघन प्रभु दास तुमारो, जनम जनम के सेण ॥

मानापनोदन] (१८) [मालकोश, गोड़ी

रिसानी आप मनावो रे प्यारे बिच्च बसीठ न फेर।
सौदा अगम है प्रेम का रे परखन बूझै कोय।
ले दे वाही गम पड़ै प्यारे, और दलाल न होय।
दो बाताँ जिय की करो रे, मेटो मन की आँट।
तन की तपत बुझाइये प्यारे, बचन सुधारस छाँट।
नेक नजर निहालियै रे, उजर न कीजे नाथ।
तनक नजर मुज रे मिलै प्यारे,अजर अमर सुख साथ।
निसि अँधियारी घनघटा रे, पाऊँ न बाट को फंद।
करुणा करो तो निरबहुँ प्यारे, देखूँ तुम मुखचंद।
प्रेम जहाँ दुविधा नही रे, नहि ठकुराइत रेज।
आनँदघन प्रभु आइ विराजे, आपहि समता-सेज ॥

तो ऋण (अथवा डेण = वार्द्धक्य) काटा जा सकता है। मारो = मेरा। वेण = वचन। काँइ० = अब तेरी आँखें क्यों फूट गईं। सिराणे = सिरहाने। देसी = देगा। पाँच = जैन मत के पाँच महाव्रत। पच्चीस महाव्रतों की पच्चीस भावनाएँ। पचास = तपस्या के पचास भेद। ऊपर = इनकी साधना कर लेने पर। सूधा = सुधावत्, अमृत। सेण = (स्वजन, सजन, सयण, सैण, सेण) प्रिय था नाई, सेवक। [१८] आप = स्वयं। बिच्च = मध्यस्थ। बसीठ = दूत। परख० = परख से ही इसकी जानकारी हो सकती है। ले० = जो लेता देता है वही इसे समझता है। बाताँ = बातें। आँट = गाँठ। तपत = आग। छाँट = चुनकर। नेक = थोड़ा सा। निहालिये = देखिए। उजर = उज्र, विरोध। फंद = सुझाव, उपाय। ठकुराइत = स्वामीत्व। रेज = अंश मात्र, थोड़ा भी। [१९] दुलहन =

विबोधन] (१९) [बिलावल

दुलहन री तूँ बड़ी बावरी, पिय जागै तूँ सोवै।
पिया चतुर, हम निपट अज्ञानी, ना जानूँ क्या होवै।
आनँदघन पिय-दरस-पियासँ खोल घुँघट मुख जोवै॥

सौभाग्य-प्राप्ति] (२०) [आसावरी, गोड़ी

आज सुहागन नारी, अवधू आज०।
मेरे नाथ आप सुध लीनी, कीनी निज अँगचारी।
प्रेम-प्रतीति राग रुचि रंगत, पहिरे जीनी सारी।
महिँदी भक्ति-रंग की राची, भाव अँजन सुखकारी।
सहज सुभाव चुरी मैं पैन्ही, थिरता कंकन भारी।
ध्यान उरबसी उर मैं राखी, पिय गुनमाल अधारी।
सुरत सिंदूर माँग रँगराती, निरतै बेनि समारी।
उपजी ज्योत उद्योत घट त्रिभुवन आरसी केवल कारी।
उपजी धुनि अजपा की अनहद, जीत-नगारेवारी।
झड़ी सदा आनँदघन बरखत, बन मोर एकनतारी॥

अनिर्वचनीयता] (२१)

निसानी कहा बताऊँ रे, तेरो वचन अगोचर रूप।
रूपी कहूँ तो कछू नाहीं रे, कैसे बँधै अरूप।
रूपारूपी जो कहूँ प्यारे ऐसे न सिद्ध अनूप।
सिद्ध सरूपी जो कहूँ रे, बंधन मोक्ष विचार।

बुद्धि। पिय = आत्मा। [२०] अँगचारी = सहचरी। जीनी = झीनी, पतली। उरबसी = माला मैं पहनने का एक गहना, पदिक। निरतै = निरति ही, निर्विकल्पावस्था। बेनि = वेणी। समारी = सँवारी हुई, गुही हुई। आरसी० = केवल दर्पण ही अंधकारयुक्त रह गया है; अज्ञान या माया का दर्पण। बन० = एकाग्रता ही मयूरी बनकर नाच रही है। [२१] रूपी = साकार। रूपारूपी० = साकार निराकार दोनौं कहूँ तो यह विलक्षण बात भी सिद्ध नहीं

न घटे संसारी दसा प्यारे, पुन्य पाप अवतार।
सिद्ध सनातन जो कहूँ रे, उपजै बिणसै कौण।
उपजै बिणसै जो कहूँ प्यारे, नित्य अबाधित गौन।
सर्वांगी सब-नय-धणी रे, माने सब परवान।
नयवादी पल्लोग्रही प्यारे, करै लराई ठान।
अनुभव-गोचर वस्तु को रे, जाणवो यह ईलाज।
कहन सुनन को कछु नहिँ प्यारे, आनँदघन महराज॥

विचारी] (२२)

विचारी कहा विचारै रे, तेरो आगम अगम अपार।
बिनु अधार आधेय नहीँ रे, बिन आधेय अधार।
मुरगी बिनु ईंडा नहिँ प्यारे, इडा बिनु मुरग की नार।
भुरटा बीज बिना नहि रे, बीज न भुरटा टार।
निसि बिन द्योस घटै नहिँ प्यारे, दिन बिन निसि निरधार।
सिद्ध सँसारी बिना नहीँ रे, सिद्ध बिना संसार।
करता बिन करनी नहि प्यारे, बिन करनी करतार।
जामन मरण बिना नहि रे, मरण न जनम बिना स।
दीपक बिनु परकास न प्यारे, बिन दीपक परकास*।

होती। सरूपी० = स्वरूपवाला कहा जाय तो बंध और मोक्ष का विचार नहीँ घटता। सनातन० = अनादि कहूँ तो उत्पन्न और नष्ट कौन होता है? नित्य = शाश्वत। गौन = गमन, गति, स्थिति। नय० = अर्थात् ज्ञानी, शास्त्री। परवान = प्रमाण। पल्लो० = पल्लवग्राह्यपांडित्यवाली। इह० = इस संसार मेँ अनुभवगोचर वस्तु ही जानी जा सकती है। आप अगोचर हैँ। [२२] विचारी = विचारक। आगम = शास्त्र। अगम० = वहाँ तक पहुँचने या पार जाने की शक्ति जिसमेँ नहीँ। ईंडा = अंडा। भुरटा = (भृष्ट ?) भुट्टा, बाल। द्योस = दिन। जामन = जन्म लेना। स = वह, पादपूर्त्यर्थ। परका-

* बिनु दीपक परकास नहि रे, दीपक बिनु परकास।

आनँदघन प्रभु वचन की रे, परिणति धरि रुचिवंत।
सास्वत भाव बिचारते प्यारे, खेलो अनादि अनंत॥

बोधोदय] (२३) [आसावरी

अवधू अनुभवकालिका जागी गति मेरी आतम सूँ मिलन लागी*।
जाय न कबहुँ और ढिग नेरी, तोरी बिनता-बेरी।
माया चेड़ी कुटुँब करि हाथे, एक डेढ़ दिन घेरी।
जनम जरा मरनो बसि सारे, असर न दुनिया जेती।
मेटेव काय न वा गमै मायां† किस पर ममता एती।
अनुभव-रस में रोग न सोगा, लोकवाद‡ सब मेटा।
केवल अचल अनादि अबाधित शिवशंकर का भेटा।
वर्षा-बुंद समुंद समानी, खबर न पावै कोई।
आनँदघन ह्वै ज्योति समावै अलख कहावै सोई॥

मिलन का अभिलाष] (२४) [रामगिरी

मुने म्हारो कब मिलशे मन मेलू।
मनमेलू बिण केलि न कलियै वा ले कवल कोइ वेलू।
आप मिल्या थी अंतर राखे सुमनुष नहिँ ते लेलू।
आनँदघन प्रभु मन मिलिआ बिण,को नवि विलगे चेलू॥

सता = प्रकाशत्व। परिणति = तन्मयता। [२३] नेरी = निकट। बिनता = विवशता। बेरी = बेड़ी। चेड़ी = चेरी, दासी। बसि = वश मेँ। मेटेव० = शरीर का अध्यास मिटा दिया, माया उसके पास तक जा ही नहीँ सकती। [२४] मुने = मुझे। म्हारो = मेरा। मनमेलू = प्रिय। न कलियै = नहीँ होती। वा० = चाहे कमल ले चाहे बेला का फूल। मिल्याथी० = मिलनेवाले से अंतर रखनेवाला। लेलू = (लेलिह) साँप। को० = कौन नहीँ पृथक् चलता रहा।

* समरण लागी। † दे ढबकाय नवा गमैँ मीयाँ। ‡ वेद।

सनेही संत] (२५)

क्या रे मुने मिलश्ये माहारो संत सनेही।
संत सनेही सुरिजन पाखे, राखे न धीरज देही।
जन जन आगल अंतरगत नी, बातलड़ी कहूँ केही।
आनँदघन प्रभु वैद्य-वियोगेँ किम जीवे मधुमेही॥

आत्मनिवेदन] (२६) [आसावरी

अवधू क्या मागूँ गुनहीना, वे गुन-गनन-प्रवीना।
गाय न जानूँ बजाय न जानूँ, ना जानूँ सुर-भेवा।
रीझ न जानूँ रिझाय न जानूँ, ना जानूँ पदसेवा।
वेद न जानूँ कतेब न जानूँ, जानूँ न लक्षण छंदा।
तरकवाद वेवाद न जानूँ, ना जानूँ कवि-फंदा।
जाप न जानूँ जुवाब न जानूँ, ना जानूँ कथबाता।
भाव न जानूँ भगति ना जानूँ, जानूँ न सीरा ताता।
ज्ञान न जानूँ विज्ञान न जानूँ, ना जानूँ भजनामा।
आनँदघन प्रभु के घरद्वारेँ, रटन करूँ गुणधामा॥

अलख की खोज] (२७)

अवधू राम राम जग गावै, विरला अलख लगावै।
मतवाला तो मत मैं माता, मठवाला मठ-राता।
जटा जटाधर पटा पटाधर, छता छताधर ताता।
आगम पढ़ि आगमधर थाके, मायाधारी छाके।
दुनियादार दुनी सैँ लागे, दासा सब आसा के।

---

[२५] सुरिजन = स्वजन। पाखे = पीछे। आगल = आगे। अंतर० = हृदय की बातलड़ी = बात। मधुमेही = मधुप्रमेहवाला रोगी। [२६] कतेब = कुरान। कथबाता = कथावार्ता। सीरा० = ठंडा गरम। [२७] अलख० = अलख ब्रह्म से ध्यान लगाता है। मठ० = मठ मैं अनुरक्त। पटा० = सिंहासनवाले।

बहिरातम मूढ़ा जग जेता, माया के फंद रहेता।
घट-अंतर परमातम भावै, दुरलभ प्राणी तेता।
खग-पद गगन मीन-पद जल मैं, जो खोजै सो बौरा।
चित पंकज खोजै सो चीन्है, रमता आनँद* भौरा॥

ज्ञानमधु] (२८)

आसा औरन की क्या कीजै, ज्ञान-सुधारस पीजै।
भटकै द्वार द्वार लोकन के, कूकर आसाधारी।
आतम-अनुभव रस के रसिया, उतरै न कबहुँ खुमारी।
आसा दासी के जे जाए, ते जन जग के दासा।
आसा दासी के जे नायक, लायक अनुभव-प्यासा।
मनसा-प्याला प्रेम-मसाला, ब्रह्म-अग्नि परजाली।
तन-भाठी अवटाइ पियै कस, जागै अनुभव-लाली।
अगम पियाला पियो मतवाला चीन्हि अध्यातम-बासा।
आनँदघन चेतन ह्वाँ खेलै, देखै लोक तमासा॥

आत्मनिरूपण] (२९)

अवधू नाम हमारा राखै, सोई परम महारस चाखै।
ना हम पुरुष नहीँ हम नारी, बरन न भाँति हमारी।
जाति न पाँति न साधन साधक, ना हम लघु नहिँ भारी।
ना हम ताते ना हम सीरे, ना हम दीर्घ न छोटा।
ना हम भाई ना हम भगिनी, ना हम बाप न धोटा।
ना हम मनसा ना हम सबदा, ना हम तन की धरणी।
ना हम भेख भेखधर नाहीँ, ना हम करता करणी।

ताता = तप्त। खग० = पक्षी के चरणोँ का चिह्न। [२८] खुमारी = नशा। परजाली = प्रज्वलित की। कस = आसव। बासा = स्थान। ह्वाँ = वहाँ। [२९] बरन = वर्ण (ब्राह्मणादि)। भाँति = भेद। ताते = तप्त। सीरे = ठंढे। धोटा =

* अंतर। † ते जग में खेले।

ना हम दरसन ना हम परसन, रस न गंध कछु नाहीं।
आनँदघन चेतनमय मूरति, सेवक-जन बलि जाहीं ॥

समता का रंग] (३०)

साधो भाइ ! समता-रंग रमीजै, अवधू ममता-संग न कीजै ।
संपति नाहिँ, नाहिँ ममता में, रमता राम समेटै* ।
खाट-पाट तजि लाख-खटाऊ, अंत खाख में लेटै ।
धन धरती में गाड़ै बौरे, धूर आप मुख ल्यावै ।
मूषक साँप होयगो आखर, तातैं अलछि कहावै ।
समता रतनाकर की जाई, अनुभव-चंद सु भाई ।
कालकूट तजि भव में स्याणी† आप अमृत ले आई ।
लोचन-चरण-सहस चतुरानन, इन तैं बहुत डराई ।
आनँदघन पुरुषोत्तम नायक, हित करि कंठ लगाई ॥

जड़चेतन-विवेक] (३१) [श्रीराग

कित जान मते हो प्राणनाथ, इत आय मिहारो घर को साथ ।
उत माया काया कवन जात, वह जड़ तुम चेतन जग-विख्यात ।
उत करम भरम विष-बेलि संग, इत परम नरम मति मेलि रंग ।
उत काम कपट मद मोह मान, इत केवल अनुभव-अमृत-पान ।
अलि कह समता उत दुख अनंत, इत खेलहु आनँदघन वसंत ॥

पुत्र । धरणी = वृत्ति । [३०] रमता = चंचल मन । खटाऊ = खटानेवाले, पैदा करनेवाले । खाख = राख, भस्म । अलछि = अलच्मी । समता० = (लक्ष्मी नहीं प्रत्युत) समता रत्नाकर से उत्पन्न हुई है । सु = सो, सम । कालकूट = विष । भव = शिव ; संसार । स्याणी = चतुर । लोचन-सहस = इंद्र । चरण-सहस = सूर्य । [३१] कित० = कहाँ जाने का विचार किया ।

* ममता माँ मिस मेटे । † श्रेणी ।

प्रेमोपालंभ] (३२) [रामेरी

पिया तुम निठुर भए क्यूँ ऐसेँ।
मैँ मन वच क्रम करी राउरी, राउरी रीति अनैसेँ।
फूल फूल भँवर कैसी भाउँरी भरत हौ निवहै प्रीति क्यूँ ऐसेँ।
मैँ तो पिय तेँ ऐसि मिली आली कुसुम-वास सँग जैसेँ।
आछी जात※ कहा पर एती, नीर नहैयै† भैँसेँ।
गुन अवगुन न विचारौ आनँदघन, कीजियै तुम हो तैसेँ॥

मिलन की आतुरता] (३३) [गौड़ी

मिलापी आन मिलावो रे, मेरे अनुभव मीठड़े मित्त।
चातक पिउ पिउ पीउ रटै रे, पीउ मिलावै न आन।
जिउ पीवन पिउ पिउ करै प्यारे, जिउ निउ आनय आन।
दुखियारी निसदिन रहूँ रे, फिरूँ सब सुध-बुध खोय।
तन की मन की कवन लहै प्यारे, किसेँ दिखाऊँ रोय।
निसि अँधियारी मोहि हसै रे, तारे दाँत दिखाइ।
भादो कादो मैँ कियो प्यारे अँसुअन धार बहाइ।
चित चाकी चहुँ दिसि फिरै रे,‡ प्राण मैदो करै पीस।
अबला सेँ जोरावरी प्यारे, एती न कीजै रीस।
आतुर चातुरता नहिँ रे, सुनि समता टुक बात।
आनँदघन प्रभु आय मिलैँ प्यारे, आज घरैँ हर भाँत॥

---

[३२] क्रम = कर्म। राउरी = आपकी। भैँसेँ० = भैँस की सी ओछी जाति और नहीँ, जो शरीर साफ कर देने पर भी कीचड़ मेँ जा बैठती है। [३३] पीवन = प्रेमरस पीने के लिए। आन = और, अन्य। निउ = निज। आनय = ला, ले आ। तारे० = तारे रूपी दाँत। कादो = कर्दम, कीचड़। प्राण० = प्राणोँ को पीसकर मैदा किए डालता है। रीस = रिस, रोष। घरैँ = घर मेँ। भाँत =

※ ऐँठी जान। † निबहिये। ‡ चित चातक पिउ पिउ करै रे।

नटनागर] (३४)

देखो आली नटनागर को साँग ।
और ही और रंग खेलत तातें फीका लागत अंग ।
औरहनो कहा दीजे बहुत करि, जीवित है इह ढंग ।
मेरे और बिच अंतर एतो, जेतो रूपो राँग ।
तनु-सुध खोय घूमत मन ऐसें मनु कुछ खाई भाँग ।
एते पर आनँदघन नावत कहा और दीजै बाँग ॥

विरह-व्यथा] (३५) [दीपक, कानड़ो

करे जा रे जा रे जा रे जा ।
सजि सिणगार बनाय अभूषण गई तब सूनी सेजा ।
विरह-व्यथा कछु ऐसी व्यापति, मानुँ कोइ मारती बेजा* ।
अंतक अंत कहा लू लेगो प्यारे, चाहे जीव तूँ ले जा ।
कोकिल काम चंद्र चूतादिक देन मतत हैं नेजा† ।
नवल नागर आनँदघन प्यारे, आइ अमित सुख दे जा ॥

(३६) [मालश्री

बारे नाह सँग मेरो यूँ ही जोबन जाय ।
ए दिन हँसन खेलन के सजनी, रोते रैन बिहाय ।
नग भूषण सें जरी जात री, मो तन कछु न सुहाय ।
इक बुधि जिय में ऐसि आवति है, लीजै री विष खाय ।

भाँति, प्रकार । [३४] साँग = स्वाँग । औरहनो = उलाहना । रूपे = चाँदी । राँग = राँगा । नावत = न आवत । बाँग = पुकार । [३५] सिणगार = शृंगार । बेजा = (वेध्य) बेझा, लक्ष्य । अतंक = यम । लूँ = लौं, तक । अंत लेना = मार डालना । चूत = आम । देन० = भाला मारने का विचार कर रहे हैं । नेजा = भाला । [३६] बारे = बाल, छोटे । है कै = होकर । समजाय =

* नेजा । † चेतन मत है जेजा ।

ना सोवत है लेत उसासन, मन ही मैं पछिताय।
योगिनि ह्वै कै निकरूँ घर तैं आनँदघन समजाय॥

साधक योगी] (३७) [बिलावल

ता जोगे चित ल्याऊँ रे बहाला।
समकित दोरी सील लँगोटी, घुलघुल गाँठ घुलाऊँ।
तत्व-गुफा मैं दीपक जोऊँ, चेतन-रतन जगाऊँ।
अष्ट-करम कंडे की धूनी, ध्याना अगन जलाऊँ।
उपसम छनने भसम छणाऊँ, मलि मलि अंग लगाऊँ।
आदिगुरू का चेला होकर, मोह के कान फराऊँ।
धरम सुकल दोय मुद्रा सोहै, करुणा-नाद बजाऊँ।
इह विध योग-सिंहासन बैठा, मुगति-पुरी कूँ ध्याऊँ।
आनँदघन देवेंद्र से योगी, बहुरि न कलि मैं आऊँ॥

नटनागर से लगन] (३८) [मारू

मनसा नटनागर सूँ जोरी हो, मनसा०।
नटनागर सूँ जोरी सखी हम, और सबन सैं तोरी हो॥
लोक-लाज सूँ नाहिन काजा कुल-मरजादा छोरी हो।
लोक बटाऊ हसो बिरानो अपनो कहत न को री हो।
मात तात अरु सज्जन जाती, बात करत हैं भोरी हो।
चाखैं रस की क्यूँ करि छूटै, सुरिजन सुरिजन टोरी हो।
औरहनो कहा कहावत और पै नाहिन कीनी चोरी हो।
काछ कछ्यो सो नाचत निबहै और चाचरी होरी हो।

(समझाय) उन्हें समझा। [३७] बहाला = (वल्लभ) प्रिय। समकित = समकृत्य। दोरी = डोरी। जोऊँ = जलाऊँ। अष्ट-करम = योग के अष्टांग (ध्यान, धारणा आदि)। उपसम = शांति के छनने से भस्म छान लूँ। सुकल = शुक्ल, स्फटिक की सी सफेद। [३८] हसो = चाहे हँसे। बिरानो = पराया। को = कोई। सज्जन = स्वजन। चाखैं = चखने के बाद। सुरिजन =

ज्ञान-सिंधु १ंथित पाई है प्रेमपियूष-कटोरी हो।
मोदत आनँद्घन प्रभु ससधर देखत दृष्टि-चकोरी हो॥

मोह-माया] (३६) [जयजयवंती

तरस कीजइ दई कौं दई की सँवारी री।
तीछन कटाछ-छटा लागत कटारी री।
सायक लायक नायक प्रान को प्रहारी री।
काजर-काजन लाज वा जन कहुँ वारी री।
मोहनी मोहन ठग्यो जगत-ठगारी री।
दीजिये आनंदघन दाद* हमारी री॥

प्रिय-माधुरी] (४०) [आसावरी

मीठो लागे कंतड़ो ने खाटो लागे लोक।
कंत-बिहूणी गोठड़ी ते, ते रण माँहे पोक।
कंतड़ा मैं कामणा, लोकड़ा मैं सोक।
एक ठामे किम रहे, दूध काँजी-थोक।
कंत विण चउगति आणूँ मानूँ फोक।
उधराणी सिरउ फिरउ नाणूँ खरूँ रोक।

विद्वान्। टोरी = टोली। औरहनो = उलाहना। ससधर = चंद्रमा। [३६] तरस० = तरस खाओ, दया करो। प्रहारी = हरनेवाला। दाद देना = न्याय करना। [४०] ने = और। खाटो = बुरा। गोठड़ी = गोष्ठी। रण = अरण्य, बन। पोक = रोना। कामणा = (कामना) आकर्षण। चउगति = चतुर्गति, चारौं ओर। आणूँ = लाऊँ, समझूँ। फोक = (फोकट) व्यर्थ। उधराणी = लहना। सिरउ० = धक्का खिलानेवाला। नाणूँ = रकम। खरूँ = खरा। रोक = रोकड़ा, पास मैं। नाणूँ० = जो रकम पास मैं हो वही खरी। प्रबाहडा नी = प्रवाह की। नोक = पतली, पतली धार के रूप मैं बिखरा पानी। धोक द्यूँ = झुककर नमस्कार करूँ। अवर ने = औरौं को। टोक द्यूँ = मना कर

* दाह।

कंत विण मति माहरी, अबाहडा नी बोक।
धोक द्यूँ आनंदघन ने अवर ने द्यूँ टोक* ॥

विरह-व्यथा] (४१) [बिलावल, मारू

पिया बिन सुधि बुधि भूली हो।
आँख लगाई दुःख-महल के झरुखे झूली हो।
हँसती तबहुँ बिरानिया देखी, तन मन छीज्यो हो।
समजी तब एती कही, कोइ नेह न कीज्यो हो।
प्रीतम प्रानपिया बिना, प्रिया कैसे जीवे हो।
प्रान-पवन विरहा-दसा-भुवंगिनि पीवे हो।
सीतल पंखा कुमकुमा, चंदन कहा लावे हो।
अनल न विरहानल ये है, तन-ताप बढ़ावे हो।
फागुण चाचर एक निसा होरी सिरगानी हो।
मेरैं मन सब दिन जरै तन खाख उड़ानी हो।
समता-महल† बिराजहै वाणी रस-रेजा हो।
बलि जाऊँ आनंदघन प्रभु ऐसे निठुर न ह्वे जा हो ॥

अमरत्व-प्राप्ति] (४२) [सारंग, आसावरी

अब हम अमर भए न मरैंगे।
या कारण मिथ्यात दियो तज, क्यूँ कर देह धरैंगे।
राग-दोस जगबंध करत हैं, इनको नास करैंगे।
मर्यो अनंत काल तैं प्राणी सो हम काल हरैंगे।
देह बिनासी हूँ अबिनासी अपनी गति पकरैंगे।

दूँ, रोक दूँ। [४१] झरुखे = झरोखे मैं। झूली = टँग गई। हुँ = हौं, मैं। बिरानिया = अन्य स्त्रियाँ। छीजो = क्षीण हो गया। प्रिया = प्रेमिका। कुमकुम = रोली। सिरगानी = सुलगी। रेजा = रंजित, युक्त। [४२] मिथ्यात = मिथ्यात्व। दोस = द्वेष। नासी० = नाश हो जायगी (देह)। समरे = (सँवरे)

* ढोक। † घर।

मर्‍यो अनंत बार बिन समज्यो, अब सुख-दुख बिसरेंगे।
आनँदघन निपट निकट अच्छर हो, नहिँ समरे सो मरेंगे* ॥

प्रबोधन] (४३) [टोड़ी

मेरी तूँ मेरी तूँ काहे डरै री।
कहे चेतन समता सुनि आखर, और दोढ़ दिन जूठ लरै री।
एती तो हूँ जानूँ निहचै, रीरी पर न जराउ जरै री।
जब अपनो पद आप सँभारत, तब तेरे परसंग परै री।
औसर पाय अध्यातम सेली, परमातम निज योग धरै री।
सकति जगाइ निरूपम रूप की, आनँदघन मिलि केलि करै री ॥

प्रतीति] (४४)

तेरी हूँ तेरी हूँ एती कहूँ री।
इन बातन मैं दगो तूँ जाने, तो करवत कासी जाय गहूँ री।
बेद-पुरान कतेब कुरान मैं, आगम निगम कछू न लहू री।
चाचरि फोरि सिखाइ सबनि की,† मैं तेरे रस-रंग रहूँ री।
मेरे तो तूँ राजी चहिए, और के बोल मैं लाख सहूँ री।
आनँदघन बेगैं मिलो प्यारे, नाहिं तो गंग-तरंग बहूँ री ॥

याचना] (४५)

ठगो री भगो री, लगो री, जगो री।
ममता माया, आतम ले मति अनुभव मेरी ओर दगो री।

स्मरण किए। [४३] दोढ़ = डेढ़। जूठ = झूठ, व्यर्थ। रीरी० = पीतल से कहीं जड़ाव जड़ा जाता है। सेली = (शैली) ढंग। सकति = (शक्ति) बल। [४४] करवत = करपत्र, आरा। कतेब = किताब, धर्मग्रंथ। राजी = प्रसन्न।

* यह 'द्यानत' कवि के 'द्यानतविलास' या 'धर्मविलास' में कुछ ही पाठभेद से ज्यों का त्यों मिलता है। [पाठभेद—या = तन। मर्‍यो० = उपजै मरै काल ते प्रानी ताते काल हरैंगे। अपनी गति = भेद ज्ञान। सुख = सब। आनँदघन = द्यानत।]

† बाचा रे फोर सिखाइ सेवन की।

भ्रात न मात न तात न गात न, जाति न बात न लाग-तगो री।
मेरे सब दिन दरसन फरसन तान सुधारस-पान पगो री।
प्राननाथ बिछुरे की बेदन पार न पाऊँ अथाग थगो री।
आनँदघन प्रभु दरसन औघट घाट उतारन नाव मगो री॥

मोहराज-विजय] (४६)

चेतन चतुर चोगान लरी री।
जीत ले मोहराय को लसकर, मसकरि* छाँड अनादि धरी री।
नाँगी काढ ले ताड ले दुसमन लागे काची दोइ घरी री।
अचल अबाधित केवल मनसुफ पावे शिव-दरगाह भरी री।
और लराइ लरे सो बोरा, सूर पछारे भाउ* अरी री।
धरम भरम कहा बूझे औरे, रहै आनँदघन-पद पकरी री॥

विरह-वेदना] (४७)

पिय बिन निसदिन झुरूँ खरी री।
लहुडी बडी की कानि मिटाई द्वार तेँ आँखेँ कब न टरी री।
पट भूखन तन भौकन ऊठे‡ भावे न चौकी जराउ-जरी री।
सिव-कमला अलि! सुख नउ पावत कौन गिनत नारी अमरी री।

---

[४५] दगो = प्रज्वलित। फरसन = परसन, स्पर्श। लाग-तगो = संबंध-सूत्र। अथाग = अथाह। थगो = हुआ (वेदना का समुद्र)। मगो = माँगती हूँ। [४६] चोगान = मैदान; युद्ध। लसकर = सेना। मसकरि = हँसी, दिल्लगी, नकल, मिथ्या। नाँगी = नंगी तलवार। काढ० = निकाल ले। ताड० = मार ले। काची० = पक्की नहीँ, केवल कच्ची दो घड़ियाँ लगँगी। मनसुफ = न्याय करनेवाला। दरगाह = दरबार। बोरा = पागल। भाउ = भाव, अस्तित्व। अरी = शत्रु। [४७] झुरूँ० = अत्यंत संतप्त रहती हूँ। लहुडी० = छोटे बड़े की मर्यादा तोड़ दी। कब = कभी। भौकन = ज्वाला। चौकी = गले का एक गहना या सिंहासन। सिव० = मोक्ष लक्ष्मी; पार्वती। अमरी = देवांगना। निगोरी =

* मिसकर। † नाव। ‡ ओढ़े।

सास विसास उसास न राखे, नणदि निगोरी भोरी लरी री।
और तबीब न तपति बुझावै, आनँदघन पीयूष-झरी री॥

आत्मा की व्यग्रता] (४८) [मारू, जंगलो

मायड़ी मुने निरपख किणहि न मूकी।
निरपख रहेवा घणुँइ झूरी धीमैं निज मति फूकी।
जोगिए मिली ने जोगण कीधी जतिए कीधी जतणी।
भगतैं पकड़ि भगतणी कीधी, मतवाली कीधी मतणी।
राम भणी रहमान भणावी अरिहँत पाठ पढाई।
घर घर ने हूँ धंधे विलगी, अलगी जीव-सगाई।
कोइए मुंडी कोइए लोची, कोइए केस लपेटी।
कोइ जगावी कोइ सुती छोड़ी, वेदन किणहि न मेटी।
कोई थापी कोइ उथापी कोई चलावी कोई राखी।
एकमनों मैं कोई न दीठो कोई नो कोई नवि साखी।
धींगो दुरबल ने ठेलीजें ठींगे ठींगो बाजे।
अबला तैं किम बोली सकिए बड जोधा ने राजे।
जे जे कीधूँ जे जे कराव्यू ते कहेताँ हूँ लाजूँ।
थोडे कहे घणूँ प्रीछी लेजो घर-सूतर नहि साजूँ।

निगोड़ी। भोरी = भोली, अज्ञान। तबीब = वैद्य। [४८] मायड़ी = माई। मुने = मुझे। निरपख = निष्पक्ष। नउ० = नहीं छोड़ा, नहीं रहने दिया। रहेवा० = निष्पक्ष रहने के लिए बहुत परेशान हुई। धीमैं = धीरे धीरे। फूकी = जला डाली। कीधी = की। मतवाली = ज्ञानमस्त, खुदमस्त। मतणी = मस्त। राम० = राम कहा, फिर रहमान कहा। अरिहँत = जैन साधु। पढाई = पढ़ाई। विलगी = विशेष रूप से लगी। अलगी = पृथक् हो गई। लोची = केश नुचवाए। थापी = स्थापित किया। उथापी = उखाड़ी। राखी = रखा, रोका, बैठाया। एकमनों = एक मनवाला। नवि = नहीं। धींगो = बली। दुरबल० = दुर्बल को हरा देता है। ठींगे० = बली से बली लड़ता है। जे जे० = जो जो किया जो जो कराया। थोडे० = थोड़ा कहने पर बहुत समझ लेना। घर-

आपबीती कहेताँ रीसावे, तेहि सूँ जोर न चाले।
आनँदघन प्रभु बाँहड़ी झाले वाणी सघली पाले॥

प्रियमिलन की याचना] (४९) [सोरठी

कंचन वरणो नाह रे, मोने कोइ मेलावो।
अंजन-रेख न आँखड़ी भावे मंजन सिर पड़ो दाह रे।
कोइ सयण जाणे पर-मन नी वेदन-विरह अथाह रे।
थर थर देहड़ी धूजे माहरी जिम वानर भरमाह रे।
देह न गेह न नेह न रेह न भावे न दूहा* गाह रे।
आनँद्घन बहालो बाँहड़ी साही निसदिन धरूँ उछाह रे॥

प्रियप्राप्ति की कठिनाई] (५०) [धनाश्री

अनुभव ! प्रीतम कैसे मनासी।
छिन निरधन सधन छिन निरमल समल रूप बनासी।
छिन में सक्र तक्र फुनि छिन में देखूँ कहत अनासी।
विरचन विच्च आप हितकारी निरचन जूँठ खनासी।
तूँ हितु मेरो मैं हितु तेरी अंतर काहि जनासी।
आनँद्घन प्रभु आन मिलावो, नहितर करो धनासी॥

विरह-वेदना] (५१) [धमाल

भादूँ की राति काती सी बहे, छाती छिन छिन छीना।
प्रीतम सब छवि निरख के हो, पीउ पीउ पिउ कीना।

सूतर० = घर का सूत्र अर्थात् व्यवस्था ठीक नहीं है। बाँहड़ी० = बाँह पकड़ ले। सघली० = सारी बाजी जीत ली जाय। [४९] मोने = मुझे। मंजन = स्नान। सयण = स्वजन; सज्जन। कोई० = कोई स्वजन ही दूसरे के मन की व्यथा समझता है। धुजे = काँपती है। जिम० = जैसे बंदर नाचता है। रेह = रेख, लेख। दूहा = दोहा। गाह = गाथा। बाँहड़ी० = बाँह पकड़ी। बहालो = वल्लभ, प्रिय। [५०] मनासी = मनाएगा। सधन = धनी। समल = मल (विकार) युक्त। बनासी = बनाएगा। सक्र = इंद्र। तक्र = मठा (तत्त्वहीन)।

* दुहड़ा।

वाही बिच चातक करे हो, प्रान हरे परवीना।
एक निसि प्रीतम नाउँ की हो, बिसर गई सुध नाउँ।
चातक ! चतुर बिना रही हो, पिउ पिउ पिउ पिउ पाउँ।
एक समे आलाप के हो, कीने अडाने गान।
सुघर बपीहा सुर धरे हो, देत हे पिउ पिउ तान।
रात-विभाव विलात है हो, उदित सुभाव सुभान।
सुमता साँच-मते मिले हो, आए आनँदघन मान ॥

सर्वस्व आनंदघन] (५२) [जयजयवंती

मेरे प्रान आनंदघन तान आनंदघन।
मात आनंदघन तात आनंदघन, गात आनंदघन जात आनंदघन।
राज आनंदघन काज आनंदघन, साज आनंदघन लाज आनंदघन।
आभ आनंदघन गाभ आनंदघन, नाभ आनंदघन लाभ आनंदघन ॥

वंशीवाला] (५३) [सोरठ मुलतानी, नट रागिणी

सारा दिल लगा है, वंसीवारे सूँ।
वंसीवारे सूँ प्रानप्यारे सूँ।
मोर मुकुट मकराकृत कुंडल, पीतांबर पटवारे सूँ।

फुनि = पुनि, फिर। अनासी = अविनाशी। विरचन = विशेष प्रेम करना। विरचन० = प्रेमी के लिए तो हितकारी है। निरचन = अप्रेमी। निरचन० = अप्रेमी को मिथ्या लिख भेजेगा। जनासी = जनाएगा। नहितर = नहीँ तो। धनासी = धन्याश्री, प्रेमिका ; धनाश्री, रागिनी। [५१] काती = कटारी। बहे = लगती है। छवि = चित्र। परबीना = चतुर, प्रिय। बिसर० = अब तो नाम लेने की सुध भी भूल गई। चतुर = प्रिय। एक समे = संयोग में। अडाने = अडाना राग। सुघर = चतुर। बपीहा = पपीहा। विभाव = विगत-भाव, विरह की (रात)। सुभाव = सुंदर भाव, प्रेम (संयोग)। साँच० = सचमुच। [५२] तात = पिता। जात = पुत्र या जात-पाँत के। आभ = आभा। गाभ = गर्भ, मध्य। नाभ = नाभि, मूल। [५३] सारा = सब या

चंद चकोर भए प्रान पपइया, नागर नंददुलारे सूँ।
इन सखी के गुन गंद्रप गावे, आनँदघन उजियारे सूँ ॥

खंडिता] (५४) [प्रभाती, आसावरी

रातड़ी रमीने किहाँ थी आविया।
मूलड़ो थोड़ो भाई व्याजड़ो घणो रे, केम करी दीधो रे जाय।
तलपद पूँजी म आपी सघली रे, तोहे व्याज पूरूँ नवि थाय।
व्यापार भागो जल-वट थल-वटैं रे, धीरे नहीँ निसानी माय!
व्याज छोड़ावी कोई खंधा परठवे रे, तो मूल आपूँ सम खाय।
हाटड़ूँ माँडूँ रूड़ा माणक-चोक माँ रे, साजनिया नूँ मनड़ूँ मनाय।
आनँदघन प्रभु शेठ शिरोमणि रे, बाँहड़ी झालजो रे आय ॥

आनंदघनतत्त्व] (५५) [धनाश्री

चेतन आप कैसैं लहोइ*।
सत असत गुन परजय परनति, भाव सुभाव गति होइ†।
स्व पर रूप वस्तु की सत्ता, सीझे एक न दोइ।
सत्ता एक अखंड अबाधित, यह सिद्धांत-पख जोइ।

खूब, भली भाँति। गंद्रप = गंधर्व। [५४] रातड़ी० = रात मैं रमण करके। किहाँ थी० = कहाँ से आए। केम० = कैसे दिया जाय। तलपद = खास, असल, मूल। मँ = मैं। आपी = दे दी। सवली = सब। तोहे = तो भी। नवि० = नहीँ होता। जल-वट = जल के मार्ग से। थल० = स्थल के मार्ग से। धीरे० = उसकी निशानी भी नहीँ मिलती। खंधा = किस्त। परठवे = ठहरा दे। आपूँ = दे दूँ। सम = कसम, सौगंध। हाटड़ूँ० = हाट लगाई। रूड़ा = सुंदर। साजनिया नूँ = साजन का। मनड़ूँ = मन। झालजो = पकड़ लीजिए। [५५] पख = पक्ष। जोइ = देख। अन्वय = कार्य-कारण का संबंध (हेतु-साध्ययोर्व्याप्तिरन्वयः)। व्यतिरेक = जहाँ साध्य का अभाव हो वहाँ हेतु का भी अभाव हो (यत्र साध्याभावस्तत्र हेत्वभाव इति व्यतिरेकव्याप्तिः)। हेतु =

* सफल वियापक होइ। † दोइ।

अन्वय अरु व्यतिरेक हेतु को, समजि रूप भ्रम खोइ।
आरोपित सव धर्म और हैं, आनँदघन तत सोइ॥

प्रिय का प्रत्यावर्तन] (५६)

वालुड़ी अवला जोर किश्यूँ करे, पिउड़ो पर-घर जाय।
पूरब दिसि पच्छिम दिसि रातड़ी, रवि अस्तंगत थाय।
पूनम ससी सम चेतन जाणियें, चंद्रातप सम भाण।
बादल-भर जिम दल-थिति आणियें, प्रकृति अनावृत जाण।
पर-घर भमताँ स्वाद किशो लहे, तन धन यौवन हाण।
दिन दिन दीसे अपयश बाधतो, निज जन न माने काण।
कुलवट छाँड़ी अवट ऊवट पड़े, मन मेहुवा ने घाट।
आँधो आँधे मिले बे जण, कोण देखाड़े वाट।
वंधु विवेकें पिउड़ो बूझव्यो, वार्‌यो पर-घर-संग।
आनँदघन समता-घर आणे, बाधे नव नव रंग॥

अपूर्व खेल] (५७) [आसावरी

देखो एक अपूरब खेला।
आप ही बाजी आप ही बाजीगर, आप गुरू आप चेला।

कारण। समजि० = रूप समझ ले। आरोपित = अर्थात् मिथ्या। तत = तत्त्व। [५६] बालुड़ी = बाला (कम वय की)। किश्यूँ = क्या। पूरब० = पूर्व दिशा रात की पश्चिम दिशा हो जाती है। पूनम० = पूर्णिमा का चंद्र, पूर्ण चंद्र। चंद्रातप = चाँदनी। भाण = ज्ञान, बोध। बादल० = बादल का घिराव। दल० = बादल के पटलों की स्थिति। बादल० = जैसे बादल के दल के दल चंद्र को ढक लेते हैं वैसे ही उस चेतन को अनावृत जानकर प्रकृति ढक लेती है। भमताँ = घूमते हुए। किशो = कैसे। हाण = हानि। बाधतो = बढ़ता हुआ। काण = मर्यादा। कुलवट = कुल का मार्ग। अवट = अमार्ग। ऊवट = उद्धत मार्ग। मेहुवा० = वर्षा-समय के घाट की भाँति। बे० = दो जने। देखाड़े = दिखाए। बंधु० = विवेक बंधु ने प्रिय को समझाया। वार्‌यो = छुड़ा लिया। बाधे = बढ़े। [५७] अलोक = लोकेतर। बाजी = संसार की बाजी (प्रपंच)।

लोक अलोक विच आप विराजित, ज्ञान-प्रकाश अकेला।
बाजी छाँड़ तहाँ चढ़ बैठे, जिहाँ सिंधु का मेला।
वागवाद खटनाद सहू मैं, किसके किसके बोला।
पाहाण को भार काँही उठावत, एक तारे का चोला।
षटपद-पद के जोग सिरीखस, क्योंकर गजपद तोला।
आनँदघन प्रभु आय मिलो तुम, मिट जाय मन का झोला॥

विरह-व्यथा] (५८) [वसंत

प्यारे आय मिलो कहा अँतै जात, मेरो विरह-व्यथा अकुलात गात।
एक पैसा भर न भावै नाज, न भूषण नहीं पट समाज।
मोहन पास न मूरति* तेरी आसी, मदन नो भय है घर की दासी।
अनुभव जइ के करो विचार, कद देखै वै बाकी तन मैं सार।
जाय अनुभव जहँ समजाए कंत, घर आए आनँदघन भए वसंत॥

प्रभुजन] (५९) [कल्याण

मोकूँ कोऊ कैसे हूँ तको।
मेरे काम एक प्रान-जीवन सूँ, और भावै सो बको।
मैं आयो प्रभु सरन तुमारी, लागत नाहीं धको।
भुजन उठाय कहूँ औरन सूँ, करहु जु कर ही सको।
अपराधी चित ठानि जगत-जन, कोरिक भाँत चको।
आनँदघन प्रभु निहचै मानो, इह जन रावरो थको॥

सिंधु = प्रेम-समुद्र। वागवाद = वाणी का विलास। खटनाद = ६ प्रकार के नाद। सहू० = सब मैं। पाहाण = (पाषाण) पत्थर। काँही = कैसे। एक तारे० = एक तार का बना हुआ। जोग = योग्य। सिरीखस = (सदृश) समता मैं। झोला = चंचलता। [५८] अँतै = अन्यत्र। एक० = कुछ भी। पट = वस्त्र। न आसी = यदि न आएगी तो। वै = वे (प्रिय)। बाकी = शेष। सार = तत्त्व अर्थात् प्राण। [५९] धको = धक्का। चको = आशंका करें।

*रास न दूसत।

निरंजनदेव] (९०) [सारंग

अब मेरे पति गति देव निरंजन।
भटकूँ कहा, कहा सिर पटकूँ, कहा करूँ जन-रंजन।
खंजन-दृगन दृगन लगावूँ, चाहूँ न चितवन अंजन।
संजन-घट-अंतर परमातम, सकल-दुरित-भय-भंजन।
एह काम-गवि एह काम-घट, एही सुधारस-मंजन।
आनँदघन प्रभु घट वन-केहरि, काम-मतंग-गज-गंजन॥

जगत् की दासी] (९१) [जयजयवंती

मेरी सूँ तुम तैं जु कहा दुरी कहो न सबै वेरी री।
रूठे से देखि मेरी मनसा दुःख-घेरी री।
जाके संग खेलो सो तो जगत की चेरी री।
सिर छेदी आगैं धरे, और नहीं तेरी री।
आनँदघन की सौं, जो कहूँ हूँ अनेरी री॥

विरह-व्याल] (९२) [मारू

पिया बिन सुध-बुध मूंदी हो।
विरह-भुवंग निसा-समैं, मेरी सेजड़ी खूँदी हो।
भोयण पान कथा मिटी, किसकूँ कहुँ सुद्धी हो।
आज-काल घर-आन की, जीव आस विलुद्धी हो।
वेदन-विरह अथाह है, पाणी नव नेजा हो।
कौन हबीब तबीब है, टारे कर करेजा हो।

रावरो० = आपका हिला, आपका ही। [९०] सजन = सज्जन, भक्त। काम-गवि = कामधेनु। काम-घट = कामना का घड़ा। मंजन = मार्जन, स्नान। घट = शरीर में। मतंग० = मतवाला हाथी। [९१] कहो न = चाहे जो कहें। जगत्० = माया। सिर० = जो सिर काट कर आगे रखे वही तेरी है, अन्य नहीं। अनेरी = विलक्षण बात। [९२] खूँदी = गड़बड़ कर दी, अव्यवस्थित कर दी। भोयण = भोजन। कथा = बात। सुद्धी = सुध, हाल। काल = कल। आन = आने। बिलुद्धी = नष्ट हो गई। नव० = नौ भाले भर, नौ पोरसा,

गाल हथेली लगाय कैं, सुर-सिंधु समेली हो।
असुअन नीर बहाय कैं, सींचूँ कर-वेली हो।
श्रावण भादूँ घनघटा, बिच बीज झबूका हो।
सरिता सरवर सब भरे, मेरा घट-सर सब सूका हो।
अनुभव बात बनाय कैं, कहै जैसी भावै हो।
समता टुक धीरज धरै, आनँदघन आवै हो॥

ब्रजनाथ] (६३)

ब्रजनाथ सैं सुनाथ बिण, हाथो हाथ बिकायो।
बिच कौं कोउ जन कृपाल, सरन नजर नायो।
जननी कहूँ जनक कहूँ, सुत सुता कहायो।
भाई कहूँ भगिनी कहूँ, मित्र सत्रु भायो।
रमणी कहूँ रमण कहूँ, राउ रज-उतायो।
सेवकपति इंद चंद, कीट भृंग गायो।
कामी कहूँ नामी कहूँ, रोग भोग मायो।
निसिपतिधर देह धरि, विविध विध धरायो।
विधि निषेध नाटक धरि, भेख आठ छायो।
भाषा षट् वेद चार, सांग शुद्ध पढ़ायो।

बहुत गहरा। हबीब = मित्र। तबीब = वैद्य। कर० = कलेजा करके, साहस करके (विरह हटाए)। सुर० = रोने की ध्वनि। समेली = डूब गई। कर० = हाथरूपी लता। बीज = (विद्युत्) बिजली। झबूका = चमक; रोने में झिझक उठना। [६३] बिच कौं = बीच का अर्थात् दूसरा (कोई)। जन = व्यक्ति। सरन = (शरण्य) आश्रय देनेवाला। नायो = (न आयो) नहीं आया। रज० = रज (रजोगुण) से उत्तप्त। मायो = समाया, गड़ा हुआ, लिप्त, लिपटा निसिपतिधर० = शंकररूप (ब्रह्म) होते हुए भी अनेक शरीर धारण करके। धरायो = पकड़ा गया, बद्ध हुआ। भेख० = आठ वेश (अवस्थाएँ) कौमार, पौगंड, कैशोर, यौवन, बाल, तरुण, वृद्ध, वर्षीयान्। भाषा० = संस्कृत, महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी, पैशाची, अपभ्रंश।

तुमसेँ गजराज पाय, गर्दभ चढ़ि धायो।
पायस ग्रह को बिसारि, भीख-नाज खायो।
लीला भुँह टुक नचाय, कहो जू दास आयो।
रोम रोम पुलकित हूँ, परम लाभ पायो।
हरि पतित के उधारन तुम, कहि सो पीवत मामी।
मोसूँ तुम कब उधारो, क्रूर कुटिल कामी।
और पतित कैइ उधारे, करनी बिनु करता।
एक काइँ नाउँ लेउँ, जूठे विरुद धरता।
करनी करि पार भए, बहोत निगम साखी।
शोभा दइ तुमकूँ नाथ, अपनी पत राखी।
निपट अज्ञानी पापकारी, दास है अपराधी।
जानूँ जो सुधार हो, अब नाथ लाज साधी।
और को उपासक हूँ, कैसे कोइ उधारूँ।
दुविधा यह राखो मत, या वरी विचारूँ।
गई सो तो गई नाथ, फेर नहिँ कीजे।
द्वारे रह्यो ढींग दास, अपनो करि लीजे।
दास कोँ सुधारि लेहु, बहुत कहा कहिये।
आनँदघन परम रीत, नाउँ की निबहिये॥

सांग = शिक्षा कल्पादि षडंग सहित। पायस = खीर। ग्रह = (गृह) घर। लीला० = किंचित् भृकुटि-विलास से। कहि = कहलाकर। पीवत० = (मेरी बार) साफ इनकार करते हो (कि हम पतित के उद्धारक नहीं हैं)। कैइ = कई। करनी० = बिना (कोई अच्छी) करनी किए। एक० = एक पतित का भी क्या नाम लूँ, अनेक पतित आपके उधारे हैं। जूठे० = तो क्या आप झूठा विरुद (पतितोद्धारक) धारण करनेवाले हैं। निगम = वेद। पत = प्रतिष्ठा। साधी = साधकर, रखकर, बचाकर। और० = यदि यह समझते हो कि मैं और किसी का उपासक हूँ, इसका उद्धार कैसे करूँ। कैसे कोई = क्यों कर। या० = इस पतित का फिर विचार करूँगा (यह दुविधा मत रखो)। ढींग =

परमदेव] (६४) [वसंत

अब जागो परमगुरु परमदेव प्यारे· मेटहु हम तुम बिच भेद।
आली-लाज निगोरी गमारी जात, मुहि आन मनावत विविध भाँत।
अलि, पर निर्मूली कुलटी कान, मुहि तुहि मिलन बिच देत हान।
पति मतवारे और रंग, रमे ममता-गणिका के प्रसंग।
जब जड़ तो जड़-वास अंत, चित्त फूले आनँदघन भय वसंत॥

परम विरह] (६५) [गोड़ी

साखी—रास ससी तारा कला, जोसी जोइने जोस।
रमता सुमता कब मिले*, भाँगे बिरहा-सोस॥
पिया बिनु कौन मिटावै रे, विरह-विथा असराल।
निंद नीमाणी आँख! तेरे नाठी मुज दुःख देख।
दीपक सिर डोले खरो प्यारे, तन थिर, धरे न निमेष।
ससि-सरिण तारा जगी रे, चिनगी दामिनी तेग।
रयणी दयण मते दगो प्यारे, मयण सयण बिनु वेग।

संढ-मुसंड, कुमार्गी (मिलाइए—अपनायो तुलसी सो धींग धमधूसरो)। [६४] गमारी = गँवारी। कान = कानि, मर्यादा। हान = हानि। जब० = जो जड़ है उसका वास अंततोगत्वा जड़ मेँ ही होता है। [६५] रास = राशि। जोसी० = हे ज्योतिषी अपना ज्योतिष देखो। भाँगे = नष्ट हो। सोस = (शोष) शोषण। असराल = घोर, भयंकर। निंद० = हे आँख! मेरा दुख देखकर तुझमेँ से अभागी नीँद भी नष्ट हो गई (अब कष्टाधिक्य से नीँद तक नहीँ आती)। दीपक० = मेरे कष्ट से दीप-शिखा अत्यंत काँप उठती है। तन० = शरीर निश्चेष्ट है, आँखोँ ने निमेष का भी त्याग कर दिया है। ससि० = शशि (मुख) की शरण मेँ तारा (नेत्र की पुतली) जग रही है और नेत्र मेँ विरह की चिनगारी बिजली की तलवार सी चमक रही है। रयणी = (रजनी) रात्रि। दयण० = दगा देने का विचार कर रही है। मयण = मदन। सयण = (स्वजन)

* आतम मित्ता किम मिले।

तन पिंजर झूरे पस्यो रे, उड़ि न सके जिउ हंस।
विरहानल जाला जली प्यारे, पंख-मूल निरबंस।
उसासा सैं बढ़ाउ को रे, बाद बदे निसि राँड।
न मने उसासा मनी प्यारे, हटकै न रयणी माँड।
इहि विधि छे जे घर-धणी रे, उससूँ रहे उदास।
हर विध आय पूरी करे प्यारे, आनँदघन-प्रभु आस॥

आत्मदर्शन] (६६) [आसावरी

साधु भाइ अपना रूप जब देखा।
करता कौन कौन फुनि करनी, कौन माँगेगो लेखा।
साधु-संगति अरु गुरु की कृपा तैं, मिट गइ कुल की रेखा।
आनँदघन प्रभु परचो पायो, उतर गयो दिल-भेखा॥

ब्रह्मैकता] (६७)

राम कहो रहमान कहो कोउ, कान कहो महादेव री।
पारसनाथ कहो कोउ ब्रह्मा, सकल ब्रह्म स्वयमेव री।
भाजन-भेद कहावत नाना, एक मृत्तिका रूप री।
तैसैं खंड कल्पना रोपित, आप अखंड सरूप री।
निज पद रमे राम सो कहिये, रहिम करे रहेमान री।
करसे करम कान सो कहिये, महादेव निर्वाण री।
परसे रूप पारस सो कहिये, ब्रह्म चिन्हे सो ब्रह्म री।
इह विध साधो आप आनँदघन, चेतनमय निःकर्म री॥

पति। पिंजर = पंजर ; पिंजड़ा। झूरे = कष्ट भोग रहा है। जाला = ज्वाला। निरबंस = अर्थात् नष्ट। उसासा० = उसास और रात्रि में बढ़ने की होड़ लगी है। न मने० = यह अभागी उसास नहीं मानती। हटकै० = मानती नहीं। माँड = झगड़ा ठानकर। छे० = स्वामी है। आय = आयु, जीवन। [६६] फुनि = पुनि। परचो = परिचय। उतर० = आत्मा का मायिक वेश हट गया। [६७] कान = कान्ह। भाजन = पात्र। मृत्तिका = मिट्टी। रोपित = आरोपित। रहिम = रहम, दया। करसे० = कर्म को खींचे (मिटाए)। निर्वाण = मोक्ष

साधु-संगति] (६८)

साधु-संगति बिनु कैसैं पैयै, परम-महारस-धाम री।
कोटि उपाय करै जो बौरो, अनुभव-कथा-बिसराम री।
सीतल सफल संत-सुरपादप, सेवै सदा सुछाँइ री।
बंछित फले टले अनबंछित, भव-संताप बुजाइ री।
चतुर बिरंचि विरंजन चाहै, चरण-कमल-मकरंद री।
को हरि भरम बिहार दिखावे, शुद्ध निरंजन चंद री।
देव असुर इंद्र पद चाहूँ न, राज न काज समाज री।
संगति साधु निरंतर पावूँ, आनँदघन महराज री॥

प्रीति की रीति] (६९) [अलहिया, बिलावल

प्रीत की रीत नहीँ हो प्रीतम।
मैं तो अपनो सरब सिँगारो, प्यारे कीन लई हो।
मैं बस पिय के,पिय सँग और के,या गति किन सिखई हो।
उपगारी जन जाय मनावो, जो कछु भई सो भई हो।
विरहानल-जाला अति हि कठिन है, मो पैं सही न गई हो।
आनँदघन यूँ सघन धारा, तब ही दै पठई हो॥

आत्मानुभव-रस] (७०) [वसंत, धमार

साखी—आतम-अनुभव-रस-कथा-प्याला पिया न जाय।
मतवाला तो ढहि परैं, निमता परे पचाय॥
छबीले लालन नरम कहे, आली गरम करत बात।
मा के आगैं मामु की कोई, बरनन करइ गिँवार।

(शिव)। परसे = ब्रह्मरूप का स्पर्श करे। [६८] बुजाइ = बुझ जाए। बिरंचि = ब्रह्म। विरंजन = विशेष रंजन। हरि० = भ्रम दूर करके। [६९] सरब = (सर्व) सब। कीन० = दूसरी (प्रेमिका) खरीद ली। उपगारी = उपकारी। जाला = ज्वाला। सघन = मोटी। [७०] ढहि० = गिर पड़ता है। निमता० = मत्त न होनेवाला पचा लेता है। मामु = मामा। गिँवार = गँवार।

अजहूँ कपट के कोथरी हो, कहा करे सरधा नार।
चउगति महेलन छा रिही हो, कैसेँ आत भरतार।
खानो न पीनो इन वातमेँ हो,हसत भानत कहा हाड।
ममता-खाट परे रमे हो, और निँदे दिन-रात।
लेनो न देनो इन कथा हो, भोर ही आवत जात।
कहे सरधा सुनि सामिनी हो, एतो न कीजे खेद।
हरे हरे प्रभु आवही हो, बढ़े आनँदघन मेद॥

(७१) [मारू

अनंत अरूपी अविगत सासतो हो, वासतो वस्तु विचार।
सहज विलासी हासी नवी करे हो, अविनाशी अविकार।
ज्ञानावरणी पंच प्रकार नो हो, दर्शन ना नव भेद।
वेदनी मोहनी दोय दोय जाणियेँ हो, आयुखुँ चार विछेद।
शुभ अशुभ दोय नाम बखाणियेँ हो, नीच ऊँच दोय गोत।
विघ्न-पंचक निवारि आपथी हो, पंचम-गति-पति होत।
युग पद भावि गुण भगवंत ना हो, एकत्रीश मन आण।
अवर अनंता परमागम थकी हो, अविरोधी गुण जाण।

कोथरी = थैली। चउगति = चारोँ ओर। छा० = कपट की थैली छाई हुई है। आत = आए। हसत० = प्रसन्नता से हाड़ चिचोरने मेँ क्या धरा है। निँदे = निद्रामग्न। भोर = सबेरे ही आते जाते हो। सामिनी = स्वामिनी। हरे० = धीरे धीरे। मेद बढ़े = सुख के दिन आएँगे। [७१]सासतो = शास्ता, शासक। वासतो = वास्तविक। नवी = नहीँ। ज्ञानावरण = मति, श्रुत, अवधि, मनः-पर्याय और केवल। दर्शनावरण = चक्षु, अचक्षु, अवधि, केवल, निद्रा, निद्रा-निद्रा, प्रचला, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि। वेदनीय दोय = सत्, असत्। मोहनीय दोय = दर्शन, चारित्र। आयुखुँ = आयुष्य। चार० = नरक, तिर्यक, मनुष्य, देव। विघ्न = अंतराय। पंचक = दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य। आपथी = स्वयं। पंचम = मोक्ष। युग० = दोनोँ चरणोँ का ध्यान। एकत्रीश =

सुंदर सरूपी सुभग शिरोमणि हो, सुण मुज आतमराम।
तन्मय तल्लय तसु भक्तैं करी हो, आनँदघन पद ठाम ॥

विरहाकुलता] (७२) [केदारो

मेरे माजी मजीठी सुण एक बात, मीठड़े लालन बिन न रहूँ रलियात।
रंगीन चूनड़ी लड़ी चीड़ा, काथा सोपारी अरु पान का बीड़ा।
माँग सिँदूर सँदल करे पीड़ा, तन-कठा डाँको रे बिरहा-कीड़ा।
जहाँ तहाँ ढुँढूँ ढोलन मीता, पण भोगी नर बिण सब युग रीता।
रयणी बिहाणी दहाड़ा थीता, अजहूँ न आवे मोहि छेहा दीता।
तन रँग, फूँद मखमली*, खाट चुन चुन कलियाँ बीनूँ† घाट।
रंग रँगीली फूली पहिरूँगी नाट, आवे आनँदघन रहे घर घाट ॥

(७३)

भोले लोगा हूँ रहूँ तुम भला हाँसा,
सलूणे साजन बिण कैसा घर-वासा।

---

२१ (ज्ञानावरण ५, दर्शनावरण ६, वेदनीय २, मोहनीय २, आयुष्य ४, नाम २, गोत्र २, विघ्न ५ = ३१) (इसके विस्तार के लिए देखिए उमा स्वामी कृत 'तत्त्वार्थाधिगमसूत्र')। [७२] माजी = सास। मजीठी = लाल अर्थात् परिपक्व। रलियात = हिलीमिली, प्रसन्न। चीड़ा = लाल काँच की छोटी गुरिया। काथा = कत्था, खैर। सँदल = चंदन। तन० = शरीररूपी काष्ठ में। डाँको = आरपार छेद कर दिया है। ढोलन = प्रिय, पति। पण = पर, किंतु। रयणी = रजनी। बिहाणी = बीती। दहाड़ा = दिन। थाती = स्थित हुआ, आया, हुआ। छेहा = दुःख, घाव। फूँद = फुँदना। घाट = अनेक रंग-ढंग से। पहिरूँगी = वस्त्राभूषण से सजूँगी। नाट = (नाट्य) मटकती हुई। रहे० = घर में रहे। [७३] रहूँ = रोती हूँ। हाँसा = हँसते हो। सुँहाली =

* भरमली। † विनुँ।

सेज सुँहाली चाँदणी रात,
फूलड़ी वाड़ी और सीतल बात।
सघली सहेली करे सुख साता,
मेरा तन ताता मूआ बिरहा माता।
फिर फिर जोऊँ धरणी आगासा,
तेरा छिपणा प्यारे लोक तमासा।
न वले तन तें लोही माँसा,
साँईड़ा नी वे घरणी छोड़ी निरासा।
विरह कुभाव सों मुज कीया,
खबर न पावो तो धिग मेरा जीया।
दही वायदो जो बतावै मेरा कोई पीया,
आवे आनँदघन करूँ घर दीया॥

कुबुद्धि] (७४) [वसंत

या कुबुद्धि कुमरी कौन जात, जहाँ रीजे चेतन ज्ञान-गात।
कुत्सित साख विशेष पाय, परम सुधारस वारि जाय।
जीया गुन जानो, और नाँहि, गले पड़ेगी पलक माँहि।
रेखा छेदे वाही ताम, पढियें मीटी सुगुण धाम।
ते आगें अधिकेरी ताहि, आनँदघन अधिकेरी चाहि।

विरह-वेदना] (७५)

लालन बिन मेरो कुन हवाल, समजे न घट की निठुर लाल।
वीर विवेक जू माँजी माइ, कहा पेट दाई आगें छिपाइ।

सुहावनी। फूलड़ी० = फुलवाड़ी। सघली = सब। सुख० = पूर्ण सुख। मूआ = मरा (गाली)। न वले=नहीं मिलता। लोही=लोहू, रक्त। दही०=दही खिलाने की शर्त। वायदो = वादा। करूँ = घर में दीपक जलाऊँ। [७४] कुमरी = कुमारी। रीजे = रीझे। साख = साक्षी सहारा। परम० = परमतत्त्व। वारि० = व्यर्थ चला जाय। गुन = डोर। रेखा = चिह्न। ताम = विकार, दोष। पढ़िय० =

तुम भावे जो सो कीजें वीर, सोइ आन मिलावो लालन धीर।
अमरे करे न जात आधि, मन-चंचलता मिटे समाधि।
जाय विवेक विचार कीन, आनँदघन कीने अधीन॥

प्रेम-संदेश] (७६)

प्यारे प्रान-जीवन ए साँच जान, उत बरकत नाँहिन तिल समान।
उनसें न माँगू दिन नाँहि एक, इत पकरि लाल छरि करि विवेक।
उत शठता माया मान डुंब, इत रुजुता मृदुता जानो कुटुंब।
उत आसा तृष्णा लोभ कोह, इत शांत दांत संतोष सोह।
उत कला कलंकी पाप व्याप, इत खेले आनँदघन भूप आप॥

नाम की लगन] (७७) [रामग्री

हमारी लय लागी प्रभु-नाम।
अंबखास अरु गोसलखाने, दर अदालत नहीं काम।
पंच पचीस पचास हजारी, लाख किरोरी दाम।
खाय खरचे दीये बिनु जात है, आनन करि करि श्याम।
इनके उनके शिव के न जिउ के, उरज रहे बिनु ठाम।
संत सयाने कोय बतावे, आनँदघन गुनधाम॥

गुरु और शिष्य] (७८)

जगत गुरु मेरा मैं जगत का चेरा, मिट गया वाद-विवाद का घेरा।
गुरु के घर में नवनिधि सारा, चेले के घर में निपट अँधारा।

पढ़ने में उत्तम। अधिकेरी = बहुत। [७५] माँजी = सास। माइ = माया। अमरे० = मेरे किए तो। आधि = मानसिक क्लेश। [७६] डुंब = दंभ। रुजुता = ऋजुता, सरलता। दांत = दमनशील तपस्वी। [७७] अंबखास = आम-खास (महल के भीतर जहाँ बादशाह बैठते हैं)। गोसलखाना = वह स्थान जहाँ विशेष अवसर पर बादशाह विशेष व्यक्ति से मिलते हैं। दर = में। किरोरी = करोड़। दाम = द्रव्य। इनके० = न इधर के न उधर के, न इह-लोक के न परलोक के। शिव = ईश्वर। उरज = उलझ रहे हैं। [७८] सारा =

गुरु के घर सब जरित जराया, चेले की मढिया में छप्पर छाया।
गुरु मोहि मारे शब्द की लाठी, चेले की मति अपराधनी काठी।
गुरु के घर का मरम न पाया, अकथ कहानी आनँदघन भाया॥

दास की विनय] (७६) [जयजयवंती

ऐसी कैसी घरबसी, जिनस अनेसी री।
याही घर रहिसैं, जगवाही आपद है एसी री।
परम सरम देसी, घर मेंऊ पेसी री।
याही तें मोहनी मैसी, जगत सगैसी री।
कौरी सी गरज नेसी, घरजन* चखेसी री।
आनँदघन सु नोसी बंदी, अरज कहेसी री॥

निज परिचय] (८०) [सारंग

चेतन सुद्धातम कूँ ध्यावो।
पर - परचे धाम - धूम सदाई, निज परचे सुख पावो।
निज घर मैं प्रभुता है तेरी, पर - सँग नीच कहावो।
प्रत्यक्ष रीत लखी तुम ऐसी, गहियें आप सुहावो।
यावत तृष्णा मोह है तुमको, तावत मिथ्या भावो।
स्वसंवेद - ज्ञान लहि करिबो, छंडो भ्रमक - विभावो।
सुमता चेतन - पति कूँ इण विध, कहे निज घर मैं आवो।
आतम उच्छ सुधारस पीये, सुख आनँद पद पावो॥

पूर्ण। शब्द = वचन। काठी = काष्ठ, जिस पर असर ही नहीं होता। [७६] घरबसी = रखेली। जिनस = वस्तु। जगवाही = जगनेवाली; जगत् वाली। सरम० = लज्जा देगी, लज्जा का कारण रहेगी; मैंऊ = मैं भी। पेसी = प्रविष्ट। मैसी = महिषी। सगैसी = संबंधवाली। नेसी = खास पत्नी; धर्म-पत्नी। कौरी० = (कौली) सूकरी सी (यह घरबसी माया)। नेसी = दाँतों-वाली। घरजन० = घर के लोगों को खा जायगी। [८०] परचे = परिचय, बोध।

* गरजन।

ज्ञान-विचार] (८१)

चेतन ऐसा ज्ञान विचारो।
सोहं सोहं सोहं सोहं सोहं अणु नवी या सारो।
निश्चय स्वलक्षण अवलंबी, प्रज्ञा-छैनी निहारो।
इह छैनी मध्य पाती दुविधा, करे जड़ चेतन फारो।
तस छैनी कर ग्रहियेँ जो धन, सो तुम सोहं धारो।
सोहं जानि, दटो तुम मोहं, ह्वैहै सम को वारो।
कुलटा कुटिल कुबुद्धी कुमता, छंडो ह्वै निज चारो।
सुख आनंद पदे तुम बेसी, स्व पर कूँ निस्तारो॥

पार्श्वनाथ-स्तुति] (८२) [सूरति टोड़ी

प्रभु तो सम अवर न कोइ खलक मेँ।
हरि हर ब्रह्मा बिगूते सो तो, मदन जीत्यो तैँ पलक मेँ।
ज्योँ जल जग मेँ अगन बुजावत, बड़वानल सो पीयै पलक मेँ।
आनँदघन प्रभु बामा रे नंदन, तेरी हाम न होत हलक मेँ॥

अंतर्यामी] (८३) [मारू

निःस्पृह देश सोहामणो, निर्भय नगर उदार हो,
बसे अंतरजामी।
निर्मल मन मंत्री बडो, राजा वस्तु-विचार हो।

भ्रमक० = भ्रम के विषय। उच्छ = ढालकर, उड़ेलकर। [८१] अणु = छोटा, तुच्छ। नवी = नहीँ। या = यह। सारो = उत्तम, श्रेष्ठ। छैनी = छेनी, पत्थर तोड़ने का औजार। इह० = कुबुद्धि की छेनी। पाती = पत्ती, लोहा। फारो = तोड़कर पृथक् करती है, पृथक् भासित कराती है। तस = प्रज्ञा, सुबुद्धि की। ग्रहियँ = ग्रहण करने से। दटो = दबाओ। वारो = समय। चारो = आचरण। बेसी = बैठकर। [८२] खलक = दुनिया। बिगूते = धर दबाया। ज्योँ० = जैसे आग बुझानेवाले जल को बड़वानल पी जाता है वैसे आप मदन को पी जाते हैँ। वामा = पार्श्वनाथ की माता का नाम। हाम = हाँ। हलक = कंठ। तेरी० = अर्थात् तू अनिर्वचनीय है। [८३] सोहामणो = सुहावना। शिवगामी =

केवल कमलागार हो, सुण सुण शिवगामी।
केवल कमलानाथ हो, सुण सुण निःकामी।
केवल कमलावास हो, सुण सुण शुभगामी।
आतमा तूँ चूकीश माँ, साहेबा तूँ चूकीश माँ।
राजिंदा तूँ चूकीश माँ, अवसर लही जी।
दृढ़ - संतोष कामामोद सा, साधु-संगत दृढ़पोल हो।
पोलियो विवेक सु जागतो, आगम पायक-तोल हो।
दृढ़ - विश्वास वितागरो, सुविनोदी व्यवहार हो।
मित्र वैराग विहड़े नहीँ, क्रीडा सुरति अपार हो।
भावना बार नदी वहे, समता नीर गँभीर हो।
ध्यान चहिबचो भर्यो रहै, समपन भाव समीर हो।
उचालो नगरी नहीँ, दुष्ट दुःकाल न योग हो।
ईति अनीति व्यापै नहीं, आनँदघन पद भोग हो॥

लगन] (८४) [ईमन

लागी लगन हमारी, जिनराज - सुजस सुन्यो मैं।
काहू के कहे कबहूँ नहिँ छूटे, लोक - लाज सब मारी।
जैसैं अमली अमल करत समै,लाग रही ज्यूँ खुमारी।
जैसैं योगी योग-ध्यान मैं, सुरत टरत नहिँ टारी।
तैसैं आनँदघन अनुहारी, प्रभु के हूँ बलिहारी॥

कल्याण का अनुगामी साधक। चूकीश माँ = चूक मत। राजिंदा = (राजेंद्र) हे राजा। लही = पाकर। कामामोद = काम के आनंद। पोल = दरवाजा। पोलियो = पाहरू। जागतो = सचेत। पायक = सेवक। तोल = तुल्य। वितागरो = विदूषक। विहड़े = पृथक् नहीँ होता। सुरति = उपास्य में लगनेवाली वृत्ति। बार = द्वार पर। चहिबचो = चहबचा, पानी का बड़ा टाँका। समपन = समत्व। उचालो = गड़बड़। ईति = कृषि को हानि पहुँचानेवाले उपद्रव। [८४] अमली = नशाबाज। अमल० = नशा करते समय। खुमारी = नशा।

विरह-वेदना] (८५) [काफी

वारी हूँ बोलड़े मीठड़े ।
तुम बिन मुज नहिं सरे रे सूरिजन,लागत और अनीठड़े।
मेरे मनवाँ जक न परत है, बिनु तेरे मुख दीठड़े ।
प्रेम-पियाला पीवत पीवत, लालन सब दिन नीठड़े ।
पूछूँ कौन कहाँ लूँ ढूँढूँ, किसकूँ भेजूँ चीटड़े ।
आनँदघन प्रभु सेजड़ी पाऊँ तो, भागे आन बसीठड़े ॥

प्रियागम की उत्कंठा] (८६) [धमाल

सलूणे साहेब आवेंगे मेरे. आलीरी वीर विवेक कहो साँच ।
मोसूँ साँच कहो मेरी सूँ, मुख पायो के नाहिँ ।
कहानी कहा कहूँ उहाँ की, हिँडो रे चतुरगति माँहि ।
भली भई इत आवही हो, पंचम गति की प्रीत ।
सिद्ध-सिद्धंत रसपाक की हो, देखे अपूरब रीत ।
वीर कहे एती कहूँ हो, आए आए तुम पास ।
कहे समता-परिवार सूँ हो, हम हैँ अनुभव-दास ।
सरधा सुमता चेतना हो, चेतन अनुभव आँहि ।
सँगति फोरबे निज रूप की हो,लीने आनँदघन माँहि ।

सुरत = ध्यान मैँ की तल्लीनता । हूँ = मैँ । [८५] बोलड़े० = मीठे बोल पर । सूरिजन = जैनमत के विद्वान् साधु । और = अन्य । अनीठड़े = अनिष्ट । जक = चैन । दीठड़े = देखे । नीठड़े = कठिनाई से बीते । लूँ = लौँ, तक । चीठड़े = चिट्ठी, पत्र । आन = अन्य । बसीठड़े = दूत । [८६] सलूणे = सलोने, सुंदर । मेरी० = मेरी शपथ । के = कि । हिँडो = फिरते हो । चतुरगति = चारों ओर ; चार प्रकार की गति (नरक, तिर्यक्, मनुष्य, देव) । पंचम गाति = मोक्ष । सिद्धंत = सिद्धांत । सँगति = साथ । फोरबे =

परम की प्रीति] (८७)

विवेकी बीरा सह्यो न परे, बरजो क्यूँ न आपके मित्त।
कहा निगोड़ी मोहनी हो, मोहत लाल गमार !
वाके पर मिथ्या सुता हो, रीज पड़े कहा यार।
क्रोध मान बेटा भए हो, देता चपेटा लोक।
लोभ जमाई माया सुता हो, एह बढ्यो परमोक।
गई तिथि कूँ कहा बंभणा हो, पूछे सुमता भाव।
घर को सुत तेरे मते हो, कहा लौं करत बढ़ाव।
तव संमत उद्यम कीयो हो, मेट्यो पूरब साज।
प्रीत परम सूँ जोरिकें हो, दीनो आनँदघन राज॥

विवेकराज] (८८)

पूछियें आली खबर नहीं, आए विवेक बधाय।
महानंद सुख की बरनी को, तुम आवत हम गात।
प्रान जीवन-आधार की हो, खेम-कुशल कहो बात।
अचल अबाधित देव कूँ हो, खेम-शरीर लखंत।
व्यवहारी घटवध कथा हो, निहचें सरम अनंत।
बंध मोख निहचें नहीं हो, बिवहारे लख दोय।
कुशल खेम अनादि ही हो, नित्य अबाधित होय।
सुन विवेक मुख तें नई हो, बानी अमृत-समान।
सरधा समता दो मिली हो, ल्याई आनँदघन तान॥

पलट लेगी। [८७] मोहनी = मोहनीय, जैनागम के अनुसार प्रकृति नामक बंधन के हेतु का एक भेद। मिथ्या० = मिथ्यात्व, क्रोध, मान, लोभ, माया 'मोहनीय' के अंतर्गत कषाय वेदनीय के भेद हैं। गमार = गँवार। वाके० = इतने पर भी। मान = अभिमान। चपेटा = चाँटा, थप्पड़। लोक = लोग। परमोक = परिमोक्ष, स्वच्छंदता। गई० = गए मुहूर्त को। बंभणा = ब्राह्मण, ज्योतिषी। पूरब० = पूर्वकृत कर्म। [८८] बधाय = बधाई। बरनी = वर्णन।

माया] (८६) [सोरठ

अणजोवंता लाख, जोवे तो एकज नहीँ।
लाधी जोबन-साख, व्हाला विण एलेँ गई ॥

म्होटी बहुयेँ मन-गमतूँ कीधूँ ।
पेट मेँ पेशी मस्तक रेहँसी, बेरी साही स्वामीजी ने दीधूँ।
खोले बेसी मीठूँ बोले, काँइ अनुभव अमृत-जल पीधूँ ।
छानी छानी छरकडा करती, छरती आँखेँ मनडूँ बीँधूँ।
लोकालोक-प्रकाशक छैयूँ, जणता कारज सीधूँ।
अँगो-अँगेँ रँगभर रमताँ, आनँदघन पद लीधूँ ॥

खंडिता] (६०) [मारू

वारो रे कोई परघर-रमवानो ढाल,
म्हानो बहू ने परघर-रमवानो ढाल ।
परघर रमताँ थइ जूठा-बोली, देशे धणीजी ने आल।
अलवे चाला करती हीँडे, लोकड़ाँ कहे छे छिनाल ।
उलंभड़ा जण जणना लावे, हेंड़े उपासे शाल ।

गात = शरीर । बध = बढ़ । सरम = शांति । तान = खीँचकर । [८६] अणजोवंता = न देखने योग्य । एकज = एक भी । लाधी = पाई । व्हाला = प्रिय। एलेँ = व्यर्थ । म्होटी = बड़ी । बहुयेँ = बहू (माया) ने । मन० = मन-भाई की । पेट० = पेट मेँ पैठी हुई, मन मेँ आई हुई । मस्तक० = चेहरे पर झलक जाती है । बेरी = बैरी ने । साही = साची । दीधूँ = दिया । खोले = गोदमेँ । बेसी = बैठकर । काँइ० = क्या अनुभव किया । पीधूँ = पिया । छानी० = छिपी छिपी । छरकडा० = छटकती फिरती है। छरती = झरती, सरस । मनडूँ० = मन को बेध दिया । छैयूँ = छाया हुआ । जणता = जानते ही । सीधूँ = सीधा, सरल । [६०] वारो = रोको । ढाल = प्रवृत्ति । म्हानी = छोटी बहू (बुद्धि) को । रमताँ = रमते रमते । थइ = हो गई । जूठा-बोली = असत्य-वादिनी । देशे = देगी । धणी = पति को । आल = टालमटोल । अलवे० = इधर उधर फालतू बातँ करती फिरती है । उलंभड़ा = (उपालंभ) उलाहना ।

बाइ रे पड़ोसण जुउने लगारेक, फोकट खाशे गाल।
आनँदघन प्रभु रंगेँ रमताँ, गोरे गाल झबूके झाल।

विरह-वेदना] (९१) [कानड़ो

दरिसन प्रानजीवन मोहे दीजे।
बिन दरिसन मोहि कल न परतु है, तलफ तलफ तन छीजे।
कहा कहूँ कछु कहत न आवत, बिन सेजा क्यूँ जीजे।
सोहूँ खाइ सखी काहू मनावो, आप ही आप पतीजे।
देउर देरानी सासु जेठानी, यूँही सब मिल खीजे।
आनँदघन बिन प्रान न रहे छिन, कोड़ी जतन जो कीजे॥

सिरमौर प्रिय] (९२) [सोरठ

मुने महारा माधविया ने मलवानो कोड।
मुने महारा नाहलियाने मलवानो कोड।
हूँ राखूँ माँडी, कोइ मुने बीजो वलेगो झोड।
मोहनिया नाहलिया पाँखे म्हारे जग सवि ऊजड़ जोड़।
मीठा बोला मन-गमता नाहजी विण तन मन थाए चोड।
काँइ ढोलियो खाट पछेड़ी तलाई, भावे न रेसम खोड़।
अवर सबे महारे भला रे भलेरा, महारे आनँदघन सिरमोड़॥

जण० = जन जन से। हेडे = हृदय में। उपासे = चुभोती है। शाल = (शल्य) काँटा। बाइ = स्त्री। पड़ोसण = पड़ोसिन। जुउने = देखो। लगा-रेक = सहायक। फोकट = व्यर्थ। खाशे० = गाली खाएगी। झबूके = चमकती है। झाल = तरंग। [९१] सोहूँ = शपथ। काहू = कोई। कोड़ी = (कोटि) करोड़। [९२] मुने० = मुझे अपने माधव से मिलने का चाव है। नाह-लिया ने = पति को। राखूँ० = लिखकर कहती हूँ। बीजो = दूसरा। वलेगो = लगेगा। झोड़ = झगड़ा-बखेड़ा, आफत। पाँखे = पक्ष में अर्थात् समक्ष। सवि = सब। ऊजड़० = उजाड़-तुल्य है। मीठा० = मिठबोला (प्रिय)। मन० = मनभाया। थाए = होए। चोड = चोट या सत्यानास। काँइ = कोई भी

विरहिणी] (९३)

निराधार केम मूकी, श्याम मुने निराधार केम मूकी।
कोइ नहीँ, हूँ कोणशूँ बोलूँ, सहु आलंबन टूकी।
प्राणनाथ तुमेँ दूर पधार्या, मूकी नेह - निरासी।
जण जण ना नितप्रति गुण गाताँ, जनमारो किम जासी।
जेह नो पक्ष लहीने बोलूँ, ते मन माँ सुख आणे।
जेह नो पक्ष मूकीने बोलूँ, ते जनम लगँ चित ताणे।
बात तमारी मन माँ आवे, कोण आगल जइ बोलूँ।
ललित खलित खल जो ते देखूँ, आम माल-धन खोलूँ।
घटँ घटँ छो अंतरजामी, मुज माँ काँ नवि देखूँ।
जे देखूँ ते नजर न आवे, गुणकर वस्तु बिसेखूँ।
अवधँ केह नी वाटडी जोऊँ, विण अवधँ अति झूरूँ।
आनँदघन प्रभु वेगे पधारो, जिम मन आशा पूरूँ॥

जिन-चरण-प्रशस्ति] (९४) [अलइयो बिलावल

ऐसे जिनचरने चित ल्याऊँ रे मना,
ऐसे अरिहंत के गुन गाऊँ रे मना।
उदर भरन के कारणे रे, गौआँ वन मेँ जाय।
चार चरे, चिहुँ दिस फिरे, वाँकी सुरति बछरुआ माँहे रे।

वस्तु। ढोलियो = पलंग। पछेड़ी = पलंग के पीछे का परदा। तलाई = बिछावन। सोड़ = रजाई। अवर = और सब लोग। भला रे० = अच्छे भले हैं। सिरमोड़ = सिरमौर। [९३] केम० = क्योँ छोड़ी। सहु = सब। टूकी=तुच्छ। नेह० = स्नेह से निराश। जनमारो = जीवन, जन्म। लहीने = लेकर। जनम० = जन्म भर। चित० = खिंचा रहता है। आगल = आगे। जइ = जाकर। खलित = (स्खलित) पतित। आम = इस प्रकार। माल-धन = संपत्ति अर्थात् रहस्य। छो = हो। मुज० = अपने मेँ ही आप को क्योँ न देखूँ। अवधँ = अवधि पर। वाटडी० = मार्ग देखूँ। जिम = जिस कारण से। [९४] चार =

सात पाँच साहेलियाँ रे, हिलमिल पाणी जाय।
ताली दिये खड़खड़ हसे रे, वाँकी सुरति गगरुआ माँहे रे।
नटुआ नाचे चोक मैं रे, लोक करे लख सोर।
बाँस ग्रही बरतैं चढ़े, वाको चित न चले कहूँ ठोर रे।
जूआरी-मन में जूआ रे, कामी के मन काम।
आनँदघन प्रभु यूँ कहे, तुमे ल्यो भगवंत को नाम रे॥

बाल पति] (९५) [धन्याश्री

अरी मेरो नाहेरी अति बारो, मैं ले जोवन कित जाऊँ।
कुमति पिता बँभना अपराधी, नउवा है बजमारो।
भलो जानि के सगाई कीनी, कौन पाप उपजारो।
कहा कहियैं इन घर के कुटुँब तैं, जिन मैरो काम बिगारो॥

पुद्गल] (९६) [कल्याण

या पुद्गल का क्या बिसवासा, है सुपने का बासा रे।
चमतकार बिजली दे जैसा, पानी बिच्च पतासा।
या देही का गर्व न करनाँ, जँगल होयगा बासा।
जूठे तन धन जूठे जोबन, जूठे हैं घर बासा।
आनँदघन कहे सब ही जूठे, साँचा शिवपुर बासा॥*

चारा। ताली० = ताली बजाकर। खड़खड़ = खिलखिलाकर। गगरुआ = घट। लख = देखकर। ग्रही = पकड़कर। बरतैं = (बरत्रा) रस्सी। मिलाइए—दीठि बरत बाँधी अटन चढ़ि आवत न डरात—बिहारी। [९५] नाहेरी = पति (जीव)। बारो = छोटा। बँभना = ब्राह्मण, पुरोहित। बजमारो = वज्र का मारा (गाली)। उपजारो = उत्पन्न किया। [९६] पुद्गल = स्पर्श, स्वाद, गंध और वर्ण से युक्त (रूपवान्) जड़ पदार्थ, प्रकृति (रूपिणः पुद्गलाः)। दे = के।

*इससे मिलता जुलता, पर दस पंक्तियों में, 'भूधर' का एक पद उनके 'जैनशतक' में मिलता है।

विश्व-विधान] (६७) [आसावरी

अवधू सो जोगी गुरु मेरा, इन पद का करे रे निबेरा।
तरुवर एक मूल बिन छाया, बिन फूले फल लागा।
शाखा पत्र नहीं कछु उनकूँ, अंमृत गगनें लागा।
तरुवर एक पंछी दोउ बैठे, एक गुरू एक चेला।
चेले ने चुग चुग चुग खाया, गुरू निरंतर खेला।
गगन-मँडल के अधबिच कूवा, उहाँ है अमी का बासा।
सगुरा होवे सो भर भर पीवे, नगुरा जावे प्यासा।
गगन-मँडल में गउआँ बियानी, धरती दूध जमाया।
माखन था जो बिरला पाया, छासैं जगत भरमाया।
थड़ बिनुँ पत्र पत्र बिनुँ तुंबा, बिन जीभ्या गुण गाया।
गावनवाले का रूप न रेखा, सुगुरू सोहि बताया।
आतम-अनुभव बिन नहिँ जाने, अंतर ज्योति जगावे।
घट-अंतर परखे सोहि मूरति, आनँदघन पद पावे॥*

माया-विचार] (६८)

अवधू ऐसो ज्ञान बिचारी, वामैं कोण पुरुष कोण नारी।
बम्मन के घर न्हाती धोती, जोगी के घर चेली।

बिच = बीच। पतासा = बताशा। जूठे = झूठे। [६७] निबेरा = विचार। तरुवर एक = मूल प्रकृति। फल = विश्व। बिनु० = मिलाइए—मूले मूलाभावादमूलं मूलम्—सांख्यसूत्र। तरुवर० = मिलाइए—द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते। तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति॥ —मुंडकोपनिषत्। गुरु = आत्मा, ब्रह्म। चेला = जीव। चुग = चारा। गगन = ब्रह्मांड। सगुरा = गुरुमुख। नगुरा = निगुरा। गउआँ = सात्त्विक वृत्तियाँ। धरती = पिंडांड। माखन = ब्रह्मतत्त्व। बिरला = ज्ञानी। छासैं = छाछ से। थड़ = डंठल। तुंबा = फल (मस्तक)। बिन० = अजपाजाप करता है।

* मिलाइए—कबीर-ग्रंथावली पृष्ठ १४३, पद १६५ और बीजक, शब्द २४।

कलमा पढ़ पढ़ भई रे तुरकड़ी, तो आपही आप अकेली।
ससरो हमारो बालो भोलो, सासू बालकुँवारी।
पियुजू हमारे प्होढ़े पारणिए, तो मैं हूँ झुलावनहारी।
नहीं हूँ परणी, नहीं हूँ कुँवारी, पुत्र जणावनहारी।
काली दाढ़ी को मैं कोइ नहीं छोड्यो, तो हजुए हूँ बालकुँवारी।
अढी द्वीप में खाट-खटूली, गगन उशीकुँ तलाई।
धरती को छेड़ो, आभ की पिछोडी, तोयन सोड भराई।
गगन-मँडल में गाय विआणी, वसुधा दूध जमाई।
सउ रे सुनो भाइ वलोणूँ वलोवे, तो तत्त्व अमृत कोइ पाई।
नहीं जाउँ सासरिये ने नहीं जाउँ पीयरिये पियुजू की सेज बिछाई।
आनँदघन कहे सुना भाई साधु, तो ज्योत सें ज्योत मिलाई॥

अवसर का ज्ञान] (९९)

बेहेर बेहेर नहिं आवे, अवसर बेहेर बेहेर नहिं आवे।
ज्यूँ जाणे त्यूँ कर ले भलाई जनम जनम सुख पावे।
तन धन जोबन सब ही जूठो, प्राण पलक में जावे।
तन छूटे धन कौन काम को, कायकूँ कृपण कहावे।
जाके दिल में साँच बसत है, ताकूँ जूठ न भावे।
आनँदघन प्रभु चलत पंथ में, समरि समरि गुण गावे॥*

[९८] बिचारी = बिचारना, बिचारो। ससरो = ससुर (ब्रह्म)। सासू = प्रकृति। पियु = पति, जीवात्मा। प्होढ़े० = पालने पर पड़े रहते हैं। परणी = (परिणीता) विवाहिता। कुँवारी = क्योंकि शुद्ध चेतन से न तो विवाह ही करती है और न अज्ञानों को छोड़ती ही है। पुत्र = अहंकार। काली० = युवक; कामासक्त सज्ञान। हजुए = अब भी। अढी = ढाई। उशीकुँ = तकिया। तलाई = बिछावन। छेड़ो = धोती। आभ = अभ्र, बादल। तोयन = जल। सोड = रजाई। गगन० = ब्रह्मांड। गाय = वृत्ति। वसुधा = पिंडांड। सउ = सब। वलोणूँ = बिलोना, मथना। [९९] बेहेर० = बेर बेर। कायकूँ = किस

* मिलाइए—कबीर-ग्रंथावली पृष्ठ १६६, पद २२१ और बीजक, शब्द ४४।

प्रिय ऋषभदेव] (१००)

मनु प्यारा मनु प्यारा, रिखभदेव मनु प्यारा।
प्रथम तीर्थंकर प्रथम नरेसर, प्रथम यतिव्रत धारा।
नाभिराया मरुदेवी को नंदन, जुगला धर्म निवारा।
केवल लइ प्रभु मुगतँ पोहोता, आवागमन निवारा।
आनँदघन प्रभु इतनी बिनती, आ भव-पार उतारा ॥

शिक्षा] (१०१) [काफी

ए जिन के पाय लाग रे, तुने कहियेँ केतो।
आठोइ जाम फिरे मदमातो, मोह निँदरियाशूँ जाग रे।
प्रभुजी प्रीतम बिन नहिँ कोइ प्रीतम,प्रभुजी नी पूजा घणी माग रे।
भव का फेरा वारी, करो जिन चंदा, आनँदघन पाय लाग रे॥

प्रभुभजन] (१०२) [केरबो

प्रभु भज ले, मेरा दिल राजी रे।
आठ पोहोर की साठज* घड़ियाँ, दो घड़ियाँ जिन साजी रे।
दान पुण्य कछु धर्म कर ले, मोह माया को त्याजी रे।
आनँदघन कहे समज समज ले, आखर खोवेगा बाजी रे॥

मानवती] (१०३) [आसावरी

हठीली आँख्याँ टेक न मेटे, फिर फिर देखण जाऊँ।
छयल छबीली प्रिय-छबि निरखत तृपित न होई।

लिए। [१००] मनु = मुझे। रिखभदेव = ऋषभनाथ। नाभि० = मनुवंशी महाराज नाभि (ऋषभदेव के पिता)। मरुदेवी = ऋषभनाथ की माता। नंदन = पुत्र। निबारा = स्वरूप बतलाया। केवल = कैवल्य। मुगतँ = मुक्त ; मोती। [१०१] ए = अरे। कहियँ० = कितना कहूँ। वारी = निवारण करके। करो० = जिन को अपना चंद्र बनाओ, उनके दर्शन करो। [१०२] पोहोर = प्रहर। जिन = जिनदेव के लिए। [१०३] नगोरी = निगोड़ी। माँगर = (मकर)

* चोसठ।

हठ करि ढक* हटकूँ कभी, देख नगोरी रोई।
माँगर ज्यौं टमाके रही, पीय-सबी के धार।
लाज डाँग मन मैं नहीं, काने पछेरा डार।
अटक तनक नहीं काहू का, हटक न इक तिल कोर।
हाथी आप मने अरे, पावे न महावत-जोर।
सुन अनुभव प्रीतम बिना, प्राण जात इह ठाँहि।
है जन-आतुर-चातुरी, दूर आनँदघन नाँहि॥

प्रबोधोदय] (१०४)

अवधू बैराग बेटा जाया, वाने खोज कुटुंब सब खाया।
जेणे ममता माया खाई, सुख दुःख दोनौं भाई।
काम क्रोध दोनौं कूँ खाई, खाई तृष्णा बाई।
दुर्मति दादी मत्सर दादा, मुख देखत ही मूआ।
मंगलरूपी बधाई बाँची, ए जब बेटा हूआ।
पुण्य पाप पाडोशी खाए, मान काम दोउ मामा।
मोह-नगर का राजा खाया, पीछैं ही प्रेम तें गामा।
भाव नाम धर्यो बेटा को, महिमा वरण्यो न जाई।
आनँदघन प्रभु भाव प्रगट करो, घट घट रह्यो समाई॥†

मगर, मछली। टमाके० = चपलता से फिरती रही। सबी = छवि की धारा मैं। डाँग = पहाड़, बोझ। काने० = कानि (मर्यादा) को पीछे डालकर। अरे = अड़ जाय तो। जन० = सेवक मैं यदि आतुरता का चातुर्य है तो। [१०४] माया = माता। बाई = स्त्री या बहन। बाँची = बाँची गई, पढ़ी गई। गामा = (ग्राम)

* करिडक।

† कुंदकुंदाचार्य के समयसार नाटक का भाषांतर करनेवाले बनारसीदास के 'बनारसी-विलास' नामक संग्रह में यह उनके नाम पर कुछ परिवर्तनों के साथ मिलता है। [मुख्य पाठभेद यों है—अवधू = मूलन। जेणे = जन्मत। सुख दुःख = मोह लोभ। दोनौं कूँ = दोइ काका। पुण्य = पापी। रूपी = चार। बधाई बाँची = बधाए

भ्रमरगीत] (१०५)

किन गुन भयो रे उदासी भ्रमरा।
पँख तेरो कारो मुख तेरो पीरो, सब फूलन को बासी।
सब कलियन को रस तुम लीनो,सो क्यूँ जाय निरासी।
आनँदघन प्रभु तुमारे मिलन कूँ, जाय करवत ल्यूँ कासी॥

ज्ञान-विभव] (१०६) [वसंत

तुम ज्ञान-बिभो फूली वसंत, मन-मधुकर ही सुख सौं रसंत।
दिन बड़े भए बैराग-भाव, मिथ्यामति-रजनी को घटाव।
बहु फूली फैली सुरुचि-बेलि, ज्ञाताजन-समता-संग केलि।
द्यानत बानी पिक मधुर रूप, सुर नर पशु आनँदघन-सरूप॥*

गाँव। [१०५] करवत = करपत्र, आरा। मोक्ष के लिए काशी मैं लोग आरे से अपने को चिरवाया करते थे। [१०६] द्यानत = दयानत, सत्यनिष्ठा।

बाजे। नाम = अगुन। काम = करम। मोह = मान। पीछे० = फैल परो सब जाया। भाव = सुधो। बेटा = बालक। महिमा० = रूप बरन कछु नाईं। आनँद० = नाम धरते पाँड़े खाए, कहत बनारसी भाई।]

* यह 'द्यानत' के 'धर्म-विलास' में ज्यों का त्यों मिलता है। इसके अंत में द्यानत' छाप है भी।

परिशिष्ट

घनआनंद (प्रेमी कवि)

सुजानहित-प्रबंध

[बड़ी प्रतियों के शेष छंद]

कवित्त

बहुत दिनान के अवधि-आसपास परे,
खरे अरबरनि भरे हैं उठि जान कौ।
कहि कहि आवन छबीले* मनभावन को,
गहि गहि राखत ही दै दै सनमान कौ।
झूठी बतियानि की पत्यानि तें उदास ह्वै कै,
अब न घिरत घनआनँद निदान कौ।
अधर लगे हैं आनि करिकै पयान प्रान,
चाहत चलन ये सँदेसो लै सुजान कौ ॥५४॥
तेरी बाट हेरत हिराने औ पिराने पल,
थाके ये बिकल नैन ताहि नपि नपि रे।
हिये मैं उदेग आगि लागि रही रातिद्यौस,
तोहि कौं अराधौं जोग साधौं तपि तपि रे।
जान घनआनँद यौं दुसह दुहेली दसा-
बीच परि परि प्रान पिसे चपि चपि रे।
जीबे तें भई उदास तऊ है मिलन-आस,
जीवहि जिवाऊँ नाम तेरो जपि जपि रे ॥२६३॥

---

[५४] आस० = आशा का पाश। खरे = अत्यंत। अरबरनि = हड़बड़ी।

* सँदेसो।

[४५५] के लिए देखिए पृष्ठ १७२, सं० ७८।
[४५६] के लिए देखिए पृष्ठ १५२, सं० ६।

सवैया

सुनि बेनु को मादक नाद महा उनमाद सवाद छक्यौ न थिरै।
निसिद्यौस घुमेरिनि भौंरि पर्‌यौ अभिलाष-महोदधि हेरि हिरै।
घनआनँद भीजत सोचनि सूखत थाकनि दौरि सम्हारि गिरै।
तन तौ यहि लाज घिर्‌यौ घर मैं बन मैं मनमोहन-संग फिरै ॥४५७॥

कबित्त

बिरह की बेदनि तैं गिरे जात सबै गात,
एक एक बात सुधि आएँ दुख दूनो है।
बिलखत छाँड़ी द्यौस चारिक चिन्हारी करि,
बारि दियौ हिये मैं उदेग को अभूनो है।
ऐसें कैसें कौ लौं रूँधि राखियै पपीहा प्रान,
जीवन दुहेलो घनआनँद बिहूनो है।
बसत हितू समाज काहू सौं न मोहिं काज,
आली वा बिसासी बिनु लागै ब्रज सूनो है ॥४५८॥

सवैया

दूरि भजौ कितनौऊ तजौ हियरा तैं हटै नहिं हाय हितैबो।
लेखो कहा हमसौं है तुम्हैं हमहीं है घरी जुग कोटि बितैबो।
पूरि परेखैं रह्यौ चित-चातक ह्वौ घनआनँद कैसैं रितैबो।
आँखि बिसासिनि आस गही न तजै इतने पर बाट चितैबो ॥४५९॥

निदान = अंत मैं। [२६३] दुहेली = दुःखद। [४५७] घुमेरिन० = बेसुध रूपी भँवर मैं [४५८] गिरे = शिथिल हो रहे हैं। गात = गात्र, अंग। अभूनो = आग। दुहेलो = दुःखमय। बिहूनो = विहीन, रहित। [४५६]

देखैं तुम्हैं तब लेखैं लिखैं लिखिबो लखिबे भईं आहि अहा गति।
एक सी आँसुनि बाढ़ि बहैं न रहैं झरना लौं गहैं सु महा गति।
यौं दिनराति मरैं घनआनँद देखौ बिचारि कै नेकु हहा गति।
आँखि दुखारिन की यह पीर लहौ नहीं प्यारे कहौ तौ कहा गति॥४६०॥

हौ सु भले हौ कहा कहियै हम आपने पूरन भाग लहे हो।
आँखि निगोड़िन ही यह दोष अजू तुम तौ गुन-गाँस-गहे हो।
आनँद के घन हौ रस-मूरति प्यास बढ़ाय किते उमहे हो।
ल मन बैठि रहे तब त्यौं अब क्यौं उर-अंतर पैठि रहे हो॥४६१॥

रूप-सुदेस को राज कर्‍यौ करौ छत्र-गुमानहिं सील धरे जू।
सुंदर साँवरे हौ दिन-दूलह चोप चहूँ दिसि चौर ढरे जू।
नीके लसौ बरसौ घनआनँद चातक-लोचन प्यास मरे जू॥
राचत हैं तुम्हैं जाचत यौं ब्रजजीवन रावरी आस करे जू॥४६२॥

तुम्हैं देखि जियौं पियौं रूप-अमी घनआनँद प्यारे सदा सौं कहौं।
मिलि जाहुँ तुम्हैं रँग नीर लौं पाय पै हाथ मिलौ नहीं तासौं कहौं।
यह रावरीयै रस-रीति अजू अपढार ढरौ इत यासौं कहौं।
सुनि ऊतर देत न तौऽब कहौ कि तुम्हारे सवादहि कासौं कहौं॥४६३॥

प्रीति के दाँवहि बैर सो लैन कौं ताकि रही भरि कै अभिलाखनि।
चातक-चोपनि चाहति ही घनआनँद अंग सवादिली चाखनि।
लाज-लपेटी लखावति क्यौं करि सील मैं साह तें सौगुनी साखनि।
फागुन आवत ही उघरी इहि ओर वहै हियरा धरि राखनि॥४६४॥

कमला तप साधि अराधति है अभिलाष-महोदधि-मंजन कै।
हित संपति हेरि हिराय रही नित रीझ बसी मन-रंजन कै।

हितैबो = प्रेम करना। [४६०] अहा गति = आनंद की स्थिति। महा गति = तीव्र चाल। हहा गति = हाय दुर्दशा। कहा गति = क्या वश!। [४६१] गाँस = फंदा। [४६२] दिन-दूलह = प्रतिदिन दूल्हा, सदा दूल्हा। [४६३] अपढार = कठिनाई से ढलना। [४६४] सवादिली = स्वादिष्ठ। साख = प्रतिष्ठा।

तिहि भूमि की ऊरध-भाग-दसा जसुदा-सुत के पद-कंजन कै।
घनआनँद-रूप निहारन कौं ब्रज की रज आँखिन अंजन कै ॥४६५॥

नंद के आनँदकंद उदै ब्रजचंद बधाएँ सबै मिलि जाहीँ।
नैन हियैं सुनि ही कै जियैँ अभिलाष-चकोरनि तैं अधिकाहीँ।
दूध दही रु मही की नदी वही गोकुल गाँव-गख्वारिन माँहीँ।
आनँद को घन चोपन सौं अति ही बरसै सरसै हित-छाँहीँ ॥४६६॥

गोकुल-घाँ तैं कुलाहल की धुनि आवति ज्यावति प्रान सुछंद है।
रानि जसोमति-कोख उदै भयौ पूरब भाग अपूरब चंद है।
चाह-समुद्र सुनैं सरस्यौ घनआनँद नैनन कौं रसकंद है।
आजु लखौ सजनी रजनी-दुति दीसति औरई ओप अमंद है ॥४६७॥

कवित्त

गोकुल-गख्वारिन मैं महा गहमह माँची,
गोपी-गोप उमहे बधाएँ ब्रज-ईस को।
कान्ह कुलमंडन प्रगट भए भूरि-भाग
भादौं कृस्न-पाख आठैं उदै रजनीस को।
पूरी है कुलाहल की धुनि-धारा चहूँ ओर,
आनँद को घन घोरै बोलत असीस को।
कामना-सुतरु छायो फूल-संग फल पायौ,
औसर अनूप आयौ उर-बकसीस को ॥४६८॥

मुकुट मनोहर मैं लटक-अटक भरि,
घूमरे बिलोचन चलावै काम-कटकै।
केसरि की खौरि रौरि पारत निहारैं मन,
दौरि दौरि अंग-संग रंगनि त्यौं भटकै।

---

[४६५] पद० = चरण-कमलों से। [४६६] गख्वारि = छोटी गली। [४६७] घाँ = ओर। सुछंद = स्वच्छंद। पूरब० = पूर्वजन्म के भाग्य से। [४६८] गहमह = चहल-पहल। ब्रज० = नंद महर के यहाँ। उर० = हृदय को दान कर देने का।

कहा कहौं हेली मनमोहन अनूप रूप,
इते मान बाँसुरी हटावै लाज-हटकै।
देखैं घनआनँद रसीली मृदु मूरति कौं,
ऐसी कौन बावरी सयान लैन पटकै ॥४६९॥

सवैया

झुकि रूप-तरंगनि जाल परे गुनमाल बिसालनि लै फँदई।
उफनाय उठ्यौ रससिंधु हियौ मुखचंद लखैं अभिलाष छुईं।
घनआनँद औसर के बस ह्वै मति औ गति केतियौ सँग गईं।
जित ही जित मोहन गौन कियौ अँखियाँ तित ही तित क्यौं न भईं॥४७०॥

तीर ही जाके महाछबि-भीर सौं सोहै गुपाल को गोकुल गाँव री।
बासिन के दृग-तारन-पुंज की मूरति मंजु लसै तिहि ठाँव री।
ऐसें रसामृत पूरित ह्वै भरिबाई करै अभिलाषनि भाँवरी।
है अमुना जमुना घनआनँद साँवरे-संगम रंगनि साँवरी ॥४७१॥

कवित्त

मन के मनोरथ-महोदधि-तरंगनि मैं,
अति ही तरल गति प्रबल प्रचंड है।
एक एक बीचि-बीच सायर असेष जहाँ,
सूखौ राखि बोरैं तीर दीरघ अखंड है।
पार परि कोऊ न सक्यौ है थिथक्यौ है ओज,
खोजैं सिद्ध चारन मुनीस महिमंड है।
सोई घनआनँद सुजान-रूप को पपीहा,*
सोभासींवँ जाके सीस मंडित सिखंड है ॥४७२॥

---

[४६९] लाज० = लज्जा की हिचक। पटकै = परेशान हो। [४७१] अमुना = इस प्रकार। [४७२] बीचि = लहर। सायर = सागर। महिमंड = महिमावान्।

* सुरूप को पपीहा करि।

सवैया

यहै मन है हरि नाम तिहारो कहूँ कबहूँ सुधि भूलि न लीजै।
जु यौं नित नाथ बिसासनि मारत हाय तऊ तुमहीं लगि जीजै।
सुबास भरी घनआनँद है दुरि देखनि त्यौं खिसियौ हँसि दीजै।
जरी रसना सौं कहा कहियै बकि सोई उठै कितकौ कस कीजै ॥४७३॥

[४७४] के लिए देखिए पृष्ठ ४, संख्या ८।

नीकी नई गुन-रूप-जई अनुरागमई अति ओप वढ़ी है।
तोहि तकी फँदवारि फँदी फिरि चोपनि मोहन मंत्र पढ़ी है।
रीझनि भीजे सुधा-रत स्याम सदा घनआनँद ऐंड़ अढ़ी है।
प्रीतम के पहुँचा पहुँची यह संपति राखियै हाथ चढ़ो है ॥४७५॥

प्रेम के पाले* परै जिय जाको धरै कल क्यौं अकुलानिमई है।
दीसत देखौ दसौ दिसि प्रीतम कौन अनूठयै ठान ठई है।
यौं घनआनँद छाय रह्यौ तब लाज सम्हारै सु बीति गई है।
जाहुँ कहाँ अहो नाहीं नहीं तुम ही सौं जहाँ तहाँ भेंट भई है ॥४७६॥

तीज के रंगनि संग अलीन लै झूलत फूल सौं प्यारे बनायनि।
सामुही ह्वै सधि बैठति ह्वै इक झूलति आप गँसावति पायनि।
साँवरे छैल तहाँ रचि ताकहीं यौं मिहँदी लौं लग्यौ घुरि चायनि।
गीतनि भास भिदै घनआनँद रीझत भीजत भावते भायनि ॥४७७॥

[४७८-७९] के लिए देखिए पृष्ठ ४, संख्या ९-१०।

[४८०] के लिए देखिए पृष्ठ १५२, संख्या १०।

मोहन-मूरति की पहचानि सु आँखिन बीच निकेत ही राखौ।
बंसी बजावनि रीझि रिँगावनि पाननि ताननि खेत ही राखौ।

सिखंड = मोरपंख। [४७३] खिसियौ = रोष से हिचकती हुई भी। कस० = खींची जाय। [४७५] अढ़ी = लगी। [४७७] बनायनि = भली भाँति। घुरि =

* पानै।

एहो सुजान सुनौ घनआनँद चातक त्यौं अब हेत ही राखौ।
जाचै तुम्हैं अरु राचै कहूँ न जहाँ जब जैसें सचेत ही राखौ ॥४८१॥

[४८२] के लिए देखिए पृष्ठ १५२, संख्या ८।

सूझ परै सुनि बूझि कछू कि चल्यौ कित कौं अरु आयौ कहाँ तैं।
सँग सदा तितकी सुधि हू न, रह्यौ अति भूलि महा भ्रम-नातैं।
ऐसे सचेत समीप अचेत अचंभे भर्यौ लखि* ऊखिल-भाँतैं।
यौं घनआनँद-ओर उनै उघरै किनि रे मन! तू सब घाँ तैं ॥४८३॥

कबित्त

मोरे प्रान सोचन ही सूखत सदा हैं घन-
आनँद इते पै साखि सुनी प्रानपति है।
अंतर मैं रहौ पै न अंतर उघारत हौ,
देखन कौं आँखिन मैं नींद की सँपति है।
मिलन दुहेला सपने हू इहि भाँति भयौ,
भली लगै भावते तौ तुम जानौ अति है।
कहौ हाय बूझति हौं सूझति मलोलनि सौं,
मेरी कहा गति जो तिहारी यह गति है ॥४८४॥

सवैया

भरि-जोबन-रंग अनंग-उमंगनि अंगहि अंग समोय रहे।
उर फागुन-दाँव को चाव रच्यौ सु मच्यौ खुलि खेलि जु गोय रहे।
घनआनँद चोपहि चोपनि लै उर चौचँद नेकु न सोय रहे।
दृग रावरे छैल खिलार महा कहा नीके गुलाल मैं भोय रहे ॥४८५॥

गोरे कपोलनि लाली गुलाल की भोय रही कछु यौं छैंऊ पाछैं।
दर्पन देखि हियैं हुलसै सुलसै छबि ह्वै मुसक्यौंहीं कटाछैं।

घुलकर। भास = ध्वनि। [४८१] रिंगावनि = चलाना। [४८३] ऊखिल = अपरिचित। घाँ = ओर। [४८४] साख० = मर्यादा, प्रतिष्ठा [४८५] चौंचद =

* भमै भर्यौ लेखिय।

ओठ पै मानिक-ओप अनूठियै चाहि चकी जु हुती तन-काछैं ।
चोपनि चातक ह्वै घनआनँद प्राननि तोखति पोखति आछैं ॥४८६॥

कन-स्वेद भयौ सु बिराजत यौं *उडुपौ नभ†-तारनि संग भयौ ।
मद लाली चढ़ै अति ओप बढ़ै मुख चंद तैं प्रात-पतंग भयौ ।
भयौ आदिहि कंज कुमोदनि के, रति-अंत चहँ भ्रम-भंग भयौ ।
घनआनँद ओज मनोज-उमंगनि अंगनि अद्भुत रंग भयौ ॥४८७॥

लाल के तोही मैं प्रान बसैं तुहूँ जानति प्रीति की रीति सयानी ।
ज्यौं ब्रजजीवन जीवत तो बिन त्यौं कहा मीन मरै बिन पानी ।
तो हित-प्यास भर्यौ घनआनँद आस पपीहन तैं अधिकानी ।
राधे हठीली कहै किनि हे, कब तैं यह रूठनि है मनमानी ॥४८८॥

मुख देखत ही पलकौ न लगै अँखियानि मैं जागनि-जोति खिलै ।
हिय की गति हाय कहा कहियै तिन त्यौं तब ही कबहूँ को हिलै ।
घनआनँद रोमहि रोम भिजै रसरंग-समोवनि अंग झिलै ।
उनसौं मिलि जौ बिछुरै सजनी सु न जानति हौं किहि भाँति मिलै ॥४८९॥

परदेस बसे बस ह्वै बिधि के जिय जीवत यौं कछु नाहिं नई ।
जु परै सु सहैं कित कासौं कहैं जग दीसि पर्यौ सब सुंनिमई ।
घनआनँद जान मिले न कहूँ इहि हेत सम्हार अचेत भई ।
यह तौ सुधि भूलि गयौ बिछुरैं कबहूँ सुधि भूलि न मीत लई ॥४९०॥

नित हौ चित हौ हित हौ कित हौ इत हौ इतने पै उदगे दहैं ।
बरसौ सरसौ दरसौ न कहूँ घनआनँद कासौं बिथाहि कहैं ।
बसि एकहि बास बिसास करौ बस नाहिं बिसासी बनी सु सहैं ।
हम संग किधौं तुम न्यारे रहौ, तुम संग बसौ हम न्यारी रहैं ॥४९१॥

बदनामी । भोय० = डूब रहे । [४८६] पौंछैं ऊ० = पौंछने पर भी । काछैं = पास । [४८७] उडुप = चंद्र । पतंग = सूर्य । [४८९] तिन० = उनकी ओर होकर तृण की भाँति तभी से न जाने कब का हिल रहा है । झिलै = कष्ट सह

* उदयौ । † नव ।

देखि बिचारि बिचारै सँचारहि कौनहीँ कौन सवाद पग्यौ तू।
राचि पच्यौ बहु प्रीति सुरीतिनि लाग लच्यौ अलगाय लग्यौ तू।
यौँ भ्रम भूलि पख्यौ स्रम कै, अब लौँ सुधि ना बिन बोध ठग्यौ तू।
चोपनि चातक ह्वै चित रे घनआनँद लौँ जड़ क्यौँ न जग्यौ तू॥४८२॥

करि बैर बिसासिनि बाँसुरिया सब ही कुल मेँड़ की ऐँड़ दली।
मँडराति रहै धुनि* कानन मैँ मन प्रान पगे रहैँ रंग रली।
घनआनँद क्यौँ बचियै भटभेर अचानक होत गख्यारैँ गली।
कित जाहिँ कहा करैँ कैसैँ रहैँ मन मोहन† गोहन लागि छली॥४८३॥

रूप-निकाई अनूप कहा कहौँ अंगनि जोति सुरंगनि जागति।
है घनआनँद जीवनमूल पपीहा कियैँ पिय लोचन पागति।
और सिँगारनि की सब ही रही याहि बिचारत ही मति रागति।
पायनि तेरे रची मिहँदी लखि सौतिन के तरवानि तेँ लागति॥४८४॥

ब्रज की छबि हेरि हख्यौ हिय होत, खिली मिलि जूथनि जूथ जूही।
घन घोरि घुरे‡ चहुँ ओरनि तेँ बरसैँ परसैँ सरसैँ सु फुही।
तिहि कुंजन मैँ रसपुंज-भरे बिहरैँ हरि-राधिका चोप उही।
घनआनँद नैन-पपीहन कौँ नित ही रसरासि रही समुही॥४८५॥

कबित्त

भले हौ रसीले अरसीले सुनि ह्वजियै न,
गुननि तिहारे उरभयौ है मन गाय गाय।
काननि सुनी है तैसैँ आँखिन हू देखैँ जातैँ
दीखत नहीँ औ सब ठावँ रहे छाय छाय।

रहा है। [४८२] लच्यौ = नमित। [४८३] भटभेर = मुठभेड़। गख्यार = गरियारा, छोटी गली मैँ। [४८४] तरवानि० = पैरौँ से आग लगती है, नख से सिख तक भस्म होने लगती है"। [४८५] फुही = सीकर, हलकी वृष्टि। उही = वही।

* पुनि। † ब्रजमोहन। ‡ जुरे।

ऐसैं घनआनँद अचंभे* सौं भरे हौ भारी,
खोए से रहत जित तित तुम्हैं पाय पाय।
एकबास बसे सदा बालम बिसासी, पै न
भई क्यौं चिन्हारि कहूँ हमैं तुम्हैं हाय हाय ॥४९६॥

सवैया

सुनि कै गुन रावरे बावरे लौं उरझानि सुरूप की बानि परी।
दरसे बरसे सरसे परसे घनआनँद रीझ बिकानि परी।
प्रगट्यौ न कहूँ अब यौं उघरे गति जानि परी जु न जानि परी।
रसदानि सुनौ इन प्रान-पपीहनि बाँट पुकारनि आनि परी ॥४९७॥

घातनि ठानत बातनि छानत† चायनि दायनि जाचि रहे हौ।
यौं घनआनँद चाँवरि देत न हाथ लगौ छल बाचि रहे हौ।
छाय तऊ‡ उघरेई परौ हित-काचे तऊ पन पाचि रहे हौ।
फाग सो खेलत डोलत लाल जहाँ तहाँ रंगनि राचि रहे हौ ॥४९८॥

ठगई धरि कै लगई जु करी न गई अजहूँ करौ घातैं पढ़े।
पचि कै रचि कै सचि ल्यावत हौ ब्रजमोहन ऐसियै + बातैं पढ़े।
बिन लेखे मिलौ न बड़े लिखधार × कह्यौ हित मूरति कातैं पढ़े।
घनआनँद छावत भावत हौ दिन पारि इतै उत रातैं पढ़े ॥४९९॥

रंग भर्‌यौ उन सूखति हौं उन सौंधो रच्यौ भई हौं नकबानी।
नैन गुलाल भरे कि जगे निसि मो दृग आवत है भरि पानी।

समुही = संमुख। [४९६] बालम = प्रिय। [४९७] बाँट = हिस्से मैं। [४९८] छानत = बाँधते हो। [४९९] दिन० = बुरे दिन डालकर। रातैं = रात्रि; अनुरक्त होना। [५००] सौंधो = सुगंध। नकबानी = नाक मैं दम होना।

* अभेद। † बानत। ‡ ढाँपे तऊ। + ओखियै। × खिलदार।

आँच तचे हम सीरी परें* पिय मो हिय खोंप गुली† सुखदानी ।
आनँद के घन होरी नई यह माची उतै इत राचनि ठानी ॥५००॥

आए हौ फाग मनाय कै लाल कियौ जित नेह नयौ थपनौ जू ।
आछे निचोय भिजै पठए फगुवा मन-मानतो लै अपनौ जू ।
भूलि परें सुधि मेरियौ लीनी किधौं कछू देखति हौं सपनौ जू ।
भाग खुले उनए घनआनँद प्रान-पपीहनि तें तपनौ जू ॥५०१॥

कबित्त

अपबस होहु तौ हमारियै बसाय प्यारे,
सुबस बसौ बिसासी तहाँ बस और के ।
कहा जानौं कितहूँ कसक है कि नाहीं तुम्हें,
भौंर से भुलाने‡ देखियत ठौर ठौर के ।
साँचिली बिचारी भोरी हेरत हिराय गई,
चतुर सनेही दुरि अंतर की भौर+ के ।
क्यौं हौ घनआनँद पपीहनि की गति कहा,
मन भए पंगु ये तिहारी एक दौर के ॥५०२॥

[५०३–५०४] के लिए देखिए पृष्ठ १५१, संख्या ७६–७७ ।
[५०५] के लिए देखिए पृष्ठ १७०, संख्या ७४ ।

प्रेमपत्रिका

चांद्रायण

कान्ह तेरी पाती तुमहीं सुनाइहौं,
हाय हाय फिरि कहूँ जो तुम्हें पाइहौं ।

खोंप = छिद्र । गुली = डाली । [५०२] साँचिली = सच्ची ।

* पैंचत चीन्हब सीच परै । † पुली । ‡ लुभाय । + रौर ।

कटुक प्रीति को स्वाद मिठास-भर्यौ महा,
छ्वै रसना करि किलक कहौ बरनै कहा ॥ १ ॥
जानै बिरही प्रान और कैसैँ बनै,
तीखी तरल सुवात कहत रसना छनै।
अब न सहैँ ते और, लहै पर-पीर को,
धनि धनि है ब्रजनाथ तिहारे धीर को ॥ २ ॥

सुखी रहौ सुखदैन, हमारी हम भरैँ,
बाँको वार न होय असीस सदा करैँ।
अकथ कथा की पाती छाती है भई,
नेकु लागि पिय बाँचौं दूरि भए हई ॥ ३ ॥

बिसरि गई बिसवासी सरक सनेह की,
मुरली-वेधनि वेधी गति मन देह की।
धरी दूरि पहचानि निकट की को कहै,
सुधि भूले सब भाँति परेखनि ज्यौ दहै ॥ ४ ॥

बृंदाबन घन कुँजैं देखति हैं जबै,
पात फूल फल डार बिराजत हौ सबै।
ढिग ह्वै यौं दुख देत दूरि तैं दूरि से,
हाथ न लागत हाय रहे हौ पूरि से ॥ ५ ॥

बिबस बिसूरि बिसूरि राति दिन बीतई,
सब बिधि हारी हाय बिरह-बल जीतई।
चेटक चितहि लगाय निचीते हौ भले,
जुवती-जन-मन-गंजन घातनि ही पले ॥ ६ ॥

परमेसुर कौं करौ निवारि अनीति कौं,
प्रेम परम परवीन एकरस रीति कौं।

---

[१] किलक = पुकार। [२] छनै = छिद जाती है। [४] सरक = मद्य-

जानि बूझि आनाकनी नहिं दीजियै,
दुखिया जिय को जतन कछू तौ कीजियै ॥ ७ ॥
या बिधि ब्रज बसि रहे बिसासी साँवरे,
तुम ही देहु बताय सबै बिधि भाँवरे।
कँवलनैन वह चितवनि सालति है दई,
बेध्यौ हियौ दुसार सुसार कपटमई ॥ ८ ॥

अब पिय निपट न करियै हरियै कदन कौं,
पाय डारि कित मूँड़ चढ़ावत मदन कौं।
सुंदर रसिक सजीवन तुम ही तें जियैं,
तुम बिन कहूँ न रहैं कहैं सौं हैं कियैं ॥ ९ ॥

आँखिन कहा दिखावैं मन बैठे रहौ,
निकसि गए तजि नेह प्रान पैठे रहौ।
धरी धरोहरि पिय की प्रान सुदाम हैं,
जब चाहौ तब लेहु जगावति जाम हैं ॥ १० ॥

लीला

सदा सुखी सुख देत रहौ दुख पावत नाहीं,
कीरति-जोन्ह सु जगमगै जसुदासुत माहीं।
मंगलि मूरति सबनि कौं सुख लै बिसतारौ,
हम निपटै रावरी हैं आसरौ तिहारौ ॥ ११ ॥

तुम्हरी कुसर कुसर सदा ब्रज मैं नित है हो,
और भाँति कहि को सकै प्रीतम सौं लै हो।
नित सुहाग-पागी रहैं ब्रजनाथ गुसाईं,
आनँदघन उनपै रहौ निसिबासर छाँईं ॥ १२ ॥

पान। [६] निचीते = निश्चिंत। [८] भाँवरे = चक्कर काटनेवाले, भौंरे। दुसार = दुःशल्य, अधिक कष्ट देनेवाला काँटा। सुसार = प्रवेश करके। [९] कदन = कष्ट, पीड़ा। पाय० = पैरों पर गिराकर। [१०] सुदाम = द्रव्य।

चांद्रायण

तुम चाहौ सु करौं जु सही कछु बनि कहैं,
आनँदघन रसरासि चातकी ह्वै रहैं।
या पाती को देखि पथिक प्रानै लहै,
आसा-निगड़-समेत चलन उनयो रहै ॥ १३ ॥

प्रकीर्णक

कवित्त

मरम भिदै न जौ लौं मरम न पावै तौ लौं,
मरमहिं भेदै कैसैं सुरनि घँघोइबो।
राग ही तैं राग के सरूप सौं चिन्हारि होति,
नैनहीन काननि असूझ टकटोइबो।
अकथ कथा है क्यौंऽवगाहियै अथाहै तान,
ब्यौरिबो बृथा है बादि औसरहि खोइबो।
प्रेम-आगि जागैं लागैं झर घनआनँद को,
रोइबो न आवै तौ पै गाइबो हू रोइबो ॥ ८० ॥

गोपिन की ससक कसक जौ न आई मन,
रसिक कहाएँ कहा रस कछू औरई।
समझि समझि बातैं छोलिबो न काम आवै,
छावै घनआनँद सु जौ लौं नेह-बौरई।

---

[१२] कुसर = कुशल। [१३] निगड़ = बेड़ी।

[८०] मरम = मर्मस्थल। मरम = तत्त्व। घँघोइबो = मैला करना, बिगाड़ना। राग = अनुराग। राग = संगीत का राग। नैन = मानस-नेत्र। क्यौंऽवगाहियै = कैसे थहाया जाय। ब्यौरिबो = विवेचन करना। [८१]

कान्ह ब्रजमोहन सौं जौ पन-परनि परी,
ताहि अवगाहत ही थकै मति दौरई।
मिलि बिछुरे को दुख बिछुरि मिले को सुख,
तिनहीं मैं ब्यापौ ठौर ठौर भरि रौरई ॥ ८१ ॥

नाम को न नेम बाँध्यौ प्रेम सौं सुलेखो कहा,
धायौ नहीं धाम लीला-माधुरी बिभूति कौं।
जनम जनम तें अपावन असाधु महा,
अपरस पूति सौं न छाँड़े अजौं छूति कौं।
भूलि मोह-मेहै राच्यौ भ्रम-धूम-धूँधरि सौं,
केवल कलंकी-रूप जननी-प्रसूति कौं।
करुना-निधान कान्ह आपने गुनैं सम्हारौ,
मेरी गति कौन जौ बिचारौ करतूति कौं ॥ ८२ ॥

ऐसी कृपा कीजियै कृपानिधि निवारि भ्रम,
भरिबो करौं सदाई ब्रज-बन-भाँवरी।
ठौर ठौर सोभा छकि जमुना के तीर थकि,
चकि जकि चाहि रहौं वहै छबि साँवरी।
आनँद के घन हौ पपीहा प्रान पोखियै जू,
हित-छाँह छाय मेटौ सोच-घाम-ताँवरी।
छोरि सब ओर तें सुदेस लै बसैये हाहा,
मोहन रसीले यौं गसैये मोह-दाँवरी ॥ ८३ ॥

सवैया

अब सो करियै ब्रजमोहन जू जु करौं बिनती कर जोरि यही।
सब ठौर तें दौर थकै मन की कि तिहारियै पौरि पै देहुँ ढही।

ससक = सिसक। बौरई = पागलपन। रौरई = कोलाहल। [८३] ताँवरी = मूर्छा। यौं गसैयै० = अपने प्रेमबंधन में ऐसा बाँधिए। [८४] देहुँ ढही =

घनआनँद दीन पपीहनि के तुम ही घन जीवन-मूल सही।
जिय की गति जानत हौ सुखदैन कहौ जू कहा कहिबे की रही ॥८४॥

मोहन-मूरति की पहचानि तु आँखिन बीच निकेत ही राखौ।
बंसी-बजावनि रीझि रिँगावनि प्राननि ताननि खेत ही राखौ।
एहो सुजान तुम्हैं घनआनँद चातक-त्यौं अब हेत ही राखौ।
जाचै तुम्हैं अरु राचै कहूँ न जहाँ जब जैसैं सचेत ही राखौ ॥८५॥

कबित्त

करुना की रासि सदा सोहै मृदु हासि,
घनआनँद की निधि बिधि मूरति सुठान की।
रूप-चतुराई सुभसील औ गुराई ऐसी,
भई है न ह्वै है कहियै धौं को समान की।
अति ही उदारता की सीवाँ, उर आनि जानि,
गही एक टेक रावरेई गुनगान की।
काहू सौं न कछू कहौं अपनी ही सोचि रहौं,
मोहिं आस तैयै क्यौं लड़ैती बृषभान की ॥८६॥

अगम अगाध अदभुत औरै और अति,
मति-गति थकित, न होत क्यौं हू आवरे।
सिव बिधि सक्र सनकादिक सहसमुख,
बदत बदत बेदौ भेद भए बावरे।
आनँद के अंबुद रसाल महा रोचक हैं,
सब ही के हिये मैं बढ़ाय देत चाव रे।
सुनत गुनत अभिलाखत उरझि बानी,
गावत गनत न बनत गुन रावरे ॥८७॥

पड़ा रहूँ। [८५] रिँगावनि = (अचेत प्राणों को) सचेत करनेवाली। [८७] न होत० = शिव आदि (मति के थकित होने पर भी) उसके वर्णन से विमुख नहीं होते। आवरे = मलिन, यहाँ विमुख। सक्र = इंद्र। सहसमुख = शेष

सुनि सुनि रावरे गुननि बावरे हैं कान,
लोचन उतावरे ह्वै लोचैं हाय कैसे हौ।
साधनि मरत प्रान आसा लागि जीवत हैं,
वारनैं तिहारे कहा रंक, प्यारे जैसे हौ।
दीजियै दिखाई ब्रजमोहन छबीले कहूँ,
परी घर घेरि तुम निधरक ऐसे हौ।
छाए घनआनँद रसीले रहौ दिनरैन,
दरसौ न देया देखे उघरि अनैसे हौ ॥८८॥

जहाँ राधा-मोहन की केलि को कुलाहल ही
माच्यौई रहत बन बेलिन सरस है।
सुंदर सरोवरनि घाट पनघट भेंट,
नैन-सैन दैन-चैन चाहतो परस है।
बानक सुठौन सहजैं ही देखें बनि आवै,
आनँद को अंबुद मनोरथ-बरस है।
दीठि चातकी ह्वै जौ लगै तौ सौंह आँखिन की,
आँखिन को फल ब्रजभूमि को दरस है ॥८९॥

छप्पय

छायौ सरस सुदेस, बिबिध सुख कौं बिस्तारत।
निरखे अमित उछाह, ताप तन मन को टारत ॥
सब रितु साज-समाज, सदा जमुना-तट लहियै।
सुंदर स्याम सुजान, छटा याकी छबि कहियै।
अपनी मनि अनुपम अमल, राजत है सुखमा-सदन।
दंपति चातक जुगल हित, बृंदाबन आनंदघन ॥९०॥

कबित्त

बृंदाबन सोभा नई नई रसमई गोभा,
कहत बनै न स्याम-नैन पहचानहीं।

नाग। [८८] लोचैं = बिचारते हैं। [८९] सुठौन = सुंदर। [९१] गोभा =

राधिका-दरस को सुदेस आदरस याहि,
चाह्यौई करत जब जब जैसैं जानहीं।
ऐसे रंग-मूरति बसे हैं एक संग दोऊ,
रूप की मरीचैं घनआनँद-बितानहीं।
जमुना के तीर देखौ प्रगट दुरयौ है अति,
निगम अगम ताहि लेखैंई बखानहीं ॥६१॥

ब्रज बृंदावन गिरि गोधन जमुन-तीर,
सुबस सुदेस पुर बन सुख-साधा को।
जाकी भूमि-भागहि सिहात हैं गिरीस ईस,
धूरि रसमूरि हरै दुख सब बाधा को।
एकरस बिहरत दोऊ महारस भीजे,
आनँद-पयोद प्रीति परम अराधा को।
स्याम के सरूप को कछुक निरधार होय,
तौ कछु कह्यौ परै अगाध प्रेम राधा को ॥६२॥

स्याम यामैं बसैं यह बसै स्याम हियैं सदा,
तामैं फिरि राधा बसैं क्यौंऽब सो निहारियै।
यही बृंदाबन देखौ प्रगट दुरयौ है एक,
मोहन की दीठि ईठि भएँ ही चिन्हारियै।
नैन बैन मनसा रमाय राख्यौ बड़भागी,
तिनही की कृपा को सु अंजन बिचारियै।
महा अचरज-धाम मोहिं ऐसैं दीसि पर्यौ,
दीसत न काहू बिन दीसैं लाल-प्यारियै ॥६३॥

याहि दीसैं स्याम दीसैं दीसैं स्याम दीसै यह,
ऐसो बृंदाबन कहौ कैसैं करि दीसई।

अंकुर, प्रस्फुटन, शोभा का विकास। मरीचैं = किरणें। घन० = आनंद के बादलरूपी चँदोवे पर। [६२] गोधन = गोवर्धन। आनंद० = आनंद के घन।

दीसत दुर्यौ सो स्यामसुंदर-सुभाव लियैं,
हर्यौ मति हरै हारि हारि बिसे बीसई।
परैं तें परे है भयो हाय यहै बृंदाबन,
गाचैं रज जाचैं ईस हू से बकसीसई।
ताहि दौरे जात पाय लियौ है सबनि सूघौ,
मधुर त्रिभंगी जौ लौं कृपा न परीसई ॥९४॥

बृंदाबन-माधुरी अचंभे सौं भरी है, देखैं
स्याम को अनूप रूप त्यौं ही याहि देखियै।
अंग-रंग-संग एक एक ह्वै रह्यौ सदाई,
तातैं भोगवती राधारानी अवरेखियै।
सुबन बन्यौ है सुख-सन्यौ है कालिंदी-कूल,
आनँद को घन रस-मूरति बिसेखियै।
देखत दुर्यौ है, अवनी पै अति ऊँचो आहि,
सरस कृपा ही तें परस-गुन पेखियै ॥९५॥

बृंदाबन पाइबे की गैल कौं गहै न जौ लौं,
पायहू गए तें रस या रस क्यौं पाइयै।
राधा-पिय-केलि की कलानि कौं सकेलि नीकें,
सुभर भर्यौ लै जौ लौं उर न बसाइयै।
रहनि कहनि एक टेक टकटकी ही सौं,
भानुजा-चरन-रज-आँखिन अँजाइयै।
निगम बिसूरि थाकैं पदई परम दूरि,
आनँद के अंबुद कौं थकि थकि धाइयै ॥९६॥

राधा हरि आरति मरोरि मीँड़ि मारति है,
या बिधि जीवई जिय-दसा करै ओरई।

---

[९४] हर्यौ = हराभरा। बिसे० = पूर्णतया। बकसीस = प्रसाद, उपहार।

वन उपवन व्रज बाखर खरिक खोरि,
गिरि गहवर उफनाति प्रेम दौरई।
कहा जानौं कैसी है कहा है दुहुँनि की लाग,
रंचक विचारैं अति बाढ़त है बौरई।
रमन रँगीली भूमि आनँद को घन भूमि,
रमड़ि रमड़ि दरसत ठौर ठौरई ॥६७॥

सवैया

व्रजमोहन राधिका की रहठानि सदा अनुराग सुहाग भर्यौ।
कहि आवत क्यौं निरखेई बनै गिरि गोधन मैं जु कछू लै धर्यौ।
भरि भोवन नैन हियैं दिनरैन सहेटन भेटन टारि टर्यौ।
सु कलिंदी के कूल अनंदनि-मूल सनेह को देस है दीसि पर्यौ ॥६८॥

कवित्त

बिभाकर-कुँवरि तमालन की पाँति बीच,
बीचिनि मरीचैं जागि लागति जगमगी।
भावना भरनि हिय, गहर भँवर परै,
एकरस राग धुनि रंगनि रँगमगी।
चातकी भई है चाहि आनँद के अंबुद कौं,
बन घन ढूँढ़ै रीझि डोलति डगमगी।
प्रेम की पसीजनि प्रवाह-रूप देखियत,
सदा स्याम के सिंगार-सार सौं सगमगी ॥६९॥

स्याम-अंग-संगिनी विसाल-रस-रंगिनी,
अनूपम तरंगिनी कृपा सौं रही भोय है।

परीसई = स्पर्श करते। [६७] आरति = लालसा। बाखर = घर। खरिक = पशुओं के रहने का स्थान। खोरि = गली। रमड़ि = छाकर। [६८] रहठानि = निवास-स्थान। [६९] बिभाकर० = सूर्य की पुत्री, यमुना। बीचिनि = लहरों

जमुना जननि मोदकारिनि महा उदार,
जग-ताप-हारिनि पुनीत तेरो तोय है।
तीर पर्यौ आनि दीन हीन जानि मानि लै री,
विनती करत हाहा हठि हारि रोय है।
आनँद के घन सौं पपीहापन पालै क्यौं हूँ,
बासना मलीन मेरे अंतर को धोय है ॥१००॥

मोहन के बदन मिठास-भरी तानैं मिदि,
मीठियै लगति जब मिलै सब डाटि लै।
भोरी ब्रजगोरिन की लाज-पाज तोरि तोरि,
गिलै करि देत खेद-बाधा खाय आटि लै।
ऐसी बिसवासिनि बजाय बैर बाढ़ति है,
काढ़ति धरन तें उपायनि उचाटि लै।
बाँसुरी की बाजनि बिराजै बन व्यापक ह्वै,
देखौं गति जमुना की राखी राग पाटि लै ॥१०१॥

सवैया

हाथ चढ़ी हरि के जब तें हरिबोई करै कछुवै न बिचारै।
हाथ कियौ मन सो धन हेली इतै पर हाथ कौं पाय पसारै।
लैहै कहा अब सोच महा परियै रहै मोहन साँझ सवारै।
मोहन की बिसवासिनि बाँसुरी तानन मैं बिष-बाननि मारै ॥१०२॥

रीति या चेटक ही सौं भरी धुनि मैं करै धीरज-दोहन बाँसुरी।
घेरि लै आनि बसावै बनैं ब्रजगोरिन के परी मोहन बाँसुरी।

मैं। सगमगी = सज्जित। [१०१] डाटि लै = डटकर चख लेती है (मीठी होने से)। पाज = तालाब का बाँध। गिलै० = निगल जाती है। आटि = डाट, रोक। बजाय = डंके की चोट, कह बदकर। गति० = राग से पाटकर इस बाँसुरी ने यमुना की गति भी रोक रखी है। [१०२] हाथ० = हाथ मैं और

रीझि भिजै घनआनँद कौं मुँह लागि दहै हिय छोहन बाँसुरी।
हाथ लिये रहैं रैनदिनाँ मनमोहन की मन-मोहन बाँसुरी ॥१०३॥

बंसी मैं मोहन-मंत्र बजाय कै मोहि लईं बपुरी अबला सब।
जो कछु राग रच्यौ अनुराग सौं को बरनै रु सुन्यौ किनहूँ कब।
व्यापि रही चर थावर लै घनआनँद घोर घमंडन की भव।
कानन मूँदेऊ तैसियै बाजति क्यौं भरियै करियै सु कहा अब ॥१०४॥

कवित्त

पूरी लगी लाग राग-बस भई भली भाँति,
थकित चली है गति गही सुचि रलिका।
हरि बनमाली करि हरित भयौ है हियो,
कैसैं रह्यौ परै खिली लालसानि कलिका।
चातकी सु है जु ब्रजगोरी घनआनँद की,
इते मान तान-बान करी है बिकलिका।
कथनि कही न परै प्रेम-मतवारिन की,
काहू की न सुनी ऐसैं सुनी है मुरलिका ॥१०५॥

लाल पाग बाँधे, धरे ललित लकुट काँधे,
मैन-सर साँधे सो करन चित-छाय को।
जोबन झलक अंग रंग तकि रंक, छूटी
कुटिल-अलक-जाल जिय अरुझाय को।
गरे गुंजमाल उर राजत बिसाल नख-
सिख लौं रसाल अति लोनो स्याम काय को।
करत अधीर बीर जमुना के तीर तीर,
टोना भर्‌यौ डोलत ढुटौना नंदराय को ॥१०६॥

कुछ ले लेने के लिए पैर फैलाए हुए है (डटी है)। [१०४] थावर = स्थावर। भव = ध्वनि। [१०५] रलिका = क्रीड़ा। [१०६] मैन = मदन,

रसिया रँगीलो ब्रजमोहन छबीलो छैल,
राधा-रूप-आसव छक्यौ रहै महा अछेह।
बाँसुरी बजाय राग पूरै अनुराग ही कौ,
ताननि घुमाय घूमै पुलकि पसीजै देह।
नेही-सिरमौर और कौन ये सवाद जानै,
आनँद को घन चोप चातक है भूल्यौ गेह।
सुनि री सहेली तू हितू है समझाय हाहा,
हौं तौ हारि परी पै घटै न कहूँ याको तेह ॥१०७॥

राधा-रूप-साधा साधिबे की महा चिंतामनि,
गोरी गाय चायनि च्वै साँवरो सम्हारई।
ग्वैंड़े आय टेरत है, नेह सौं निबेरत है,
जातें भरि पावत है भाव भरि ग्वारई।
धौरी ढार ढौरी लै बुलाय बालि सौंपि देत,
काजर कुरंगनैनी चोपनि चितारई।
दोहन करत ब्रजमोहन मनोरथनि,
आनँद को घन रंग-झलनि झमारई ॥१०८॥

सवैया

जब तें डफ-बाज सुनी सजनी तब तें मति कौं कछु बौरई सी।
मन के पन की गति जोऽब लखौं रितु और भई रति औरई सी।
मचिहै जब फाग कहा करिहौं अब ही करी कान्हर खौरई सी।
घनआनँद छावत गारिनि गावत आवत पारत रौरई सी ॥१०९॥

रोक्यौ रहै अब क्यौं करि कै मिलि खेलनि हौंस को ओज बढ्यौ है।
राख्यौ दुराव दुराइ हियैं अनुराग सु बाहिर आनि कढ्यौ है।

काम। छाय = छेद। ढुटौना = पुत्र। [१०७] अछेह = अपार। तेह = तीखापन। [१०८] ग्वैंड़े = गाँव की बस्ती के निकट। निबेरत = पृथक् करता है। धौरी = सफेद गाय। चितारई = लगाती है। झला = वृष्टि। झमारना = झाँवरा कर देना। [१०९] खौरई = खलभली। रौरई = शोरगुल, कोलाहल।

साँवरे छैल गवारनि गारिनि गाय कै दोहरा एक पढ्यौ है।
चोपनि चौगुनियै पुट लागिहै आजु तौ सौगुनो रंग चढ्यौ है ॥११०॥

कवित्त

रुपे हैं गुपाल ग्वाल-मंडली लगौंहीं संग,
सजे खेल साजनि सौं उपमा न सरसी।
इतै राधा नागरि बिनोद बिजै सूरति,
सहेलिन के जूथ फूली रूप-कंज-सरसी।
धूँधरि-धमारि कीच माची कही परै कैसैं,
कोटि काम-कटक कै धसकै धौंसर सी।
आनँद के घन की गरज हो हो बोलनि मैं,
होति है परसपर पैजनी-पसर सी ॥१११॥

कान्हर खिलार मोद-मूरति उदार रूप,
जोबन को मतवार होरी-खेल खग्यौ है।
अवसर सरस बखान आय खेल माँड्यौ,
दरस के फल ताको उमँगनि पग्यौ है।
कहा कहौं कठिन दुलार भरी भावती के
रोम रोम राग भाग फाग जगमग्यौ है।
सखिन समाज दामनीन पुंज फैलि परे,
आनँद के घन पै बिनोद-झर लग्यौ है ॥११२॥

खेलत खिलार गुन-आगर उदार राधा,
नागरि छबीली फाग राग सरसति है।
भाग-भरे भावते सौं औसर फब्यौ है आनि,
आनँद के घन की घमंड दरसति है।

---

[११०] पुट लगना = रंग चढ़ना। [१११] उपमा० = उपमा स्फुरित नहीं हो रही है। सरसी = छोटा तालाब। धसकै० = फैला रही है। धौंसर = धूलि

औचक निसंक अंक चाँपि खेल-धूँधरि मैं,
सखिन त्यौं सैननि ही चैननि सिहात है।
केसू रंग बोरि गोरे करि स्याम सुंदर कौं,
गोरी स्याम-रंग बीच बूड़ि बूड़ि जाति है ॥११३॥

सवैया

घनआनँद प्यारे कहा जिय जारत छैल ह्वै फीकियै खौरनि सौं।
करि प्रीति पतंग को रंग दिनाँ दस दीसि परै सब ठौरनि सौं।
यह औसर फाग को नीको फब्यौ गिरिधारी हिलै कहूँ टौरनि सौं।
मन चाहत है मिलि खेलन कौं तुम खेलत हौ मिलि औरनि सौं ॥११४॥

बात कही उन रातिन की अब ही तें कहौ दिन कैसें बितैयै।
चातकी ह्वै घनआनँद ओर चकोरी भएँ ब्रजचंद चितैयै।
बाढ़ि परी अभिलाष-नदी अति. कौन बनाव की नाव बनैयै।
चीर लिये सु हिये हरि हेली दियें न दिये घर लै कहा जैयै ॥११५॥

मित्र के पत्रहि पावत ही उर काम-चरित्र की भीर रची है।
सीस चढ़ावति आँखिन लावति चुंबन की अति चोप मची है।
हाय कही न परै हित की गति कौन सवाद अचौनि अची है।
छाती सौं छ्वावत ही घनआनँद भीजि गई दुति-पाँति नची है ॥११६॥
['घन-आनंद' से]

पिय को मन है चलिबे कौं उठ्यौ जिय बैठी यहै न सह्यौ परिहै।
चित तौ चपट्यौ तिन जात लियें यह बावरो कैसें गह्यौ परिहै।
घनआनँद पावस आय लगो बिन धीरज क्यौं निबह्यौ परिहै।
करिहौ सु कहा कहि री सजनी बदरान लखें न रह्यौ परिहै ॥११७॥

का आवरण। [११२] खग्यौ० = लगा है। [११४] केसू = किंशुक, पलाश। [११५] खौरनि = चंदन का मस्तक पर लगा टीका। टौर = घात, दावँ। [११६] अचौनि = आचमन, पीना। [११८] अवासे = आवास, घर। बिरहा० =

भई बन-बेलिन की गति और सुहाने ते कंज भयानक भासे।
जे रूख भजावत भूख हुते तेइ दीसत हैं जियरान के प्यासे।
हिये सियरात मिले घनआनँद लौटत औटत हाय अवासे।
बसैं लगि काहि सखी बिरहा ब्रज हाथ कियौ किधौं पाय-निकासे॥११८॥

धनि वै बन-बेलि जिन्हैं परसौ पुहुपावलि गूँथि गरैं सु धरौ।
फल लागि रह्यौ सुखमूल तिन्हैं जिनके फल लै रसपान करौ।
घनआनँद सींचत डोलौ सबै बड़भाग की रासि रसीली भरौ।
हम सूखतिं ये पन-प्यास-भरी ब्रजजीवन जीव की जानि ढरौ॥११९॥

पल ओट भए पन-प्यास-भरी, अकुलानि महा हिय पोसति है।
तुम दीसि परौ न इते पर प्यारे तिहारियै आवनि दीसति है।
घनआनँद प्रान चितौनि हमारी हमैं दुख-बान कसीसति है।
नित नीके रहौ हित-सूरति जू मनसा दिनरात असीसति है॥१२०॥

ब्रजमोहन रूप-छके मन नैन महा मतवार प्रमानियै ते।
घनआनँद भीजे रहैं निसिद्यौस पपीहन लौं अनुमानियै ते।
उर आनियै ते जिय जानियै ते सनमानियै ते सुखदानियै ते।
जो दुराव-लखाव न जानत है इकसार सनेह बखानियै ते॥१२१॥

आवैं कहूँ मनमोहन मो गली पूरब-भागनि को ब्रत ऊजै।
हाय कछू न बस्याय तबै दुरि देखिबो दूभर, छाँह क्यौं छूजै।
माँगति हौं बिधना पै बड़े खन, जौ कबहूँ जिय आसहि पूजै।
चौथि को चंद लखैं ब्रजचंद सौं लागै कलंक तौ ऊजरे हूजै॥१२२॥

काहे कौं सूल सहौं सजनी अरु क्यौं हियराहि उदेग दहौंगी।
जीवन-मूल मिले घनआनँद सो सुख काहू सौं कैसैं कहौंगी।

उन्होंने यहाँ से पैर क्या निकाले ब्रज को विरह के हाथ सौंपते गए। [१२०] कसीसति० = खींचती है। मनसा = इच्छा। [१२२] ऊजै = पूर्ण होता है। बड़े०.= ब्रह्मा के से बड़े क्षण। ऊजरे० = गौरवान्वित होऊँ। [१२३] कुटीचर =

जोबन बैर पर्यौ है कुटीचर काम पै वाहु अनेक चहौंगी।
लैहौं हियैं लपटाय पियैं अरु हौं पिय के हिय लागि रहौंगी ॥१२३॥

आनि मिलौ दुरि आपुनि गौं फिरि जारत जू जियराहि बिछोहन।
कौन सवाद पर्यौ तुमकौं चित चाहत ही करि लेत हौ दोहन।
चोपनि छावत हौ घनआनँद आय बढ़ावत हौ इत छोहन।
जानि परे गुन रावरे नाम के मोहन जू तनकौ कहूँ मोह न ॥१२४॥

ब्रजमोहन गोहन छाड़त नाहिं चढ़े चित बैरहि लेत रहैं।
दिन-रैन समीप, बियोग धौं कैसो, कहा जौ दिखाइ न देत रहैं।
झर लाय रहे घनआनँद यौं नित प्रान-पपीहा अचेत रहैं।
भरि हेत रहैं करि चेत रहैं, तजि खेत रहैं रसमेत रहैं ॥१२५॥

पाय परै गति रावरी कैसें मिलैं अमिलौ रहि मोहत मो ही।
जीवन हौ जग के घनआनँद या बिधि क्यौं तरसावत मोही।
लालसा लागी रहै मिलिबे की मिलैं ढँग ये घर-माँझ बटोही।
मोहन जू बसि एकहि बास कहौ रहौ काहे तें ऐसें अमोही ॥१२६॥

अनचाहेऊ चाहैं खिजेऊ हँसैं, जगि बोले बिना दुख-नींद खगैं।
बिन काज ही हार से होत फिरैं, जितहीं चलियै तित संग लगैं।
घनआनँद यौं घुरि घेरि लई मुरली-सुर मैं रसबाद जगैं।
कहि क्यौं मरियै करियैऽब कहा नियरेई रहैं अति दूर भगैं ॥१२७॥

अति तीखे परेखनि सौं ब्रजमोहन नातौ नहीं कटि जायहै जू।
घनआनँद प्रान-पपीहा-जिवावन आप कहा घटि जायहै जू।
मन कौन धरे जु बियोग की आँचनि ताचि तनौ लटि जायहै जू।
कबहूँक तिहारी औसेर दरेरनि हाय हियौ फटि जायहै जू ॥१२८॥

कपटी। [१२४] छोह = ममत्व। [१२५] हेत = प्रेम। रसमेत = रसमय।
[१२८] ताचि = पककर। तनौ = शरीर भी। लटि० = क्षीण हो जायगा।

फागुन मैं उनयौ घनआनँद हेरि हरी है बियोग की तौंसनि।
छैल खिलार महा ब्रजमोहन खेलत भावनि चोपनि सौंसनि।
गोरिनि घात के घेर पर्‍यौ रस चाव बचाव टर्‍यौ कछु गौंसनि।
दाव बन्यौ सु गहाव भएँ हियरा भरि आँखि अँजैबे की हौंसनि ॥१२९॥

सौंधे सनी अलकैं बगरीं मुख जोबन-जोन्ह सौं चंदहि चोरति।
अंगनि रंग-तरंग बढ़ी सु किती उपमानि के पानिप ढोरति।
मोहन सौं रस-फाग मची सु भली भई हौं कब तें ही निहोरति।
आनँद को घन रीझनि भीजि भिजै पठई कहा चीर निचोरति ॥१३०॥

खेलत फाग फिरै जित ही तित बातनि घातनि बंकबिहारी।
छैल महाछल सौं बल सौं कल सौं गल सौं लपटौ बनवारी।
आनँद के घन गौं उनए सरसौ बरसौ तरसावत भारी।
रंग तिहारे निहारे अनेक अनूपम एक हौ लाल खिलारी ॥१३१॥

कबित्त

सींचे रस-रंग अंग फूलि फैलि छबि दबि,
देखि देखि मालती-लतानि उकसति है।
आछे काछे मधुप-कुमार कोटि ओटि कीजै,
अलक छबीली मन छूटियौ कसति है।
कहा कहौं राधे घनआनँद पिया के हिय,
बसि रसि जैसी मेरी आँखिनि ससति है।
कौन धौं अनूठो अमी प्यावै जिय ज्यावै भावै,
ए री तेरी हसनि बसंत कौं हसति है ॥१३२॥

गलिन मैं छली, रली तिनहीं सौं चली भली,
धोखे बावरे ह्वै हियरा रे परतीति है।

औसेर = प्रतीक्षाजन्य वेदना। [१२९] गौंसनि = घात से। [१३०] सौंध = सुगंध से। पानिप = पानी, शोभा। ढोरति = बहा देती है। [१३२] ओटि० =

आजु लौं लला हो काहू बाम सौं न काम पर्यौ,
देती जो सिखाय होरी खेलिबे की रीति है।
गाल क्यौं बजावौ घनआनँद डरावौ कहा,
आवौ गावँ ग्वैंड़े जानि परै हारि जीति है।
आन हमैं बाबा वृषभानु की अरैं न टरैं,
गई करैं धरैं तौ अबै ही सबै बीतिहै ॥१३३॥

कियौ है कहा री तैं बिहारी कौं निहारी जब,
तीखी अँखियानि हियो बँध्यो न कसरि कै।
पिचका लियेंई रहे रह्यौ रंग तोहि देखैं,
रूप की धसक लागैं थके हैं थसरि कै।
तोहि बनि आई सु तौ तोहि बनि आवै राधे,
बिधना बनाई तुहीं सकै कोऽब सरि कै।
कैंधि घनआनँद कौं भिजयौ हसनि ही मैं,
हाथ कियौ लालहि गुलालहि मसरि कै ॥१३४॥

सवैया

चारिक द्यौस रचै चिकनाय कै दौलत नेह-निबाहन-रूखे।
झूमि झमारहि दै घनआनँद राखत हाय बिसासनि सूखे।
छैल छबीले भरे छल-छंद ढरौ ढब ही अनदोख हू दूखे।
रावरे पेट की बूझि परै नहीं रीझि पचाय कै डोलत भूखे ॥१३५॥

बसि नैन हिये दुरि दूरि लसौ सुखदैन सदाई सहायक हो।
कितहूँ दरसौ गति को समझै मन की, तुम तौ पनपायक हो।

छिपाने पड़ते हैं। ससति० = समा जाती है। [१३३] गई० = पीछे की बातें न भूल जायँ। [१३४] थसरि० = शिथिल होकर। सरि = बराबरी। मसरि = मसल-कर, मलकर। [१३५] झमार = वृष्टि का झोंका। अनदोख० = (रूप में) निर्दोष होकर भी (मन में) सदोष हो। रीझि० = मेरी रीझ को पचाकर भूखे घूमते हो। मेरी रीझ की तो चिंता नहीं करते, पर दूसरों से मिलने-जुलने की ताक में

जित भूमि झरौ तित भाग भरौ घनआनँद जू रसनायक हौ।
ब्रजमोहन छैल छबीले सुनौ कहियै तौ कहा सब लायक हौ ॥१३६॥

मुख देखि जियौं अनदेखे मरौं मुख चाहि मरौं तौ जियौं सु करौ।
ब्रजजीवन आनँद के घन होय न दीन पपीहनि प्रान हरौ।
झर पै झर लाय दबाइयै लाय बलाय लै पाय परौं कि ढरौ।
अब औसर है सुखदैन सुनौ इक बार जिवाइ कै जीबौ करौ ॥१३७॥

सखि जौ लौं गुमान हो जोबन रूप को कान्ह सौं तौ लगि मान सज्यौ।
घुरि घेरि कै कानि बढ़ोरि कै लाजहि नीरस नेम लै प्रेम तज्यौ।
घनआनँद बाँसुरिया सुर छाकि हिये तैं सबै डर भीजि भज्यौ।
अब डारतो मारि सयान हठी जौ पै लेती बौरानि जिवाय न ज्यौ ॥१३८॥

सब ओर तैं ऐंचि कै कान्ह किसोर मैं राखि भलैं थिर आस करैं।
ब्रजनाथ-प्रियानि कृपानि समोय सदा मन कौं अनयास करैं।
घनआनँद छाय रहे निसिद्यौस मनोरथ रास-बिलास करैं।
ब्रज-बीथिनि भोर निसीथिनि सो उनमाद-सवाद सौं बास करैं ॥१३९॥

सीतल सुंदर मोहन-मंदिर कंदन-केलि-कलानि बिसेखौ।
गोबिँद गोधन ग्वारनि कौं घनआनँद छावत आवत देखौ।
फूलन कै फल कै दल कै जल कै ललकै भरि भाव असेखौ।
लै मन हाथ रहै हरि को हरि-हाथ रहै गिरिनाथ सु लेखौ ॥१४०॥

कबित्त

कहाँ लौं तिहारे गुन गुनियै गसीले स्याम,
सुखिया सुतंतर हौ अंतर पिराय कै।

रहते हो। [१३६] पन० = पन को पी जानेवाले। [१३७] लाय = आग। [१३८] बढ़ोरि = बढ़ाकर। सयान = चतुरता। ज्यौ = जी। [१३९] थिर० = आशा को स्थिर कर लें। अनयास = श्रमरहित, स्वस्थ। निसीथिनि० = रात्रि। [१४०] कंदन = मूल। असेखौ = अखंड। गिरिनाथ = गोवर्धन। लै० = मन

भोर भएँ डोलत रसीले ब्रजमोहन जू,
कबहूँ न कहूँ नेह थाप्यौ है थिराय कै।
मीठी मीठी बातैं कहि दैया बिष भोवत क्यौं,
निधरक बैठे मन मोहन फिराय कै।
बरसौ बिसासी घनआनँद कहा है बस,
हमैं यौं जरावौ हाय औरनि सिराय कै ॥१४१॥

गति लेत प्यारी न्यारी न्यारीयै लहक जामैं,
लोने अंग रंगनि लगै निकाइयै भरी।
मुसकानि-आभा-फैल छाकत छबीलो छैल,
सील-भीज चाहनि रसीली बरुनी हरी।
मुरली बजाय कै नचावै रिझवार प्यारो,
सुरति लगौंहीं डटि भौंह भेद सौं भरी।
ढोरक पै ललिता ललित आँगुरीनि ढोरै,
छायौ घनआनँद चटक चोख है परी ॥१४२॥

कोप बिष-ओप सुधा सींचत निहारनि मैं,
बिषम अन्यारे प्यारे लागैं पैठि प्रान हैं।
पानिप सौं पूरे जोति जगैं, चकचौंधी होति,
उज्जल ढरारे हरैं मोतिन के मान हैं।
घनी बंक बाँकनि की झाँकनि झुकौहैं घन-
आनँद उमहि दाबै धीरज सयान हैं।
छैल ब्रजमोहन टरै न परि गोहन ये,
जोहन तिहारे करैं ऊलट उठान हैं ॥१४३॥

मोहन अनूप बने रूप ठगी आँखैं इतै,
इनकी उरझ की छबीले येई साखियै।

अपने हाथ में हरि को ले और हरि के हाथ में गोवर्धन हो, मन गोवर्धनधारी का ध्यान करे। [१४१] गसीले = गाँस से भरे, छली। अंतर = चित्त। [१४२] ररी = रटती है, व्यक्त करती है। ढोरक = ढोलक। ढोरै = चलाती है। चोख = तीव्र।

पीवति अघाय प्यास बाढ़ियै रहति महा,
अहा अचरज कहौ कहा कहि भाखियै।
जानमनि जीवन उदार रिझवार छैल,
जसुधा-कुँवार गुन गहि अभिलाखियै।
चोप चातकी है भई आनँद के घन हौ जू,
सुदरस-रस दै रसीले रस राखियै ॥१४४॥

लगैगी तुम्हैं हूँ, कहूँ कबहूँ सनेह-चोट,
मेरी सी दुहेली पीर अंतर पिरायहौ।
कहा जानौं ऐसो दिन होयगो कबै धौं दैया,
बिषम बिछोह द्यौसरातिहि बितायहौ।
छैल ब्रजमोहन छबीले घनआनँद जू,
मोहिं फिरि आपनै हू दुखनि दुखायहौ।
तातैं तुम सुखी रहौ हौं ही दहौं, कहौ कब
लपटनि ताती छाती लपटि सिरायहौ ॥१४५॥

कौनैं हरि देव सो बतायो हरि देव हाहा,
नावैं हरिदेव पै हियौ हू हरि लेत हौ।
गिरिवर-कंदरानि मंदिर मैं बसौ लसौ,
साँवरे सलोने साधु से दिखाई देत हौ।
आनँद के घन झूमे रहत सदाई इतै,
घेरौ अबलानि दान माँगौ धरि हेत हौ।
गायनि चरावत हौ चायनि चतुर छैल,
भरे भेद-भायनि सौं दायनि समेत हौ ॥१४६॥

सवैया

लहाछेह कहा धौं मचाय रहे ब्रजमोहन हौ सुख-नींद भरे हौ।
मिलि होति न भेंट, दुरे उघरौ, ठहरैं ठहरानि के लाले परे हौ।

---

[१४३] बाँक० = हाथ पर पहना जानेवाला एक गहना। [१४५] दुहेली = दुःखद। [१४६] हरि देव = हरण करके किसे दे देते हो। नावैं० = नाम से तो

बिछुरें मिलि जात मिलें बिछुरें यह कौन मिलाप के ढार ढरे हौ।
घनआनँद छाय रहौ नित ही हित-प्यासनि चातक जात मरे हौ॥१४७॥

छप्पय

अच्छर मन कौं छरै बहुरि अच्छर ही भावै।
रूप अच्छरातीत ताहि अच्छरै बतावै॥
अच्छर को यह भेद कौन जानैं बिन मानै।
अच्छर हू मैं मौन मिलै सारदा सु ठानै॥
अच्छर मौन सवाद-रस आनँदघन बरसत रहै।
तत्वबोध बौरानि मैं अच्छरगति अच्छर लहै॥१४८॥

ब्रजबासिन की सहज होंय जैं प्रापति मन कौं।
पैहै आस बिसास राखि पालै हित-पन कौं।
नितलीला-रगमगे नैन थाकनि-सँग डोलैं।
जमुन-तीर तरु-बेलि केलि-रस झेलि कलोलैं।
अहोभाग कहियै कहा आनँदघन अभिलाष उर।
क्यौं लगै फूल आसा-लतैं, फूल-सहित पैसो सुघर॥१४९॥

छंद

ब्रजमोहन जू मन लागि पर्यौ जो लागि परी ते लेखे है।
नाहीँ तौ हाहा जनम निगोड़ौ यौं ही जात परेखे है।
जिन तरसावौ रस बरसावौ जग छायौ सुजस बिसेखे है।
आनँदघन प्यारे प्रान-पपीहै पल पहार बिन देखे है॥१५०॥

तीखी तरल सोच हूकनि हिय हाय हाय को लौं छनिहै जू।
धुनि धुनि सीस दीन जियरा पुनि कब लौं दुखनि हारि हनिहै जू।

हरकर 'देने'वाले हो पर हृदय तक को हर लेनेवाले हो। [१४७] लहाछेह = शीघ्रता। [१४८] अच्छर = (अक्षर) वर्ण; अक्षरब्रह्म। छरै = छलता है।

ऐसैं ही ऐसैं आनँदघन कैसैं तुम्हैं बिना बनिहै जू।
औधि अनेक भाँति बितई हरि अंत लेत फिरि को गनिहै जू ॥१५१॥

चौपाई

जो सवाद आवै हरि रस को। मन तें मिटै मीच को धसको।
मिलै सजीवन बाढ़ै चसका। आनँदघन झर लगै दरस को ॥१५२॥

बरवै

श्री वृंदावन आवै सो मन और।
ऐसैं भटकै मन की केतिक दौर ॥१५३॥

महाबरवै

सुनहु लड़ैती राधे कीजै करुना-डीठि।
मन सनमुख करि लीजै दीजै कब लौं पीठि ॥१५४॥

सोरठा

जासौं अनबन मोहि, तासौं बनक बनी तुम्हैं।
हियो परेखनि पोहि, कहा झुलावत गुन-भरे ॥१५५॥

दोहा

ब्रजबासिन की अगम गति कौं लखि सकै न कोय।
नंदराय के बाल बसि, जौ ब्रजबासी होय ॥१५६॥
ब्रजमोहन सुख नित नयो, तिहूँ समय रसरूप।
बिन बूझे मति सूझई, अतुलित प्रेम अनूप ॥१५७॥

—['श्री शंभुप्रसाद बहुगुना' से प्राप्त]

---

[१४६] जुँ = यदि। [१५१] झनिहै = बँधा रहेगा। [१५५] पोहि = गुहकर।

आनंदघन (भक्त कवि)

स्फुट

'कान्ह' की रट] (२७) [कल्याण

कान्ह कान्ह की रट लागी मेरी रसना कैं।
जब तें बनवारी बन गए तब तें ये अँखियाँ इकटक उत ही कौं झाँकैं।
मुरली-धुनि सुनिबे की साध दुसाधन प्रान बसेरो कानन घाँ कैं।
वे आनँदघन इत चित-चातक को जानै कित कौं धावें औ आवैं
ह्वै अब मारग सूधे बाँ कैं॥

विरहिणी] (२८) [कान्हरा

तेरे नाल लगी हो जिंद निमानी।
कित बल कूँ काँ कोई नहिं सुनदा साडी दरद - कहानी।
जो सुन वेखाँ तोसी जीवाँ मान न कर वे गुमानी।
आनँदघन हूँ तू तरसावी वारी वारी ओ दिलजानी॥

टेर] (२९) [ललित

तुमकौं टेरत हौं कहाँ न।
श्री बृंदावन-ओर जात है रूप-रासि की खाँन।
टेरन के लगि हेरन लागी हेरन लागि हेराँन।
आनँदघन रसमत्त पपैया ज्यौं जल बिन मुरझाँन॥

लगन] (३०)

लागि रह्यौ मन राधावर सौं, और कहूं कछु और उपर सौं।
दिन रतियाँ अँखियाँ आगे मेरी ठाढ़े रहैं कछु रूप सुघर सौं।
आनँदघन प्रभु लागे नेहा प्रेम रँगौंगी मैं गिरिधर सौं॥

---

[२७] दुसाध = दुस्सह उत्कंठा। घाँ = ओर। [२८] नाल = लिए, वास्ते। जिंद = जिंदगी। निमानी = अमानी। बल = ओर। साडी = हमारी। वेखाँ=

(३१) [मालव

आइयै आइयै लालन, अंग संग रंग के
तरंग उपजै री जब सब निसा जगाई।
सब ही कौं मनमथ, सब तिय जानति नीके कै रस-बस आनँदघन
सौतिन गाजनी गाई॥

—['ब्रज-भारती' से]

देखूँ। [२६] पपैया = पपीहा। [३०] उपर० = ऊपर से। [३१] गाजनी = गर्जन, हर्ष।

बहोत्तरी

अभिलाष] (१०७) [बिलावल

मेरे ए प्रभु चाहिये नित्य दरिसन पाऊँ।
चरण-कमल सेवा करूँ, चरणे चित लाऊँ।
मन-पंकज के मोल में, प्रभु - पास बिठाऊँ।
निपट नजीक हो रहूँ मेरे जीव रमाऊँ।
अंतरजामी आगले, अँतरिक गुण गाऊँ।
आनँदघन प्रभु पास जी मैं तो और न ध्याऊँ॥

प्रिय निरंजन] (१०८)

निरंजन यार मोय कैसे मिले।
दूर देखूँ मैं दरिया डुंगर ऊँचे बादर नीचे जमी यूँ तले।
धरती में घडुता न पिछानूँ अगनि सहुँ तो मेरी देही जले।
आनँदघन कहे जस सुनो बाताँ ये ही मिले तो मेरो फेरो टले॥

शरीर-भर्त्सना] (१०९) [आसावरी

अब चलो संग हमारे, काया अब चलो संग हमारे।
तोंये बहोत यत्न करि राखी, काया अब चलो संग हमारे।
तोंये कारण मैं जीव सँहारे बोले जूठ अपारे।
चोरी करी परनारी सेवी, जूठ परिग्रह धारे।

---

[१०७] नजीक = नजदीक, निकट। अँतरिक = आंतरिक। [१०८] डुंगर = पहाड़। जमी = भूमि। घडुता = घटनत्व, गढ़न। जस = यशोविजय।

पट आभूषण सुंघा चूआ अशन पान नित न्यारे।
फेर दीने खटरस तोंये सुंदर, ते सब मल करि डारे।
जीव सुणो या रीत अनादि, कहा कहत बारंबारे।
मैं न चलूँगी तोंये सँग चेतन, पाप पुण्य दो लारे।
जिनवर नाम सार भज आतम, कहा भरम संसारे।
सुगुरु बचन परतीत भए तब, आनँदघन उपगारे॥

रहस्य] (११०) [विहाग

कंथ चतुर दिलज्ञानी—हो मेरो कंथ चतुर दिलज्ञानी।
जो हम चहेनी सो तुम कहेनी, प्रीत अधिक पीछानी।
एक बुंद को महेल बनायो, तामैं ज्योत समानी।
दोय चोर दो चुगुल महेल मैं, बात कच्छु नहि छानी।
पाँच अरु तिन त्रिया जो मंदिर मैं, राज्य करे रजधानी।
एक त्रिया सब जग बश कीनो ज्ञान-खड्ग-वश आनी।
चार पुरुष मंदिर मैं भूखे, कबहूँ त्रिपत न आनी।
दश असली एक असली बूजे, बूजे ब्रह्मज्ञानी।
चार गती मैं रुलता बीते, कर्म की किणहु न जाणी।
आनँदघन इस पद कूँ बूजे, बूजे भविक जन प्राणी॥

(१११)

तज मन कुमता कुटिल को संग।
जाके सँग तैं कुबुद्धि उपजत है, पड़त भजन मैं भंग।

---

[१०९] परिग्रह = दान। सुंघा = सुगंध। चूआ = चोवा। लारे = पीछे। उपगार = उपकार। [११०] कंथ = कंत, पति। छानी = छिपी। बुंद =

कौवे कूँ क्या कपूर चुगावत, श्वानही न्हावत गंग।
खर कूँ कीनो अरगजा लेपन, मर्कट आभूषण अंग।
कहा भयो पयपान पिलावत, विषहु न तजत भुजंग।
आनँदघन प्रभु काली काँबलियाँ चढ़त न दूजो रंग॥*

—['आनंदघन-पद-संग्रह' से]

वीर्य। महेल = शरीर। रुलता = भटकता। भविक = भावुक, भक्त।
[१११] खर = गधा। मर्कट = बंदर।

* यह पद 'सूरदास' का है। मिलाइए—'सूरसागर', वेंकटेश्वर प्रेसवाला संस्करण १।२११।

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२३	१७	औौर	औौ
४१	९	अँगार	अँगारनि
		निमगारि	मगारि
४१	२३	निमगारि	मगारि
४३	२	साधि	सोधि
४५	२०	देखि	देखी
४६	५	हरतार	हटतार
४८	२८	सिधि	रिधि
५१	४	असा	आसा
५४	५	चित-चाव	बित चाव
५७	३	प्यारे	प्यारी
६६	२६	देखना	देखा
६९	२०	सादर	आदर
७१	११	छबि	छकि
७१	१७	मीत	मीच
७१	१८	छटा न	छटान
८०	१९	रिद्दोरत	निद्दोरत
८२	२८	लहराते	लहलहाते
८५	२४	अपट	कपट
८७	६	भोगलात	-भोग जात
८९	१	अवसर	औसर
९०	२६	अंतःपुर	राधा का जन्म-स्थान
९६	२१	व्यर्य	व्यर्थ
९६	२२	रौंका	टाँका
१०२	१९	प्यारे	प्यार
११०	१५	मनि बिन्नु	मन बिनु
११०	२७	सातिकत्त्विक	सातिक
११०	२७	साभाव	सात्त्विक भाव
११७	१५	छार	छीर
१४१	२२	साधन दैन	साधन लैन
१४६	१५	जीव	जीभ
१४६	२२	चिरस्थायी	चिरस्थायी या आग
१४७	१०	प्रात	प्रान
१४७	२०	धारि	धरि
१४८	७	तक	तें
१४९	१०	घरनि	घरनि
१५०	२१	ललल	ललक
१५१	१०	छलताई	छैलताई
१५१	२०	कौं	धौं
१५२	१	आरति	गारति
१५३	१८	की	को
१६०	२४	झीना झपटी	छीनाझपटी
१६८	८	मन	तन

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१६८	१०	अमीत	अनीत
१७१	६	बधिक	बधिर
१७६	१३	अरिल्ल	अरल
१८२	१	बेषन	बेखन*
१८४	१८	बरन	चरन
२२४	१९	प रस्त	परस्त
२६०	२०	मीठा	रस = मीठा
२६४	२४	मंदीर, बधावा	मर्दल बाजा
२६४	२५	(मंदीर)	मर्दल
२६६	८	निकसत	निकसन
२६८	४	भैंटन	भैंट्न
२९४	२६	धूम	ऊधम
२९४	२७	धूष्ट	धृष्ट
३०४	६	झटपत	झपटत
३०८	१४	नन्दबानी	नकबानी
३१५	१७	निहरैं	बिहरैं
३३६	१७	किय	किम
३४९	२६	अपू	अप्
३४९	२६	तेज,अग्नि	तेज (अग्नि)
३५८	१	सवमयी	सर्वमयी
३७४	२४	नोक	बोक
४०४	११	मिलाई ॥	मिलाई ॥*
४०४	१८	गावे ॥*	गावे ॥
४२४	२२	अपनी मनि	अवनीमनि
४३०	१३	बालि	बोलि

सूचना

(१) मात्राओं के टूटने से होनेवाली अशुद्धियों का उल्लेख वृथा है।

(२) पृष्ठ १४८ पर पदसंख्या २७ के उपरांत किसी किसी प्रति में ये दो चरण और मिलते हैं—

यही आवै अजू प्यारे अँदेसौ।
रह्यौ पहचानि कों ही मैं न लेसौ ॥